Issue-12/Vol-42/JSep. 2024 ISSN No. 2319 - 5908
An International Bilingual Multidisciplinary Peer Reviewed Refereed Quarterly Research Journal

शोध संदर्श

शोध संदर्श

SHODH SANDARSH

शिक्षा, साहित्य, मानविकी, कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य आदि

Chief Editor :
Prof. (Dr.) V.K. Pandey

Editor :
Dr. V.K. Mishra
Dr. V.P. Tiwari

UGC Approved Peer Reviewed Journal

SCIENTIFIC JOURNAL IMPACT FACTOR SJIF No. 6.756

विविध ज्ञान - विज्ञान - विषय का मन्थन एवं विमर्श।
नव - उन्मेषी दशा - दिशा से भरा 'शोध - सन्दर्श' ॥

Issue-12/Vol-42/Sep. 2024 Peer Reviewed Refereed Quarterly Research Journal
SHODH SANDARSH ISSN No. 2319 - 5908

ISSUE-12 / Vol.-42/Sep. 2024 **ISSN NO. 2319-5908**

An International Bilingual Multidisciplinary Peer Reviewed Refereed Quarterly Research Journal

SHODH SANDARSH

शोध संदर्श

Education, Literature, Humanities,
Art, Culture, Science, Commerce etc.

Patron

Prof. (Dr.) A.P. Ojha
Head.
Deptt. of AIHC & Archaeology
Allahabad Central University, Prayagraj (UP)

Prof. R.P. Tripathi
Ex. Head.
Deptt. of AIHC Archaeology
Allahabad Central University, Prayagraj (UP)

Chief Editor

Prof. (Dr.) Vimlesh Kumar Pandey
Professor
Ancient History, Culture and Archaeology
Saltanat Bahadur P.G. College, Badlapur, Jaunpur (UP)

Editors

Prof. Sushaim Bedi
Deptt. of Hindi
Colambia University USA

Dr. Vijay Pratap Tiwari
Mentor of SSIJ and Educationist,
Delhi, India

Dr. Vijay Kumar Mishra
Founder VP Print Media and Research Institute, Prayagraj (UP)

Dr. Pramod Kumar Pandey
Ex. Prof. & Head of Maithili
T.M. Bhagalpur University, Bhagalpur Bihar

Co-editor

Dr. Girja Prasad Mishra
Asstt. Professor (B.Ed)
P.G. College Patti Pratapgarh (U.P.)

Editorial Managerable Office

Vijay Pratap Tiwari

539-A, Bukhshi Khurd, Daraganj, Prayagraj (UP)-211006
Email : shodhsandarshalld@gmail.com
Website : www.shodhsandarsh.com
Mobile : 09415627149, 09450586526, 09015465436

Publisher & Printer

Vagisha Prakashan, Old Jhunsi, Kohna, Jhunsi, Prayagraj (UP)
Email : Vijaykumarmishra1976@gmail.com

SHODH SANDARSH

शोध संदर्श

Education, Literature, Humanities,
Art, Culture, Science, Commerce etc.

Editorial Board

Prof. (Dr.) Saroj Goswami
Head Deptt. of Hindi
Govt. Girls P.G. College, Rewa (M.P.)

Dr. Ramratan Sahu
Associate Professor & Branch Head History
Dr. C.V. Raman University, Kargi Road,
Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

Dr. Vijai Kumar Srivastava
Associate Prof. Deptt. of physics
DDU Gorakhpur University, Gorakhpur

Dr. Lakshmi Pandey
Associate Professor
University Department of Psychology
T. M. Bhagalpur University, Bhagalpur, Bihar

Dr. Jamil Ahmed
Asstt. Professor, Deptt. of AIHC & Arch.
Ishwar Saran P.G. College, Prayagraj

Dr. Nar Narayan "Shastri"

Dr. Sanjay Kumar Singh
Economic and Statistical Officer, (U.P.)

Anil Kumar Swadeshi
Associate Prof. Deptt. of English
PGDA V College, Delhi University, Delhi

Manohar Pathak
Work as Research Intern at CSIR-NISCAIR for Indian Journal of Natural Products and Resources

Dr. Bare Lal Jain
Assistant Prof. Dept. Of Hindi
A.P.S. University, Riwa (MP)

Peer Reviewed Committee

Prof. Sita Ram Dubey
Ex. Head
Deptt. of AIHC & Archaeology Banaras Hindu University, Varanasi (U.P.)

Dr. Lal Sahab Singh
Associate Professor
Head Deptt. of Political Science
R.R.P.G. College Amethi, (U.P.)

Prof. P.D. Singh
Associate Professor
Deptt. of Sanskrit
Banaras Hindu University, Varanasi (U.P.)

Dr. Shashi Kumar Singh
Associate Professor Deptt. of Sanskrit
Dr. Hari Singh Gaur University, Sagar (M.P.)

Prof. Anurag Bhadoria
Associate Professor Deptt. of Management
Banaras Hindu University, Varanasi (U.P.)

Prof. (Dr,) Sachchidanand Chaturvedi
Head Deptt. of Hindi
Central University, Hyderabad, (Telangana)

Dr. Vijendra Pratap Singh
Assistant Professor
Deptt. of Hindi, Govt. P.G. College, Jalesar, Etah (U.P.)

Dr. Pramod Kumar Singh
University Department of Maithili
T. M. Bhagalpur University, Bhagalpur

Legal Advisor

Dhirendra Kumar Mishra

सम्पादकीय

भारतीय संस्कृति विश्व संस्कृतियों का मूलाधार है। संस्कृति से तात्पर्य प्राचीन काल से चले आ रहे संस्कारों से है। मनुष्य द्वारा लौकिक–पारलौकिक विकास के लिए किया गया आचार–विचार ही संस्कृति है। सनातन परंपरा के अनुरूप संस्कार की पद्धति ही संस्कृति है। संस्कृति अनुभवजन्य ज्ञान पर और सभ्यता बुद्धिजन्य ज्ञान पर आधारित है। सभ्यता से सामाजिक व आर्थिक जीवन प्रभावित होता है, जबकि संस्कृति से आध्यात्मिक जीवन। भारतीय संस्कृति सदैव अपने उदार गुणों के कारण पंथनिरपेक्ष रही है। यह उदात्ता व्यवहार की प्रतीक है। इसमें सहिष्णुता कूट–कूट कर भरी है। भारतीय संस्कृति प्रत्येक जाति व प्रत्येक व्यक्ति में सुसंस्कार उत्पन्न करती है। स्वामी विवेकानंद ने कहा है, 'यदि मनुष्य के पास संसार की प्रत्येक वस्तु है, लेकिन मानवता व धर्म नहीं है, तो क्या लाभ?' भारतीय संस्कृति अध्यात्मवादी है, देहात्मवादी नहीं। हमारी संस्कृति प्राचीनतम है। संस्कार अपने आप में अमूर्त होते हैं। ये व्यक्ति के आचरण से झलकते हैं। चरित्र निर्माण में धर्म व संस्कार महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सहिष्णुता, समन्वय की भावना, गौरवशाली इतिहास, संस्कार, रीति–रिवाज और उच्च आदर्शों के कारण भारतीय संस्कृति सर्वश्रेष्ठ है। विवेक और ज्ञान भारतीय संस्कृति की आत्म भावना है।

भारतीय संस्कृति में सदाचार का महत्वपूर्ण स्थान है। जिसे सतत्व का बोध हो जाता है, उसका आचरण सदाचार कहलाता है। सदाचार का आधार आध्यात्मिक ज्ञान और भगवद् भक्ति है। सदाचार चरित्र का प्रधान अंग है। भारतीय संस्कृति में मनुष्य का जन्म दो बार माना जाता है। पहला, माँ के गर्भ से बच्चा अज्ञान अवस्था में जन्म लेता है। उसे जब सदाचार रूपी पवित्र संस्कारों की शिक्षा–दीक्षा दी जाती है, तब वह सदाचार परायण बनता है। दूसरा, इन्हीं पवित्र संस्कारों द्वारा मनुष्य का दूसरा जन्म होता है। भगवान सदाचार का स्वरूप बतलाने के लिए मानव रूप में अवतार लेते हैं। सच्चा भक्त भीतर और बाहर भगवान का ही रूप समझ कर सदाचरण करता है जिसे सदाचार धर्म या भागवत धर्म भी कहते हैं।

संस्कृति का संबंध संस्कारों से है। ये संस्कार हमारे अंदर रचे–बसे होते हैं। हमारे आचरण और व्यवहार में प्रकट होते हैं। संस्कृति मनुष्य के आत्मिक, पारिवारिक और सामाजिक विकास में सहायक होती है। सभ्यता जहाँ व्यक्ति को भोगवादी बनाती है, वहीं संस्कृति उसे संयम सिखाती है। सभ्यता अपने लिए जीना, तो संस्कृति दूसरों के लिए परोपकार सिखाती है। इसलिए विश्व की सभ्यता एक है, पर देशों की संस्कृति अपनी आंतरिक होती है। जरूरी नहीं कि वेशभूषा और बातचीत से सभ्य दिखता व्यक्ति सुसंस्कृत भी है। अभावग्रस्त व्यक्ति भी सुसंस्कृत हो सकता है, यदि वह अपनी रोटी बांट कर खाता है। आवश्यकता से अधिक धन संग्रह करना दूसरों के अधिकार छीनना है। ऐसे व्यक्ति बाहर से सभ्य दिखते हों उनका प्रभाव या आतंक समाज पर हो सकता है, परंतु वे समाज का आदर नहीं प्राप्त कर सकते, क्योंकि समाज के लिए समय और साधन लगाने वालों के व्यवहार ही संस्कृति से प्रभावित होता है।

अक्सर हम सभ्यता और संस्कृति को एक ही धरातल पर रखते हैं। मानों दोनों समानार्थक हों। हालांकि दोनों एक नहीं हैं। दोनों में संबंध है और नहीं भी है। सभ्यता का संबंध भौतिक विकास से है। खान–पान, रहन–सहन, रीति–रिवाज, मकान–रोड अर्थात जितने दृश्य जगत हैं, वह सभ्यता का प्रभाव है। वैज्ञानिक अनुसंधानों और आविष्कारों के कारण हमारा दृश्य जगत बदलता रहता है। हमारा रहन–सहन भी उससे प्रभावित होता है।

सभ्य और असभ्य व्यवहार की परिभाषाएँ बदलती रहती हैं। सभ्यता का संबंध मस्तिष्क से है। आरामदेह वस्तुओं और स्थितियों का सृजन मस्तिष्क से है। आरामदेह वस्तुओं और स्थितियों का सृजन मस्तिष्क के माध्यम से ही होता है। जिन्हें हम काल के अनुसार अपनी सभ्यता मान लेते हैं। दो देशों की सभ्यता भिन्न–भिन्न हो सकती है और एक समय में पूरे विश्व की सभ्यता एक हो सकती है।

इसलिए वर्तमान समय में संस्कार, सभ्यता, संस्कृति को बचाने के लिए धर्म और समाज के लौलिक रीति को अपने व्यवहार शामिल करें। वर्तमान काल शोध का विषय है कि क्या हम अपनी सभ्यता और संस्कृति के अनुरूप आचार व्यवहार कर रहे हैं। आज हम धर्म और धार्मिक स्थलों की आस्था पर आघात कर रहे हैं, अपनी वेश–भूष के द्वारा, आचार व्यवहार के द्वारा। चिंतन करें क्या हमें ऐसा करना चाहिए।...

Content

- **Effect of Blended Leraning on Achievement in English in Relation to Academic Stress-***Dr. Shrutee Kanwar* **1-8**
- **प्रभा खेतान की आत्मकथा में व्यक्त नारी संवेदना-***गिरजा कुमारी* **9-11**
- **मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री विमर्श की परिकल्पना-***सीता देवी साकेत एवं डॉ. उषा नीलम* **12-19**
- **अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की जीवन शैली का अध्ययन -***सुरेश प्रसाद दास एवं डॉ. (श्रीमती) छाया श्रीवास्तव* **20-24**
- **हिन्दू एवं इस्लाम धर्म में विवाह के बदलते स्वरूप-***बबिता पासवान* **25-27**
- **कृष्णा सोबती के उपन्यासों में नारी चित्रण : एक दृष्टि** *-डॉ. अखिलेन्द्र प्रताप सिंह एवं डॉ. आभालता चौधरी* **28-31**
- **वेदों में प्राकृतिक चिकित्सा-***डॉ. जेबा खान* **32-35**
- **साइबर सुरक्षा और भारतीय साइबर सुरक्षा इको-सिस्टम-***हरी सिंह* **36-39**
- **वेदों में सर्वजन हिताय एवं सर्वजन सुखाय की भावना-***सुदामा देवी एवं प्रो. (श्रीमती) सुषमा शुक्ला* **40-44**
- **Study of Rural Agricultural Banking : An Analysis-***Dr. Pradeep Kumar* **45-49**
- **Stanley Fish's Critical Views on Milton: A Critical Study** *-Dr. Neelam Kumar Sharma & Dr. Manish Joshi* **50-53**
- **Impact of Advertising Strategies on Buyers' Behavior, Focusing on a Case Study of Sony Center in Patna, India -***Dr. Faryas Kausar Ansari* **54-61**
- **बिहार राज्य में ग्रामीण महिला श्रमिकों की शिक्षा एवं स्वास्थ्य स्थिति : एक समाजशास्त्रीय -अध्ययन-***डॉ. कादम्विनी कुमारी* **62-65**
- **Venture Capital : A Global and Indian Overview-***Dr. Himanshu Kumar* **66-71**
- **प्राचीन भारतीय इतिहास के मौर्यकाल में उद्योग एवं व्यवसाय : एक अध्ययन-***डॉ. ममता पाण्डेय* **72-76**
- **शैक्षिक अनुसंधान की प्रक्रिया में शोध नैतिकता एवं कृत्रिम बुद्धिमत्ता की प्रासंगिकता** *-डॉ. शशि कुमारी एवं जगदीश कुमार* **77-79**
- **विष्णु प्रभाकर के नाटकों में चेतना की अद्वितीय अभिव्यक्ति-***कंचन कुमारी* **80-84**
- **Generalized E-Fuzzy Metric Space and its Properties-***Dr. Ajay Kumar* **85-91**
- **Application of Differential Equation in COVID-19 Outbreak Data Analysis** *-Anil Kumar Yadav & Prof. Lalan Kumar Singh* **92-98**
- **आदिम लोक कलाएँ और जनजातीय चेतना-***डॉ. कुमारी कंचन बरनवाल* **99-102**
- **शरद सिंह के उपन्यासों में स्त्री संदर्भ-विमर्श के नवीनतम आयाम** *-श्रीमती सुनीता सिंह एवं डॉ. शिप्रा सिंह* **103-106**
- **An Analysis of Consumer Purchasing Behavior in Rural Bihar** *-Prof. Lakshman Singh & Sunny Kumar* **107-112**
- **Marketing Approaches of Indian Automobile Firms : An Analysis of the Automobile Sector -***Prof. Lakshman Singh & Md Aslam Hussain* **113-117**
- **Analysis of Employee Productivity : A Comparative Study of Punjab National Bank and Central Bank of India-***Prof. Krishna Kumar & Vijay Kumar Sharma* **118-121**

- **Robinson Crusoe : An Utopian Man**-*Dr. Shippra* **122-126**
- **मृदुला गर्ग की कहानी-साहित्य का संरचना पक्ष-** *राजेश्वरी देवी एवं डॉ. नारायण* **127-129**
- **1942 की अगस्त क्रान्ति और इलाहाबाद**-*कु. ज्योति* **130-133**
- **भारत विभाजन की विभीषिका का हिन्दी फिल्मों में पुर्नचित्रण : 1947-1980**
  -डॉ. राहुल द्विवेदी **134-140**
- **प्राचीन भारत के संदर्भ में राष्ट्र की अवधारणा**-*डॉ. अनामिका मौर्या* **141-143**
- **उच्च माध्यमिक छात्रों के बीच शैक्षणिक तनाव पर एक अध्ययन-** *डॉ. अल्पना कुमारी* **144-150**
- **An Analytical Study of Slope**-*Dr. Sanoj Kumar* **151-153**
- **An Examination of Customer Perspectives on Core Banking Services Provided by Financial Institutions in Bihar**-*Dr. Garima Mishra* **154-157**
- **A Study to Know About the Loopholes in Using IOT Based Smart Waste Management System**-*Manish Kumar, Dr. Dharmendra Kumar & Shweta Kumari* **158-165**
- **A Study of Attitude of Principals of Government Higher Secondary School Towards the Teaching Strategies of their Probationary Teachers in Bihar**
  -B. Anamika & Dr. Jaydev Pati **166-173**
- **बिहार में तसव्वूफ का विस्तार**-*डॉ. मो. इस्माइल* **174-175**
- **बिहार पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव (एक तुलनात्मक और अनुमानात्मक अध्ययन)**
  -डॉ. आदित्य कुमार **176-179**
- **A Protected Cloud Strategy for Managing Knowledge Content Systems in Tertiary Education**-*Vijay Kumar Jha* **180-184**
- **उच्च शिक्षण संस्थानों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के नैतिक विकास का अध्ययन**
  -अशोक कुमार सिंह एवं डॉ. रमेन्द्र तिवारी **185-191**
- **उदय प्रकाश व्यक्तित्व एवं साहित्य सृजन**-*पंकज कुमार यादव एवं डॉ. अरविन्द कुमार यादव* **192-193**
- **लोककल्याणकारी की अवधारणा और भारतीय चिंतक महात्मा गाँधी**-*डॉ. रश्मि जोशी* **194-196**
- **इक्कीसवीं सदी के हिन्दी उपन्यासों में बाजार और किसान-** *डॉ. भानु प्रताप सिंह* **197-199**
- **पराम्बानुग्रहवैभवम् महाकाव्य में भगवती देवी की कृपा-** *डॉ. रितेश कुमार* **200-203**
- **A Study of Gender Comparison on Subjective Well Being**
  -Shri Nandini & Dr. Anand Shankar **204-208**
- **दलितों और हाशिए पर रहने वाले समुदायों के संरक्षक के रूप में कर्पूरी ठाकुर का नेतृत्व**
  -आफजल इकबाल **209-213**
- **भारत में ब्रिटिश काल की शिक्षा प्रणाली के प्रभाव और शैक्षिक विद्रोह का विश्लेषण**
  -डॉ. अरविन्द कुमार **214-217**
- **स्वयं सहायता समूह एवं आत्मधारणा : एक अध्ययन**-*जुली कुमारी* **218-222**
- **उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का तुलनात्मक अध्ययन**
  -प्रो. (डॉ.) मान सिंह एवं लाल बहादुर यादव **223-230**
- **A Study of Subjective Well Being Among High and Low Income Groups**
  -Shri Nandini & Dr. Anand Shankar **231-235**
- **कुसुम कुमार के नाटकों में समापन**-*निशा जैन एवं डॉ. नीलकंठ कुमार* **236-238**
- **भारतीय समाज में दलित उत्थान एक विश्लेषण**-*डॉ. संतोष पासवान* **239-242**

- **महाकवि विद्यापति एवं उनके लोकगीत**-*डॉ. दीपक कुमार राय* **243-246**
- **मोहन राकेश की कहानियों में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध**-*अशोक क्रांति* **247-251**
- **विदेशियों के वृत्तांतों में मुगलकालीन भारत के मेले और त्यौहार**-*श्याम सागर* **252-256**
- **Fashion and Its Psychological Impact on Youth : A Review Study**
  -*Laliteshwar Kumar & Dr. Lakshmi Pandey* **257-261**
- **महात्मा गांधी के शैक्षिक विचार : एक समग्र विश्लेषण**
  -*डॉ. उत्कर्ष उपाध्याय एवं अतुल कुमार द्विवेदी* **262-267**
- **देवदासी प्रथा : भारत में धार्मिक वेश्यावृत्ति की ऐतिहासिकता का विश्लेषण**-*डॉ. सुरेन्द्र सिंह* **268-272**
- **Digital Innovation and Artificial Intelligence: A Tipping Point in Research and Development**-*Dr. Jayanti Rani* **273-278**
- **Feminine Awareness in the Select Novels of Shobha De**
  -*Dr. Madhav Prasad Tripathi* **279-281**
- **गाँधीवादी आर्थिक-दर्शन के उपकरण**-*मनोज कुमार राघव* **282-286**
- **डॉ. भीमराव अम्बेडकर का आर्थिक चिंतन**-*डॉ. अरुण कुमार सिंह* **287-290**
- **Haridwar The Gateway to the God Goddess Essence Of the Ganga/Ganges Himalaya Mountains, Hinduism**-*Dr. Sarla Shahi* **291-297**
- **भारत में कुल प्रजनन दर का स्थानिक-कालिक विश्लेषण**-*अमृता कुमारी एवं डॉ. रत्नेश शुक्ल* **298-304**
- **प्रेमचन्द के कथा साहित्य में नारी-चिन्तन**-*डॉ. रेखा सिंह* **305-307**
- **समकालीन हिन्दी कहानी में अभिव्यक्त महानगरों का पर्यावरण-विमर्श**
  -*जगदीश प्रजापति एवं प्रो. क्षमा मिश्रा* **308-312**
- **सीतापुर (भैंसाना) के अप्रकाशित पुरावशेष**-*प्रो. (मेजर) विमलेश कुमार पाण्डेय* **313-315**
- **CSR Strategies & Consumer Brand Loyalty Brand Reputation, Ethical Marketing Consumer Trust**-*Dr. Upma Tripathi* **316-321**
- **मध्य प्रदेश के 2022 के पंचायत चुनाव में जनजातीय महिलाओं का प्रतिनिधित्व : एक अध्ययन (सीधी जिले के विशेष संदर्भ में)**-*गुलाब सिंह श्याम* **322-324**

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 1-8

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Effect of Blended Leraning on Achievement in English in Relation to Academic Stress

*Dr. Shrutee Kanwar**

Abstract : *The purpose of the study was to investigate the effect of Blended learning on achievement in English in relation to academic stress. The sample was drawn from 9th class English students (N= 100) taken from two different schools of Noida district in Uttar Pardesh, affiliated to CBSE, New Delhi. Instructional material based on Blended learning was prepared and implemented to the experimental group after pre- testing. The gain scores were computed after post test for all the students. Academic stress scale was also administered. Analysis of variance (2x3) was used to arrive at the following conclusions (i) Blended learning was more effective on achievement in English in comparison to conventional teaching strategy. (ii) Performance of students with different academic stress group through Blended learning strategy was found significant (iii) Significant interaction effect was found between the two variables.*

INTRODUCTION : In today's competitive as well as technological world, after food, clothing and shelter, education has become the fourth necessity for man. It is education only that has been proved to be a powerful tool to combat the cut-throat competition that man is facing at every phase in life. Education involves the transformation of knowledge or learning between two sources i.e. from teacher to the learner (Dorasami, 1996). According to Al-Shunnaq & Bani Doni (2010) strategies are one of the factors which ultimately shape the psyche of the students. For effective teaching teacher should select proper teaching strategies and techniques because it is a way of presenting the subject which keeps in mind the psychological and physical requirements of children.

As the great aim of education is not knowledge, but action and online learning has been considered best way to convert the gained knowledge into action. Blended learning based on internet solutions gives flexibility because the Internet has made it possible to change, search, save, distribute and share information fast (Brown,1997). Blended learning involves the use of a computer or electronic device (e.g. a mobile phone, tabs) to provide educational or learning material. It helps the students to increase the interaction between student and teacher.

Blended learning is an electronically supported medium that provides all children with the appropriate and comfortable learning conditions so that they can learn properly. It is the information and communication system that serves as the assigned media to implement the process of learning. (Freihat,2004). In Blended learning programme the study material is delivered through different via medias like internet, audio/video tape, satellite TV and CD-ROM etc (Salmah,2005). It can be through self-help or instructor and it can be in the form of text, image, streaming video and audio or animation. These types of online learning programmes provide the basis to the students to learn on their own as

* *Assistant Professor, Gautam Budha University, Greater Noida*

well as able to match face to face courses in respect of academic quality and effectiveness. Blended learning strategy is a new approach to student-learning which provides successful and rewarding learning experiences to almost all the students and technology helps to transform education from faculty centered to learner centered and to make instructions better by replacing the "Sage on the stage" with interactive individualized learning possibilities.

Blended learning strategy is starting to be considered as not just a via media of transfer of information but as an excellent medium for learning. Originally in education the internet was for the transmission and retrieval of information, principally for the course notes and assessment details(Bazelais P., Doleck T. 2018). The interaction resulted positive when it results in submission of assignment of the students and teachers gets comments to their lessons in return. Main aim of Blended learning approaches is to modify the instructional settings so that students having a number of entering abilities, skills, knowledge, attitude and values can perform successfully. So, Blended learning strategy stresses on the idea that teaching should organize learning through ordered steps. Blended learning strategy engages the learner in multiple instructional methods, learning level and multiple cognitive thinking types. With the help of such strategy the teacher can motivate students as well as can help slow students in becoming smart, fast and perform better. Such type of learning improves student as well as teacher's chance for long term social and personal prosperity (Li & yu,2023).

Academic achievement has been considered as the inimitable responsibility of all educational institutions. Academic achievement has been considered as important as it helps the students to understand the hierarchy of success i.e. higher the achievement more are the openings for the students and they can go for better lives and better jobs. To attain correlation between different factors and academic achievement it is necessary to understand to a teacher that what contributes too high and low achievement of students. These factors can be of different kind like poor school environment, home background, unmotivated teachers and their own personal interests, ability and language background. Achievement is the accomplishment or proficiency in a given skill or body of knowledge. According to him academic achievement as attained ability or a degree of competence in school tasks usually as measured by standardized tests and expressed in age or grade units based on norms derived from pupil's performance Good (1959). Achievement is the extent to which learner is profit from instructions in a given area of learning. In other words, achievement is reflected by extent to which a person from the training imparted to him has acquired the skill of knowledge. It is the general and specific learning experiences Crow and Crow (1961). Achievement test is how well students have mastered the subject matter in a course of instruction Megargee (2000).

Stress is the internal response of the individual to pressure, when the pressure experienced is greater than normal abilities, stress is there. In the school situations, this pressure may be accountable for individual's success and failure hence. Academic stress is more renounced among students in high school levels because of transmitted values of docility, passivity, conformity and lack of interest, adding to their level of frustration while they are in process of preparing themselves to step out of schools and compete for admissions to professional colleges (Cofer & Appley, 1964).

Academic stress among students is an outcome of many factors such as socio- economic status, number of siblings, ordinal position in the family, IQ of the child, attitude of family towards him, school and education perceived self confidence and competence, atmosphere to studies and social support provided etc. Children suffering from academic stress show signs of emotional disabilities, aggressive behavior, shyness, social phobia, psychosomatic illness, such as constipation, vomiting, fever, chest pain, abdominal pain dizziness etc (Calaguas, 2013). Academic stress occurs when there is substantive imbalance between environmental demand and response capability of organism. The term academic stress in physical sciences means, a force and pressure exerted upon a person who

resists the force /pressure in his effort to maintain his original state and in the process suffers some degrees of discomfort (Cofer & Appley, 1964).

NEED AND SIGNIFICANCE OF THE STUDY : An appropriate teaching strategy helps the teacher in solving learner's problems as well as to bring remarkable improvement in their overall behavior. Review of different instructional strategies gives quite positive results in comparison to conventional teaching strategy. According to Figueroa - Rexach (2004) effective teaching is not a set of every day instructional strategies that are used in specific manner but instead of that it is consistent data, driven decisions that are different every day and dependent on student's individual differences as well as on learning outcomes. In such conditions online teaching can prove fruitful for teacher as well as for students. Blended learning is a relatively new concept, which has become widespread in a short time. Innovative instructional strategies when applied in English language teaching can help to motivate and do better in the field of language learning. Online teaching may provide a more natural constructivist learning environment than the traditional teaching for English language students. Present paper highlights the need to know the role of Blended learning strategies in teaching of English language. The study compares the effectiveness of different teaching methods on student's achievements in English language learning in relation academic stress. Findings of the present study will definitely add to the existing quantum of knowledge in the field of educational technology. Therefore, the investigators made an attempt to enquire into the effect of Blended learning strategy on achievement in English grammar in relation to academic stress.

Objectives : The present study was designed to attain the following objectives:

1. To compare the performance of the groups taught through Blended learning strategy and conventional method of teaching.

2. To study the performance of students having different groups of academic stress.

3. To study the interaction effect between Blended learning strategy and academic stress.

· **Hypotheses :** The following hypotheses were formulated for conducting the study such as:

H_1O The performance of Blended learning strategy will be higher than that of conventional teaching strategy in English.

H_2O The performance of low academic stress group will be significantly higher than that of average and high academic stress groups of students in English.

H_3O The performance through Blended learning strategy does interact with different levels of academic stress in English.

METHODOLOGY OF THE STUDY : It is necessary to adopt a systematic procedure to collect the necessary data which helps to test the hypotheses of the study under investigation. Various steps of research methodology to be followed in the present study is as follow :

Sample : In the present paper, in order to satisfy the real effort in experimental research, the logical statistical inference of purposive and random sampling was initially employed to select two schools which have Local Area Network Facility and then random sampling technique was used. The sample of 100 English students of 9th class was drawn from two secondary schools i.e. 50 students from Greater Noida public school, Greater Noida and 50 students from Greater Valley School, Greater Noida which were affiliated to Central Board of Secondary Education, New Delhi. The schools were fulfilling the basic requirements for the present study i.e. computer facilities and English as a medium of instruction. The study was purposed to be conducted on two intact groups i.e. experimental group and conventional group. The two intact sections of 25 students were selected from each school.

Design : For the purpose of the present investigation pre- and post- test factorial design was employed. In order to analyze the data 2×3 analysis of variance was used for the two independent

variables i.e. instructional treatment and academic stress. The first variable was studied at two levels i.e. Blended learning strategy and conventional teaching strategy. The variables of academic stress were studied at three levels such as high, average and low academic stress. The main dependent variable was performance gain which was calculated as the difference in post-test and pre-test scores for the subject. The schematic layout of the factorial design for performance gain has been given below in fig 1.

Fig 1 : Schematic layout of the factorial design (2×3)

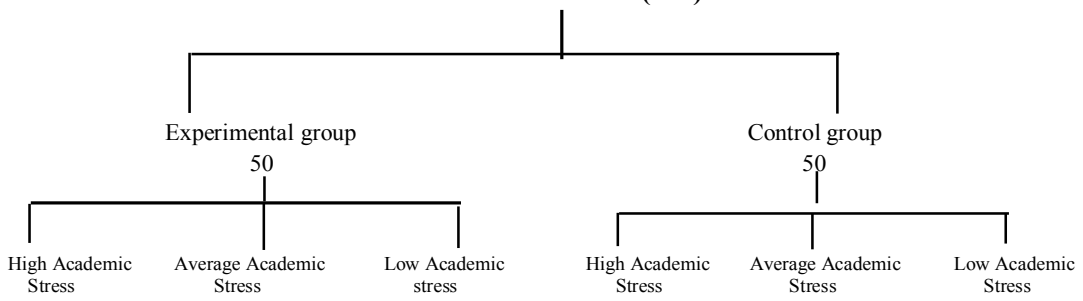

Tools Used : The following tools were used for the data collection :

(i) Scale of Academic Stress by Bisht (1987) was used.

(ii) An Achievement Test in English Grammar was developed by investigators.

(iii) Five Lessons based on blended learning and conventional teaching strategy was developed by the investigators.

Procedure : After the selection of adequate sample and distribution of students in two groups for the implementation two strategies, the present experimental study was conducted in four phases. *Firstly,* an academic stress scale was administered in each school. *Secondly,* a pre-test was administered to the students of both the experimental and control group. *Thirdly,* experimental group was taught through Blended leaning strategy and control group was taught by conventional teaching strategy by the investigators. *Fourthly,* after the completion of the instructional programme, the same achievement test in English was administered as post-test to the students of both the groups. The answer- sheets were scored with the help of scoring key. Time limit for the test was half an hour.

ANALYSIS AND INTERPRETATION OF RESULTS

Analysis of Descriptive Statistics : The obtained data were analyzed to determine the nature of the distribution of scores by employing mean and standard deviation. The two-way analysis of variance (2×3) was used to test the hypotheses related to strategies of teaching and academic stress. The mean and standard deviation of different sub groups have been presented in table - 1.

Table-1 : Means and S.D. of Achievement Scores for the Different Sub Groups

Academic Stress	Teaching						Total		
	Blended Learning			Conventional Method					
	N	Mean	SD	N	Mean	SD	N	Mean	SD
High Academic Stress	14	26.71	6.06	14	10.00	3.35	28	18.35	9.77
Average Academic Stress	22	32.45	4.61	22	11.95	2.60	44	22.20	11.01
Low Academic Stress	14	34.50	4.81	14	12.07	2.33	28	23.28	12.00
Total	50	31.42	5.88	50	11.44	2.85	N=100		

Source : field study, 2013

It may be observed from the table-1 that the mean scores of Blended learning strategy (31.44) was higher than the conventional method of teaching (11.44). This shows that Blended learning strategy was more effective than the conventional method of teaching. It is also confirmed that the mean of the three subgroups of academic stress i.e. high, average and low group is 18.35, 22.20 and 23.28 respectively. It also shows that low academic stress group was higher than that of high and average academic stress.

Analysis of Variance on Academic Stress : The mean of different sub groups, sum of squares degree of freedom, mean sum of squares and the F-ratio have been presented in table 2.

Table - 2 : Summary of Analysis of Variance (2×3) Factorial Designs

Source of Variance	Sum of Squares	df	Mean Sum of Squares	F- ratio
Treatment (A)	9445.16	1	9445.166	559.20**
Academic Stress (B)	387.20	2	193.60	11.46**
Interaction (A×B)	119.59	2	59.79	3.54*
Error Term	1587.69	94	16.89	

*** Significant at 0.01level* * *Significant at 0.05 level*

(Critical Value 3.95 at 0.05 level and 6.92 at 0.01 level, df 1/94)

(Critical Value 3.10 at 0.05 level and 4.85 at 0.01 level, df 2/94)

MAIN EFFECTS

Treatment (A) : It may be observed from the table-2 that the F- ratio for difference in mean gain scores of Blended learning strategy and conventional teaching strategy is 559.20, which in comparison to the table value was found significant at 0.01 level of confidence. It shows that the different beyond the contribution of chance. Hence the hypothesis H1O: The performance through Blended learning strategy will be higher than that of conventional teaching strategy, was accepted. The result indicates that the performance through Blended learning strategy group was more effective than that of conventional teaching groups.

Academic Stress Groups (B) : It may be seen from the table-2 that the F- ratio for difference in means of the three groups of academic stress is 11.46, which in comparison to the table value was found significant at 0.01 level of confidence. The result indicates that three groups of academic stress were different in respect of achievement scores. Hence, the hypothesis H2O: The performance of low academic stress group will be higher than that of average and high group, is accepted.

Interaction Effect (A×B) : It may be observed from the table-2 that the F- ratio for the interaction between Blended learning strategy and academic stress group is 3.54, which in comparison to the table value was found significant at 0.05 level of significance. Thus, the hypothesis H3O: The performance through Blended learning strategy does interact with different levels of academic stress in English, is accepted. The result indicates that the two variables do interact with each other.

DICUSSION : The present study revealed that the performance of students through Blended learning strategy in English was found more effective than the conventional method of teaching. The results were supported by Smith, Smith and Boone (2000) and Goldberger (2001) revealed that both experimental and control groups mastered the content, but the online group performed at a slightly higher level. Cooper (2005) found that Blended learning play an important role with recall and satisfaction

in the Blended learning environment. Boyle (2008) revealed that online instructions improve knowledge, behaviour and attitude towards seating. **Zhang and Kenny (2010)** indicated that language proficiency strongly impacted the learning of these students in online learning environment. Chou (2012) revealed that a positive relationship exists between self-directed learning abilities and Blended learning performances. These findings are contradictory to the findings of Smith (1999) Beard (2003) and Scrima (2009) who revealed that there was no significant differences between the performance of experimental and control groups on overall scores.

For achievement in English with regards to academic stress, it was concluded that three groups of academic stress were different in respect of achievement scores. The findings were supported by Gera (1998), Hesselberg (2000), Kaur (2000) and Rani (2003) found that academic stress significantly influenced the academic achievement scores of students. Manhas and Gakhar (2006) concluded that significant positive correlation exist between academic stress and emotional intelligence. Kaur (2008) found that the parent involvement and teacher taught relations greatly affect the cognitive skills and stress of the adolescents. Sosa, Barrientos, Castro and Gracia (2010) they found that low academic performance was related to stress. Khanehkeshi (2011) the results of the study showed that there is a significant difference between academic grades in academic stress.

Most studies positively reported blended learning performances. Performances in this study include the variables: critical thinking skills, knowledge delivery, disposition improvement, knowledge and skill improvement, language use, listening skills, speaking skills, and topic development. Blended learning, outperforming full online learning in the aspects of motivation, attitudes, and satisfaction, can improve nurses' clinical knowledge compared with the traditional learning approach in the UK (McCutcheon et al., 2018).). Blended instruction could greatly improve students' English writing abilities in Ankang College, Shanxi China (Zhou, 2018). Blended learning could improve students' English listening and speaking and critical thinking skills, e.g. analysis, inference, evaluation, induction, and deduction in China (Yang et al., 2013)

For the interaction effect of instructional strategy and academic stress, it was concluded that the performance through Blended learning strategy do interact with different levels of academic stress. The findings were supported by Grover (2006) who revealed that in online learning environment academic stress has strong impact on learning of the students. Sharma (1998) and Frick. Frick, Rence and Dey (2011) also found that the students taught through Blended learning give positive results and were not found effective by stress in any case.

CONCLUSION : The present study reveals that achievement scores in English of students taught through Blended learning strategy were more effective than that of conventional teaching strategy. Further, the gain mean with Blended learning strategy group was higher for low academic stress in comparison to the average and high stress group and the difference across two methods of teaching was statistically significant. However, Blended learning was found interacting with different academic stress groups in respect of gain scores. The study recommends the use of Blended learning for better performance of students in English grammar at secondary stage.

REFERENCES

1. A.l. Shunnaq, Qasim and Bani Dumi, Hasan (2010), Teachers and Students 'Trends towards Using E-Learning in the Jordanian Secondary Schools, *The University of Damascus Journal*, 26 (12), 235-271.

2. Bazelais P., Doleck T. (2018), Blended Learning and Traditional Learning : A Comparative Study of College Mechanics Courses*, Educ. Inf. Technol*. 23, 2889–2900. 10.1007/s10639-018-9748-9 [DOI]

3. Beard, R. L. (2003), Differences in the Performance of Texas High School Students in Online Course and Traditional Classroom, *Dissertation Abstracts International, 64* (2), 473-A.

4. Boyle, M. L. (2008), *A Study on Effectiveness of an Online Tutorial to Improve Teacher Knowledge of Seating for Elementary School Students*, Unpublished Ph. D. Thesis, New York : M. S. State University. Retrieved June 22, 2013 from *gradworks.umi.com/ 14/56/ 1456899.html*.

5. Brown, A. (1997), Designing for Learning : What are the Essential Features of an Effective Online Course? *Australian Journal of Educational Technology, 13*(2), 115-126.

6. Calaguas, G. M. (2013), Parents/teachers and Self Expectations as Sources of Academic Stress, *International Journal of Research Studies in Psychology, 2* (1), 43-52.

7. Chou, P. N. (2012), Effect of Students' Self- directed Learning Abilities on Online Learning Outcomes : Two Exploratory Experiments in Electronic Engineering, *Instructional Journal of Humanities and Social Science, 2* (6), 172-179.

8. Cofer, C. N., & *Appley,* M. H. (1964*)*, *Motivation* : *Theory and Research*, *New York* : *John Wiley and Sons*.

9. Cooper, L. J. (2005), *Customizing Online Information : How Learning Style, Content Delivery and Pre-instructional Strategy Affect Recall and Satisfaction,* Unpublished Doctoral Dissertation, Columbus : Ohio State University, Retrieved June 30, 2013 from www. trtrifilo. Com/index. php?p=1_4_Websites-and- Papers.

10. Crow, L. D., & Crow, A. (1961), *Readings in Child and Adolescent Psychology* (pp 320- 332). New York : Longmans, Green.

11. Dorasami, K. (1996), An Integrated Approach for Developing Teaching Competence, In N. Venkataiah (Ed.), *Educational Technology,* New Delhi*,* APH Publishing Corporation.

12. Figueroa- Rexach, A. N. (2004), *Actual and Desired Teacher Attitudes Towards Supervision of Instruction and Instructional Strategies in Pedagogical and Curriculum Areas in High and Low Performance Secondary Schools of Fajardo Educational Region of Puerto Rico*, Unpublished Doctoral Dissertation, New York : Dowling College, Long Island. Retrieved July 2*, 2013* from www.gemstone.umd.edu/teams/ documents/final_thesis.pdf on .

13. Freihat, Essam Ahmad (2004), Blended Learning, Training and Technicality Journal, (62)36-42.

14. Frick, L. J., Frick, J. L., Renee, E. C., & Dey, S. (2011), Student Stress in a Three-year Doctor of Pharmacy Program Using a Mastery Learning Educational Model, *American Journal of Pharmaceutical Education, 75* (4), 64.

15. Gera, M. (1998), *Achievement of IX Grade in Relation to Classroom Environment and Academic Stress of Students,* Unpublished M.Ed. Dissertation, Chandigarh : Panjab University.

16. Goldberger, M. (2001), *Effects of an Online Instructional Program on Content Mastery in Kinesiology,* Retrieved June 28, 2013 from *www.jmu.edu/kinesiology/ pdf /Mastery%20 article.pdf*.

17. Good, C. V. (1959), *Dictionary of education* (1st ed.). New York: McGraw Hill Book Company, Inc.

18. Grover, J. (2006). *Impact of teacher- monitored online instructional programme on various life skills and academic stress of secondary school students*. Unpublished Ph. D. Thesis, Chandigarh: Panjab University.

19. Hesselberg, B. J. (2000). Perceived stress, role strain and role involvement, predictors of academic achievement in associate degree of nursing students. *Dissertation Abstracts International, 61*(4), 1274.

20. Kaur, K. (2000). *Academic achievement and self-esteem of IX grades in relation to different dimensions of academic stress.* Unpublished M. Ed. Dissertation, Chandigarh: Panjab University.

21. Kaur, K. (2008). *Parental involvement and teacher taught relationship on cognitive styles and stress of adolescents.* Unpublished Ph. D. Thesis, Chandigarh: Panjab University.

22. Khanehkeshi, A. (2011). The relationship of academic stress, depression and self-efficacy with academic performance among high school students in Iran. *Indian Stream Research Journal, 1* (5), 1-4.

23. Liu M. H. (2016). Blending a class video blog to optimize student learning outcomes in higher education. Int. Higher Educ. 30, 44–53. 10.1016/j.iheduc.2016.03.001[DOI]

24. Manhas, K. D., & Gakhar, S. C. (2006). Non cognitive correlates of educational intelligence of adolescents. *Journal of Educational Research and Extension*, *43* (1), 1-9.

25. McCutcheon K., O'Halloran P., Lohan M. (2018). Online learning versus blended learning of clinical supervisee skills with pre-registration nursing students: a randomised controlled trial. Int. J. Nurs. Stu. 82, 30–39.

26. Megargee, E. T. (2000). *Encyclopedia of psychology*. UK: Oxford University Press.

27. Rani, S. (2003). *Achievement of standard VIII students in Hindi with respect to academic stress and home environment.* Unpublished M. Ed. Dissertation, Chandigarh: Panjab University.

28. Salameh, Hasan Ali. (2005). Blended Learning the Natural Development of E-Learning. A Paper Presented at the South Valley University, College of Education in Sohaj.

29. Scrima, A. E. (2009). Implementing a mastery model through self quizzing in an online learning environment. *Dissertation Abstracts International, 70* (7), 123-A.

30. Sharma, R. (1998). *The effect of mastery learning strategy on the learning outcomes of secondary school students in relation to stress.* Unpublished Ph. D. Thesis, Chandigarh: Panjab University.

31. Smith, S. B. (1999). The effectiveness of traditional methods in an online learning environment. *Dissertation Abstracts International, 60* (9), 3330-A.

32. Smith, S. B., Smith, S. J., & Boone, R. (2000). Increasing access to teacher preparation: the effectiveness of traditional instructional methods in an online learning. *Journal of Special Education Technology, 15* (2), 37-46.

33. Sosa, E. R. C., Barrientos, L. G., Castro, E. P .G., & Garcia, J. H. (2010). Academic performance, school dissertation and emotional paradigm in university students. *Contemporary Issues in Educational Research, 3* (7), 25-35**.**

34. Yang Y. T. C., Chuang Y. C., Li L. Y., Tseng S. S. (2013). A blended learning environment for individualized English listening and speaking integrating critical thinking. Comput. Educ. 63, 285–305.

35. Zhang, Z., & Kenny, R. F. (2010) Learning in an online distance education course: experiences of three international students. *International Review of Research in Open and Distance Learning, 11*(1). Retrieved June 28, 2023. From www.heacademy.ac.uk/assets/.../International_students_ experience.

36. Zhou C. (2018). Empirical study on the effectiveness of teaching model of college English writing within blended learning mode. Educ. Sci. Theor. Prac. 18, 1060–1076.

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 9-11

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

प्रभा खेतान की आत्मकथा में व्यक्त नारी संवेदना

*गिरजा कुमारी**

प्रभा खेतान की आत्मकथा "मैं और मेरी नारी" एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है, जिसमें उन्होंने नारी संवेदना को गहराई से व्यक्त किया है। यह आत्मकथा न केवल उनके व्यक्तिगत अनुभवों का संग्रह है, बल्कि यह एक व्यापक सामाजिक संदर्भ में नारी की स्थिति और उसकी चुनौतियों का भी पर्दाफाश करती है। प्रभा खेतान का जीवन अनेक संघर्षों, उपलब्धियों और अनुभवों से भरा हुआ है। उनका जन्म एक ऐसे परिवार में हुआ था, जहाँ परंपराओं और रुढ़ियों का पालन किया जाता था। लेकिन उन्होंने हमेशा अपनी पहचान बनाए रखने की कोशिश की। उनके बचपन के अनुभवों में इस बात का गहरा प्रभाव है कि कैसे एक लड़की को समाज में अपनी जगह बनाने के लिए खड़ा होना पड़ता है। प्रभा खेतान की शिक्षा का भी उनके जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने शिक्षा को नारी के विकास का एक महत्वपूर्ण साधन माना। उनके लिए यह केवल एक औपचारिक प्रक्रिया नहीं थी, बल्कि यह आत्म–साक्षात्कार का एक मार्ग था। शिक्षा ने उन्हें न केवल अपने विचार व्यक्त करने की क्षमता दी, बल्कि समाज में नारी के अधिकारों के प्रति जागरूक भी किया। उनकी आत्मकथा में प्रेम और रिश्तों की जटिलताओं का भी उल्लेख है। प्रभा खेतान ने अपने जीवन में प्रेम को एक नई ऊर्जा के रूप में अनुभव किया, लेकिन साथ ही यह भी स्पष्ट किया कि प्रेम में भी नारी की पहचान और स्वतंत्रता को बनाए रखना कितना महत्वपूर्ण है। यहाँ पर वे नारी को एक मजबूत और आत्मनिर्भर व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत करती हैं, जो अपने रिश्तों में संतुलन बनाने की कला जानती है।

प्रभा खेतान ने नारी के संघर्षों को भी बखूबी चित्रित किया है। वे बताती हैं कि किस प्रकार समाज में नारी को अक्सर उसके अधिकारों से वंचित किया जाता है। उनकी लेखनी में यह स्पष्ट होता है कि नारी को अपने अधिकारों के लिए लड़ाई लड़नी पड़ती है। वे उन रुढ़ियों और परंपराओं का विरोध करती हैं, जो नारी को सीमित करती हैं। उनकी आत्मकथा में नारी की पहचान की खोज की यात्रा को भी दर्शाया गया है। प्रभा खेतान ने नारी को यह समझाने की कोशिश की है कि उसकी पहचान केवल उसके रिश्तों से नहीं, बल्कि उसके अपने अनुभवों, संघर्षों और उपलब्धियों से बनती है। यह आत्म–खोज की यात्रा न केवल बाहरी दुनिया से, बल्कि अपने भीतर की गहराइयों से भी होती है। प्रभा खेतान का यह मानना है कि नारी को अपने जीवन में शिक्षा और आत्मनिर्भरता को प्राथमिकता देनी चाहिए। शिक्षा नारी को केवल आर्थिक स्वतंत्रता नहीं देती, बल्कि उसे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक भी करती है। उनके जीवन के अनुभव यह दर्शाते हैं कि एक शिक्षित नारी समाज में अपनी पहचान बना सकती है और अपने अधिकारों के लिए लड़ सकती है। प्रभा खेतान की आत्मकथा न केवल व्यक्तिगत अनुभवों का संग्रह है, बल्कि यह एक सामाजिक दस्तावेज भी है, जो नारी की स्थिति को समझने में सहायक है। उनकी रचनाएँ नारी को एक सशक्त और आत्मनिर्भर व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत करती हैं। वे नारी के संघर्षों को केवल व्यक्तिगत नहीं मानतीं, बल्कि इसे एक सामूहिक समस्या के रूप में देखती हैं। प्रभा खेतान ने अपने लेखन के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि नारीवाद केवल एक आंदोलन नहीं है, बल्कि यह एक सोच है, जो नारी को उसके अधिकारों के प्रति जागरूक करती है। उनका यह मानना है कि समाज में नारी की स्थिति को सुधारने के लिए व्यापक सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता है। उनकी आत्मकथा में नारी की स्थिति, संघर्ष और उसकी संवेदनाओं का एक सशक्त चित्रण प्रस्तुत किया गया है। यह आत्मकथा हर नारी के लिए प्रेरणा का स्रोत है और उसे अपने अधिकारों के लिए लड़ने की प्रेरणा देती है। प्रभा खेतान की लेखनी न केवल नारी के संघर्षों को उजागर करती है, बल्कि उसे साहस और आत्मविश्वास से भर देती है। इस प्रकार, प्रभा खेतान की आत्मकथा "मैं और मेरी नारी" नारी संवेदना का एक अद्‌भुत दस्तावेज है। उनकी जीवन यात्रा और अनुभव न केवल नारी की जटिलता,

* *शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, राधा गोविन्द विश्वविद्यालय, रामगढ़, झारखण्ड*

संघर्ष और उसकी संवेदनाओं को बखूबी प्रस्तुत करते हैं, बल्कि यह भी दर्शाते हैं कि नारी को अपने अधिकारों के लिए कैसे खड़ा होना चाहिए। प्रभा खेतान का यह योगदान नारी विमर्श में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उनकी आत्मकथा न केवल उनके व्यक्तिगत अनुभवों का संग्रह है, बल्कि यह एक सामाजिक दृष्टिकोण से नारी की स्थिति का व्यापक विश्लेषण भी प्रस्तुत करती है। यह न केवल साहित्य में नारी की आवाज को प्रकट करती है, बल्कि समाज में नारी के स्थान को पुनः परिभाषित करने का भी प्रयास करती है। इस प्रकार, प्रभा खेतान की आत्मकथा नारी की जटिलता, संघर्ष और उसकी संवेदनाओं का एक सशक्त चित्रण प्रस्तुत करती है। उनका लेखन हर नारी के लिए प्रेरणा और साहस का स्रोत है, जो उसे अपने अधिकारों के लिए लड़ने की प्रेरणा देता है। प्रभा खेतान के विचार और अनुभव समाज में नारी की स्थिति को समझने में सहायक हैं। उनकी आत्मकथा न केवल एक व्यक्तिगत यात्रा है, बल्कि यह एक सामाजिक दस्तावेज है, जो नारी की अधिकारिता, संघर्ष और पहचान की खोज को उजागर करती है। यह आत्मकथा हर नारी के लिए एक मार्गदर्शक के रूप में कार्य करती है, जो उसे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक और सशक्त बनाती है। प्रभा खेतान का यह योगदान नारी संवेदना के क्षेत्र में एक नई दिशा प्रदान करता है। उनकी लेखनी न केवल नारी के संघर्षों को उजागर करती है, बल्कि उसे एक सशक्त और आत्मनिर्भर व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत करती है। उनकी आत्मकथा न केवल उनके व्यक्तिगत अनुभवों का संग्रह है, बल्कि यह समाज में नारी के स्थान को पुनः परिभाषित करने का भी प्रयास करती है।

इस प्रकार, प्रभा खेतान की आत्मकथा "मैं और मेरी नारी" नारी संवेदना का एक अद्‌भुत दस्तावेज है, जो हर नारी के लिए प्रेरणा और साहस का स्रोत है। यह आत्मकथा न केवल उनके व्यक्तिगत अनुभवों को साझा करती है, बल्कि यह एक सामाजिक दृष्टिकोण से नारी की स्थिति का व्यापक विश्लेषण भी प्रस्तुत करती है, जो आज के समाज में नारी के अधिकारों की लड़ाई को मजबूत बनाता है। प्रभा खेतान की आत्मकथा "मैं और मेरी नारी" में नारी के अधिकारों के लिए कई संघर्षों का उल्लेख किया गया है। यहाँ कुछ महत्वपूर्ण संघर्षों का विवरण दिया गया है :

1. शिक्षा का अधिकार : प्रभा खेतान ने अपने जीवन में शिक्षा को नारी के अधिकारों के लिए एक महत्वपूर्ण साधन माना। उन्होंने यह संघर्ष किया कि नारी को शिक्षा प्राप्त करने का पूरा अधिकार होना चाहिए, ताकि वह अपने विचार व्यक्त कर सके और आत्मनिर्भर बन सके।

2. पारिवारिक सीमाओं का उल्लंघन : उन्होंने पारिवारिक सीमाओं को पार करके अपनी पहचान बनाने का प्रयास किया। इस संघर्ष में उन्होंने अपने परिवार की रुढ़ियों और परंपराओं को चुनौती दी, जो नारी को सीमित करती थीं।

3. प्रेम और संबंधों में स्वतंत्रता : प्रभा खेतान ने प्रेम और संबंधों में नारी की स्वतंत्रता को भी महत्वपूर्ण माना। उनके अनुभव बताते हैं कि उन्होंने अपने रिश्तों में संतुलन बनाने और अपनी पहचान बनाए रखने के लिए संघर्ष किया।

4. सामाजिक रुढ़ियों के खिलाफ आवाज उठाना : वे समाज में प्रचलित रुढ़ियों और परंपराओं का विरोध करती हैं, जो नारी के अधिकारों को सीमित करती हैं। उन्होंने अपने लेखन के माध्यम से इन रुढ़ियों के खिलाफ आवाज उठाई।

5. आर्थिक स्वतंत्रता : प्रभा खेतान ने आर्थिक स्वतंत्रता पर भी जोर दिया। वे मानती थीं कि आर्थिक स्वतंत्रता नारी को आत्मनिर्भर बनाती है और उसे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करती है।

6. सामाजिक बदलाव के लिए सक्रियता : उन्होंने नारी की स्थिति में सुधार के लिए समाज में व्यापक बदलाव की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने नारीवाद को केवल एक आंदोलन नहीं, बल्कि एक सामाजिक परिवर्तन के रूप में देखा।

7. स्वयं की पहचान की खोज : प्रभा खेतान ने नारी को अपने भीतर की शक्तियों को पहचानने और अपनी पहचान की खोज में संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया।

इन संघर्षों के माध्यम से प्रभा खेतान ने नारी के अधिकारों को समझाने और उसकी स्थिति को सुधारने के लिए एक मजबूत आवाज उठाई। उनकी आत्मकथा न केवल उनके व्यक्तिगत अनुभवों का संग्रह है, बल्कि यह एक सामाजिक दस्तावेज भी है, जो नारी के अधिकारों के लिए संघर्ष को उजागर करती है। प्रभा खेतान की आत्मकथा "मैं और मेरी नारी" नारी संवेदना का एक गहन दस्तावेज है, जिसमें उन्होंने अपने जीवन के विभिन्न पहलुओं के माध्यम से नारी के अनुभवों, संघर्षों और उसकी पहचान को उजागर किया है। यह आत्मकथा न केवल

व्यक्तिगत अनुभवों का संग्रह है, बल्कि यह समकालीन समाज में नारी की स्थिति और उसके अधिकारों के लिए संघर्ष का भी प्रमाण है।

नारी की पहचान : प्रभा खेतान ने अपनी आत्मकथा में नारी की पहचान को प्रमुखता से प्रस्तुत किया है। वे यह बताती हैं कि नारी की पहचान केवल उसके रिश्तों से नहीं, बल्कि उसके अनुभवों, संघर्षों और उपलब्धियों से बनती है। उन्होंने यह विचार व्यक्त किया है कि नारी को अपने आप को पहचानने और अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने की आवश्यकता है।

सामाजिक रुढ़ियों का सामना : खेतान ने समाज में प्रचलित रुढ़ियों और परंपराओं का सामना करते हुए अपने अनुभव साझा किए हैं। वे बताती हैं कि किस प्रकार नारी को सीमाओं में बंधा रखा जाता है और उसे अपनी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करना पड़ता है। उनका लेखन इस बात का प्रमाण है कि नारी को अपनी आवाज उठाने की आवश्यकता है।

शिक्षा का महत्व : उनकी आत्मकथा में शिक्षा को नारी के विकास का एक महत्वपूर्ण साधन माना गया है। प्रभा खेतान ने शिक्षा को नारी को आत्मनिर्भर बनाने और उसके अधिकारों के प्रति जागरूक करने का एक माध्यम बताया है। उनका मानना है कि एक शिक्षित नारी समाज में अपनी पहचान बना सकती है।

प्रेम और रिश्तों की जटिलता : प्रभा खेतान ने प्रेम और रिश्तों की जटिलताओं पर भी ध्यान केंद्रित किया है। उन्होंने यह दर्शाया है कि प्रेम में भी नारी को अपनी पहचान और स्वतंत्रता को बनाए रखना चाहिए। उन्होंने अपने अनुभवों से यह बताने का प्रयास किया है कि नारी को अपने रिश्तों में संतुलन बनाना आवश्यक है।

संघर्ष और साहस : प्रभा खेतान ने अपने जीवन में अनेक संघर्ष किए हैं, जिन्हें उन्होंने आत्मकथा में विस्तार से वर्णित किया है। वे यह बताती हैं कि संघर्ष नारी को मजबूत बनाता है और उसे अपने अधिकारों के लिए खड़े होने की प्रेरणा देता है। उनका साहस और आत्म–विश्वास हर नारी के लिए प्रेरणा का स्रोत है।

निष्कर्ष : प्रभा खेतान की आत्मकथा "मैं और मेरी नारी" नारी संवेदना का एक अद्‌भुत उदाहरण है। उनकी लेखनी न केवल नारी के संघर्षों को उजागर करती है, बल्कि उसे साहस और आत्मविश्वास से भर देती है। यह आत्मकथा हर नारी के लिए प्रेरणा का स्रोत है और उसे अपने अधिकारों के लिए लड़ने की प्रेरणा देती है। प्रभा खेतान का यह योगदान नारी के अधिकारों और उसकी पहचान को समझने में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

संदर्भ–सूची

1. कुमार; अनिल, प्रभा खेतान की साहित्यिक यात्रा, साहित्यिक संवाद, vol. 5, no. 1, 2020, pp. 15–20.
2. सिंह; कविता, प्रभा खेतान की रचनाओं में नारी का स्वर, भारतीय साहित्य, vol. 20, no. 4, 2015, pp. 45–52.
3. तिवारी; साक्षी, नारी की पहचान : प्रभा खेतान का दृष्टिकोण, समीक्षा, vol. 9, no. 3, 2019, pp. 60–65.
4. मेहता; राधिका, प्रभा खेतान के उपन्यासों में स्त्री विमर्श, नारी और समाज, vol. 14, no. 1, 2021, pp. 35–42.
5. खेतान; प्रभा, मैं और मेरी नारी, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2010
6. खेतान; प्रभा, पारिजात, नई दिल्ली, शिखर प्रकाशन, 1998
7. खेतान; प्रभा, राधा का बाग, नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2002
8. शर्मा; अंजलि, स्त्री विमर्श और प्रभा खेतान, स्त्री अध्ययन पत्रिका', vol. 12, no. 2, 2018, pp. 22–30.
9. सहगल; नंदिता, नारीवाद की नई परिभाषाएँ : प्रभा खेतान का योगदान, साहित्य और समाज, 2016, pp. 100–110.
10. भटनागर; सुमन, प्रभा खेतान की कथा कला और नारी विमर्श, कथा संसार, vol. 8, no. 2, 2017, pp. 75–80.
11. मिश्रा; अनामिका, स्त्री विमर्श की पृष्ठभूमि में प्रभा खेतान, हिंदी साहित्य समीक्षा, vol. 15, no. 4, 2023, pp. 70–78.
12. शुक्ला; प्रीति, प्रभा खेतान के उपन्यासों में प्रेम और संघर्ष, कविता और विमर्श, vol. 11, no. 3, 2018, pp. 50–58.
13. दास; सुभाष, प्रभा खेतान : नारी की आवाज, हिंदी साहित्य की धारा, 2019, pp. 88–95.
14. जैसवाल; संजीव, स्त्री विमर्श और प्रभा खेतान का साहित्य, आधुनिक हिंदी साहित्य, vol. 4, no. 1, 2020, pp. 30–37.
15. सिंघल, विद्या., प्रभा खेतान के उपन्यासों में स्त्री की पहचान, vol. 7, no. 2, 2022, pp. 40–46.

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 12-19

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री विमर्श की परिकल्पना

*सीता देवी साकेत** *डॉ. उषा नीलम***

शोध सारांश–'अर्थात जहां नारी की पूजा होती है वहां देवता निवास करते हैं।' यदि ईश्वर प्रकाश पुंज है, तो नारी उसकी किरण, जो प्रकाश को चारों ओर बिखेर देती है यदि ईश्वर शब्द है तो नारी उसका अर्थ।

नारी पुरुष एक दूसरे के पूरक है एक के बिना दूसरे का अभीष्ट प्राप्त नहीं हो सकता। हिन्दू आदर्श के अनुसार पत्री को अर्द्धांगिनी कहा गया है। वह लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा एवं काली आदि रूपों में धन, विद्या, शांति तथा शक्ति का प्रतीक मानी गई है। नारी को ममतामई, करुणामई, वात्सल्यमई जैसे अनेक अलंकरणों से विभूषित किया गया है। प्रथम ज्ञात नारी एवं पुरुष क्रमशः हव्वा एवं आदम जाति के युग से ही नारी पुरुष के साथ सहधर्मिणी, सहचारिणी का जीवन यापन करती आई है, हमारे सामाजिक जीवन की जो संरचना एवं व्यवस्था स्थापित की गई है उसके स्त्री एवं पुरुष दो ध्रुव माने गए हैं। दोनों ही रथ के दो पहियों के समय कार्य करते हैं दोनों के मिलन से ही जीव की संरचना संभव है। दोनों का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है किंतु इसके बावजूद भी नारी का पूर्णरूपेण शोषण समाज ने अपनी सुविधा के लिए किया तथा नारी को कभी भी उचित महत्त्व नहीं दिया। जिस स्त्री को हम देवी स्वरूप मानते हैं, शक्ति स्वरूपणी कहा गया है, उसी स्त्री को निर्बल समझकर सहनशील बना दिया जाता है।

मूल शब्द–नारी, विमर्ष, आधुनिकता, उपन्यास, साहित्य।

व्याख्या–आदि अनादि काल से ही स्त्री का शोषण किसी ना किसी रूप में किया जाता रहा है। हमें अपने धार्मिक ग्रंथों में भी इसका वर्णन मिलता है त्रेता युग में सीता जी को अपना सतीत्व सिद्ध करने के लिए प्रथमतः अग्नि परीक्षा तत्पश्चात पति की न्यायप्रियता निभाने के लिए वन गमन करना पड़ता है। द्वापर युग में माँ के निर्णय का पालन करने हेतु द्रोपदी को पंच पतियों को स्वीकार करना पड़ा, पति के द्वारा अपनी पत्री द्रौपदी को धूतक्रीडा मैं दाँव पर लगाया जाना साथ ही दुर्योधन द्वारा द्रोपदी को भरी सभा में अपमानित करना एवं दुःशासन द्वारा द्रोपदी का चीर हरण करना। इसी प्रकार सतयुग में राजा हरिश्चंद्र की सत्यमित्ता को निभाने के लिए उनकी पत्नी को पहले अपनी संतान तथा बाद में स्वयं का बलिदान करना इस बात को प्रमाणित करता है कि आदि– अनादि काल से किसी ना किसी रूप में स्त्री का शोषण होता रहा है। जो कि वर्तमान में भी जारी है। प्राचीन काल से ही भारतवर्ष में नारी का स्थान अग्रणीय रहा है किंतु यह भी सच है कि विभिन्न काल खंडों में भारतीय नारी की स्थिति समय अनुसार परिवर्तनीय रही है।

यह अक्षरशः सत्य है की वर्तमान समाज में स्त्रियाँ समग्र क्षेत्र में असुरक्षित हैं। मानव विकास रिपोर्ट के अनुसार 'ऐसा एक भी समाज नहीं है जहाँ स्त्रियाँ सुरक्षित हो या उन्हें पुरुषों के साथ बराबरी का दर्जा प्राप्त हो, असुरक्षा उनका पीछा, पालने से लेकर कब्र तक करती है।'[1] मानवीय संवेदना के जनक प्रेमचंद एक स्थान पर लिखते हैं 'यदि पुरुष में स्त्री के गुण आ जाते हैं तो वह साधु हो जाता है और यदि किसी स्त्री में पुरुष के गुण आ जाए तो वह कुलटा हो जाती है।' अर्थात स्त्री के गुण मात्र ग्रहण कर लेने से पुरुष सज्जन हो जाता है।

प्रागैतिहासिक काल में सभ्यता का विकास न होने से स्त्री की दशा अत्यंत चिंतनीय थी। स्त्री–पुरुष के अधीन थी, वह उसकी अनुगामिनी बनने को विवश थी यौन स्वच्छंदता का वातावरण था। किसी प्रकार का कोई बंधन स्त्री पुरुष के बीच नहीं था। स्त्री–पुरुष की वीरता के आगे नतमस्तक थी इस काल में 'जिसकी लाठी उसकी भैंस

* *शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, एम. ए., हिन्दी*

** *शोध निर्देशक, शासकीय इंदिरा गाँधी कन्या महाविद्यालय शहडोल, म.प्र.*

बाला सिद्धांत लागू था। इस समय मानव एवं पशु में कोई अंतर नहीं था। दोनों ही के लिए जीते थे। इस काल में स्त्रियों की दशा के संबंध में कोई ऐसा उज्ज्वल बिंदु नहीं दिखता है जिसके आलोक से नारी अलौकिक हो सके।'[2]

ऋग्वेद काल में स्त्रियों की दशा के संदर्भ में मनु ने लिखा है 'वैदिक युग में महिलाएँ देवी के रूप में पूजी जाती थी।'[3] इस युग में नारी पूजनीय थी उसकी समाज में महत्वपूर्ण स्थिति थी। वह सभी क्षेत्रों में पुरुष के समकक्ष मानी जाती थी। स्वयंवर की प्रथा थी, विधवा विवाह एवं पर्दा प्रथा की परंपरा नहीं थी। स्त्री की अनुपस्थिति में धार्मिक कार्य पूर्ण नहीं माने जाते थे संपत्ति पर स्त्री का समान अधिकार था। स्त्रियाँ शास्त्रार्थ करती थी। उस युग की सुप्रसिद्ध महिला गार्गी, धर्म स्त्री थी। इसके अतिरिक्त घोषा, विश्वतारा, अपाला भी श्रेष्ठ प्रतिभाशाली स्त्रियाँ थी। इस युग में स्त्री–पुरुष की सहगामिनी के रूप में सामने आई।

उत्तर वैदिक काल में भारतीय स्त्रियों की दशा 'मैत्रायण संहिता' के अनुसार 'स्त्रियाँ विपदा एवं आपत्ति की जन्मदाता है।'[4] की वैदिक काल के अंत तथा उत्तर वैदिक काल के प्रारंभ में स्त्रियों की प्रतिष्ठा पर आँच आनी शुरू हो गई। पुत्री जन्म को अपशगुन माना जाने लगा आर्थिक स्वतंत्रता से उन्हें उन्हें वंचित कर दिया गया। सभाओं में प्रवेश निषेध था। बाल विवाह, बहुपत्री, का प्रचलन बढ़ गया था। ऐतरेय उपनिषद के अनुसार 'स्त्रियों को शूद्र से भी नीचा दर्जा दिया गया। मौर्यकाल में शिक्षा से वंचित हो गई। उन्हें बंधन में रखा जाने लगा गुप्तकाल में स्त्रियों की उन्नति के विषय में विशेष ध्यान नहीं दिया गया। देव–दासी प्रथा का प्रचलन बढ़ गया था।

मध्ययुग में मुगलों ने आक्रमण कर भारतीय गौरव का नष्ट करने का प्रयास किया स्त्रियों के लिए हर क्षेत्र वर्जित कर दिया गया। उसके समस्त अधिकार छिन गए। बाल विवाह की अधिकता के कारण स्त्रियाँ शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ती गई। पुत्री जन्म को हेय की दृष्टि से देखा जाने लगा। कई जातियों में पुत्री को जन्म लेते ही मार दिया जाता था। बेमेल विवाह के कारण विधवाओं की संख्या में वृद्धि हुई। इस युग में विधवा–विवाह पूरी तरह बंद हो गए। सती प्रथा अपने चरमोत्कर्ष पर थी। 11वीं शताब्दी प्रसिद्ध इतिहासकार अलबरूनी अनुसार 'एक स्त्री दूसरी बार विवाह नहीं कर सकती, विधवा या तो तपस्विनी का जीवन व्यतीत करती है या अग्नि में जल जाती है।'[5] इस युग में कुछ स्त्रियों ने राजनीति के क्षेत्र में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया जैसे नूरजहाँ, जहाँआरा, कर्णावती, मीराबाई, चांदबीबी, रोशनआरा, रजिया सुल्तान, पद्यमिनी आदि श्रेष्ठ शासक के रूप में इतिहास में अपना नाम दर्ज करने वाली करने स्त्रिया है किन्तु ऐसी स्त्रियाँ सीमित है। इस युग में स्त्री पतन के साथ ही समाज का पतन भी प्रारंभ हुआ। मुगलों के पतन एवं स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व के बीच का जो समय है वह आधुनिक युग के नाम से जाना जाता है। इस युग में दयानंद सरस्वती, राम मोहन राय, एनी बेसेंट जैसे अनेक समाज सुधारकों ने स्त्रियों की दयनीय दशा पर विचार किया साथ ही नारी की प्रगति के लिए कार्य किया। कानूनी रूप से सती प्रथा को समाप्त किया गया। बाल–विवाह एवं बेमेल विवाह होती रहे। पुरुष वर्ग में स्त्रियों को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान नहीं की पुरुष ही सभी निर्णय लेता था।

स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय स्त्रियों को पुरुषों के समान ही अधिकार प्रदान किए गए, स्त्रियों की शिक्षा को महत्व दिया जाने लगा, शिक्षित समाज ने मनुष्य के मूल्यों, विचारों एवं मनोवृत्तियों को प्रभावित किया, परिवार संबंधी मान्यताएँ परिवर्तित होने लगी। स्त्रियों को परिवार मैं समान अधिकार दिए जाने लगे। शिक्षित स्त्रियाँ घर एवं बाहर की जिम्मेदारियों का कुशलता से निर्वहन करने लगी। स्त्रियाँ नर्सिंग, डॉक्टरी, शिक्षण कार्य, स्टेनो टाइपिंग आदि पेशों में अपनी उपस्थिति दर्ज कराकर आत्मनिर्भर हुई तथा वे आर्थिक रूप से भी स्वतंत्र हुई परिणाम स्वरूप उनके सामाजिक स्तर में सुधार हुआ।

साठोत्तर भारत के विकास में निरंतर बढ़ते सोपानों के बीच स्त्रियों की विडंबनाओं का सिलसिला थमा नहीं। बलात्कार, भ्रूणहत्या, दहेज प्रथा जैसी कुरीतियाँ अभी भी समाज में मुँह फाड़े खड़ी है। स्त्रियों के लिए स्थिति चिंतनीय एवं दयनीय है।

समाज के संपूर्ण विकास के लिए आवश्यक है कि स्त्री–पुरुष दोनों को समान अधिकार प्राप्त हो। इसके लिए नर–नारी में स्वभाविक समरसता भी जरूरी है। विगत कुछ वर्षों से स्त्रियों की दशा में अनेक परिवर्तन आए हैं। यह परिवर्तन कहीं तो सकारात्मक एवं सम्मानजनक है, तो कहीं यह नकारात्मक एवं असम्मानजनक भी। स्त्रियों में पुरुषों की तुलना में जीवन के प्रति अधिक जिजीविषा होती है। अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति के बल पर वर्तमान समाज की शिक्षित स्त्रियों ने अपने आप को विकास के नए मापदंडों पर खरा साबित किया है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास

स्त्री शोषण मैत्रेयी पुष्पा साठोत्तर हिंदी कथा साहित्य में उदीयमान होते हुए साहित्य के क्षितिज पर ध्रुव तारे की तरह जगमगाई। उनकी लेखनी के प्रकाश में अन्य बहुत सी लेखनीयों का प्रकाश धूमिल जान पड़ता है। वे साठोत्तरी हिन्दी की सशक्त महिला कथाकार के रूप में उभरी। उनका लेखन निश्चित ही बुंदेली अंचल के लिए सदैव अमिट दस्तावेज रहेगा। उनके लेखन में ग्रामीण अंचल की पृष्ठभूमियों पर रचित कथा साहित्य एवं उपन्यास भरपूर मात्रा में मिलते हैं। उनकी लेखनी का मूल आधार ग्रामीण अंचल एवं परिवेश है। उनका जन्म ग्रामीण क्षेत्र के मध्यम–वर्गीय परिवार में हुआ था अतः लेखनी में ग्रामीण अंचल की स्त्रियों पर होने वाले अत्याचार और शोषण का बहुत ही अच्छा चित्रण मिलता है। मैत्रेयी के उपन्यासों में कोई पात्र नायिका का स्वरूप धारण करती हुई किस प्रकार स्त्री जागरण एवं सामाजिक चेतना के लिए कार्य करती है इसका बखूबी चित्रण उन्होंने अपनी लेखनी से किया है। मैत्रेयी स्त्री के विषय में क्या सोचती है वह आभा के द्वारा नेहा से कहलाती है, यह विजन उपन्यास में स्त्रीत्व की महान कवयित्री महादेवी वर्मा स्पष्ट जीवन का कोई लक्ष्य साधने का अधिकार है न समाज द्वारा निर्धारित विधान के विरुद्ध कुछ कहने का वातावरण भी धीरे–धीरे उसे ऐसे ही मूक आज्ञापालन के लिए प्रस्तुत करता रहता है। शताब्दियों पर शताब्दियाँ बीती चली जा रही हैं, समय की लहरों में परिवर्तन बहते आ रहे हैं लेकिन समाज केवल स्त्री को, जिसे उसने दासता के अतिरिक्त और कुछ देना नहीं सीखा, प्रलय की कुभल पुभल मैं भी शिला के सामान स्थिर देखना चाहता है। ऐसी स्थिरता मृत्यु का शृंगार हो सकती है, जीवन का नहीं बकौल, बकलम ग्रेट पोइटैस महादेवी वर्मा।'[6]

मैत्रेयी यह समझती है कि कही गई बात को व्यवहार में लाना बहुत कठिन हैं। कथनी और करनी में वही अंतर है जो कलम की धार और तलवार की धार में है। विजन उपन्यास में एक स्थान पर मैत्रेयी स्त्री को ही स्त्री के शोषण का कारण मानती है, अगर एक स्त्री, दूसरी स्त्री के साथ हो रहे अत्याचार के विरुद्ध खड़ी हो हो उठे तो है पुरुष वर्ग का स्त्री के प्रति शोषण समाज में बिल्कुल समाप्त हो जाएगा। लेकिन स्त्री ऐसा नहीं करती। अपने निजी स्वार्थ या ईर्ष्या की वजह से एक स्त्री, दूसरी स्त्री को या तो स्वयं यातनाएँ देती है या पुरुष समाज के द्वारा उसे शोषित करवाती है। इस प्रक्रिया में वह यह भूल जाती है कि वह स्वयं भी एक नारी है।

मैत्रेयी पुष्पा का लेखन स्त्री केंद्रित है। उन्होंने स्त्रियों की समस्याओं का स्त्री पात्रों द्वारा पूर्ण मनोयोग से चित्रण किया है उनकी समस्याओं का प्रस्तुतीकरण तथा उनका पूर्णरूपेण समाधान स्त्री पात्र से ही करवाना, उनकी लेखनी का सफलतम प्रयास है। मैत्रेयी के वर्णित उपन्यासों में स्त्री स्वयं के लिए स्वतंत्रता के आयाम निर्धारित करती है, वह अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए दृढ़ता से समाज का सामना करने हेतु सदैव तत्पर रहती है। यही उनकी लेखनी का मूलमंत्र है। मैत्रेयी य पुष्पा नेअपने उपन्यासों में स्त्री की शारीरिक एवं मानसिक प्रताड़ना के विभिन्न कारणों पर प्रकाश डाला है, जिनमें से कुछ प्रमुख कारण हैं पति का पत्नी पर संदेह करना, पति के अन्य स्त्रियों से संबंध, पुरुषों का दुर्व्यसन में लिप्त होना, संयुक्त परिवारों में सामंजस्य का आभाव, प्राचीन एवं नवीन पीढ़ियों के बीच वैचारिक मतभेद, विधवा स्त्री, परित्यक्ता स्त्री, हीन भावना से ग्रसित होना, स्त्री का मान बन पाना, अशिक्षा, स्त्रियों का आत्मनिर्भर ना होना इत्यादि ऐसे अनेक कारण समाज एवं परिवार में व्याप्त है, जिसके कारण स्त्री शारीरिक एवं मानसिक रूप से शोषित होती है।

पुरुष द्वारा स्त्री पर हाथ उठाया जाना स्त्रियों से चला आ रहा है। पति अपनी पत्नी को जागीर समझता है चाहे मारे कूटे पर वह उसे छोड़कर नहीं जाएगी। झूला नट उपन्यास में भी नारी के शारीरिक शोषण के उदाहरण मिलते हैं– 'सुमिरन बहू को पीट रहा था। अम्मा गली से जा रही थी, बहू मिमियाती बकरी–सी छूटकर भागी पति के हाथों से और अम्मा से लिपट गई–बचा लो काफी सुमिरन दोनों हाथ भांजता आ गया गली में अम्मा को ऐसे देखा, जयो चबा जाएगा। उमर में बड़ी अम्मा से कहे क्या? बस इतना बोला, श्हमारी बीच में न पड़ो काफी।' ''मैं कहता हूँ। छोड़ दो इस रंडी को। सुमिरन का गुस्सा फुसकारते नाग जैसे अम्मा की बाहों से बहू को खींच लिया, 'चल साली'।'[7]

आधुनिक नारी में स्पष्टवादिता स्वयं निर्णय लेने तथा समाज में अपनी एक अलग पहचान बनाने की लालसा जागृत हुई है। ''विजन 'कि नेहा को जब उसके ससुर ऑपरेशन नहीं करने देते तथा नर्सिंग होम की देख–रेख में लगा देते हैं तब अपनी योग्यता का अनादर होते देख अपनी बे–कद्री से आहत होकर उसका सन्न टूट जाता है और वह अपने बूढ़े ससुर के बारे में सोचती है– 'बूढ़े सर्जन कब के रिटायर हो गए। यहाँ तक कि निजी नर्सिंग होम चलाने वाले भी उन्हें मरीजों को हाथ नहीं लगाने देते। डॉक्टर शरण यहाँ पुराने चावल बने हुए हैं। देहली में होते तो तुम्हें कोई आंख छूने देता, सिवा किसी बूड़े के।'[8]

अल्मा कबूतरी उपन्यास में मैत्रेयी कहती है कि एक स्त्री के आंसू को एक स्त्री ही पहचान सकती है, उसकी भावनाएँ, उसके दुख तकलीफ से वही परिचित हो सकती हैं। जब राणा अलमा को छोड़कर कदम बाई के पास आ जाती है, और बताता है कि अलमा दुखी रहती है। तब इतनी दूर बैठी कदम बाई अलमा के दुख मर्म समझने की कोशिश करती है।

'मर्द किसी औरत के रोने का मतलब नहीं समझ सकते। उनके रहते औरत का रोना कुत्ते की रोटी उठा ले जाने पर रोने जैसा होता है। तभी तो राणा उसे छोड़ आया, वह भी तो मर्द ही है, मेरा बेटा है तो क्या।'[9] और जब राम सिंह अपनी पुत्री अलमा को अपने मित्र दुर्जन कबूतर के घर दातार नगर छोड़ देता है तभी से अलमा के बुरे दिन शुरू हो जाते हैं। अपने मित्र राणा को अपनी दुर्दशा की कहानी पत्र के माध्यम से व्यक्त करती हैं। वह बताती हैं कि किस तरह उसके बप्पा के मित्र दुर्जन सिंह ने उसे धोखा दिया 'अल्मा तू गिरवी धरी है, समझे रहना भला। इसमें बुराई भी नहीं। हम कबूतरों में तो यह चलन रहा है 'जेवर–महना, बासन और बेटी मुसीबत के समय काम आते है। अब तू मेरी खरीदी हुई।'[10] कुछ आदमी आए थे राणा, मुझे डर लग रहा है। बप्पा कहाँ है? कौन बताए? दुर्जन दाती पीसकर कहता है 'नखरे करे तो साली।'[11] सदियों से स्त्री पुरुषों के द्वारा उतनी शोषित नहीं हुई जितनी प्रताड़ना एक स्त्री ने दूसरी स्त्री को दी हो। कुछ मायनों में एक पुरुष किसी स्त्री की शह पाकर ही दूसरी स्त्री को प्रताड़ित करने की हिम्मत कर पाता है। एक औरत अपने पति के द्वारा मारपीट सहते हुए भी उसके गुण में, कमी नहीं रखती। इसका उदाहरण मैत्रेयी ने अपने उपन्यास 'कहीं ईसुरी फाग में दिया है। बाई अपने स्वर्गीय पति के गुण गाती है 'ओ पिरताप के दादा, तुम ने जनम जनम सुरग मिले। अपुन 6 महीना अन बोला तो बाँधे रहे, अकेले हमारी जिंदगानी बखसे रहे। बस इतके–सा तसिया की सोच सोच के जिंदा रहे अपना ही आदमी तो है, जिसका बोझ हम हथेरी पर सहे या करीहाई पर। जनी बच्चा का बोझ भी तो गर्भ में सहती है। जिंदगानी बोझ वजन के ही हवाले रहनी हैं, तो आदत डारो।'[12] 'कहीं इसरी फाग; उपन्यास में सांकेतिक रूप से स्त्रियों के शोषण की उस दशा को भी उठाया है जब देश के रक्षक सिपाहियों के लिए देश की स्त्रियों की खरीद–फरोख्त होती थी। बसारी वाली बऊ ऋतु को बताती है 'बिनू जनी तो ले जब कोई जात हती न अब है जब गाँव की तमाम जनी सिपाहियों के लिए जाती थी उनकी जात गाँव में ही धरी रह जाती है। जहाँ औरतों की खरीद–फरोख्त हो रही है, वहाँ आदमी पूजा धर्म निभाकर अपने जात गोत्र की चादर जनी को उड़ा देता है।'[13] जब रज्जो अपने जेठ रामदास को बछिया के लिए मना कर देती है तब वह रज्जो को लात, घूंसों एवं थप्पड़ों से बहुत मारता है– 'दारी हड्डी चुरन कर देंगे हम। नाइन के घर बैठ के दिखा रही है की वे कितनी नीच हो सकती है। ऐ?– हमारी देहरी बैठ के इतेक रंडीपना कर पाएगी ते। सो बस छुट्टा गाय की तरह फिर न चाह रही है।'[14]

वर्तमान समाज में हम लड़कियों का उच्च शिक्षा देने के बावजूद भी लोगों को यही सिखाते हुए पाते हैं कि लड़की को मर्यादा में रहना चाहिए। लड़कियों को समाज में दोयम दर्जा हासिल है इस का भी चित्रण मैत्रेयी य ने 'अगन पाखी' उपन्यास में किया है 'भट्टी घोत, बाप भैया नहीं तो तू ऐसी मनु जीमार भई जा रही है कि मर्द डरे जनी के लच्छिन कब सीखेगी।'[15] मैत्रेयी के उपन्यास कस्तूरी कुंडल बसे में कस्तूरी के मायके वाले जब जमीदार का लगान अदा नहीं कर पाते तब वह उसे हीरालाल के हाथों 800 सिक्कों में बेच देते है, तथा उसका विवाह हीरालाल के साथ कर दिया जाता है ओ, 800 की घोड़ी, तू मुँह नहीं दिखाती, तेरी यह मजाल। हम तो सोच रहे थे नई छोरी की तरह शर्मा रही है, पर तू आजमा रही है। तेरे भैया ने खनखन आते चांदी के कलदार वसूले हैं, मुफ्त में नहीं आई सो नखरे पसार रही है।'[16] तत्पश्चात जिस दिन उसके पुत्र का (कस्तूरी) स्वर्गवास होता है उसी दिन कस्तूरी देखती है, कि उसका पति, पर स्त्री के साथ उसी घर में सहवासरत है, लेकिन वह मुंह बंद करके रह जाती है क्योंकि उस समय सामाजिक प्रथा के अनुसार स्त्री को विचारों की अभिव्यक्ति की आजादी नहीं थी। जब वह विवाह योग्य लड़की थी और घरवालों ने उसे दो पीतल के कलशों की तरह ही बेच दिया था, कल हो बनिया को, कस्तूरी आदमी को। इसके बाद तब भी नहीं, जब मुंह दिखाई के समय उससे औरतों ने 800 में खरीदी घोड़ी कहा था। उस दिन भी नहीं, जब 20 दिन जीकर बेटा मर गया था और उसी रात को पति उसी घर में पर स्त्री के संग संभोगरत देखे थे। तब ही नहीं, जब पति का स्वर्गवास हो गया और तब भी नहीं, जब भाई दिलासा देने की जगह लूट मचाने लगा। अतः इस प्रकार मैत्रेयी यह ने बताया है कि किस प्रकार उनकी माँ कस्तूरी का अपने ही सगे भाइयों द्वारा तथा तत्पश्चात अपने पति हीरालाल द्वारा मानसिक शोषण किया जाता है।

इसी प्रकार जब मैत्रेयी की शिक्षा ग्रहण करने का समय आता है तब उसकी माँ अपने ममता को परे रखकर मैत्रेयी को समाज कल्याण बोर्ड की संयोजिका के घर पर छोड़ देती है। यह अलीगढ़ है, यही मैत्रेयी के रहने–

पढ़ने का प्रबंध हुआ है। समाज कल्याण बोर्ड की संयोजिका का घर। माताजी ने भी यही घर मैत्रेयी की तरह पहली बार ही देखा है। लेकिन वहाँ जमीन में प्रथम बार नन्ही बालिका मैत्रेयी को संयोजिका के छोटे बेटे के द्वारा यौन शोषण का शिकार होना पड़ता है। जिसका गहरा प्रभाव नन्हीं मैत्रेयी के जीवन एवं लिखनी दोनों पर परिलक्षित होता है। मैत्रेयी जब अपने पुश्तैनी घर में शरण लेती है, तब उनकी माँ वहां आकर उन्हें पुरुष जाति से होशियार रहने की सलाह देती है। उसने लड़ने के लिए एवं उनसे सजग रहने के लिए प्रेरित करती है। यह बात गाँठ में बाँध ले कि मर्द की जात से होशियार रहकर चलना होता है, भले वह 60 साल का बूढ़ा हो। गाँव वालों के समझाने पर भी माँ की समझ में नहीं आता है किंतु जब खेरा पतिन दादी ने कहा तो माँ को एहसास होता है। मैत्रेयी के सिर पर हाथ धरकर बोली, 'बचना कैसे होता है, यह सोचने की भी अवस्था होती है। तू तो पढ़ी लिखी है, कस्तूरी, इतना तो जानती होगी कि शेर का बच्चा भी कुछ दिन तक अपनी माँ का लाया शिकार ही खाता है। बेटी, तेरी तरक्की ने तुझे ऐसा चकाचौंध कर डाला की सबसे सीस पर मुकुट देख रही है।

एक बूढे व्यक्ति द्वारा भी पुनः मैत्रेयी का योन शोषण करने का प्रयास किया जाता है तत्पश्चात कॉलेज में अधेड़ प्रधानाध्यापक द्वारा भी उनके योन शोषण का प्रयास किया जाता है जिसका भी मैत्रेयी निडरता से सामना करती है वह निश्चित करती है की इस अन्यायई पुरुष प्रधान समाज से लड़ना ही होगा। लड़की ने ऐलान किया मुझे नहीं पढ़ना। करने दो रेस्टीगेशन बह न मैनेजमेंट कमेटी सामने बयान देने गई थी। मैं प्रिंसिपल से कभी अभिवादन किया। कक्षाएँ चलती। मिट्टी के बुत सी लड़की, क्या पढ़ती क्या न पड़ती? अनेक अवसरों पर कस्तूरी कुंडल बसे में मैत्रेयी ने स्वयं के साथ यौन शोषण के जो प्रयास हुए उनका बड़े ही निर्भीकता से वर्णन किया है।

मैत्रेयी के पति सिर्फ शंका के आधार पर उसको मानसिक प्रताड़ना देने लगते हैं। हद तो तब हो गई जब नव–विवाहित को बिना सूचना के अकेले छोड़कर अपनी छुट्टी कैंसिल करा कर ड्यूटी पर चले जाते हैं। तब शायद मैत्रेयी ने एकाकीपन की वह पीड़ा महसूस की हो, जिसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता, जिसको सिर्फ एक नारी की महसूस कर सकती है जो उन परिस्थितियों का सामना कर चुकी हो। मरी हुई मैत्रेयी की आत्मा गांव पर मंडरा रही है माताजी। यहां व्याह के चलते मिलन के शुभ मुहूर्त नहीं पति का मन मारते रहना ही पति का अभीष्ट है।

मैत्रेयी के माँ कस्तूरी न जाने किस भावना से प्रेरित है उसे कौन–सा भय लगा रहता है कि वह घबराकर मैत्रेयी और उनके पति के बीच में खड़ी रहती है। वे यह नहीं समझ पाती है जब पति के साथ नहीं रहने देना था, उनके वैवाहिक जीवन को इस तरह बर्बाद करना था, तो उनकी शादी ही क्योंकि। लेकिन स्त्रियोचित संस्कार होने के कारण एक निश्चित सीमा से अधिक विरोध मैत्रेयी चाहकर भी नहीं कर पाती। लेकिन एक मूक विवशता एक मूक संघर्श उनके अंतर्मन में चल रहा है, जिससे कि वह स्वयं के किसी के सामने नहीं कर पा रही है। जब मैत्रेयी य के मां बनने की खबर कस्तूरी को लगती है तो उनका बर्ताव बड़े ही विचित्र रूप से असंयमित हो जाता है तथा मैत्रेयी की कोख में पलने वाले बच्चे को लेकर पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर शंका करने लगती है। माँ तुम्हारी जुबान में सर्जिकल चाकू फिट है, मेरी आत्मा को नहीं, पेट के गर्भ को भी खुरचे डाल रहा है। मैं कीड़े–मकोड़े जानने वाली हूं वे एक दूसरे को खाने वाले हैं। क्या चाहती हो मां जो कहना चाहती हो आइंदा न कहना, मेरा मन कह रहा है कि तुम जैसी औरत ही अपने बच्चे को खा जाती हैं।

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों में भारतीय परिवारों की खियों पर हो रहे शोषण के विभिन्न कारणों पर प्रकाश डाला है, भारतीय समाज में जो संयुक्त परिवार है उसमें प्रायः कोई ना कोई स्त्री शारीरिक एवं मानसिक रूप से शोषित की जाती है। इन स्त्रियों में जो अशिक्षित है वह तो इस अन्याय को अपना भाग्य मान बैठती हैं किंतु शिक्षित स्त्रियाँ अपने प्रति हो रहे अन्याय को सहन नहीं कर पाती और वे इस अन्याय के खिलाफ आवाज उठाती है। संयुक्त परिवारों में पति के साथ साथ सास–ससुर, जेठ–जेठानी, देवर ननंद आदि के द्वारा भी स्त्री शोषित होती है, जिसका वर्णन मैत्रेयी य ने अपने समस्त 11 उपन्यासों स्मृति दंश, बेतवा बहती रही, इदन्नमम, चाक, झूलानट, अल्मा कबूतरी, अगन पाखी, विजन, कस्तूरी कुंडल बसे, कही ईसुरी फाग और गुड़िया भीतर गुड़िया उपन्यासों में किया है। संयुक्त परिवारों में जब स्त्रियां आत्मनिर्भर होकर धनार्जन करती एवं घर बाहर के कार्यों को भी कुशलतापूर्वक निभाती हैं। ऐसी स्थिति में यदि स्त्री अपने परिवार के सदस्यों से घर की जिम्मेदारियों में सहयोग की अपेक्षा करती हैं तो उसे परंपरागत स्त्री के कर्तव्यों का समाप्त कर दिया जाता है तब वह शोषित होते हुए भी अकेले ही दोनों भूमिकाएं निभाती हैं। लेखिका ने विजन उपन्यास में आभा के द्वारा इस सच्चाई को उजागर किया है। आधुनिक युग में भारतीय समाज में एकल परिवारों का प्रचलन तीव्रता से जोर पकड़ रहा है इन परिवारों की स्त्री या पुरुष की

माननीय सत्ता एवं पीढ़ियों से चली आ रही परंपराओं का विरोध करती है शिक्षित नारी को हर कदम पर पति की आज्ञा लेना, पति का संदेह करना एवं पति के इषारों पर चलना मंजूर नहीं है। परिणाम स्वरूप इन बातों का विरोध करने पर परिवार में उसे अनेक तरह से शोषित एवं प्रताड़ित किया जाता है। पति अपने चारित्रिक पतन के कारण भी पत्नी को प्रताड़ित करता है। परिवार में कई बार पति अपनी पत्नी को बेचकर अथवा उसके शरीर का सौदा कर उस पर अत्याचार करता है एक पुरुष अपनी स्त्री के होते दूसरी शादी कर लेता है वह भी उस स्त्री के होते दूसरी शादी कर लेता है, वह भी उस स्त्री के होते हुए जिसे उसने स्वयं अपनी मर्जी से स्वीकार किया हो वह पत्नी को छोड़ने करण भी कितना मामूली–सा आपे से बाहर मत हो। ठंडे दिमाग से सोचो तुम्हारी 6 उंगलियां वाली कल्लू बहू मेरे दोस्त को रोटी परोसने आ जाती, तो वह कल के दिन मुझे बोलने न देता। काली गोरी दो रंग पर तुम्हारी बहू तो नीली है, बैंगनी। रंग के कारण किसी औरत का जीवन बर्बाद करना एक पुरुष के लिए सहज है। अम्मा सुमेरु को समझती है 'चल नाश परे, तेरी जिंदगानी इतनी कच्ची निकली कि करिया गोरे रंग में ही डूबने लगी अरे सुमेरु, खुद को देख, नासपीटे तू कहाँ का चंदा है तू सिंगल दीप की पद्मिनी चाहिए।[17]

भारतीय सामाजिक परिवेश में एक परित्यक्ता नारी को अपराधी की दृष्टि से देखा जाता है यही कारण है कि झूलानट की नायिका शीलो को भी उसकी अम्मा और पुरा पड़ोसी वाले नीची निगाह से देखते हैं यहां तक कि उसके मायके में भी उसकी उपेक्षा होती है। शीलो बालकिशन से कहती है– लला बालकिशन, जनी की जिंदगी और अपने आदमी की आंखों से उतरी औरत। हे मेरे शंकर महादेव। दुश्मन की गति ना करना ऐसी मैं तो तुम्हारे भैया की लातों की धूल पान समझकर माथे से लगाने को तैयार हूँ। लेकिन इस घर में दर तो ताऊ।[18] भारतीय समाज में पीढ़ीयों से चली आ रही यह कहावत आज भी चरितार्थ है कि पिता के घर से लड़की की डोली उठेगी और पति के घर से अर्थी बीच का कोई रास्ता नहीं। इस दृढ़ मानसिकता के कारण एक परित्यक्ता स्त्री की स्थिति न घर के न घाट की हो जाती है वह अपने सिर पर छत की तलाश के लिए दर–दर भटकती रहती है। उसे ससुराल और मायके दोनों ही पक्षों में तिरस्कार एवं अपमान का घूंट पीना पड़ता है। झूलानट उपन्यास में शीलो की स्थिति भी ऐसी ही है जब सुमेरु शीलो को छोड़कर चला जाता है और अम्मा शीलो को मायके भेजने की बात करती है तब शीलो अम्मा से विनती करती है 'अपने चरणों से अलग ना करना अम्मा इसमें पड़ी रहने दो, मैं खेत की घास बुरी घड़ी जन्मी, तुम्हारी चाकरनी बनकर रहूंगी। बालू की दुल्हन की टहल करूँगी। उनके बच्चे पालूँगी। रूखी सूखी खाकर घड़ी काट लूंगी। मायके में क्या सवाल जवाब नहीं होंगे। दिन रात की सूली।'

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मैत्रेयी के उपन्यासों में स्त्री पात्र विभिन्न कारणों से शोषण का शिकार होती है। नारी की विवशता, परिवार तथा पुरुष के अत्याचारों को मैत्रेयी जी ने अत्यंत ही हृदय स्पर्शी शब्दों के साथ भाव अभिव्यक्ति प्रदान की है। उनकी नारी अस्तित्व बचाने के प्रयासों से जूझती हुई नारी है, वह हिंदुस्तानी संस्कारों में रची बसी नारी है, तथा कहीं–कहीं त्यागमय महत्वपूर्ण तथा वात्सल्य की प्रतिमूर्ति की मालकिन होती है।

जिस समाज व देश की नारी जितनी सुदृढ़, सक्रिय महत्वपूर्ण एवं सम्मानजनक होगी, वह देश व समाज उतना ही समृद्ध व उन्नत होगा। अगर हम इतिहास पर नजर डालें तो यह बात सत्य प्रतीत होती है जिस कालखंड में स्त्री को समाज में सम्मान व समानता प्रदान हुई वह कालखंड उन्नति के शिखर पर गया व जिस काल में स्त्री के साथ दुर्व्यवहार और शोषण हुआ वह काल अवनती व पतन के गर्त की ओर बड़ा। स्त्री सृजन करती है और जब सृजनकर्ता की शोषित हो तो सृष्टि का विकास कैसे संभव है।

स्वामी विवेकानंद भी यह मानते हैं कि स्त्रियों की प्रगति में ही किसी राष्ट्र का सर्वांगीण विकास संभव है। उन्होंने इस संबंध में शिकागो सभा में कहा था– 'किसी राष्ट्र की प्रगति का सर्वोत्तम थर्मामीटर है। वहाँ की महिलाओं के साथ होने वाला व्यवहार हैं।' 'नारी जब अपने ऊपर थोपी गई बेड़ियों एवं कड़ियों को तोड़ने लगेगी। तो विश्व की कोई शक्ति उसे रोक नहीं सकती।'[19]

आज संपूर्ण विश्व में स्त्री जागरुक हो चुकी है। उसके विकास के महत्व को सभी जगह तथा सभी क्षेत्रों में सराहा जाने लगा है। स्त्रियों को शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, रोजगार तथा सांस्कृतिक विकास के संबंध में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपने विचार व्यक्त किए हैं लोगों में जागृति लाने के लिए हमें पहले स्त्रियों को जागृत करना होगा स्त्रियों के आगे बढ़ने से परिवार आगे बढ़ेगा, गाँव आगे बढ़ेगा और राष्ट्र भी आगे बढ़ेगा।'[20]

स्त्री शोषण के साथ ही स्त्री जागरण की भावाभिव्यक्ति मैत्रेयी ने बखूबी अपनी लेखनी से की है फिर वह झूलानट की शीलो हो या अल्मा कबूतरी की अल्मा या कदम बाई अथवा इदन्नमम की कुसुमा हो या चाक कि

सारंग नैनी। इन सभी नारी पात्रों ने स्वयं के लिए शोषण के पश्चात स्वतंत्रता के मापदंड निर्धारित किए तथा अपना जीवन अपनी ही शैली में जीने का प्रयास किया। इस प्रकार मैत्रेयी की रचनाओं में बखूबी स्त्री शोषण तथा स्त्री जागरण का वर्णन हमें मिलता है। बेतवा बहती रही उपन्यास की मुख्य पात्र उर्वशी का लघु जीवन बहुत कष्टमय बीतता है अपने भाई के अत्याचारों के कारण उसे अपनी बहन की सहेली मीरा के पिताजी बरजोर सिंह के साथ बछिया होने के लिए विवश होना पड़ता है किंतु धीरे–धीरे उनके व्यक्तित्व में परिवर्तन आता है वह अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाती हैं उर्वशी अपने साथ हुए अन्याय को किसी अन्य स्त्री के साथ घटित होने देना नहीं चाहती। यही कारण है कि वह उदय की शादी तय हो जाने के बावजूद उसे विजय की विधवा बहू के साथ विवाह करने राजी करती है और बरजोर सिंह के लाख धमकाने के बाद भी अपने निर्णय से हटती नहीं है वह बरजोर सिंह से कहती है कह लई सब? तुम हमें काहे के लाने लाए, सो हमें जानने की जरूरत नहीं है। बस, तुम इतनी सुन लो की हम काहे के लाने आए हैं–अन्याय हम नहीं होने देंगे उदय की शादी के लिए जो लोग आए हैं, पैसा वाले हैं अपनी बिटिया के लिए आसानी से उदय जैसा वर खोज लेंगे। लेकिन हमारे विजय की बहू कहाँ जाएगी वह कौन व्याहने आएगा उसे? तुमने कब हूँ सोची जे बात? कैसे कटेगी उसकी जिंदगानी? बेटा नहीं रहो तो बहू बिरानी हो गई?

धक्का मारदऔ बाय? हमारे रहते जा अनरथ नहीं हो सकता से 1000 तक नहीं : अब हम नहीं चाहते कि वह भी कहीं हमारी तरह ही 'उर्वशी का जवाब सुनकर भाई मैं भी अपने पुत्र की गलतियों का विरोध करने की हिम्मत आ जाती 'लला काऊ को तो आगे आने ही पड़ है।'[21]

झूलानट उपन्यास की नायिका शीलो कथा के प्रारंभ में अबला नारी के रूप में सामने आती है किंतु धीरे–धीरे उसके व्यक्तित्व में असाधारण परिवर्तन होता है। सर्वप्रथम अपने पति को मनाने के लिए किए गए उपाय असफल होने पर वह निर्णय करती है कि उसे पाने का प्रयास नहीं करेगी को क्रोध की ऐसी भंगिमा पहली बार अख्तियार की है उन्होंने। बांह का गंडा तोड़कर फेंक दिया। सरजू की दी हुई शीशियाँ अम्मा द्वारा मंगाई श्रृंगार सामग्री घर के पनारे पर फोड़ डाली।'[22] अल्मा कबूतरी उपन्यास में मैत्रेयी ने आनंदी के माध्यम से परिवार में जागृत स्त्री का चित्रण किया है मैत्रेयी ने अनेक दृष्टिकोणों के माध्यम से विजन उपन्यास में नारी जागरण का स्वर मुखरित किया है। नेहा की माँ आभा से चढ़ती है और नेहा को उस से बचा कर रखना चाहती है। आभा का व्याह नहीं फला तो वे उसके वजूद को भी स्वीकार नहीं करती तब नेहा विचार करती है सुंदर गृहस्थी चलाने वाली लड़की ही सुपात्र होती है, अब यह परिभाषा बदलनी चाहिए क्योंकि यह चलने वाली नहीं।[23]

मैत्रेयी कि नारी पात्र आधुनिकता का आवरण ओढे हुए हैं। इन नारी पात्रों के आत्मविश्वास में एक खुलापन एवं उन्मुक्तता झलकती है। रजऊ के व्यक्तित्व एवं व्यवहार में भी उसमें कहीं भी संकोच या संकीर्णता नहीं है वह अपनी सास को मना कर देती है कि वो किसी बछिया नहीं करेगी (बछिया बुंदेलखंड की वह प्रथा है जिसमें कोई स्त्री बछिया दान कर, पर पुरुश के साथ स्थाई रूप से पत्नी की भांति रहने लगती है) ''हम बताएं देते हैं कि जा गाँव में हमारे मनमाफिक ऐसा कोई नहीं है जिसका लड़का हम पैदा करें सुन लो तुम भी, जान रहे हैं कि यह राछरे फजीहत काय के लाने हो रही है बच्चा नहीं है हम।''[24]

निष्कर्ष–मैत्रेयी अपने उपन्यासों के समस्त नारी पात्रों के माध्यम से वर्षों से चली आ रही सामाजिक और सांस्कृतिक परंपरा को तोड़ा है और नारी जागरण का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया है। अलमा भी अपनी जनजाति के कबीले में जा कर राजनीति के उच्च पद पर आसीन होकर अपने ही जनजाति के सामाजिक एवं सांस्कृतिक रीति–रिवाजों, परंपराओं एवं अंधविश्वासों को तोड़कर उसमें नए विचारों एवं उसके स्तर को सुधारना चाहती है वह अपने बप्पा की हत्या का बदला भी लेना चाहती है। अल्मा कबूतरी उपन्यास की नायिकाओं में नारी चेतना एवं नवीन विचारों का स्पष्ट आभास होता है मैत्रेयी के उपन्यासों में आए स्त्री पात्र समाज के प्रत्येक वर्ग से संघर्श करते हैं, एवं अपने विचारों की नवीनता प्रदान करते हुए समाज में चेतना जागृत करने की पूर्ण कोशिश करते हैं।

संदर्भ–सूची

1. मानव विकास रिपोर्ट मौर्य राशि एवं नूपुर कुकरेती द्वारा संकलित एवं 'संपादित सुरक्षा के दायरे' भाग–1, सहयोगिनी ट्रस्ट

2. सुशीला अग्रवाल, छतरपुर 1900 अलिखित, स्टेट्स ऑफ वीमेन

3. डॉ. एल. पी. शर्मा प्राचीन भारत का इतिहास, हिंदी माध्यम संस्करण 1986, सत्यकेतु विद्यालंकार प्राचीन भारत का इतिहास 1987

5. डॉ. एल. पी. शर्मा, मध्यकालीन भारत
6. मैत्रीय पुष्पा, विजन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सन 2001, पृ. 74–75
7. मैत्रीय पुष्पा, झूलानट, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन 1999, पृ. 80
8. मैत्रीय पुष्पा, विजन वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सन 2001, पृ. 13
9. मैत्रीय पुष्पा, अल्मा कबूतरी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन 2000–2001, पृ. 205
10. मैत्रीय पुष्पा, अल्मा कबूतरी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन 2000–2001, पृ. 244
11. मैत्रीय पुष्पा, अल्मा कबूतरी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन 2000–2001, पृ. 307
12. मैत्रीय पुष्पा, कहीं ईसुरी फाग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन 2004, पृ. 48
13. मैत्रीय पुष्पा, कहीं ईसुरी फाग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन 2004, पृ. 80
14. मैत्रीय पुष्पा, कही ईसुरी फाग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन 2004, पृ. 205
15. मैत्रीय पुष्पा, अगनपाखी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सन 2001, पृ. 36
16. मैत्रीय पुष्पा, कस्तूरी कुंडल बसई, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन 2002, पृ. 37
17. मैत्रीय पुष्पा, झूलानट, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन 1999, पृ. 37
18. मैत्रीय पुष्पा, झूलानट, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन 1999, पृ. 44–45
19. अखंड ज्योति, दिसंबर 2002, पृ. 23
20. सी. एच. जैन, महिला सशक्तिकरण, अप्रकाशित पुस्तक
21. मैत्रीय पुष्पा, बेतवा बहती रही, किताब घर, दिल्ली, सन 2006, पृ. 62
22. मैत्रीय पुष्पा, झूलानट, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन 1999, पृ. 62
23. मैत्रीय पुष्पा, विजन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सन 2001, पृ. 122
24. मैत्रीय पुष्पा, कही हो गए ईसुरी फाग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन 2004, पृ. 194

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 20-24

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की जीवन शैली का अध्ययन

*सुरेश प्रसाद दास** *डॉ. (श्रीमती) छाया श्रीवास्तव***

सारांश–अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की जीवन शैली अक्सर उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि, विद्यालय की नीतियों और शिक्षा के प्रति उनके दृष्टिकोण से प्रभावित होती है। आमतौर पर इन विद्यार्थियों के अभिभावक उनकी शिक्षा को लेकर जागरूक होते हैं और उन्हें बेहतर सुविधाएँ प्रदान करने का प्रयास करते हैं। ऐसे विद्यालयों में शिक्षा के साथ–साथ सह–शैक्षणिक गतिविधियों पर भी ध्यान दिया जाता है, जिससे विद्यार्थियों का समग्र विकास हो सके। इन विद्यार्थियों की दिनचर्या विद्यालय में समय बिताने, गृह कार्य करने और अतिरिक्त पाठ्यक्रम गतिविधियों में भाग लेने में व्यतीत होती है। साथ ही डिजिटल शिक्षा के बढ़ते प्रभाव के कारण ये विद्यार्थी तकनीकी साधनों का भी उपयोग करते हैं। उनकी जीवन शैली में शिक्षा को उच्च प्राथमिकता दी जाती है और कई बार उन्हें प्रतियोगी वातावरण का सामना करना पड़ता है, जिससे उनके मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर भी प्रभाव पड़ सकता है।

मुख्य शब्द–अशासकीय विद्यालय, विद्यार्थी, जीवन शैली, मध्यमान, मानक विचलन, क्रांतिक अनुपात इत्यादि।

प्रस्तावना–अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की जीवन शैली का अध्ययन एक महत्वपूर्ण विषय है जो विद्यार्थियों के शैक्षिक, सामाजिक और व्यक्तिगत विकास पर व्यापक प्रभाव डालता है। अशासकीय विद्यालयों में पढ़ाई करने वाले विद्यार्थी अपनी शिक्षा के साथ–साथ विभिन्न सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों में भी संलग्न रहते हैं जिससे उनकी जीवनशैली विविधतापूर्ण और विशिष्ट बन जाती है। इस अध्ययन का उद्देश्य विद्यार्थियों की दैनिक गतिविधियों, शिक्षा प्राप्त करने के साधनों, परिवार की भूमिका, आर्थिक परिस्थितियों और उनके सामाजिक दायरे का विश्लेषण करना है। यह प्रस्तावना इस बात पर भी प्रकाश डालती है कि कैसे अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की जीवनशैली उनके मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य, व्यक्तित्व विकास और भविष्य की आकांक्षाओं को प्रभावित करती है। इस शोध के माध्यम से, विद्यार्थियों की जीवनशैली के विभिन्न पहलुओं को समझने का प्रयास किया जाएगा जो शिक्षकों, नीति निर्माताओं और अभिभावकों के लिए उपयोगी हो सकता है।

आवश्यकता एवं महत्व–अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की जीवन शैली के अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व कई कारणों से अत्यंत महत्वपूर्ण है। अशासकीय विद्यालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों की जीवन शैली उनके सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक पृष्ठभूमि से प्रभावित होती है। इन विद्यालयों में आने वाले बच्चे अक्सर विभिन्न समुदायों से होते हैं और उनकी शिक्षा व सामाजिक वातावरण का उन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इन बच्चों की जीवन शैली का अध्ययन करके यह समझा जा सकता है कि उनकी शिक्षा में आने वाली बाधाओं को कैसे दूर किया जा सकता है और उनकी शैक्षिक आवश्यकताओं को बेहतर तरीके से कैसे पूरा किया जा सकता है। इसके अलावा इस अध्ययन से विद्यार्थियों के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य, उनकी रुचियों और उनके

* *शोध छात्र, शिक्षाशास्त्र विभाग, लाइफ लॉन्ग लर्निंग विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, म.प्र.*

** *प्राचार्य, श्री रामा कृष्णा कॉलेज ऑफ एजुकेशन, सतना, म.प्र.*

व्यक्तिगत विकास की बेहतर समझ प्राप्त होती है जिससे शिक्षा नीतियों और विद्यालयी व्यवस्थाओं में सकारात्मक बदलाव लाए जा सकते हैं। इन जानकारियों का उपयोग करके बच्चों के लिए अधिक समावेशी, स्वस्थ और प्रेरणादायक शिक्षण वातावरण तैयार किया जा सकता है।

सम्बन्धित साहित्य का पुनरावलोकन–सम्बन्धित साहित्य से तात्पर्य अनुसंधान की समस्या से सम्बन्धित उन सभी प्रकार की पुस्तकों, ज्ञान–कोषों, पत्र–पत्रिकाओं, प्रकाशित तथा अप्रकाशित शोध–प्रबन्धों एवं अभिलेखों आदि से है, जिनके अध्ययन से अनुसंधानकर्ता को अपनी समस्या के चयन, परिकल्पनाओं के निर्माण, अध्ययन की रूपरेखा तैयार करने एवं कार्य को आगे बढ़ाने में सहायता मिलती है।

किसी भी विषय के विकास में किसी विशेष शोध प्रारूप का स्थान बनाने के लिए शोधकर्ता को पूर्व सिद्धान्तों एवं शोधों से भली–भाँति अवगत होना चाहिए। इस जानकारी को निश्चित करने के लिए व्यावहारिक ज्ञान में प्रत्येक शोध प्रारूप की प्रारम्भिक अवस्था में इसके सैद्धान्तिक एवं शोधित साहित्य की समीक्षा करनी होती है, यहाँ साहित्य समीक्षा का अर्थ दिया गया।

सम्बंधित साहित्य–

यादव (2009) ने अपने शोध अध्ययन "जौनपुर जनपद के शिक्षित पुरुष प्रौढ़ व अशिक्षित पुरुष प्रौढ़ों के जीवन शैली का तुलनात्मक अध्ययन" के निष्कर्ष में पाया कि जौनपुर जनपद के शिक्षित पुरुष प्रौढ़, अशिक्षित पुरुष प्रौढ़ों की तुलना में जीवन शैली में उच्च स्तर पर पाये गये।

वानी एम. व लक्ष्मी डी. (2013) "एक्रोस कल्चरल लाइफस्टाइल ऑफ कॉलेज स्टूडेन्ट्स" विषय पर शोध किया। इस अध्ययन के उद्देश्य थे– कॉलेज जाने वाले विद्यार्थियों की क्षेत्र व लिंग के आधार पर जीवनशैली के बारे में अध्ययन करना। न्यादर्श के रूप में पश्चिम बंगाल व छत्तीसगढ़ में कॉलेज जाने वाले 160 विद्यार्थियों का चयन किया गया। विद्यार्थियों की जीवनशैली का अध्ययन करने हेतु लाइफ स्टाइल स्केल टेस्ट का प्रयोग किया गया। निष्कर्ष में पाया गया कि छत्तीसगढ़ में रहने वाले कॉलेज विद्यार्थियों की जीवनशैली, प. बंगाल के विद्यार्थियों की तुलना में बेहतर थी तथा शहरी लड़कों व लड़कियों की ग्रामीण लड़कों व लड़कियों से बेहतर जीवन शैली पाई गई।

ओमर अब्द एल–कदर, मारवा एवं आतिया मोहम्मद फातिया (2013) "द रिलेशनशिप बिटवीन लाइफ स्टाइल, जनरल हैल्थ एण्ड एकेडमिक स्कोर्स ऑफ नर्सिंग स्टूडेंट्स" नामक विषय पर अध्ययन किया। प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्य थे नर्सिंग विद्यार्थी में स्वस्थ व अस्वस्थ आदतों का पता लगाना, विद्यार्थियों की अस्वस्थ आदतों का सामान्य स्वास्थ्य पर प्रभाव देखना व सामान्य स्वास्थ्य का अकादमिक अंकों पर प्रभाव देखना। न्यादर्श के रूप में 150 विद्यार्थी लिए गए। जाँच हेतु स्वनिर्मित प्रश्नावली व एन्थ्रोपोमेट्रिक मेजरमेंट का प्रयोग किया गया। निष्कर्ष रूप में पाया गया कि स्वास्थ्य स्तर, स्वास्थ्य आदतों व अकादमिक अंकों के मध्य सकारात्मक संबंध था। विद्यार्थियों की अस्वस्थ आदतों का उनके स्वास्थ्य व अकादमिक अंकों पर भी प्रभाव पाया गया।

पंकज एस. सुवेरा व सुनील एस. जादव (2014) "अ कम्परेटिव स्टडी ऑफ द लाइफ स्टाइल अमंग अरबन एण्ड रूरल एजुकेटेड अनअम्प्लाइड प्युपिल" नामक शोध अध्ययन का उद्देश्य था ग्रामीण व शहरी क्षेत्र के शिक्षित बेरोजगारों की जीवनशैली की तुलना करना। न्यादर्श के रूप में 100 ग्रामीण शिक्षित बेरोजगार व 100 शहरी शिक्षित बेरोजगारों को लिया गया। अध्ययन का क्षेत्र गुजरात में बनास्कंथा जिला था। आंकड़े एकत्रित करने हेतु डाटाशीट व लाइफ स्टाइल स्केल (एस. के. बावा एवं एस. कौर द्वारा निर्मित) का प्रयोग किया गया। आंकड़ों का विश्लेषण एफ. परीक्षण द्वारा किया गया। निष्कर्ष में पाया कि शिक्षित बेरोजगारों की जीवनशैली पर क्षेत्र व लिंग का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

शोध अध्ययन के उद्देश्य–प्रस्तुत शोध निम्न उद्देश्य के अनुसार सम्पादित किया गया है–

1. अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं की जीवन शैली का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की जीवन शैली का तुलनात्मक अध्ययन करना।

शोध अध्ययन की परिकल्पना–शोध अध्ययन में निर्धारित उद्देश्य की पूर्ति हेतु निम्नलिखित परिकल्पना बनाई गई हैं–

1. अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं की जीवन शैली में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

2. अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की जीवन शैली में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

शोध विधि–प्रस्तुत अध्ययन में प्रयोगात्मक शोध की सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या–जनसंख्या का तात्पर्य सम्पूर्ण इकाईयों के निरीक्षण से होता है। इसमें कुछ इकाईयों का चयन करके न्यादर्श बनाया जाता है। शोधकर्ता ने रीवा (म.प्र.) के अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत 200 छात्रों व 200 छात्राओं तथा इसी प्रकार 200 शहरी विद्यार्थियों व 200 ग्रामीण विद्यार्थियों को संभाव्यता न्यादर्शन के आधार पर न्यादर्श के रूप में चुना गया है।

न्यादर्शन–जनसंख्या (इकाई, वस्तुओं या मनुष्यों का समूह) में किसी चर का विशिष्ट मान ज्ञात करने के लिए उसकी कुछेक इकाइयों को चुन लिया जाता है तो इस चुनने की क्रिया को न्यादर्शन कहते हैं, तथा चुनी हुई इकाइयों के समूह को न्यादर्श कहते हैं। प्रस्तुत अध्ययन में संभाव्यता न्यादर्शन के आधार पर आँकड़ों को लिया गया है।

शोध उपकरण–

जीवन शैली मापनी–विद्यार्थियों की जीवन शैली को मापने के लिए प्रो. (डॉ.) एस.के. बावा एवं डॉ. सुमनप्रीत कौर द्वारा निर्मित तथा प्रमापीकृत जीवन शैली मापनी का प्रयोग किया गया है।

शोध से प्राप्त परिणामों का सारणीबद्ध व उनकी व्याख्या अग्रवत है–

परिकल्पना 1–अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं की जीवन शैली में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका 1–अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं की जीवन शैली का विवरण

विद्यार्थी	संख्या	माध्य	मानक विचलन	स्वतन्त्रता मान	'टी' मान	टिप्पणी
छात्र	200	210.28	26.38	398	0.529	0.05स्तर पर कोई सार्थक अंतर नहीं है।
छात्रा	200	210.65	25.60			

0.05 सार्थकता स्तर का मान =1.96

तालिका संख्या 1 यह दर्शाती हैं कि अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं की जीवन शैली में कोई सार्थक अंतर नहीं है। चूंकि परिगणित टी-मान (टी =0.529),0.05 सार्थकता स्तर के मान 1.96 से कम है अतः अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं की जीवन शैली में कोई सार्थक अंतर नहीं है स्वीकृति की जाती है तथा प्राप्त परिणाम को भी स्वीकार किया जाता है।

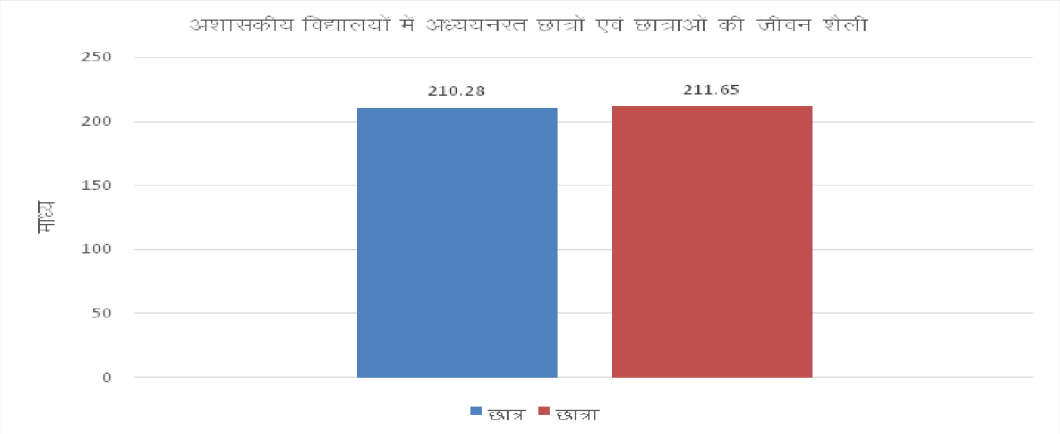

परिकल्पना 2–अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की जीवन शैली में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका 2–अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की जीवन शैली का विवरण

विद्यार्थी	संख्या	माध्य	मानक विचलन	स्वतन्त्रता मान	'टी' मान	टिप्पणी
शहरी	200	213.25	23.82	398	2.30	0.05 स्तर पर सार्थक अंतर है।
ग्रामीण	200	207.68	24.95			

0.05 सार्थकता स्तर का मान =1.96

तालिका संख्या 2 यह दर्शाती हैं कि अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की जीवन शैली में सार्थक अंतर है। चूँकि परिगणित टी–मान (टी=2.30),0.05 सार्थकता स्तर के मान 1.96 से अधिक है अतः उपरोक्त शून्य परिकल्पना "अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की जीवन शैली में सार्थक अंतर नहीं है।" अस्वीकृत की जाती है तथा प्राप्त परिणाम को स्वीकार किया जाता हैं।

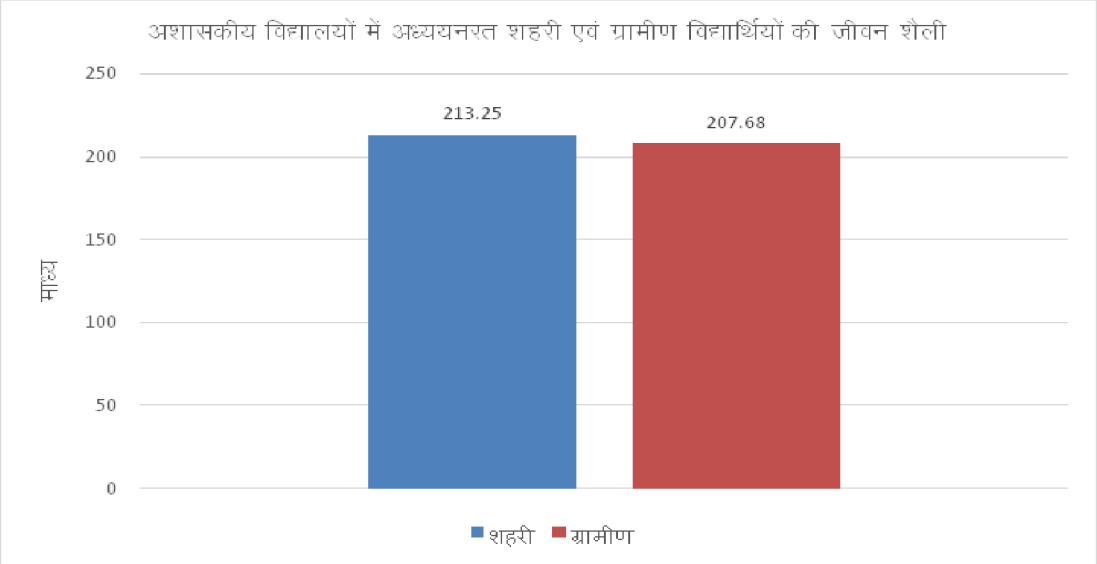

निष्कर्ष–अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों एवं छात्राओं की जीवन शैली में कोई सार्थक अंतर नहीं होने की परिकल्पना का निष्कर्ष यह है कि वर्तमान समय में शिक्षा प्रणाली और सामाजिक जागरूकता ने लैंगिक समानता को बढ़ावा दिया है। इसके परिणामस्वरूप, लड़के और लड़कियाँ समान अवसरों और संसाधनों का उपयोग कर रहे हैं, जिससे उनकी जीवनशैली में बहुत अधिक अंतर नहीं दिखाई देता। अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि परिवार, विद्यालय, और समाज सभी बच्चों को समान रूप से प्रोत्साहित कर रहे हैं, जिससे उनकी गतिविधियाँ, रुचियाँ और लक्ष्यों में समानता आ रही है। जीवनशैली में समानता उनके शैक्षणिक प्रदर्शन, खेल, सामाजिक गतिविधियों और अन्य क्षेत्रों में देखी जा सकती है, जो इस परिकल्पना को सही सिद्ध करती है।

अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की जीवन शैली में सार्थक अंतर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। शहरी विद्यार्थियों की जीवन शैली आमतौर पर आधुनिक सुविधाओं और तकनीकी संसाधनों पर आधारित होती है, जैसे कि इंटरनेट की उपलब्धता, परिवहन के साधनों की विविधता, और विभिन्न सांस्कृतिक अवसरों में भागीदारी। इसके विपरीत, ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यार्थियों की जीवन शैली अधिक पारंपरिक और प्राकृतिक

परिवेश से जुड़ी होती है, जिसमें सीमित संसाधनों का उपयोग और ग्रामीण परिवेश की विशिष्टताएँ शामिल होती हैं। यह अंतर उनके शैक्षिक अनुभवों, सामाजिक कौशलों और जीवन के प्रति दृष्टिकोण को भी प्रभावित करता है। ऐसे भिन्न संदर्भों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के विकास और उनकी आवश्यकताओं को समझना और उनके अनुसार शैक्षिक रणनीतियों को तैयार करना आवश्यक है।

शोध की उपयोगिता–अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की जीवन शैली का अध्ययन सामाजिक, शैक्षिक और मानसिक विकास को समझने के लिए बहुत उपयोगी है। यह अध्ययन विद्यार्थियों की आर्थिक पृष्ठभूमि, उनकी दैनिक आदतों, खान–पान, मानसिक स्वास्थ्य, शैक्षणिक दबाव और अन्य गतिविधियों को उजागर करता है, जो उनकी शिक्षा और जीवन पर प्रभाव डालते हैं। इस जानकारी से शिक्षाविद् और नीति–निर्माता बेहतर शैक्षणिक नीतियाँ और कार्यक्रम बना सकते हैं, जो विद्यार्थियों की समग्र भलाई और शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ावा दें। इसके अतिरिक्त, इस अध्ययन से अभिभावकों और शिक्षकों को यह समझने में मदद मिलती है कि विद्यार्थियों को कैसे प्रेरित और सहयोग प्रदान किया जाए ताकि वे अपने शैक्षणिक लक्ष्यों को सफलतापूर्वक प्राप्त कर सकें।

सन्दर्भ–सूची

1. शर्मा, आर.ए. (2008), भारतीय शिक्षा प्रणाली का विकास, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।
2. भटनागर, डॉ. ए.बी. (2008), अधिगम एवं शिक्षण, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।
3. अग्रवाल, डॉ. नीता (2008), बाल विकास, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
4. नागर, डॉ. बीनू एवं राजपूत, डॉ. आशा (2010), बाल विकास आगरा पब्लिकेशन, आगरा।
5. जायसवाल, सीताराम (2012), व्यक्तित्व का मनोविज्ञान, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
6. श्रीवास्तव, डी.एन. एवं पाठक, के.पी. (2012), बाल विकास एवं बाल मनोविज्ञान, आगरा पब्लिकेशन, आगरा।
7. श्रीवास्तव, महेन्द्र नाथ एवं कुमार, सतीश (2014), बाल विकास एवं सीखने की प्रक्रिया, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
8. श्रीवास्तव, डॉ. डी.एन. (2020), अनुसंधान विधियां, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
9. गुप्ता, प्रो. एस.पी. एवं गुप्ता, डॉ. अलका, (2013), सांख्यिकीय विधियाँ, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
10. राय, पारस नाथ (2008), अनुसंधान परिचय, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
11. सिंह, अरूण कुमार (2017), मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस।
12. कौल, बी. डी. (2015), वैज्ञानिक सृजनात्मकता का विकास, ज्ञान पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
13. मिश्रा, आर. पी. (2018), विज्ञान शिक्षा में रचनात्मकता तथा अवधारणा और क्रियान्वयन. नालंदा पब्लिकेशन, पटना।
14. शर्मा, एस. के. (2020), सृजनात्मकता, नवाचार तथा शिक्षा और अनुसंधान में नये आयाम. प्रभात प्रकाशन, वाराणसी।
15. त्रिपाठी, एम. (2016), वैज्ञानिक चिंतन और रचनात्मकता भारतीय दृष्टिकोण, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।
16. गुप्ता, ए. (2017), शिक्षा में वैज्ञानिक दृष्टिकोण और सृजनशीलता का महत्व, सूरज पब्लिकेशन, जयपुर।
17. सिंह, पी. (2021), वैज्ञानिक अनुसंधान में रचनात्मकता और नवाचार, नई सृष्टि पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
18. shodhganga.inflibnet.ac.in

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Sociology : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 25-27

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

हिन्दू एवं इस्लाम धर्म में विवाह के बदलते स्वरूप

*बबिता पासवान**

सारांश : *हिन्दू और इस्लाम धर्म में विवाह की परम्परा बहुत प्राचीन है। यौन सम्बन्धों का उच्छृंखल या पशुवत व्यवहार से बचने के लिए विवाह नामक संस्था का निर्माण किया गया। इस संस्था को सभी धर्मों ने अपने–अपने नियम के अनुसार लागू किया है। जिससे यौन उच्छृंखलता नैतिकता, सामाजिक सम्बन्धों का विकास हो सके।*

मूल शब्द : *हिन्दू कोड बिल, विवाह, लोकतांत्रिक मूल्य, शरिया कानून, पितृसत्ता, मातृसत्ता, ब्रह्म विवाह, अनुबन्ध समलैगिंक विवाह, थर्ड जेंडर, अन्तरजातीय विवाह, विरासत।*

दुनिया के किसी भी स्वतंत्र कौम के पास अपना 'पर्सनल कानून' होता है। जिससे वह अपनी समाज व्यवस्था संचालित करता है। भारत में सामाजिक स्थितियाँ कभी एक सी नहीं रही हैं। भारत विभिन्न काल खण्डों में कई विदेशी ताकतों के हाथों गुलाम रहा है। ऐसे में उसकी सामाजिक और सांस्कृतिक जड़ों पर भी प्रभाव पड़ा है। मध्यकाल में इस्लाम के आगमन और भारत पर मुगलों के शासन ने भारतीय समाज व्यवस्था को कुछ हद तक अवश्य प्रभावित किया। किन्तु आधुनिक काल में अंग्रेजों ने लोकतांत्रिक मूल्यों के साथ नवीन कानून व्यवस्था का प्रतिपादन किया। हमारे अध्ययन के विषय हिन्दू और इस्लाम हिन्दू एवं इस्लाम धर्म में विवाह के बदलते स्वरूप अध्ययन है। क्योंकि भारत मुख्यतः धार्मिक और सामाजिक रूप से दो धड़ों में विभाजित है। हिन्दू और मुसलमान। ये दोनों धार्मिक पृथकता के साथ वैवाहिक अलगाव की स्थिति से शासित होते है। भौगोलिक शब्द 'हिन्दू' बेहद जटिल विषय है। इसके संदर्भ में केवल वर्तमान संवैधानिक प्रावधान का अर्थ हम यहां लेंगे। संविधान निर्माण के समय डॉ. अम्बेडकर अव्यवस्थित हिन्दू समाज को धर्म से अलग रखकर संवैधानिक प्रक्रिया के अनुसार 'हिन्दू कोड बिल' के द्वारा सुधारना चाहते थे। भारत में, 'व्यक्तिगत कानून' विवाह और तलाक, रखरखाव, संरक्षता और उत्तराधिकार, संयुक्त परिवार और विभाजन आदि से संबंधित था। जिसे अमल में लाकर परिवार की असमान व्यवस्था को समान कानून के द्वारा सही करना था। ''हिन्दू कोड बिल 1950 के दशक में पारित किए गये कई कानून थे जिनका उद्देश्य भारत में 'हिन्दू पर्सनल लॉ' को संहिताबद्ध और सुधारना था। एक सामान्य कानून कोड के पक्ष में धार्मिक कानून को समाप्त करना था।''[1] फैमिली लॉ में हिन्दू कौन हैं–''यदि कोई व्यक्ति हिन्दू परिवार में पैदा होता है, तो वह हिन्दू है। जब किसी बच्चे के माता–पिता में से एक हिन्दू है और उसका पालन–पोषण हिन्दू परिवार के सदस्य के रूप में है, तो वह हिन्दू है। यदि एक बच्चा एक हिन्दू माँ और एक मुस्लिम पिता से पैदा होता है और उसे एक हिन्दू के रूप में पाला जाता है तो उस हिन्दू माना जाता है।''[2]

भारत में मुसलमानों की क्या स्थिति रही है 'पर्सनल कानून के मसले पर, इस्लाम ने अपनी पृथकता बरकरार रखने के लिए 1937 में, भारत में मुस्लिम पर्सनल लॉ एप्लिकेशन एक्ट पास किया था। इस कानून को लागू करने के पीछे का मकसद था। एक इस्लामिक कानून को भारतीय मुस्लिमों के लिए तैयार करना। उसके बाद मुसलमानों के पर्सनल मुद्दों जैसे शादी, तलाक विरासत और अन्य पारिवारिक मसलों पर इसी एक्ट के तहत फैसले होते थे। उसके बाद जब भारत सरकार समान सिविल संहिता के जरिए भारतीय मुसलमानों पर लागू होने वाले 'शरिया कानून' को खत्म करने की कोशिश कर रही थी। इसी दौरान दत्तक ग्रहण विधेयक (Adoption Bill) संसद में पास किया था। तो इसी वजह से 'All India Muslim personal law' की स्थापना 8 अप्रैल, 1973 को की गई। इसका काम है– व्यक्तिगत मुस्लिम कानूनों की रक्षा करना, भारत सरकार के साथ संबंध स्थापित कर उन्हें प्रभावित करना

* *शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर*

और महत्वपूर्ण मुद्दों पर मुसलमानों का मार्गदर्शन करना। इस बोर्ड के पास 51 उलेमाओं की एक कार्यसमिति से जो विभिन्न स्कूलों का प्रतिनिधित्व करती है।

'मुस्लिम पर्सनल लॉ' के बारें में लिखा मिलता है– इस्लाम में मुसलमानों के लिए कुछ नियम बनाये गये हैं– इनमें से मुख्यतः शादी, तलाक, विरासत, जायदाद में हिस्सा, लड़ाईयों की जमीन जायदाद में हिस्से वगैरह के लिए भी नियम हैं जो 'मुस्लिम पर्सनल लॉ के अन्तर्गत आते हैं। ये इस्लामिक शरिया के हिसाब से होते हैं।''[3] शरिया कानून के तहत इस्लाम में 4 शादियाँ वैध हैं। लेकिन नवीन जीवन मूल्य और आधुनिक शिक्षा पद्धति ने इस तरह के विवाहों का समाज में हेय और अवैध घोषित किया है। क्योंकि लोकतांत्रिक भारतीय समाज में बहु–विवाह पद्धति का ह्रास हुआ है। मनुष्य जाति के लिए विवाह एक समुचित पारिवारिक संस्था है। 'मातृसत्ता' में पिता का अस्तित्व नहीं था। उसके बाद पितृसत्ता का आगमन हुआ। बाद में दोनों के अस्तित्व को स्वीकार करके विवाह संस्था का आगमन हुआ। भारत में विवाह सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक संस्थाओं में से एक है जो एक परिवार को बाँधती है। भारत में किसी भी अधिनियम या संहिता के लागू होने से पहले, विवाह आमतौर पर सामाजिक परम्पराओं, रीति–रिवाजों द्वारा शासित होते थे जो उस विशेष समुदाय या जनजाति में प्राचीन काल से प्रचलित रहे हैं। यह लेख विशेष रूप से हिन्दूओं और मुसलमानों के विवाह, तलाक और नवीन वैवाहिक स्थितियों पर केन्द्रित है–

निर्योता

(क) हिन्दूओं के मामले में विवाह 'हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955' द्वारा शासित होते है। जिसे भारत में संचालित मिताक्षरा और दायभाग स्कूल्स द्वारा दी गई शिक्षाओं का परिणाम कहा जाता है।

(ख) मुसलमानों के मामले में विवाह 'मुस्लिम पर्सनल लॉ' (शरीयत) आवेदन अधिनियम, 1937 के अनुसार सम्पन्न होते हैं जो विवाह, तलाक, उत्तराधिकार के कानून से संबंधित है। मुसलमान 'कुरान' को सबसे महत्वपूर्ण स्रोत मानते हैं। क्योंकि इसमें पैगम्बर मोहम्मद के शब्द और कार्य शामिल है। शरीयता कानून मुस्लिम कानून के विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई व्याख्याओं का परिणाम है।

हिन्दू और मुस्लिम विवाह में अन्तर–

1. हिन्दू विधि में बहुविवाह की अनुमति नहीं है जबकि मुस्लिम विवाह में बहुविवाह की अनुमति है।

2. हिन्दू विधि में न्यूनतम आयु पुरुष के लिए 21 वर्ष और लड़की के लिए 18 वर्ष है। इस्लाम में न्यूनतम आयु 15 वर्ष या यौवन तक है।

3. हिन्दू विवाह को शादी एक संस्कार के रूप में परिभाषित हैं जबकि इस्लाम में शादी एक अनुबंध है।

4. गैर–मुस्लिम से शादी (केवल एक किताबिया के साथ। यहूदी, पारसी, ईसाई) से संभव है। इस्लाम में गैर–मुस्लिम से मुसलमान लड़के और लड़की इसका अतिक्रम कर नवीन वैवाहिक मूल्यों को अपना रहे हैं।

5. कोई दहेज या मेहर की आवश्यकता हिन्दू विवाह में जरूरी नहीं है। मुस्लिम विवाह में 'मेहर' अनिवार्य है।

मुस्लिम कानून के तहत तलाक और गुजारा भत्ता 'विवाह विघटन अधिनियम, 1939 और 'डेनियल लतीफी और एन. आर. बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (2001) तथा 'शाहबानो केस' के भरण–पोषण की अनुमति प्राप्त है। इसके अलावा पैगम्बर मोहम्मद के वसूलों पर चलने वाले तीन तलाक पर अमल करते थे। जो केवल पुरुषों पर वाजिब होता था। किन्तु 'मुस्लिम पर्सनल लॉ' ने विशेष परिस्थितियों में मुस्लिम महिलाओं के लिए भी प्रावधान किया है।

हिन्दूओं में तलाक के मामलों को उलझा दिया गया है। क्योंकि 'हिन्दू विवाह' ब्रह्मविवाह' है। इसके बारे में कहा गया है– ''हिन्दू के मामलों में विवाह को अघुलनशील (इंडिजोल्यूशन) संघ माना जाता था जिसे मनु के साथ–साथ विभिन्न ऋषियों और हिन्दू ग्रंथो के व्याख्याकारों द्वारा व्यक्त किया गया था और कहा था कि ''एक हिन्दू कानून तलाक पर विचार नहीं करता है'' और इस प्रकार प्राचीन हिन्दू कानून में तलाक की मान्यता नहीं दी गई थी। उन्होंने कहा कि एक बार शादी कर लेने के बाद जीवन की सात पीढ़ियों तक जारी रहना चाहिए। यह हिन्दू विवाह 'अधिनियम, 1955' के बाद का था जिसने 'तलाक' को विवाह के विघटन के आधार के रूप में मान्यता दी थी।''[4] आज आधुनिक विचार पद्धति और लोकतांत्रिक मानवीय कदाचित् उचित नहीं है। इससे विवाह संस्था कमजोर और परिवार कलह के भागी होंगे इसीलिए विवाह कर सरल करना चाहिए। इस सन्दर्भ में दलित मुक्ति की न्याक्तिक कानून के विशेष डॉ. धर्मवीर इसका विश्लेषण कर इसकी खामियों को उजागर करते हैं– ''हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 ने तलाक को निरर्थक कर रखा है। यह भी एक विशेष बात है कि हिन्दू विवाह अधिनियम

के आधिकारिक हिन्दी अनुवाद में 'डाइपोर्स' को तलाक न लिखा कर 'संबंध–विच्छेद' गया है; ताकि वह पत्नी पुनर्विवाह न कर सके। वास्तव में, हिन्दू पति नहीं चाहता कि उसकी रखी हुई औरत को तलाक के बाद कोई और रख सके। इसलिए हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 में उसने अपनी पत्नी को पुनर्विवाह से रोकने के लिए भरण–पोषण के लुभावने और मोहक प्रलोभन दे रखे हैं।''[5] जबकि मुस्लिम विवाह में ऐसा नहीं है। वह विवाह एक कांट्रैक्ट (अनुबंध) होता है। जहाँ आपसी सहमति और शरीयत के मुताबिक 'तलाक' हो जाता है। हिन्दू विवाह विधि में समस्या यह है कि हिन्दू समाज, कई अन्य समाजों से बना एक समूह है जिसमें उन लोगों की अलग–अलग परम्परा और मूल्य मान्यताएँ हैं। इसलिए हिन्दू विधि जटिल हो गया है। क्योंकि ब्राह्मण अपने वेद–पुराण के हवाले से इसे 'ब्रह्म विवाह' घोषित कर रखा है, जो सात जन्मों तक टूट नहीं सकता। ऐसे दकियानूसी वैवाहिक पद्धति से दलित और आदिवासी समाज आजाद होना चाहता है। इस ओर उनका ध्यान की गया है।[6]

निष्कर्ष : कहा जाता है, जैसे समाज होता है वैसे ही उनके कानून और व्यवस्था होती है। इस अर्थ हिन्दू और मुसलमान अपनी समाज व्यवस्था में अलग है। इनमें प्राचीनता की है; और नवीन वैवाहिक मूल्य भी हैं। यूरोप की तरह भारत में भी 'समलैंगिक विवाह', अंतर्राजातीय विवाह, थर्ड जेंडर के लिए विवाह की माँग उठी समलैंगिक को छोड़कर अन्य विवाहों को मान्यता भी मिल गयी है। ऐसे में देखा जाए तो हिन्दू और मुस्लिम के 'पर्सनल लॉ' की बंदिसें ढ़ीली पड़ रही हैं। किन्तु जायदाद और संतान की विरासत के मामले उलझते हैं। अभी आने वाले समय में उक्त दोनों कौमों के वैवाहिक कानून में बदलाव होंगे, ऐसी संभावना है।

सन्दर्भ–सूची

1. Wikipedia.org.com
2. Ibide
3. Ibide
4. www.dw.com
5. Nindi/peaders.in
6. दूसरों की जूतियाँ, डॉ. धर्मवीर भारती, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2007, पृ. 155

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLI, June 2024, Page : 28-31

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में नारी चित्रण : एक दृष्टि

*डॉ. अखिलेन्द्र प्रताप सिंह** *डॉ. आभालता चौधरी***

शोध सारांश : *आज का युग विषमता और समस्याओं का युग है। व्यक्ति को प्रतिदिन हज़ारों समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जीवन में व्यक्ति हर पल परिस्थितियों के साथ संघर्ष करता ही रहता है, संघर्ष का दूसरा नाम जीवन है। समस्या से संघर्ष करता हुआ ही व्यक्ति अपने मंजिल तक पहुँचता है। समस्या एक प्रक्रिया है। जीवन की विविध समस्याओं का चित्रण और उसका हल आज के उपन्यासकारों का प्रधान उद्देश्य रहा है। लेकिन पुरुष प्रधान समाज में स्त्री का शोषण सबसे बड़ी समस्या बन गयी है। स्त्री–जीवन और उसके शोषण को आज के बहुत से साहित्यकारों ने अपना विषय–वस्तु बनाकर कहानी, उपन्यास लिखे हैं। हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के साहित्यकार स्त्री को केन्द्रीय विषय बनाकर उसके अंतर्मन में झाँकने का प्रयास किया है। लेखकों ने अपने–अपने दृष्टिकोण से स्त्री को देखा है, लेकिन लेखिकाओं ने अपने नजरिये से। इन्होंने स्त्री के मन की गहराई में जाकर स्त्री समस्याओं के प्रति पुरानी जड़ता को छोड़कर एक नई दृष्टि से स्त्री को देखने की कोशिश की है। प्रस्तुत लेख में कृष्णा सोबती के उपन्यासों में उठायी गयी प्रमुख स्त्री–समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है।*

प्रमुख शब्द– *नारी–शोषण एवं शिक्षा की समस्या, प्रेम और विवाह सम्बन्धी समस्या, पुरुष वर्चस्व एवं आर्थिक समस्या, स्त्री–जीवन आदि।*

कृष्णा सोबती स्वयं नारी हैं, इसलिए नारी के अन्तर्मन की सभी समस्याओं पर बहुत गहराई से और बारीकी से अपनी लेखनी चलाई है। राजेन्द्र यादव इसके बारे में लिखते हैं–''पुरुष कथाकारों की तरह अपनी स्थिति और नियति के प्रति सामाजिक–मानसिक रूप से, प्रबुद्ध इधर की कथा लेखिकाओं के आने से पहले हिन्दी कथा–साहित्य प्रायः हवाई प्रियदर्शिनी और प्रदर्शनी नारियों से भरा रहा है। यह भी कहा जा सकता है कि सजीव व्यक्तित्व वाले स्त्री–पुरुष सम्बन्धों को वास्तविक तनाव, लगाव और उन्हें निर्धारित करने वाले दबाव पहली बार सामने आ रहे हैं। इस दिशा में कृष्णा सोबती, उशा प्रियंवदा, मन्नू भण्डारी, ममता कालिया, मृदुला गर्ग, निरूपमा सेवती, मालती जोशी के नाम लिए जा सकते हैं।''[1] संसार के बहुत सारे देशों में आज भी स्त्रियों की स्थिति ऐसी है कि वे घर से बाहर नहीं निकल सकती। असली चुनौती यही छिपी हुई है कि कैसे तमाम किस्म की सामाजिक बाधाओं को दूर कर स्त्रियों को विकास की प्रक्रिया में शामिल किया जा सके। आज महिलाओं की आवाज बढ़ रही है। उनकी आवाज़ को मजबूती प्रदान करने में महिला संगठनों, स्वयंसेवी संस्थाओं, बुद्धिजीवी तथा मीडिया का बहुत बड़ा हाथ रहा है। इसलिए आज पीड़ित स्त्री अपने को छिपाने की कोशिश नहीं करती, वह समस्याओं के सामने आकर खड़ी हो गयी है।

विशषकर साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने अपने साहित्य का विषय नारी को बनाया है, उसमें कृष्णा सोबती का नाम प्रथम पंक्ति में आता है। स्वातंत्र्योत्तर युग में स्त्री की धीरे–धीरे बदलती सोच, उनकी मानसिकता, सामाजिक तनाव, व्यक्ति स्वतंत्रता की माँग, मुक्ति के लिए संघर्ष, तमाम समस्याओं को सुलझाने का प्रयास कृष्णा सोबती ने अपने उपन्यासों में किया है।

भारतीय संस्कृति में स्त्री को देवी के रूप में पूजा की जाती है। वह किसी की बेटी है, किसी की पत्नी तो किसी की माँ, सास–बहू इस तरह स्त्री अपने–अपने जीवन भर बहुत सारे रिश्ते–नाते निभाती है। लेकिन इस हर

* *हिन्दी विभाग, महाराजा बिजली पासी राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, आशियाना, लखनऊ*

** *हिन्दी विभाग, महाराजा बिजली पासी राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, आशियाना, लखनऊ*

रिश्ते के नाम पर उसका शोषण आज भी चल रहा है। वेदों में स्त्री को देवी कहते हैं। वही उसका शोषण हमारे समाज की एक बड़ी समस्या है। स्त्री केवल घर की चहारदीवारी के बीच की कठपुतली मानी जाती है। उसे केवल बच्चे पैदा करने वाली मशीन मानते हैं। अधिकारों से वंचित स्त्री के जीवन में सदा कर्त्तव्य आये हैं। कृष्णा सोबती इस स्त्री शोषण की समस्या को अपने उपन्यासों में चित्रित की हैं। 'डार से बिछुड़ी' उपन्यास की 'पाशो' का शारीरिक, मानसिक और वैचारिक शोषण हुआ है। पाशो मामा–मामी के पास रहकर भी शोषण का शिकार बनी हुई है। पाशो का दीवान जी द्वारा शोषण होता है, दीवान जी बूढ़े हैं वह उन्हें पिता के समान वयस्क मानती है। दीवान जी की मृत्यु के बाद उसका देवर उस पाशो का मान–सम्मान लूटकर, लालाजी के हाथ बेच देता है। पाशो का जीवन भर हर जगह शोषण होता है।

सोबती जी की मित्रो भी एक प्रकार से शोषण से मुक्त नहीं है। मित्रो की माँ बालो का भी शोषण होता है। समाज उसे वेश्या बनाता है, उसकी इज्जत लूटी जाती है। 'सूरजमुखी अँधेरे के' उपन्यास की रत्ती भी शोषण से नहीं बचती। रत्ती का हर समय मानसिक शोषण होता है। लोग उसे बलात्कार की याद दिलाते हैं, तभी वह सोचती gS^^bl QVh d ksscs Vk d gq l sv k xk**[2] इस प्रकार रत्ती की मानसिकता पर लोग हमेशा प्रहार करते हैं, ठंडी लड़की, जहरीली लड़की आदि कहते हैं। 'यारों के यार' की तमाशा और तमन्ना ये दोनों शोषित स्त्रियाँ हैं। 'दिलो दानिश' की महकबन्नो को भी एक प्रकार वकील साहब शारीरिक एवं मानसिक शोषण करते हैं, फिर भी वह कहती है कि, ''दुनिया में दो ही नेमतें हैं साहिब, बेटा और बेटी। आपने हमें दोनों दिए।''[3] 'ज़िन्दगीनामा' की 'राबिया', 'लखमी' आदि स्त्रियाँ शोषण से मुक्त नहीं हैं। लोग किसी न किसी बहाने उनका मान–सम्मान लूटते हैं। आज के दिन नारी को नौकरी के नाम पर... तमाशा और तमन्ना इसका सजीव उदाहरण हैं। लोग स्त्री को चीज़ या वस्तु कहकर बुलाते हैं। इस स्त्री शोषण का प्रमुख कारण यह भी है कि भारतीय स्त्रियों की परम्परागत सोच हमेशा अपने आपको दुर्बल, असहाय, शरणार्थी के रूप में स्वयं को प्रस्तुत करती है। इस दुर्बलता का फायदा पुरुष वर्ग उठाते हैं। कृष्णा जी की पाशो, रत्ती, मित्रो, बालो, राबिया, लखमी, महकबन्नो, तमाशा और तमन्ना आदि स्त्रियाँ एक–न–एक प्रकार के शोषण का शिकार बनी हुई हैं। अंततः स्त्री चाहे घर में रहे या घर के बाहर निकलकर पुरुष के साथ रहे, शोषण का शिकार उसे हमेशा होना ही पड़ता है। पुरुष प्रधान समाज में स्त्री शोषण एक बड़ी समस्या है।

सोबती जी की बहुत सारी स्त्रियाँ पढ़ी–लिखी नहीं हैं। ज्यादातर ग्रामीण जिन्दगी से जुड़ी हैं। शिक्षा पाना उनके लिए कठिन काम है। इस शिक्षा के अभाव से ही वे जीवन में दर–दर भटकती रहती हैं। अज्ञान के कारण अनेक प्रकार की पीड़ा सहन करती है। 'डार से बिछुड़ी' की पाशो अशिक्षित होने के कारण घर बाहर ठगी जाती है, उसे फंसाया जाता है और खुद को हमेशा समर्पित कर देती है। बरकत का बेचना, मंझले का शोषण करना आदि को चुपचाप सह लेती है। अगर वह शिक्षित रहती तो उसे किसी के हाथ बेचे जाने की नौबत न आती।

'मित्रो' भी अशिक्षित नारी है, उसमें शिक्षा का अभाव है। अपने पति को छोड़कर किसी के द्वार जाना कितनी बेशर्मी की बात कहलाती है। वह शिक्षित होती तो शायद ऐसा न कर पाती, अपने शारीरिक अतृप्ति की माँग सबके सामने न कर पाती। शिक्षा के अभाव के कारण बालो उसे फँसाना चाहती है। जिन्दगीनामा की सभी स्त्रियाँ अनपढ़ हैं। जैसे–शाहनी, महरी चाची, फतेह, करतारो, भोली, गोमा आदि। इस शिक्षा के अभाव के कारण ही फांसी जाती हैं, साधू गोसाई जैसे लोग इन स्त्रियों से चांदी के कठोरों की माँग करते हैं। ज़िन्दगीनामा की स्त्रियाँ भूत, पिशाच, सपनों में विश्वास रखना, तंत्र–मंत्र आदि शिक्षा के अभाव के कारण ही है। शिक्षा–दीक्षा के नाम पर शून्य धारण करने वाली ये स्त्रियाँ घर की सीमाओं में ही जीवन की पूर्णता मान बैठी हैं।

वकील साहब की पत्नी कुटुम्ब प्यारी भी शिक्षा के अभाव के कारण ठगी जाती है। वकील साहब को रास्ते पर लाने के लिए भैरा बाबा के पास जाना और तंत्र–मंत्र करवाना अंत में कुटुम्ब प्यारी का स्वयं फँस जाना शिक्षा के अभाव के कारण ही सम्भव है। इस प्रकार शिक्षा व्यक्ति को अंधेरे से प्रकाश की ओर लाती है। शिक्षा के अभाव के कारण व्यक्ति अंधेरे में ही फँसा हुआ रहता है।

प्रेम को लोगों ने विभिन्न प्रकारों से परिभाषित किया है। कुछ लोग इसे आदर्श मानते हैं, कोई इसे हेय। लेकिन आज के संदर्भ में शिक्षा के कारण स्त्री–पुरुष का रहन–सहन, आचार–विचार में बहुत परिवर्तन आया है। स्त्री–पुरुष एक दूसरे के निकट आ गये हैं। आज प्रेम एक सहज प्रक्रिया बन गयी है। ज़िन्दगीनामा उपन्यास का एक उदाहरण द्रष्टव्य है– ''राबयाँ ने कुँवारी चितवन शाहनी की ओर ताका, फिर ओढ़नी ढ़ंग से ओढ़कर बुल्लेशाह की काफी छू ली और गाने लगी– 'मैं सूरज अगन जलाऊँगी, मैं प्यारा यार मनाऊँगी।''[4]

कृष्णा सोबती ने अपने उपन्यासों में ऐसी अनेक स्त्रियों का चित्रण किया है, जिन्हें प्रेम में सफलता नहीं मिली। 'तिनपहाड़' की जया अपने बचपन के प्रेम से वंचित रह गयी है। वह प्यार करती उसके साथ जिससे विवाह करना चाहती है लेकिन वह नहीं हो सका। आगे चलकर तपन से भी प्यार करती है लेकिन वह दूसरों के प्यार में फँसा हुआ रहता। वह प्रेम में असफल होकर अन्त में आत्महत्या कर लेती है। 'दिलो–दानिश' की महकबन्नो वकील साहब से प्रेम करती है और दो बच्चे भी पैदा हो जाते हैं। लेकिन जीवन के अंत तक वकील साहब महक का साथ नहीं निभाते उसके प्रेम में स्वार्थता दिखायी पड़ती है। अंत में महकबन्नो वकील साहब को छोड़कर अनवर खाँ के साथ नई जिन्दगी की राह में निकल पड़ती है। मित्रो मरजानी उपन्यास की 'मित्रो' अपने बारे में बताती हुई कहती है कि– ''जिठानी, देवर तुम्हारा मेरा रोग नहीं पहचानता। ...बहुत हुआ हफ्ते–पखवारे कृ और मेरी इस देह में इतनी प्यास है, इतनी प्यास कि मछली–सी तड़पती हूँ!''[5]

'सूरजमुखी अंधेरे में' उपन्यास की रत्ती भी अनेक पुरुषों के संग प्रेम करती है लेकिन बचपन की मानसिकता के कारण किसी से प्रेम स्थापित नहीं कर पाती। किसी को वे समर्पित नहीं करती, अंत में दिवाकर को तन–मन सौंप देती है। ज़िन्दगीनामा की लखमी सैय्यद से प्रेम करती है, लेकिन सामाजिक विरोध और जात–पात का विरोध उसे सफल नहीं होने देता। लखमी को लोग–जहान समझ नहीं सकते। वह स्वयं को संसार की बड़ी अभागिनी मानती है। जिन्दगी भर खुद की पीड़ा भोगती है। 'डार से बिछुड़ी' की पाशो भी करिमू से प्यार करती है, लेकिन उन्हें मारने की योजना बनाने से वह घर छोड़कर भाग जाती है। उसे कहीं पर भी सुख नहीं मिलता जीवन भर यहाँ से वहाँ भटकती रहती है।

विवाह स्त्री के लिए एक अनिवार्य प्रक्रिया है। स्त्री का मान–सम्मान विवाह द्वारा ही बढ़ता है। वह किसी की पत्नी, माँ, दादी, नानी आदि रूपों में अपनी औलाद अर्थात् पीढ़ी को आगे बढ़ाती है। संसार का बोझ उसके कंधों पर आ जाता है। लेकिन आज की पढ़ी–लिखी नारी इससे बच के रहना चाहती है क्योंकि पति, बच्चे, संसार आदि की जंजाल में पड़ना नहीं चाहती, वह अकेली स्वतंत्र रूप से जीना चाहती है। इसका चित्रण मिलता है कृष्णा सोबती के उपन्यास 'ऐ लड़की' में, इस उपन्यास की अम्मू अपनी बेटी सूसन को सलाह देते हुए कहती है कि–''शादी के बाद औरत पूरे परिवार के लिए शिकारे की माँझी बन जाती है। ...उसका वक़्त तब सुधरेगा जब वह अपनी जीविका आप कमाने लगेगी।''[6]

आज विवाह स्त्री के लिए कोई जरूरत नहीं है। वह अविवाहित रहना चाहती है और वह किसी पर निर्भर या कोई इस पर निर्भर रहना पसंद नहीं करती। वह समाज में सम्मान चाहती है। प्रेम और विवाह सम्बन्धित जो मान्यताएँ थीं आज के संदर्भ में कमजोर होती जा रही हैं। आज की शिक्षा प्रणाली से बदलती हुई मान्यताएँ स्त्री को स्वतंत्रता का अहसास कराने लगी हैं।

समाज में कोई व्यक्ति जब आर्थिक स्वतंत्रता को प्राप्त कर लेता है, तब वह चैन से जीता है। स्त्री हो या पुरुष दोनों के जीवन में आर्थिक समस्या ही बाकी सभी समस्याओं का मूल कारण बन जाती हैं। इन आर्थिक समस्याओं को कृष्णा सोबती ने अपने कई उपन्यासों में चित्रित किया है। 'यारों के यार' की तमाशा इस समस्या से जुड़ी हुई है और तमन्ना की जिन्दगी भी आर्थिक अभाव के कारण नारकीय हो गई है। वे पैसों के कारण अपने आपको बेच देती हैं। उन्हें एक वस्तु समझकर उसके शरीर का सौदा होने लगता है। उदाहरण द्रष्टव्य है– ''तमन्ना डियर, मुबारिकबाद! इस बार अपने रिस्क पर बम्बई का इंडस्ट्रियलिस्ट दे रहा हूँ, चलेगा?''[7] 'मित्रो मरजानी' की मित्रो की माँ बालो पैसों के कारण खुद अपनी जिन्दगी नरक में डालती है, वह स्वयं वेश्या बन जाती है। साथ अपनी बेटी को वेश्या बनाने निकलती है। 'दिलो दानिश' में महक की माँ पैसों के लिए वेश्यावृत्ति चुनती है और महकबन्नो इसी कारण वकील साहब को अपने वश में कर लेती है। 'जिन्दगीनामा' की करतारो, राबिया, लखमी और बहुत सी स्त्रियाँ आर्थिक समस्या से जूझती हुई शाहनी के पास कर्जा लेने जाती है और उनके रसोई में काम करती है। आज के समाज में स्त्रियाँ अपनी आर्थिक मजबूरी के वश में आकर वेश्या, कालगर्ल, रखैल आदि बन जाती हैं। प्रभा खेतान के शब्दों में–''सैकेण्ड सेक्स में ठीक ही लिखा है कि औरत की पहली लड़ाई अर्थ दुनिया से शुरू होती है। मैंने जी जीवन जीते हुए यही सीखा कि पैसे कमाने से स्त्री निर्णय लेना चाहती है और निर्णय की क्षमता उसके संघर्ष को मजबूत करती है। आर्थिक परतंत्रता नारी विकास में बड़ी बाधा है। आर्थिक मजबूती ही स्त्री स्वतंत्रता में सहायक सिद्ध होती है।''[8] कहा जा सकता है कि आर्थिक परतंत्रता स्त्री की समस्त समस्याओं का समाधान कर देगी लेकिन इसमें भी संदेह नहीं कि आर्थिक आत्मनिर्भरता ही नारी को वह धरातल दे सकती है जिस पर मजबूती से खड़े होकर स्त्री अपनी मुक्ति की लड़ाई लड़ सकती है। अपने संघर्ष को मजबूत बना सकती है।

आधुनिक युग में स्त्रियाँ पढ़–लिखकर हर एक क्षेत्र में आगे बढ़ने लगी हैं। स्त्री पुरुषों के साथ कदम–से–कदम मिलाकर चल रही है। आज ऐसा कोई क्षेत्र नहीं बचा जिसमें स्त्रियाँ न हों। लेकिन यह दुर्भाग्य की बात है कि भारतीय परम्परावादी पुरुषों की सोच स्त्रियों को एक हद तक सीमित करने में सफल हो गयी है। पुरुष हमेशा नारी पर शोषण, अत्याचार करते रहे हैं। समाज में कोई स्थान–मान न देने के कारण अंदर ही अंदर स्त्री मौन बन गई है।

कृष्णा सोबती ने इस पुरुष वर्चस्व का चित्रण अपने उपन्यासों में किया है। 'दिलो दानिश' उपन्यास में वकील साहब... पत्नी है, फिर भी महक को अपनी रखैल बना लेते हैं। उस कारण पति–पत्नी के बीच में झगड़ा होता रहता है। पत्नी के पूछने पर वकील साहब पत्नी को चुप करा देते हैं–''देखिए, मर्द ने अपना दर्जा खुद नहीं बना रखा। उसे कोसते रहने से आपको कुछ हासिल न होगा।''[9] यहाँ पर वकील साहब स्वयं गलत काम करते हैं और पत्नी को पुरुष वर्चस्व के कारण चुप करा देते हैं। यहाँ कुटुम्बप्यारी को कोई अधिकार नहीं देते।

कृष्णा सोबती पुरुषों के सोच के बारे में कहती हैं कि आज भी स्वतंत्र और स्वावलम्बी, स्वाभिमानी स्त्रियों को पुरुष शंकालु नज़र से देखता है। पुरुष वर्चस्वता के कारण आज भी स्त्री को मानवी होने का अधिकार नहीं दिया है। अधिकांश पुरुष इस मानसिकता से उभरना नहीं चाहते, क्योंकि वे चाहते हैं कि समाज की बागडोर स्त्रियों के हाथ में न आये।

संदर्भ–सूची

1. डॉ. राजेन्द्र यादव, हंस, दिसम्बर, 1996, पृ. 79
2. कृष्णा सोबती, सूरजमुखी अँधेरे के, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2008, पृ. 97
3. कृष्णा सोबती, दिलो दानिश, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय आवृत्ति 2013, पृ. 14
4. कृष्णा सोबती, ज़िन्दगीनामा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दसवाँ संस्करण 2018, पृ. 114
5. कृष्णा सोबती, मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दसवाँ संस्करण 2018, पृ. 20
6. कृष्णा सोबती, ऐ लड़की, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, छठा संस्करण 2018, पृ. 55–56
7. कृष्णा सोबती, यारों के यार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2016, पृ. 41
8. प्रभा खेतान, साक्षात्कार, पृ. 25
9. कृष्णा सोबती, दिलो दानिश, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय आवत्ति 2013, पृ. 41

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Sanskrit : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 32-35

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

वेदों में प्राकृतिक चिकित्सा

*डॉ. जेबा खान**

वेद ज्ञान के अक्ष्य भण्डार हैं। अपने प्रातिभ चक्षु के सहारे साक्षात्कृत कवियों के द्वारा अनुभूत अध्यात्म शास्त्र के तत्वों की विशाल विमल शब्दराशि का ही नाम वेद है। लौकिक वस्तुओं के साक्षात्कार के लिए जिस प्रकार नेत्र की उपादेयता है, उसी प्रकार अलौकिक तत्वों के रहस्य को जानने के लिए वेद की उपादेयता है। वेद मानव के हित की विधाओं तथा विज्ञानों का भण्डार है। वैदिक संहिताओं में मानव को स्वस्थ तथा निरोग रहने की बार–बार प्रेरणा दी गई है।

वेदों में मनुष्य के लिए दीर्घायु की कल्पना की गई है– 'आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पतां श्रोत्रं याज्ञेन कल्पतां'[1] आदि मन्त्रों में मनुष्य के दीर्घायु हाने तथा स्वजीवन को (यज्ञ) लोकहित में लगाने की बात कही गई है। यह तभी सम्भव है जब उसके चक्षु तथा श्रोत्र आदि इन्द्रियां और पंच प्राण पूर्ण स्वस्थ एवं बलयुक्त रहें। वेदों में ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों को बलिष्ठ, स्वस्थ तथा यशस्वी बनाने के लिए कहा गया है। 'प्राणश्च मे अपानश्च मे व्यानश्च मे असुश्च मे चित्तं च मआधीतम् च मे वाक् च मे मनश्च मे चक्षुश्च मे श्रोत्रं च।'[2] मन्त्र में प्राण, अपान तथा व्यान आदि को स्वस्थ रखने के साथ–साथ वाक्, मन, नेत्र तथा श्रोत्र आदि को भी बलयुक्त रखने की बात कही गई है।

मानव–स्वास्थ्य के लिए उपयोगी शरीर विज्ञान तथा स्वास्थ्य रक्षा का विशद् निरूपण इस वाङ्मय में उपलब्ध है। आरोग्य लाभ के विविध साधनों तथा उपायों की चर्चा भी वेदों में आयी है। 'यो जागार तमृचः कामयन्ते'[3] ऋग्वेद की इस ऋचा में स्पष्ट कहा गया है कि जो जागता है, जल्दी उठकर प्रभु का स्मरण करता है, ऋचाएँ उसकी कामना पूर्ण करती हैं। जल्दी उठकर वायु सेवन के लिए भ्रमण करना चाहिए। इस सम्बन्ध में वेद का कहना है कि पर्वतों की उपत्यकाओं में तथा नदियों के संगम स्थल पर प्रकृति की छटा अवर्णनीय होती है। यहाँ विचरण करने वाले अपनी बुद्धियों का विकास करते हैं–

''उपह्वरे गिरीणां संगथे च नदीनाम्।
धिया विप्रो अजायत।।''[4]

शरीर को स्वस्थ और निरोग रखने के लिए शुद्ध, पुष्टिदायक, रोगनाशक अन्न तथा जल का सेवन आवश्यक है। जल के विषय में वेद कहता है–'आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे।'[5]

कहने का भाव यह हैं कि जल हमें सुख प्रदान करने वाला तथा ऊर्जा प्रदान करने वाला है। अथर्ववेद के मन्त्र में गायों को सम्बोधित कर कहा गया है कि आप कष्श तथा दुर्बल व्यक्ति को पुष्ट तथा स्वस्थ बना देती हैं। शरीर की सौन्दर्य वृद्धि का कारण आपका दुग्ध ही है।

शरीर को रोगमुक्त करने हेतु प्राकृतिक चिकित्सा की महनीय उपादेयता है। प्रकृति के समस्त तत्व पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र किसी न किसी रुप में मनुष्य का कल्याण करते हैं। वेदों में सूर्य की किरणों से चिकित्सा का विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है। सूर्य को इस चराचर जगत् की आत्मा कहा गया है–'सूर्य आत्मा जगतस्तस्युषश्च।'[6] वेदों में उदय होता हुआ सूर्य मृत्यु के सभी कारणों को नष्ट करता है। उदय होते हुए सूर्य से अवरक्त किरणें निकलती हैं। इन लाल किरणों में जीवनी शक्ति होती है और रोगों को नष्ट करने की क्षमता

* *असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, फखरुद्दीन अली अहमद राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महमूदाबाद, सीतापुर*

होती है। इसलिए ऋग्वेद में कहा गया है कि उदय होता हुआ सूर्य हृदय के सभी रोगों को पीलिया और रक्ताल्पता को दूर करता है–

'उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्
हृदरोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशये।'[7]

प्रातः काल सूर्याभिमुख बैठकर संध्या करने का यही रहस्य है कि अवरक्त किरणों के प्रभाव से व्यक्ति सर्वदा निरोग रहे। सूर्य सात किरणों से सात प्रकार की ऊर्जा प्राप्त होती है। सूर्य किरण चिकित्सा के अनेक नाम प्रचलित हैं–सूर्य–चिकित्सा, सूर्य–किरण–चिकित्सा, रंग–चिकित्सा।

प्राणों की सत्ता से ही जीवन की गतिविधियाँ है। यह शरीर संचालित होता है। यदि प्राण शक्ति का संरक्षण, पोषण संवर्धन किया जाए तो शरीर को व्याधियों से मुक्त किया जा सकता है। प्राकृतिक चिकित्सा में प्राणायाम–चिकित्सा को विशेष महत्व दिया जाता है। प्राणायाम का अभिप्राय है प्राणों की शक्ति का विस्तार। प्राणों का सम्बन्ध वायु से है। प्राण शक्ति श्वास के द्वारा वायु से आक्सीजन ग्रहण करती है और फेफडों में पहुँचकर समस्त कोशिकाओं को शुद्ध वायु के द्वारा पुष्ट करती है। अपान वायु का कार्य है–शरीर के अन्दर व्याप्त दूषित तत्वों को मल–मूत्र के रूप में बाहर निकालना और शरीर को शुद्ध रखना। प्राण में ही सब–कुछ प्रतिष्ठित है।

अथर्ववेद का कथन है कि वर्तमान, भूत और भविष्य सभी कुछ प्राण पर ही निर्भर है। प्राण शक्ति की उत्कृष्टता उसे नीरोगता, शार्य और तेज देती है। अथर्ववेद का कथन है कि प्राण का सर्वोच्च रूप भेषज तत्व है, यह जीवनी शक्ति प्रदान करता है– 'अथो यद् भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे।'[8]

शुद्ध वायु का सेवन, घर में शुद्ध वायु का निर्बाध प्रवेश, शुद्ध वायु में श्वसन प्रक्रिया, अतिशुद्ध वाायु का सेवन दीर्घायुष्य का साधन है। वायु शरीर में औषधि का कार्य करता है और शरीर के दोषों को निकाल देता है।

प्राकृतिक चिकित्सा में अग्नि–चिकित्सा का भी महत्वपूर्ण स्थान है। अग्नि–चिकित्सा अनेक रूपों में होती है। शरीर के अंगों को अग्नि से सेंकना, अग्नि में रोगनाशक दवाओं को डालकर रोगों और कृमियों को नष्ट करना, वस्त्र, ईट, पत्थर आदि को गर्म करके रोग आदि से प्रभावित अंश को सेंकना आदि। वेद का कथन है कि अग्नि शीत की औषधि है–'अग्निर्हिमस्य भेषजं।'[9] विष चिकित्सा में अग्नि का प्रयोग किया जाता है। अग्नि में गुग्गल को जलाने से रोग नष्ट होते हैं। पेटदर्द, चोट आदि में गर्म कपड़े से सेंकना लाभप्रद होता है। शीत प्रधान देशों में अग्नि ही जीवन रक्षा का प्रमुख साधन है। अथर्ववेद में अग्नि को तेज, वर्चस्, ओजस्, दीर्घायु, बल और यश का कारण बताया गया है–

'इदं वर्चो अग्निना दत्तम्, आगन् भर्गो यशः सह ओजो वयो बलम्।'[10]

अग्नि की चिकित्सा का उत्तम साधन माना गया है। जल–चिकित्सा को ऋग्वेद और अथर्ववेद में अधिक महत्व दिया गया है। रुद्र जल–चिकित्सक हैं तो वरुण को वैद्यों का स्वामी कहा गया है। ऋग्वेद में कहा गया है कि जल में सभी औषधियों के गुण विद्यमान है। जल से सभी रोगों की चिकित्सा हो सकती है–

'अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।
आपश्च विश्वभेषजीः।'[11]

बहता हुआ जल शुद्ध और गुणकारी होता है। यह मनुष्य को शक्ति और गति देता है। कर्मठता के लिए जल और औषधियों का सेवन करें। वर्षा के जल को उत्कृष्ट एवं अमृतमय बताया गया है। इससे सभी रोग दूर होते है एवं दीर्घायु की प्राप्ति होती है।

जल रमणीयता और सौन्दर्यवर्धक है। 'जल मनुष्य को माता के तुल्य शान्ति और सुख देता है।'[12] जल में संजीवनी शक्ति होती है। जल रोगों को नष्ट करता है और शरीर को निरोग बनाता है। स्वच्छ जल जीवन का आधार है। जल–चिकित्सा को उग्र भेषज अर्थात् शीघ्र लाभकारी दवा कहा गया है।

प्राकृतिक चिकित्सा में मृत–चिकित्सा का भी महत्व है। वेदों में चिकित्सा के लिए मिट्टी के उपयोग का विधान है। मिट्टी का मलहम की तरह लेप किया जाता है और वह घाव को ठीक करती है। विष चिकित्सा के रूप में बांबी की मिट्टी का उपयोग बताया गया है–

'यद् वो देवा उपजीका... इदं दूषयता विषम्।'[13]

सुश्रुत का कथन है कि अन्य औषधियाँ न मिलें तो बांबी की काली मिट्टी का उपयोग करें। मल्य विद्या के विशेषज्ञ मिट्टी को शारीरिक पुष्टि का आधार मानते हैं।

मिट्टी को चिकित्सा के रूप में प्रयोग किया जाता है। उदर विकार और उदरशूल आदि में मिट्टी की लोई पेट पर बाँधी जाती है। रक्त प्रवाह बन्द करने के लिए मिट्टी का लेप किया जाता है।

वेदों में यज्ञ की भी चिकित्सा का एक प्रकार माना गया है। यज्ञ में चार प्रकार के द्रव्य आहुति के रूप में डाले जाते हैं ये है

1. सुगन्धित–केसर, कस्तूरी, चन्दन आदि।
2. पुष्टिकारक–घृत, दूध, फल, अन्न, गेहूँ, चावल आदि।
3. मिष्ट–शक्कर, छुहारा, किशमिश आदि।
4. रोगनाशक–गिलोय, गुग्गल, अपामार्ग आदि।

इनमें रोगनाशक औषधियाँ रोगों को नष्ट करने के लिए हैं। यज्ञ के द्वारा प्राकृतिक सन्तुलन बनाए रखा जा सकता है। यज्ञों के द्वारा पर्यावरण की सुरक्षा, वायुमण्डल की पवित्रता, विविध रोगों का नाश, शारीरिक एवं मानसिक उन्नति, रोग निराकरण के माध्यम से दीर्घायु की प्राप्ति होती है। यजुर्वेद का कथन है कि सृष्टि में ऋतुचक्ररूपी यज्ञ नियमित रूप से हो रहा है। अतः सृष्टि चक्र की व्यवस्था है इस महायज्ञ में वसन्त ऋतु घी है, ग्रीष्म ऋतु ईधन है और शरद् ऋतु हवि है– 'वसन्तोडस्यादाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद् हविः।'[14]

अथर्ववेद का कथन है कि जिस घर में नियमपूर्वक यज्ञ किया जाता है। वहाँ रोग कृमि स्वयं नष्ट हो जाते हैं।

मन सुख और दुख का कारण है यदि मन शुद्ध है। शुभ विचारों से अन्वित है तो मनुष्य रोग शोक आदि से पीड़ित नहीं होता है। यदि मन अशुद्ध है तो नाना प्रकार के रोग होते है। अथर्ववेद में मानस चिकित्सा का उल्लेख है कि वरुण देव ने मनोविज्ञान उपचार के द्वारा चिकित्सा की– 'त्वं मनसाचिकित्सीः।'[15]

मन असाध्य से असाध्य कार्य को साध्य बना देता है। मन मानव के हृदय में विद्यमान ज्योति है–

'यज्ज्योतिरनन्तरमृतं प्रजासु'।[16]

अथर्ववेद में आया है कि मन ही रोग आदि का कारण है और वही उसका निवारक भी हैं कुशल वैद्य आश्वासन–चिकित्सा के द्वारा रोगी का मनोबल बढ़ाते हैं और उनके रोग का निवारण करते है। संकल्प चिकित्सा भी मानस–चिकित्सा का एक प्रकार है। इसमें रोगी के मनोबल को जागृत किया जाता है। रोगी का दृढ़ आत्मविश्वास रोगाणुओं को नष्ट करता है और रोगी को स्वास्थ्य प्रदान करता है–

'यत् ते मनस्त्वयि तद् धारयामि।'[17]

अथर्ववेद में कहा गया है कि सत्य के द्वारा बृहस्पति ने रोगी को मृत्यु के पाश से बचाया है। मन की पवित्रता, सत्यशीलता एवं धार्मिकता सभी प्रकार के रोगों को नष्ट करने में समर्थ है।

मन्त्र चिकित्सा को ध्वनि–तरंग–चिकित्सा कहा गया है। मन्त्रों से जो ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। वे उस के रूप में ऊपर जाती है और सूर्य की सूक्ष्म शक्तियों को आत्मसात करके साधक के शरीर में प्रविष्ट होती हैं। इन शक्तियों के प्रभाव से शरीर के रोग दूर होते है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में मंत्र शक्ति का उल्लेख है। ऋग्वेद में कहा गया है कि मन्त्र तेजोमय हैं। ये रोगों और रोगकृमियों को नष्ट करते है। वेद मन्त्रों में इन्द्रादि देवों का निवास है–

'यस्मिन् इन्द्रों वरुणो मित्रोअर्यमाः देवा ओकांसि चक्रिरे।'[18]

गायत्री में अमष्त का बीज है। मन्त्र शक्ति से देवों ने असुरों को पराजित किया। अग्नि मंत्र शक्ति से रोग कृमियों को नष्ट करता है।

ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में हस्तस्पर्श से रोग निवारण की विधि दी गई है। शरीर में दो वायु है–प्राण और अपान। इनमें से प्राण वायु शरीर को शक्ति प्रदान करती है और अपान वायु शरीर के दोषों को बाहर निकालती है। रोग निवारणार्थ चिकित्सा के समय अपने हाथों को फैलाना, अंगुलियों को खोलना, हाथों में आरोग्यदायक शक्ति का अनुभव करना, दोनों हाथों से रोगी के शरीर को छूना और साथ ही मन्त्र बोलना। हाथ से स्पर्श करते समय यह कहना कि मेरे दोनों हाथ सुखदायी हैं, इनका स्पर्श लाभकारी है, ये तुम्हारे समस्त रोगों को दूर करेंगे इत्यादि। रुद्र के हाथ को आरोग्यकारक, औषधि रूप और जीवन शक्तिदाता कहा गया है। हस्तचिकित्सक वैद्य रोगी को

आश्वासन देते हुए कहता है कि मेरा दाहिना हाथ बहुत ही भाग्यशाली है और बायाँ हाथ उससे भी अधिक भाग्यशाली है। ये दोनों हाथ सब रोगों की चिकित्सा है और इनके स्पर्श से रोगों का शमन होता है–

''अयं में हस्तो भगवान्, अयं में भगवत्तरः।
अयं में विश्व भेषजो अयं शिवाशिमर्शनः।।''[19]

इस प्रकार वेदों में वर्णित प्राकृतिक चिकित्सा मनुष्य के लिए वरदान है। प्रकृति के बाह्य स्वरूप से हमारा वातावरण और आहार उपलब्ध होता है एवं आभ्यन्तर स्वरूप से शारीरिक भावों को साम्यता और इन्द्रियों को प्रसन्नता प्राप्त होती है। प्रकृति के सान्निध्य में रहने वाले व्यक्ति को आरोग्यता प्राप्त होती है।

हमारे द्वारा की गई अनुचित, छेड़छाड़ के कारण आज न तो जल ही शुद्ध रहा है न अन्न। अब भी समय है कि हम उन कार्यों से विरत हों, जिनके करने से प्रकृति कलुषित एवं प्रदूषित हो रही है। जब प्रकृति के अष्टरूप पूर्ववत् स्वच्छ, निर्मल और प्रसन्न होंगे तभी हम निरोगी रह सकेंगे। वेदों में प्रतिपादित प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति मानव कल्याण के लिए है और उसका लाभ और कल्याण तभी सम्भव है। जब हम प्रकृति के प्रति स्नेह भाव रखें। उसका तिरस्कार न करें। प्राकृतिक तत्वों को प्रदूषित न करें, तभी हमारी प्राकृतिक चिकित्सा आज के युग में सफल हो सकेगी।

सन्दर्भ–सूची

1. यजुर्वेद, 9/21
2. यजुर्वेद, 18/28
3. ऋग्वेद, 5/44/14
4. ऋग्वेद, 8/6/28
5. यजुर्वेद, 11/50
6. ऋग्वेद, 1/115.1
7. ऋग्वेद, 1.50.11
8. अथर्ववेद, 11.4.9
9. यजुर्वेद, 23.10
10. अथर्ववेद, 19.37.1
11. ऋग्वेद, 1.23.20
12. अथर्ववेद, 1.5.2
13. अथर्ववेद, 6.100.2
14. ऋग्वेद, 90.6
15. अथर्ववेद, 5.11.1
16. यजुर्वेद, 34/3
17. अथर्ववेद, 8.2.3
18. ऋग्वेद, 1.40.5
19. अथर्ववेद, 4.13.6
20. आरोग्य कल्याण अंक (जनवरी एवं फरवरी 2001)
21. डॉ. कपिल देव द्विवेदी, वेदों में आयुर्वेद
22. आचार्य बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Pol. Science : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 36-39

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

साइबर सुरक्षा और भारतीय साइबर सुरक्षा इको-सिस्टम

*हरी सिंह**

'सौ में सौ युद्ध जीत जाना भी उतनी बड़ी कुशलता नहीं है, जितनी कि बिना लड़े ही दुश्मन को तबाह कर देना है।' *–सन ज (दी आर्ट ऑफ वॉर)*

भारत ने वर्ष 2022 की प्रथम तिमाही में ही एक दिन 18 मिलियन साइबर अटैक्स और 200000 साइबर धमकियों का सामना किया है। उपर्युक्त तथ्य बहुत ही संवेदनशील है और इस बात का द्योतक है कि हमें अपने साइबर सुरक्षा के डिफेंस सिस्टम फ्रेमवर्क और इंफ्रास्ट्रक्चर पर बहुत ही गम्भीर और बहुआयामी चुनौतियों से लड़ने के लिए हर समय तैयार रहने की आवश्यकता है। आधुनिक युग का समूचा रक्षा तंत्र अति उच्च प्रौद्योगिकी और तकनीक आधारित हथियारों का है। रोबोटिक्स आर्मी और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, ड्रोन विमानों, रडारों, सैटेलाइट, लेजर फेंसिंग, ई–सर्विलेंस इत्यादि पर आधारित युद्ध प्रणाली ही भविष्य में किसी भी देश के सुरक्षा तंत्र की विश्वसनीयता और रक्षा तैयारियों की नींव बनेगी। आगामी अंतर्राष्ट्रीय विवाद थल, जल और नभ से आगे बढ़ कर अंतरिक्ष तक पहुंचेंगे। द्रुत गति से परिवर्तित होती वैश्विक परिस्थितियों भविष्य की दशा और दिशा वही शक्तियाँ निर्धारित करेंगी जो अपनी साइबर सुरक्षा की संरक्षा और विरोधियों की साइबर सुरक्षा व्यवस्था को ध्वस्त करने में सिद्धहस्त होंगी।

साइबर सुरक्षा का इतिहास 1970 के दौरान एक शोध परियोजना के साथ शुरू हुआ था, जिसे तब ARPANET (उन्नत अनुसंधान परियोजना एजेंसी नेटवर्क) के रूप में जाना जाता था। बॉब थॉमस नाम के एक शोधकर्ता ने एक कंप्यूटर प्रोग्राम बनाया जो ARPANET के नेटवर्क को ट्रांसफर करने में सक्षम था। इसी का विकसित रूप इंटरनेट है। इंटरनेट एक दूसरे से जुड़े कंप्यूटर नेटवर्क की वैश्विक प्रणाली है जो नेटवर्क और उपकरणों के बीच संचार करने के लिए इंटरनेट प्रोटोकॉल सूट (टी.सी.पी./आई.पी.) का उपयोग करता है। वर्ल्ड वाइड वेब–जिसे वेब, WWW या W3 के रूप में भी जाना जाता है–उन सभी सार्वजनिक वेबसाइटों या पृष्ठों को संदर्भित करता है, जिन तक उपयोगकर्ता अपने स्थानीय कंप्यूटर और अन्य उपकरणों पर इंटरनेट के माध्यम से पहुँच सकते हैं। ये पृष्ठ और दस्तावेज़ हाइपरलिंक के माध्यम से आपस में जुड़े हुए हैं जिन पर उपयोगकर्ता जानकारी के लिए क्लिक करते हैं। यह जानकारी पाठ, चित्र, ऑडियो और वीडियो सहित विभिन्न स्वरूपों में हो सकती है। वर्ल्ड वाइड वेब शब्द इंटरनेट का पर्यायवाची नहीं है। बल्कि, वर्ल्ड वाइड वेब इंटरनेट का हिस्सा है। साइबर वर्ल्ड स्पेस केबल इंटरनेट से वृहद और विस्तृत उन्नत तकनीकी अवधारणा है। साइबरस्पेस एक जटिल वातावरण है जिसमें सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (आई.सी.टी.) उपकरणों और नेटवर्क के विश्वव्यापी वितरण द्वारा लोगों, सॉफ्टवेयर और सेवाओं के बीच क्रियाकलाप षामिल है।

1. भौतिक अवसंरचना : जैसे गुरुत्वाकर्षण बल और पनडुब्बी, और उपग्रह जो रास्ता प्रदान करते हैं, इसके साथ ही ऐसे लेखक भी होते हैं जो इसकी सूचना को सीधे गन्तव्य तक पहुँचाते हैं।

2. लॉजिकल बिल्डिंग ब्लॉक्स : इनमें स्मार्ट फोन ऐप, ऑपरेटिंग सिस्टम या वेब शामिल हैं इसमें ब्रेज़र जैसे सॉफ़्टवेयर शामिल हैं, जो भौतिक नींव को काम करने और संचार की अनुमति देता है।

3. सूचना : सोशल मीडिया पोस्ट, टेक्स्ट, वित्तीय हस्तांतरण या वीडियो डाउनलोड जैसा कि यह साइबरस्पेस में स्थानांतरित होता है। पारगमन से पहले और बाद में, यह जानकारी अक्सर कंप्यूटर और मोबाइल उपकरणों पर या सार्वजनिक रूप से साझा की जाती है।

* *असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज, कानपुर*

4. उपयोगकर्ता : यह सूचना, संचार और के लिए साइबरस्पेस का भौतिक और तार्किक घटकों की जानकारी, संचार और डिजाइन में बदलाव करता रहता है।

साइबर सुरक्षा कम्प्यूटर सिस्टम या इन्टरनेट के माध्यम से संचालित की जाने वाली किसी भी प्रकार की डिवाइस की चोरी या क्षति से उसके हार्डवेयर, सॉफ्टवेयर, इलेक्ट्रॉनिक डेटा की सुरक्षा के साथ साथ उनके द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं के डिस्फंक्शन, करप्ट या अनुचित संरक्षण इत्यादि से है। इसे तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है –

- सूचना सुरक्षा,
- नेटवर्क सुरक्षा, और
- एप्लीकेशन सुरक्षा।

साइबर सुरक्षा की प्राथमिक समझ के लिए निम्न साइबर तकनीकी शब्दावली की जानकारी आवश्यक है–

- कम्प्यूटर सिस्टम
- आई.ओ.टी. (इंटरनेट ऑफ थिंग्स)
- आई.सी.टी. उपकरण
- हार्डवेयर/सॉफ्टवेयर
- इंटरनेट, क्लाउड कम्प्यूटिंग/स्टोरेज
- हैकिंग, डार्कनेट
- डोमेन, आई.पी. एड्रेस वी.पी.एन.
- वेबसाइट स्यूफिंग, मेल बॉम्बिंग
- सिक्योरिटी ब्रीच
- डेटा डेडलिंग,
- वेब जैकिंग, डार्क वेब,
- जिगलर अटैक्स
- मैलवेयर
- वायरस
- रेंसमवेयर
- ट्रोजनवेयर
- वॉर्म
- बोट/बोटनेट DDOS
- फिशिंग/स्पियर फिशिंग

साइबर हमलों के प्रकार–

- कम्प्यूटर एंड नेटवर्क वायरस,
- स्पाईवेयर हमले,
- हैकर्स और प्रिडेटर्स
- फिशिंग।

वैश्विक साइबर वॉरफेयर वर्ष 2007 में सीरियन एयर को इजराइली एयरफोर्स द्वारा निष्क्रिय कर दिया जाना, रशिया–जॉर्जिया विवाद (2008) वर्ष 2009 में चाइना द्वारा 103 देशों की गोपनीय जानकारी चुराने के लिए GhostNet प्रोग्राम तैयार किया जाना, टाइटन रेन 2004, स्टक्सनेट 2010, Duqu 2011, फ्लेमर और डिस्ट्रेक (शमूम) 2012, रेड अक्टूबर 2013 इत्यादि कुछ ग्लोबल साइबर हमलों और मैलवेयर धमकियों के उदाहरण हैं।

वर्तमान में रशिया यूक्रेन युद्ध जमीन पर लड़े जाने से पूर्व साइबर स्पेस में शुरू हो गया था। प्रमुख शक्तिशाली राष्ट्र जैसे P–5, G–7, इजराइल आदि अपने विरोधियों से प्रत्यक्ष रूप से लड़ने से पहले उनको साइबर हमलों से प्रभावित करने का प्रयास करते हैं। इन हमलों में एक कुख्यात माध्यम DarkNet, डार्क वेब भी है जिसमें IP

Address न होने की वजह से ट्रेकिंग असंभव हो जाती है। अंतर्राष्ट्रीय साइबर व्यवस्था एक जटिल और अराजक पैटर्न पर काम करती है। यह एक ऐसा मॉडल है जिसमें कोई नियामक प्राधिकारी नहीं है। इस अराजक व्यवस्था में कोई प्रत्यक्ष या दृष्टव्य नियम निर्माता, कार्यपालिका या नियम व्याख्याता नहीं है। न ही इस व्यवस्था में कोई न्यायपालिका है। इन बेहद संवेदनशील और जटिल परिस्थितियों में साइबर स्पेस की सुरक्षा एक गंभीर अंतर्राष्ट्रीय चिंता का विषय है। इस व्यवस्था में शोषक और उत्पीड़क की पहचान बहुत ही कठिन है। यदि पहचान कर भी ली जाए तो दण्डित कर पाना भी एक बहुत बड़ा मुद्दा है क्योंकि साइबर स्पेस एक ओपन एक्सेस एरिया है इसमें सरकारी, गैर सरकारी, निजी या व्यक्ति विशेष की भी घुसपैठ सम्भव है। एलन मस्क की स्पेसएक्स, तथा ब्लू ओरिजिन, वर्जिन गैलेक्टिक जैसी प्राइवेट विशुद्ध व्यावसायिक लाभकारी बिजनेस कम्पनी, भारतीय प्राइवेट कम्पनी अग्निकुल कॉसमॉस, अग्निबाण, स्काईरूट एयरोस्पेस, पिक्सेल आदि बिजनेस कम्पनी अपने हितों के लिए साइबर स्पेस का अनुचित लाभ भी उठा सकते हैं। आतंकी संगठनों जैसे आइसिस (ISIS) अल कायदा, तालिबान आदि में साइबर एक्सपर्ट्स बड़ी संख्या में है जो सदैव ही अपने नापाक इरादों को पूरा करने की फिराक में रहते हैं।

विकिलीक्स (एडवर्ड स्नोडेन) प्रकरण, पनामा पेपर्स आदि ने अधिकांश देशों की सरकारों और उनकी गतिविधियों की पोल खोल दी थी। मेटा (फेसबुक) द्वारा निजी डेटा को लीक करना या गोपनीयता को भंग करना। देष से बाहर निजी जानकारी और सूचनाओं का संग्रहण, भारत में आधार डेटा को लेकर उड़ने वाली अफवाहें, यूक्रेन को क्रिप्टो करेंसी के माध्यम से मदद मिलना, टेरर फंडिंग, बोगस एनजीओ, ब्लैक मनी, मनी लांड्रिंग आदि बहुत संवेदनशील प्रकरण जो न सिर्फ संबंधित देशों को बल्कि पूरी दुनिया को प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं। क्या गारंटी है कि विशुद्ध व्यवसायिक लाभ के लिए काम करने वाले अपने लालच के लिए इन निजी जानकारी और सूचनाओं का दुरुपयोग नहीं करेंगे?

भविष्य में साइबर आतंकवाद जैसी भयानक विपदा से बचने हेतु वैश्विक स्तर एक व्यापक सहमति और स्वीकार्यता का माहौल बनाने की महती आवश्यकता है। साइबर आतंकवाद हर प्रकार के आतंकवाद से भयानक और जनसंहारक होगा। संयुक्त राश्ट्र संघ को यूनिवर्सल साइबर रेगुलेटरी फ्रेमवर्क, सार्वभौमिक साइबर इथिकल कोड या संधियों का निर्माण करना चाहिए, क्योंकि साइबर आतंकवाद के लिए दुनिया के अधिकांश देश तैयार नहीं है।

साइबर सुरक्षा और भारतीय परिप्रेक्ष्य भारत को अभी हाल ही में G–20 जैसे महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय संगठन की अध्यक्षता सौंपी गई है। भारत विश्व की तीव्र गति से प्रगति करती हुई अर्थव्यवस्था है। वर्तमान भारत की जनसंख्या 141 करोड़ जो वर्ष 2030 तक बढ़ कर 151 करोड़ हो जाएगी। ये दुनिया भर के सबसे बड़े बाजारों में से एक है। आज पूरा विश्व भारत की और आशा भरा दृष्टि से देख रहा है। भारत की नेतृत्व क्षमता की चहुँ ओर सराहना हो रही है। जो भारत की बढ़ती वैश्विक स्वीकार्यता का प्रतीक है।

ऐसे माहौल में हमारी जिम्मेदारियाँ भी बहुत बढ़ जाती है क्योंकि हमारे समक्ष आंतरिक और बाह्य मोर्चे पर भी विविध और जटिल प्रकार की चुनौतियां हैं उनमें एक एक महत्वपूर्ण चुनौती है अपने साइबर स्पेस की सुरक्षा। भारत एक जटिल और उलझाऊ असमान विकास वाला देश है। अतिशय विविधताएँ और पिरामिड रूपी आर्थिक और सामाजिक संरचना सुरक्षा सम्बन्धी ढाँचे को कभी भी गंभीर क्षति पहुँचा सकती है। भारत की गुलामी का इतिहास ही आंतरिक कलह और फूट का रहा जनसंख्या की विस्फोटक वृद्धि, भ्रष्टाचार, जातीय आतंकवाद, स्वास्थ्य और शिक्षा, खालिस्तान विवाद, उत्तरी–पूर्वी राज्यों के मुद्दे, नक्सलवाद, क्षेत्रीय और भाषाई विवाद, जनजातीय उत्पीड़न, लिंग आधारित मुद्दे, स्यूमन ट्रैफिकिंग, वैश्यावृत्ति, पर्यावरणीय चिंताएँ आदि आंतरिक समस्याएँ भारत की आंतरिक और बाह्य सुरक्षा के लिए एक बड़ी चुनौती है। पड़ोसी देशों खास कर चीन और पाकिस्तान के साथ सीमा सम्बन्धी विवाद, सीमा पार आतंकवाद, ग्लोबल वार्मिंग, जलवायु परिवर्तन, कार्बन उत्सर्जन, WTO सम्बन्धी मुद्दे, विविध आतंकी संगठनों का घुसपैठ करने का प्रयास इत्यादि।

उपर्युक्त सभी संकटों से भी गंभीर प्रकरण है साइबर स्पेस की सुरक्षा क्योंकि अग्रलिखित सभी समस्याओं से लड़ने के लिए हमें जिस उच्च प्रौद्योगिकी और तकनीकी उपकरणों और हथियारों की आवश्यकता है वो सभी साइबर स्पेस में ही फंक्शन करते हैं। हमारे साइबर इको–सिस्टम में कोई अनुचित गतिविधि या घुसपैठ देश की सीमा सुरक्षा तंत्र से जुड़े हुए सैन्य प्रतिछानो में संगृहीत डेटा और सूचनाएँ, हथियारों की खरीद फरोख्त के आँकड़े, खुफिया एजेंसियों जैसे RAW, NIA, IB, CBI, ED आदि स्पेस और सैटेलाइट टेक्नोलॉजी से जुड़े ISRO, DRDO आदि, वेदर फोरकास्टिंग, भूकंप, सुनामी, ज्वालामुखी गतिविधि सेंसिंग सिस्टम, शेयर बाजार, स्टॉक एक्सचेंज प्रणाली, बैंकिंग, ऑनलाइन पेमेंट गेटवे, ई–कॉमर्स, वित्तीय संस्थानों की सुरक्षा, हेल्थकेयर और फार्मा इंडस्ट्री आदि

से जुड़ी संवेदनशील डेटा और और सूचनाएँ आदि को दुष्प्रभावित कर पूरे देश की आंतरिक और सुरक्षा को अति गंभीर स्थिति में डाल सकती है।

साइबर सुरक्षा और डेटा प्राइवेसी की उभरती चिंताओं को गंभीरता के मद्देनजर भारत सरकार अपने साइबर इको–सिस्टम की सुरक्षा को अभेद्य बनाने का प्रयास व्यापक स्तर पर शुरू कर दिया है डिजिटल इण्डिया, डिजिटल साक्षरता अभियान, साइबर अवेयरनेस इनिशिएटिव प्रोग्राम, विविध सेमिनार, वर्कशॉप आदि वृहद स्तर चलाए जा रहे हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने पर्सनल डेटा प्राइवेसी प्रोटेक्शन को मौलिक अधिकार की श्रेणी में माना है (के. एस. पुत्तास्वामी Vs यूनियन ऑफ इंडिया, 2017) डिजिटल पर्सनल डेटा प्रोटेक्शन मिल 2022 को संसद में वर्ष 2023 के बजट सत्र में पेश किया जाना प्रस्तावित है। उक्त बिल में सरकार ने अपना मंतव्य स्पष्ट कर दिया है कि व्यक्तिगत हित से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है लोकहित और राष्ट्र–हित।''

संदर्भ–सूची

1.https://www.meity.gov.in/writereaddata/files/The%20Digital%20Personal%20Data%20Protection%20Bill%2C%202022.pdf

2. https://drive.google.com/file/d/1kkAwfNITLpdrQO_kO2nYKcGPz5LP0Owb/view?usp=dri vesdk

3. https://www.moneycontrol.com/news/business/india-saw-18 million-cyber-attacks-in-first-quarter-of-2022-google-executive-royal-hansen-9084911.html

4. https://drive.google.com/file/d/1kmfH6VwZdMuuFhidahglUGEqlu1iE4dg/view?usp=drive sdk

5. https://drive.google.com/file/d/1kmsoVaZGLnV4-GDhoefV_qaAZUIAtgA5/view?usp=driv esdk

6. EXPLAINED ECONOMY, DATA PRIVACY INDIA & WORLD, SOUMY ARENDRA BARIK, ANIL SASI, NEW DELHI, (Dated 20.11.2022)

7. https://www.livemint.com/companies/news/top-3-indian-companies-in-the-space-race-11631076618100.html

8. https://www.earth.com/earthpedia-articles/top-3-biggest-private-space-companies/

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Sanskrit : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 40-44

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

वेदों में सर्वजन हिताय एवं सर्वजन सुखाय की भावना

*सुदामा देवी** *डॉ. (श्रीमती) सुषमा शुक्ला***

सारतत्व : *प्रस्तुत शोध पत्र में ज्ञान के पावन एवं अक्षय स्रोत वेद में निहित सर्वजन हिताय एवं सर्वजन सुखाय का संदेश, समानता, सदाचार, एकता, मैत्री–भाव, त्याग–भाव, कर्म–प्रधानता, सहयोग, सौहार्द एवं बंधुत्वभाव तथा कल्याणकारी विचार आदि का प्रतिपादन किया गया है।*

संकेत शब्द : *ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, सर्वजन, सौहार्द, वांगमय, परिगणित, पथ–प्रदर्शक, सम्यक्, उदात्त, मत्सर्य, शाश्वत्, स्रोत आदि।*

उद्देश्य :–

(1) वेदों के महत्व के बारे में बताना।

(2) वेदों के कल्याणकारी स्वरूप को प्रकट करना।

(3) वेदों के प्रति लोगों में रुचि उत्पन्न करना।

(4) वेदों का मुख्य उद्देश्य प्रकट करना।

(5) वेदों की पठन–पाठन के लिए लोगों के अंतःकरण में जिज्ञासा उत्पन्न करना।

प्रस्तावना : वैदिक साहित्य विश्व का प्राचीनतम साहित्य है, वैदिक साहित्य से तात्पर्य उस विपुल साहित्य से है जिसके अंतर्गत वेद संहिता, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक ग्रंथ एवं उपनिशद् ग्रंथ आदि शामिल है। वर्तमान में वैदिक साहित्य हिंदू धर्म के प्राचीनतम स्रोत है।

वैदिक साहित्य वेदों पर आधारित साहित्य का संग्रह है। इसमें चारों वेदों को शामिल किया गया है– 1. ऋग्वेद, 2. यजुर्वेद, 3. सामवेद, 4. अथर्ववेद। इन वेदों के मन्त्रों को संहिता कहा जाता है।

संपूर्ण वेदों का स्वरूप एक ही संहिता के रूप में था, महर्षि वेदव्यास ने जनकल्याण की भावना से वेदों को क्रमषः –ऋक्, यजु, साम तथा अथर्व में विभाजित किया। ऋग्वेद में देवों की स्तुति है, यजुर्वेद में यज्ञों की विविधता, सामवेद में गायन विधि तथा अथर्ववेद में लौकिक ज्ञान का सजीव वर्णन प्राप्त होता है। प्रत्येक वेदों के चार भाग किए गए है –(1) संहिता, (2) ब्राह्मण, (3) आरण्यक, (4) उपनिषद्। संहिता मन्त्रों का वह भाग है, जिसमें वेद स्तुति है। वैदिक साहित्य में संहिताओं का भी अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रहा है जिनकी यज्ञ अनुष्ठान में अमूल्य देन है। ब्राह्मण ग्रन्थों में मन्त्रों के विधि भाग की व्याख्या की गई है। आरण्यक ग्रन्थों में बीतराग गृहस्थों के कर्मविधान का प्रतिपादन किया गया है।

उपनिषदों में मन्त्रों की दार्शनिक व्याख्या की गई है। इसके अतिरिक्त वेदों में वेद के छः अंगों का भी अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है विधि के छः अंग इस प्रकार हैं–(1) शिक्षा, (2) कल्प, (3) निरुक्त, (4) व्याकरण, (5) छंद, (6) ज्योतिष।

वेद भारत की अस्मिता है। वेदों के बिना भारत का अस्तित्व नगण्य है वेदों के पठन–पाठन पर हमारे ऋषि–मुनियों ने सदैव अत्यधिक बल दिया है क्योंकि संपूर्ण मानव जाति का कल्याण वैदिक मार्ग का अनुसरण करने में है। मनु ने वेदों को सभी धर्मों का मूल बताया है–

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।[1]

* *शोध छात्रा, संस्कृत विभग, डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या, उ.प्र.*

** *प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, राजा मोहन गर्ल्स पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज, अयोध्या, उ.प्र.*

वेद संपूर्ण वांड्मय का बोधक शब्द है। इसी रूप में उसका प्रयोग भी होता आया है जिस प्रकार व्याकरणशास्त्र या दर्शनशास्त्र आदि में शास्त्र शब्द उसके पूर्व में जुड़े हुए शब्द की संपूर्णता का अर्थ प्रकट करता है उसी प्रकार अपने मूल में वेद शब्द भी व्यवहरित रहा है यथासर्ववेद, पिषाचवेद, असुरवेद, इतिहासवेद और पुराणवेद आदि। इसी प्रकार पंचम वेद के रूप में नाटय वेद का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

वेद विश्व साहित्य के सबसे प्राचीन ग्रंथ है प्राचीन काल में ऋषियों ने अपनी प्रतिभा दृष्टि से जिस ज्ञानराशि का साक्षात्कार किया, उसे वेद कहा जाता है। वेद के विषय में मान्यता है कि जिन तत्वों का ज्ञान अन्य सांसारिक साधनों से संभव नहीं है, उनका ज्ञान वेद से ही हो सकता है।

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुद्धयते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्ताद् वेदस्य वेदता।।[2]

इसमें कोई संदेह नहीं है कि वेद हमारे भारत की संस्कृति के प्राचीनतम निदर्शन है। वेद को आधार बनाकर ही धर्म, दर्शन, आध्यात्मिक, विज्ञान कला और साहित्य के क्षेत्र में भारत ने असाधारण उपलब्धि प्राप्त किया है।

वेद का अर्थ : व्याकरण की दृष्टि से वेद शब्द की उत्पत्ति संस्कृत की चार धातु में से किसी एक धातु से निष्पन्न मानी जा सकती है– विद्–ज्ञाने,विद्–सत्तायाम्, विदलृ लाभे तथा विद्–विचारणे। इन चारों अर्थों का समन्वय करते हुए महर्षि दयानंद ने वेद का निर्वाचन इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

''विदन्ति, जानन्ति विद्यन्ते, भवन्ति, विदन्ते अथवा लभन्ते, विदन्ति विचारयन्ति सर्वे मनुस्याः सत्यविद्यां यैर्येशु व तथा विद्वांसष्च भवन्ति ते वेदाः।''[3]

अर्थात जिसने या जिसमें मनुष्य समाज ज्ञान प्राप्त करें, सत्य का साक्षात्कार करे, या उसका विचार करे, वेद है। मुख्य रूप से वेद का अर्थ ज्ञान है।

आचार्य सायण ने तैत्तिरीय संहिता भाष्य की भूमिका में कहा है कि जो ग्रन्थ इष्ट प्राप्ति और अनिष्ट निवारण का अलौकिक उपाय बताता है उसे वेद कहते हैं–

''इष्ट प्रत्यानिष्ट परिहारयोर लौकिकमुपायं यो ग्रन्थ वेदयति सः वेदः।''[4]

मनु ने मनुस्मृति ग्रंथ में लिखा है–

सर्वज्ञानमयो हि सः।[5]

अर्थात अखिल वेद समस्त ज्ञान से युक्त है।

वेद भारतीय ज्ञानगंगा के उत्स है। वेद, ऐसा दीप्तिपुंज है जो दिव्य ज्योति से स्वयं प्रकाशित होता है और उसके द्वारा समस्त भारतीय वांगमय भी भाषित है। इस दृष्टि से वेद अपने आप में पूर्ण है और इसलिए वेद नाम से केवल चार मंत्र–संहिताएँ ही परिगणित होती है। वैदिक शब्द वेदों के बाद के साहित्य का सूचक है।

वेद पवित्रतम ज्ञान राशि है यह सर्वज्ञानमय है वेदों में किसी एक मनुष्य प्राणी की सुख की बात न कहकर अपितु सर्वजन हिताय एवं सर्वजन सुखाय की बात कही गई है ऋग्वेद के दशवें मण्डल के एक मंत्र में कहा गया है–

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथापूर्व संजानाना उपासते।।[6]

अर्थात साथ–साथ चलो (मिलकर चलो) साथ–साथ बोलो (परस्पर मिलकर बात करो) तुम्हारे चित्त एक समान होकर ज्ञान प्राप्त करें। जिस प्रकार से पूर्व में विद्वज्जन, मनीषीगण, सेवा करने वाले प्रभु को जानते हुए उपासना करते आये है उसी प्रकार तुम भी उपासना करो।

उक्त मंत्र में परस्पर मिलकर चलने बोलने तथा ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया गया है क्योंकि एक अकेला व्यक्ति बिना किसी की सहायता से कुछ भी नहीं कर सकता है। क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है मनुष्य को समाज की आवश्यकता है और समाज को मनुष्य की। यह दोनों एक दूसरे के पूरक है इसलिए मनुष्य को यदि अपना कल्याण चाहिए तो उसे दूसरे के कल्याण का बीच भी अपने निस्वार्थ मन में अंकुरित करना पड़ेगा तभी उसका कल्याण होगा। अथर्ववेद में भी एक दूसरे के प्रति समानता का भाव प्रकट करते हुए कहा गया है कि–

समानी प्रपासह वोअत्नभागः समाने योस्ते सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोअग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः।।[7]

अर्थात तुम्हारे जल पीने का स्थान एक हो, धरती से प्राप्त अन्न का समान भाव से उपभोग करो, मैं तुम सबको समानता के जुए में बाँधता हूँ, तुम सब परस्पर मिलकर अग्नि की उपासना करो और रथ की नाभि अर्थात् अरे की भांति मिलकर रहो।

उक्त मंत्र में मनुष्यों को परस्पर समानता की शिक्षा प्रदान की गई है सबको समान भाव से अन्न और जल प्राप्त हो। अतः मनुष्यों को स्वार्थभाव के बिना मानवता के हित के बारे में विचार करना चाहिए। यदि सभी मनुष्यों के अंतःकरण में अपने साथ–साथ पर हित तथा पर सुख की भावना जागृत हो जाएगी तो सभी प्राणी सुखपूर्वक अपना जीवन यापन कर सकेंगे। इसी में सबका कल्याण है।

यजुर्वेद के ईशावस्योपनिशद् ग्रंथ के एक मंत्र में त्याग पूर्वक उपभोग करने का संदेश दिया गया है–

ईशावास्यमिदं सर्वं यक्तिअच जगत्यां जगत।
तेन त्यक्तेन भुञजीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।[8]

समाज या राष्ट्र को ही नहीं अपठित संपूर्ण विश्व को एकता के सूत्र में बाँधने का श्रेय वेदों को ही प्राप्त होता है इसमें समस्त मानव प्राणी को परस्पर पथ–प्रदर्शन तथा साधक बनने की शिक्षा प्रदान की गई है। सदैव परोपकार की भावना का विचार प्रस्तुत किया गया है। ऋग्वेद में परस्पर एकता और समता का संदेश देते हुए कहा गया है कि–

समानो मन्त्रः समिति समानीः,
समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्यमभिमन्त्रये वः
समानेन वो हविषा जुहोमि।।[9]

अर्थात् तुम सबके विचार सामान हों, समिति समान हों, मन समान हो और चित्त समान लक्ष्य से युक्त हों, मैं तुम्हें समान विचार वाला बनाता हूँ, तुम्हारा चित्त में विरोध का अभाव हो, निर्णय में सद्भाव हो, परस्पर अविरोधी बनकर एक–दूसरे का कल्याण करो। वेदों में सदैव के लिए विरोध को समाप्त कर मानव के विचारों में समान रूप से परस्पर हित और सुख का लक्ष्य प्रदर्षित किया गया है।

वेदों का मुख्य उद्देश्य लोगों का हित और सुख ही रहा है सामवेद के एक मंत्र में दुर्गुणों एवं दुष्कर्मों से निवृत्ति की प्रेरणा दी गई है और कहा गया है कि निषिद्ध कर्मों से पतन प्राप्त होता है अतः निषिद्ध कर्मों से सचेत होने का उपदेश इस प्रकार दिया गया है–

मा पापत्वाय नो नरा इन्द्राग्नी माशिशस्तये।
मा नो रीरधतम् निदे।।[10]

विश्व में सभी लोगों के सुख के लिए मनुष्यों में परस्पर बँधुत्व एवं मित्रता का विचार भी होना आवश्यक है मैत्री भाव से संबंधित यजुर्वेद में प्राणिमात्र को मित्रता की भावना का अत्यंत सुंदर संदेश दिया गया है–

दृते दृहं मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणिभूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणिभूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।[11]

महर्षि दयानंद सरस्वती ने यजुर्वेद भाष्य में उक्त मंत्र का अर्थ इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि– हे अविद्यारूपी अंधकार के निवारक जगदीश्वर वा विद्वान्। जिससे सब प्राणी मित्र की दृष्टि से मुझको सम्यक् देखें, मैं भी मित्र की दृष्टि से सभी प्राणियों को सम्यक देखूँ, इस प्रकार हम लोग परस्पर मित्र की दृष्टि से देखें, इस विषय में हमको दृढ़ कीजिए।

प्रस्तुत मंत्र में निःस्वार्थ एवं निष्कपट मैत्री भाव के संबंध का निर्वाह करने के लिए प्रेरित किया गया है वेदों में जो भी संदेश दिया गया है वह किसी एक व्यक्ति या प्राणी से संबंधित ना होकर संपूर्ण विश्व के लिए दिया गया है। यहाँ पर इस मैत्री भाव के संदेश से विश्व मैत्री की उदात्त भावना मुखरित हुई है। अपने सामान ही दूसरों के साथ व्यवहार करना चाहिए, श्रीमद्भगवतगीता में भी इसी भाव को दर्शाया गया है–

आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पश्यति।[12]

अथर्ववेद में पृथ्वी सूक्त के पांचवें मंत्र में पृथ्वी पर निवास करने वाले समस्त प्राणी की सुख के लिए मातृभूमि से प्रार्थना की गई है–

यस्यां पूर्वे पूर्वजनाः विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन्।
गवामश्वानां वयसश्च विश्ठा भगं वर्चः पृथिवी न दधातु।।[13]

अर्थात् इस पवित्र भूमि पर हमारे पूर्वजों में विभिन्न क्षेत्रों में अपना पौरुष दिखलाया है। अनेकों बार असुरों को परास्त किया है तथा मानवता के हितकारी समाज की स्थापना की जहाँ पर समस्त प्राणियों तथा पशुपक्षियों के सुखपूर्वक रहने का स्थान है अर्थात् इस भूमि पर अतुलनीय प्राकृतिक संपदा विद्यमान है ऐसी पवन श्रेष्ठ मातृभूमि हमें ऐश्वर्या तथा तेज प्रदान करें। हमें तेजस्वी बनायें।

अथर्ववेद की एक अन्य मंत्र में भाई–बहन को यह संदेश दिया गया है कि वह परस्पर बैर–भाव मिटा करता था। भेदभाव एवं द्वैष की भावना को हटाकर समान विचार एवं सामान कर्म वाला होकर वार्तालाप करें–

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षात् मा स्वसारभुत स्वसा।
स्म्ययंच सव्रता भूत्वा वाचं वदते भद्रया।।[14]

मनुष्य यदि विकारों से घिरा हुआ रहता है तो वह कभी भी जीवन में सुख शांति एवं समृद्धि को नहीं प्राप्त कर सकता है उसे हमेशा निराशा दुख और पतन ही प्राप्त होता है। विकार मनुष्यों के शत्रु है जो उनके मार्ग या सफलता में बाधा उत्पन्न करते हैं। विकारों की संख्या छः होती है जो इस प्रकार हैं– काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह तथा मत्स्य (ईर्श्या)। इन छः विकारों में से यदि कोई एक विकार भी मनुष्य को प्रभावित करता है तो उसकी उन्नति नहीं हो सकती है और ना ही वह सुख पूर्वक रह सकता है। मनुष्य यदि कहीं एक साथ इन छः शत्रुओं के जाल में फंस जाता है तो उसका अद्यःपतन होना निश्चित है। इसीलिए इन विकृतियों से बचने के लिए सामवेद की एक मंत्र में ईश्वर से इस प्रकार प्रार्थना की गई है कि–

मा न इन्द्राभ्यां 3 दिशाः सूरो अक्तुश्वायमत्।
त्व युजा वनेम तत्।।[15]

अर्थात मनुष्य का मन इतना सबल हो कि कामादि विकृतियाँ अज्ञान काल में भी किसी भी दिशा में आक्रमण ना कर पायें और यदि आक्रमण करें भी तो परमात्मा की कृपा से विनष्ट हो जाए।

मृदु वाणी सभी को प्रिया लगती है मृदु एवं सत्य वचन का प्रयोग मानव के हित में ही होता है और मनुस्मृति ग्रंथ में भी कहा गया है कि–

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेश धर्मः सनातनः।।[16]

अर्थात सत्य बोलना चाहिए, प्रिया बोलना चाहिए। बुरा लगने वाला सत्य नहीं बोलना चाहिए और अच्छा लगने वाला झूठ नहीं बोलना चाहिए। यही शाश्वत धर्म है।

ऋग्वेद में मानसिक और वैचारिक एकता के बारे में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि–

समानी आकूतिः समाना हृदयानि वा।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।[17]

यजुर्वेद के एक मंत्र में कल्याणकारी विचारों को सुनने, दृश्यों को देखने के लिए प्रेरित किया गया है–

भद्रं कर्णेभिः ऋणुयाम् देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्य रोमहि देवहितं यदायुः।।[18]

अर्थात हम कल्याणकारी वचनों को कानों से सुने और आंखों से कल्याणकारी दृश्यों को देखें। इंद्रियग्राम को संयमित करके, सद्गुणों की ओर प्रवृत्त कर मानव को कल्याणकारी पथ का अनुसरण कराना वेदों का उद्देश्य रहा है।

निष्कर्ष : इस प्रकार कहा जा सकता है कि वेद ज्ञान की विशाल एवं अक्षय राशि हैं यह ज्ञान के भंडार हैं, जिसमें किसी एक व्यक्ति या प्राणी का नहीं अपितु संपूर्ण विश्व के प्राणी का हित एवं सुख का उपदेश निहित है। वेदों में मानव के लिए सर्वतोमुखी विकास तथा कल्याण की कामना की गई है। अतः निःसंदेह यह कहा सकते हैं कि वेदों का लक्ष्य सर्वजन हिताय और सर्वजन सुखाय रहा है।

सन्दर्भ–सूची

1. मनुस्मृति
2. तैत्तिरीय भाष्य भू. तथा वृ.भ.भू. में सायणाचार्य द्वारा उद्धृत।
3. ऋग्वेद भाष्य भूमिका
4. तैत्तिरीय भाष्य भूमिका
5. मनुस्मृति–12 / 7
6. ऋग्वेद–10 / 191 / 2
7. अथर्ववेद–3 / 30 / 6
8. ईशावस्योपनिशद्–1
9. ऋग्वेद–10 / 19 / 3
10. सामवेद–918
11. यजुर्वेद–36 / 18
12. श्रीमद्भगवतगीता
13. अथर्ववेद, पृथ्वी सूक्त का 5वां मन्त्र
14. अथर्ववेद–3 / 30 / 3
15. सामवेद–128
16. मनुस्मृति–विद्यार्थीचर्या
17. ऋग्वेद–10 / 191 / 4
18. यजुर्वेद

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Economics : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 45-49

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

A Study of Rural Agricultural Banking : An Analysis

*Dr. Pradeep Kumar**

Abstract : Addressing the challenges they face and implementing strategic measures will ensure that RRBs continue to be a cornerstone of agricultural finance in India, driving growth and prosperity in rural areas. By operating in remote rural areas, RRBs ensure that financial services reach the underserved and unbanked population, thereby promoting financial inclusion. This accessibility helps farmers and rural entrepreneurs to secure funding that would otherwise be out of reach. Support for Agricultural Development: Beyond credit provision, RRBs support agricultural development through initiatives like training programs for farmers, dissemination of information on modern farming techniques, and assistance in forming self-help groups (SHGs). Implementation of Government Schemes: RRBs play a crucial role in implementing government schemes aimed at rural development and agricultural finance, such as the Pradhan Mantri Fasal Bima Yojana (PMFBY) for crop insurance, and the Kisan Credit Card (KCC) scheme, which provides short-term credit to farmers. Agriculture is the backbone of India's economy, providing livelihood to nearly 60% of the population and contributing around 15-18% to the GDP. Despite its critical importance, the sector faces numerous challenges, particularly in terms of access to adequate and timely financial services. It is concluded that Regional Rural Banks are crucial for the development of agriculture and rural sectors in India. By providing tailored financial services, promoting financial inclusion, and supporting agricultural development, RRBs play a pivotal role in transforming rural economies.

Key words : implementing, strategic, agricultural finance, numerous, rural areas

Introduction : There were various studies which had been performed earlier on various banks in India like private banks, public sector banks, foreign banks, cooperative banks, Regional Rural banks and many more. These studies have been performed to analyze the performance of these banks on various parameters like reliability, responsiveness, service quality, deposits, lending, investments, agriculture financing and the list goes on.[1] Since the establishment of Regional Rural banks in 1975, various academicians, researchers, policy makers have been attracted by their performance. Many studies have been conducted, to analyze the performance of Regional Rural Banks in India.

The review aimed to examine past and present practices, explore types of products/services and delivery models, identify knowledge gaps, and propose a framework for developing and delivering customized financial services for the rural sector. Despite significant progress in financial products, services and delivery models in the previous decades, access to finance in rural areas remains low.[2] This could be associated with supply and demand side constraints, including inadequate design of products and delivery models, geographic dispersion of households, restricted collateral requirement, higher political meddling, macroeconomic instability, institutional inefficiency, inadequate policies and

* *Assistant Professor (Guest Teacher), Department of Economics, L.S.College, Muzaffarpur B.R.A. Bihar University, Muzaffarpur*

strategies, limited access of farmers to information and market, and risk-taking behavior. Limited financial literacy, business development skills, weak value chain linkages, and low agricultural sector productivity and profitability are also important constraints. Digital innovations offer new opportunities to address challenges, such as designing context-specific financial products and delivery models and reaching the diverse rural population.[3]

To enhance financial inclusion, innovations should consider improving financial institutions' policies and strategies, developing tailored products and services, adopting a client-centered approach, bundling financial and non-financial services, building financial literacy, and utilizing digital innovations. Success in developing and deploying innovative financial services requires the active participation of researchers, development partners, financial institutions, donors, and target customers.[4] Research in the rural and agricultural finance may focus on developing innovative products, services, and delivery models; bundling financial products and evaluating their impacts; options for creating linkage of credit with business development services; identifying farmers preferences for new financial products and services; integrating business development services, financial literacy, business planning with conventional products; and adoption existing financial products and services and delivery models to specific agricultural crop and livestock commodities.[5] Enhancing the capital base, technological infrastructure, and operational efficiency of Regional Rural Banks (RRBs) will significantly improve their effectiveness in providing agricultural finance and promoting rural economic development in India.

Increasing the capital base of RRBs will enable them to extend more credit to small and marginal farmers, thereby improving agricultural productivity and income levels in rural areas.[6] Technological Advancement Hypothesis: Implementing advanced banking technologies in RRBs will streamline operations, reduce the incidence of non-performing assets, and enhance customer service, leading to higher levels of financial inclusion and satisfaction among rural customers. Operational Efficiency Hypothesis: Improving governance, management practices, and staff training within RRBs will enhance their operational efficiency, resulting in better credit delivery and financial performance.[7] Beyond credit provision, RRBs support agricultural development through initiatives like training programs for farmers, dissemination of information on modern farming techniques, and assistance in forming self-help groups (SHGs). Implementation of Government Schemes: RRBs play a crucial role in implementing government schemes aimed at rural development and agricultural finance, such as the Pradhan Mantri Fasal Bima Yojana (PMFBY) for crop insurance, and the Kisan Credit Card (KCC) scheme, which provides short-term credit to farmers.[8]

The Regional Rural Banks are Government owned regional based and rural oriented financial institutions specialized to cater to the credit needs of the neglected and weaker sections of the society such as small and marginal farmers, agricultural laborers, and rural artisans, and to fill up the regional and functional gap in neglected areas in regard to institutional credit. Because of low cost of operation, operation in remote areas and being able to get the credit flow to the doors of the specific borrowers. RRBs are better tailored to meet the Credit needs of the rural poor's. The RRBs are in fact, small man's banks. With a view to developed the rural economy by providing, for the purpose of development of agriculture, trade, commerce, industry and other productive activities m the rural areas, credit and other facilities, particularly to the small and marginal farmers, agricultural laborers, artisans and small entrepreneurs and for matter connected therewith and incidental thereto.[9]

Rural Bank is sponsored by a Scheduled Commercial Bank, usually a Public Sector Commercial Bank. The steering committee on Regional Rural Banks identified the districts requiring Regional Rural Banks, and later, the (government of India in consultation with State Governments and the sponsoring banks proceeded to set-up Regional Rural Banks. The Regional Rural Banks are visualized as the rural arm of the Commercial Banks.[10] As such a special responsibility lies on the sponsoring bank. The sponsoring bank, by virtue of the provisions of the act provides managerial assistance to the Regional

Rural Banks sponsored by it for the first five year period, besides financial accommodations on mutually agreed terms. A few non-public sector commercial banks have also sponsored Regional Rural Banks. Following a view taken by Reserve Bank of India, in consultation with the Got, of India, Scheduled State r Co-operative Banks are also allowed to sponsor Regional Rural Banks.[11] Regional Rural Banks have many beneficiaries in Muzaffarpur district evaluation of every beneficiary is not possible, due to time limitation and inadequacy of resources at the disposal of the researcher. Due to this reason, it is not possible to study all schemes, so only the most popular and common schemes have been taken for this study Beneficiaries have no record of information about income, employment and other information, so all the information are based on memory of borrowers.

Rural people in India such as small and marginal farmers, landless agricultural laborers, artisans and socially and economically backward castes and classes, have been exploited in the name of credit facility by informal sectors. The rural credit market consists of both formal and informal financial institutions and agencies that meet the credit needs of the rural masses in India. The informal sector advances loans at very high rates of interest; the terms and conditions attached to such loans have given rise to an elaborate structure of intimidation of both economic and noneconomic conditions in the rural population of India.[12] The supply of total formal credit is inadequate and rural credit markets are imperfect and fragmented. Moreover, the distribution of formal sector credit has been unequal, particularly with respect to region and class, cast and gender in the country side. the agricultural sector through the short-term and term-loans for the development of the agriculture sectors in the economy. The disbursements of short-term loans for crops during the study period are encouraging and it constituted a higher rate than that of term-loans. Also the loans provide by the RRBs to various groups in the priority sector shows an increasing trend. The years 2007-08 and 2008-09 registered higher growth. When compared to the loans to non-agricultural activities, the highest share is recorded in the agriculture.[13]

However, it is the responsibility of the banks and the management to look into the matter of providing sufficient amount of loans to non-priority sector as well. The gap between short-term loans for crop and the term-loans for agricultural and allied activities need to be minimized. The banks need to encourage the agricultural sector by providing larger amount of term loans. Generally, non-agricultural sector indirectly helps the rural economy in many ways. Keeping in view, the RRBs may enhance the percentage of loan to this sector. This finding may be considerable use to rural banking institutions and policy makers in developing and shaping the appropriate credit structure as RRBs are integral part of the rural credit structure in India.[14]

Indian is known as country of villages and the agriculture and allied activities are the backbone for the economic development of the country.[15] Agriculture Sector assumes vital importance since it provides livelihood to 3/4 th of the country s population besides becoming significant source for raw material for many industries. Thus, agriculture is an important engine for economic growth of the country. After the nationalization of commercial banks in 1969, "social and development banking" was declared to be an official policy objective of rural banking. Formal institutions of credit provision, mainly commercial banks,[16] emerged as important sources of finance to agriculture, countervailing usurious moneylenders and landlords. The policy of social and development banking was supply-led; it aimed at augmenting the supply of credit to rural areas and providing credit at affordable interest rates. Financial inclusion plays a major role in driving a way the poverty from the country. Suggesting that India, home to the largest number of poor in 2012, may have been overestimating the number of its poor, the World Bank has detailed how a shift in the way consumption expenditure is recorded alters the country's poverty rate from 21.2% to 12.4% for 2011-12. Financial inclusion efforts received a big fillip with the launch of the Pradhan Mantri Jan Dhan Yojana (PMJDY) coupled with synchronized efforts by the Reserve Bank. To simplify credit dispensation, the need to submit, no due certificates to scheduled commercial banks by individual borrowers, including self help groups (SHGs) and joint liability groups

(JLGs) for all types of loans, irrespective of the amount involved, was discontinued.[17] The RRBs across the states need to work on providing financial assistance to the weaker sections. The study also concludes that the RRBs have been providing loans to agriculture allied sectors and micro enterprise, which have a significant impact on the financial performance. Even among these sectors, microenterprise has a better impact on the financial efficiency of RRBs. Loans to weaker sections and NPA could not affect the financial performance of RRBs. This clearly shows that loans to weaker sections are so small and low in value that even if it becomes NPA, it did not affect the financial performance of RRBs.[18]

Agriculture is an important engine for economic growth of the country as agriculture provides largest employer of the country's population and the financial inclusion as one of the crucial obstacles in ensuring equitable agricultural growth of the nation.[19] Financial inclusion refers to delivery banking services to masses including privileged and disadvantaged people at an affordable terms and conditions. It not only enhances overall financial intensity of agriculture but also help in increasing rural nonfarm activities which lead to development of rural economy and improve economic condition of people. The launch of the Pradhan Mantri Jan Dhan Yojana (PMJDY) provided an added impetus to the various initiatives undertaken by the Reserve Bank towards furthering financial inclusion and financial literacy.[20] The aim of research article to highlight the credit flow to agriculture, farmers and to deal with innovation and experiment that reduces gap between farmers and banking sector.[21] As the sector is directly related to agriculture and is the main stay for the majority of the population of India but its success and failure depend to great level on the availability of adequate, timely and low cost credit from institutional sources, programs for the development of irrigation soil conservation, mechanization and increased use of inputs like fertilizers and pesticides which require substantial credit support.

Conclusion : The study has made a significant contribution towards the financial efficacy and involvement of different stakeholders. However, the study is limited to the secondary data available from RRB report from different states of the country. The study paves a way for further research to find out the contribution of RRBs towards the weaker sections in the rural areas of different states. The study presents the financial performance of the RRBs of the country as a whole. We feel that a comparative study may be made to determine RRB's financial performance state wise contribution. The study can be beneficial for the decision makers to develop a roadmap for increasing the financial assistance for the weaker sections. Agriculture is an important engine for economic growth of the country as agriculture provides largest employer of the country's population and the financial inclusion as one of the crucial obstacles in ensuring equitable agricultural growth of the nation.

The findings also reflected that stand-alone RRBs were largely efficient as compared to amalgamated RRBs. Several researchers criticized the amalgamation policy and said it will be a death blow to the poor who already lack access to credit. He also demanded immediate action on the amalgamation of RRBs in the interest of the vast majority of the rural poor. In terms of sponsor banks, the RRBs, State bank of India had the highest efficient RRBs, followed by the Bank of India. The RRBs across the states need to work on providing financial assistance to the weaker sections. The study also concludes that the RRBs have been providing loans to agriculture allied sectors and micro enterprise, which have a significant impact on the financial performance. Even among these sectors, microenterprise has a better impact on the financial efficiency of RRBs. Loans to weaker sections and NPA could not affect the financial performance of RRBs. This clearly shows that loans to weaker sections are so small and low in value that even if it becomes NPA, it did not affect the financial performance of RRBs. This finding does not support the amalgamation of RRBs and suggest that government should support the opening up of RRBs, and they should not be compared with traditional and commercial banks for their performance. However, it needs to be noted that this analysis is based on only one year of data. The same analysis can be repeated with multiple years to get more reliable findings in this regard.

References

1. Abel, S., Bara, A., & Le Roux, P. (2018), Decomposition of the Technical Efficiency of the Banking System, Journal of Economic and Financial Sciences, 11(1), 1-9.

2. Agrawal Meenu, Regional Rural Banks and Inclusive Growth, New century Publications, New Delhi, 2009, p.170

3. Ahmed, J. U. (2016), Productivity Analysis of Rural Banks in India : A Case of Meghalaya Rural Bank.

4. Amarender Reddy, A. (2006), Productivity Growth in Regional Rural Banks. Economic and Political Weekly.

5. Ashok Khurana and Mandeep Singh (2010), NPA Management : A Study of New Private Sector Banks in India, Indian Journal of Finance.

6. Bagozzi, R. P., & Heatherton, T. F. (1994), A General Approach to Representing Multifaceted Personality Constructs : Application to State Self Esteem, Structural Equation Modeling : A Multidisciplinary Journal, 1(1), 35-67.

7. Balishter, A.K, Yatendra Singh and Malkhan Singh (1990), Role of Regional Rural Banks in Upliftment of Weaker Section-A Study in Agra District of U.P. Agricultural Situation in India.

8. Bapna, M. S., Regional Rural Banks in Rajasthan, Himalaya Publishing House, Bombay,1980

9. Ibid, p.16

10. Chavan and Pallavi, Have Examined the Growth and Regional Distribution of Rural Banking Over the Period 1975-2002, (2004).

11. Creswell, J. W., Clark, V. P., & Garrett, A. L. (2003), Advanced Mixed Methods Research, Handbook of Mixed Methods in Social and Behavioural Research, Thousand Oaks, CA : Sage, 209-240.

12. D.'Souza, Errol. (2002), How Well have Public Sector Banks Done - A Note Economic and Political Weekly.

13. Gounaris, S., Megicks, P., Mishra, A., & Lean, J. (2005), Enhancing Microfinance Outreach Through Market Oriented New Service Development in Indian Regional Rural Banks, International Journal of Bank Marketing.

14. Gupta, A., Chotia, V., & Rao, N. V. M. (2014), Financial Inclusion and Human Development : A State-wise Analysis from India, International Journal of Economics, Commerce and Management, 2(5), 1-23.

15. Ibid, P. 28

16. Abhiman Das et al (2009), Impact of Agricultural Credit on Agriculture Production : An Empirical Analysis in India, Reserve Bank of India Occasional Papers, Vol. 30, No.2.

17. Kiran Bala et al (2015), Analysis of Loan Disbursement to Agricultural Sector by Regional Rural Bank in Sirsa District of Haryana, India, International Research Journal of Social SciencesVol. 4(3), 54-57.

18. R. Ramakumar, et al, Bank Credit to Agriculture in India in the 2000s : Dissecting the Revival, Tata Institute of Social Sciences, rr@tiss.edu.

19. Atul Raman, (2012), Financial Inclusion and Growth of Indian Banking System, IOSR Journal of Business and Management, Volume 1, Issue 3, PP 25-29.

20. D.L. Rawal, Flow of Credit to Agriculture Sector, IBA Sub-Committee on Flow of Credit to Agriculture.

21. Priyanka Saini, et al, (2014), Role of Commercial Bank in the Economic Development of INDIA, International Journal of Engineering and Management Research, Volume-4, Issue-1, PP. 27-31.

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

English : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 50-53

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Stanley Fish's Critical Views on Milton : A Critical Study

*Dr. Neelam Kumar Sharma** *Dr. Manish Joshi***

Stanley Eugene Fish (1938-)is an American literary theorist, legal scholar, author and public intellectual. He is currently floresheimer distinguished visiting professor of law at Yeshiva University's Benjamin N Cardozo School of law in New York City. He is associated with postmodernism, although he views himself an advocate ofanti foundationalism. He is also viewed as having influenced the rise and development of reader response theory.

Stanley Fish Started his literary career as a medievalist. He got his first book published on John Skelton, Renaissance poet (late medieval). He has written the essay on Milton titled Milton Thou Shouldst Be living at this Hour.

In his book How Milton Works, he explains Milton is not only the apostle of unrestrained freedom but is also "above all, a Humanist- The greatest representative in England of that movement which had abandoned the dogmatism of the Middle Ages and was seeking for a natural or empirical basis for its beliefs". Fish also differentiates between Milton the Man and Milton the poet. Stanley Fish has given the most remarkable works of Milton interpretation in our generation. Prior 1967, most Miltonists had divided themselves in to two camps those who believed that Milton was sincere in his Roundhead and Puritan convictions and wrote only to edify his readers and those who believed that, at least in Paradise Lost, He was (in William Blake's famous Phrase)"of the Devil's party without knowing it." According to this latter view- which in the wake of Romanticism became the received wisdom-Milton's portrait of Satan was too seductive, too fascinating, in a word too Romantic, and his portrait of God too mono chromatic and totalitarian, too frightening and repellent for the reader to take at face value Milton's surface Christian convictions. Thus the Milton-Is-Sincere School accepts the surface of the text and then uses that surface meaning to prove its case; while the Milton-as –Closet-Satanist position by definition has to deny the validity of the surface meaning as probative.

Absolutely crucial to one's interpretation of Milton's work is a document discovered among Milton's papers in the nineteenth century called De-Doctriana Christiana, basically a tract arguing on behalf of a number of heresies, especially these three openly avowed heterodoxies; that the Son was not coeternal with the Father, that the soul dies and is only late resurrected with the body, and that God created the world not out of nothing but out of the divine Substance (interestingly enough, Isaac Newton's Christology was similarly Arian).

Given Milton's semi canonical statusas an interpreter of the Fall, such explicitly professed heterodoxy makes many critics uncomfortable and so they insist that this document can not have come from his pen.

* *Asst. Prof., English, Hindu College, Moradabad*

** *Asst. Prof., English, Hindu College, Moradabad*

And so Stanley Fish, in How Milton Works, argues for the Miltonic authorship of Christian Doctrine and on the basis of the same principles used by historical critics.

If Surprised by Sin refuted the Romantic misreading of Paradise Lost as a closet apologia for Satan, How Milton Works can be seen as the bitter enemy of royal censorship and ringing advocate of free speech and non dogmatic Christianity:

Fish quotes a liberal who holds that Milton is not only the apostle of unrestrained freedom but is also above all a Humanist – the greatest representative in England of that movement which has abandoned the dogmatism of the Middle Ages and was seeking for a natural or empirical basis for the beliefs."

Now anyone who has rightly read but two pages of Milton's prose knows that these views are just wrong but utterly antithetical to everything he stood for. In fact theAreopagitica specifically advocates that the government keep " a vigilant eye how books demean themselves, " and it goes on to urge the authorities, thereafter to confine, imprison, and do sharpest justice on [their authors] as malefactors."

Of course, not all liberal critics are as blind to the plain meaning of Milton's texts. Some liberals, however blinkered their own views, cannot help but recognize Milton's Puritanism or his debt to medieval angelology. Yet because they remain attached to his antiroyalist politics and appreciate his polemic against prior restraint and government licensing of the printing presses, they posit a nonexistent conflict between the poet's republican politics and his "repressive" theology. A critic by the name of Herman Rapaport, for example, holds that Milton was "committed to the republicanism of Rome and to ideals of freedom and liberty ... but [his] mind also harbored a darker fascination with a dictatorial takeover, with what amounts to another absolution much bleaker and more calculating than the foppery of Charles I." But this dichotomy, too, is wrong, utterly wrong.....

As Fish rightly sees, "there are not two landscapes but only one is his thought". C.S. Lewis would agree; as he put it in his preface to Paradise Lost, trying to disentangle Milton's poetry from his theology is like asking us to study Hamlet after the revenge code has been removed. The Romantic misunderstanding of Milton begins and ends here, by dispensing with or ignoring Milton's God. For Fish, the romantic interpretation depends on removing God from Milton's thought".

Augustine's treatises on lying often strike modern readers as too absurdly demanding and unrealistic. But these objections do not take sufficient account of Augustine's view, shared by Milton. But that still does not gainsay Milton's and Fish's wider point that Satan is always, in Milton's phrase, "scoffing in ambiguous words". All of Satan's speeches to his minions in Book I or to Eve in Book IX draw on the resources of equivocation without PolysemySatan could get nowhere. Jean Paul Sarte once famously said that "hell is other people". For Milton that should be amended to "hell is other equivocators," or as he puts it , hell is for Milton discordance is Inevitable by product of original sin, which is why in the Areopagitica he can, with perfect consistency, take a dim view of the pernicious effects in his day of unbridled first speech and yet argue against prior restraint by the government . Once Adam and Eve have been expelled from Eden, and the human race spreads over the globe, a Babel of voices now clamour (literally) for attention and discernment, at least when done by hard – and- fast rule or algorithm becomes impossible, as Fish has so shrewdly seen in his exegesis of the Miltonian Fall.

Admittedly, Milton at first held out the possibility of clear vision in the regenerate. In his intensely antiprelatical tracts written before 1645, Milton speaks of a world in which the truth embodied in a sacred text is known by one group, the puritans, and rejected by another the defenders of Episcopal prelacy, who clearly are possessed by a false spirit- if not by the Devil, then at least by their own carnal imaginations. As for those who do not see the perspicuity of scripture shining through the obvious literal meaning of the sacred text, they are too obviously doomed any way, which is why Milton ends his tracts not with a plea for tolerance but with prayers of execration against the parties opposing him.

But then came his divorce and as Dr. Johnson dryly noted, 'being one of those who could easily find arguments to justify implication, "Milton published in 1644 The Doctrine and Discipline of Divorce, which in a remarkable interpretative sleight of hand managed to interpret away all of the scriptural prohibitions of divorce, a feat of ledger domain "so strenuous, "says Fish," that even the word Manipulation, is too mild to describe it. " For what Milton had to do was to show that when Christ says that a man can divorce his wife only for reasons of adultery, "he means that a man can put away his wife for any reason he likes."

In the words of Milton's own manifested attacking government oversight of the press, " If it comes to prohibiting, there is not ought more likely to be prohibited than truth itself; whose first appearance to your eyes, bleared and dimmed with prejudice and custom, is more unsightly and Implausible than many errors, " Milton's defence of a free press, then, is not merely Tactical".

The greatest merit of Fish's How Milton Works emerges when the reader finally comes to see how Pascalian, indeed how modern, Milton really is "Milton works from the inside out, " Fish says. "In the world as he conceives it to be, truth and certainty are achieved not by moving from evidence gathered in discrete bits to general conclusions, but by putting in place general conclusions in the light of which evidence will then appear."

Not only does this passage accurately describe Milton's theological epistemology, but it also describes the situation as it has to be for all believers, for no other framework could make Satan's sin possible in the first place.

Fish is not arguing that Milton is an idealist, in the sense of someone who believes that thinking makes it so and that unhappy situations can be simply wished away by the cheap expedient of declaring them otherwise nor is Fish claiming that Milton thinks these primal options take place without consequences, which themselves have indicative value. Quite the opposite: nothing could be more fateful, more fraught with consequences for later life. But because these decisions are world constituting, they end up taking a life of their own:

Considering the case of Satan himself in the course of Paradise lost. As C.S. Lewis puts it, his declension in the first nine books goes like this: "From hero to general, from general to politician to secret service agent, and there to a thing that peers in at bedroom or bathroom windows, and thence to a toad, and finally to a snake – such is the progress of Satan,"As nearly all critics would agree, the attractiveness that Satan displays in the first two books nearly stems from the impact of Romanticism. But as Fish already noted in his first Milton book, the human condition will always find Satan attractive, at least until he can capture the soul, for that susceptibility to the devil's charms is part of the legacy of original sin. Milton's corollary to that fundamental law of nature might be: "Sin catches up with everyone". Father Newhouse sounds remarkably Miltonian when he says that "Christianity does propose a unified conception of life, but had unified conception of life, but that unified conception of life comprehends and makes possible the pluralistic character of life as we experience it," Which among other things neatly summarizes the argument of Milton's Areopagitica.

Milton's republicanism was I am afraid, founded desire of independence; in petulance impatient of control, and pride disdainful of superiority. He hates monarchs in the state and prelates in the church; for he hated all whom he was required to obey. It is to be suspected that the predominant desire was to destroy rather than establish, and that he felt no so much the love of liberty as a repugnance to authority. It has been observed that they who most loudly lamer for liberty do not most liberally grant it. What we know of Milton's Character in domestic relations is that he was severe and arbitrary. His family consisted of women; and there appears in his books something like a Turkish contempt of female as subordinate and inferior being.

Milton was perfectly able and willing to contravene the plain sense of Scripture in his divorce tracts when it suited him, for his doctrine of the Inner light coupled with his sceptical the logical epistemology, would naturally lead him to rely on his own judgment alone, Thus, after roundly condemning the Episcopal polity of the established church, he then later found himself roundly condemned for his divorce tracts by fellow puritans, which in turn led to the inevitable outcome that he belonged to a church of one, himself. Again, Dr. Johnson has understood perhaps better than any else, the astigmatism entailed by this ecclesiastical solipsism:

To be of no church is dangerous. Religion, of which the rewards are distant and which is animated only by faith and hope, will grime by degrees out of mind unless it be invigorated and reimpressed by external ordinances by stated calls to worship, and the salutary influence of example.

Milton who appears to have had full conviction of the truth of Christianity, and to have regarded the Holy Scriptures with the profoundest veneration, to have been unattained by an heretical peculiarity of opinion Dr. Johnson of course wrote this before Milton's heretical manuscripts were discovered, and to have lived in a confirmed belief of their immediate and accessional agency of providence, yet grew old without any visible worship. In the distribution of his hours, there was no hour of prayer, either solitary or with his household; omitting public prayers, he omitted all. Of this omission the reason has been sought, upon a supposition which ought never to be that men live with their own approbation and justify these conducts to them.

In other words Milton's deficient ecclesiology leads to precisely the kind of faith in God as being so terrifyingly unmoored by any evidence of reasonability. The literal meaning of "self-righteous"refers to people who, in Dr. Johnson's terms, "Justify their conduct to themselves," although the term usually also Connotes an unpleasantly arrogant person, one may still legitimately call Milton literally "self-righteous" without making any reference to flaws in his character (though no doubt Johnson is correct in seeing some sort of link between the two, especially in Milton's relations with his wives and daughters).

Stanley Fish's book has altered us, as no other critic has done since Lewis, that Milton is above all a theologian indeed or theologian the reading of whom prods us to a decision that could not be more basic. As Dr. Johnson said in wondrous prose: we allsin like and like him must all bewail our offenses; we have restless and insidious enemies in the fallen angels, and in the blessed spirits we have guardian and friends; in the redemption of mankind we hope to be included: in the description of heaven and hell we are rarely interested, and we are all to reside hereafter either in the regions of horror or of bliss".

References

1. Fish's How Milton Works, Harvard University Press, 2001.

2. Arthur Barker's Milton and Puritan Dilemma (1942, University of Toronto Press, 1976).

3. Sharma, Neelam K 'The Christian Tradition in Milton's Prose Pamphlets, Contemporary Vibes, Jan-March,2011, Vol. No 06

4. EMW Tillyard 1966, The English Epic and Its Background, New York: Oxford University Press.

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Management : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 54-61

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Impact of Advertising Strategies on Buyers' Behavior, Focusing on a Case Study of Sony Center in Patna, India

Dr. Faryas Kausar Ansari*

ABSTRACT : *This research paper investigates the impact of advertising strategies on buyers' behavior, focusing on a case study of Sony Center in Patna, India. A mixed-methods approach was employed, utilizing a survey distributed to 100 store visitors and secondary data to examine the effectiveness of advertising strategies, brand perception, customer recommendations, and satisfaction with services and promotions. The findings reveal that a majority of respondents were male, under 20 years old, and either students or professionals. Frequent visitors comprised 55% of respondents, and 88% were likely to recommend Sony Center to others. Advertising significantly influenced store visits (87%), with discounts being the most attractive promotional activity (42%). Customer satisfaction with service was high, with 64% reporting consistent issue resolution. Overall, the study supports the hypothesis that advertising strategies positively affect consumer buying behavior in the context of Sony Center, Patna.*

Keywords : *Advertising strategies, buyer behavior, Sony Center, Patna, customer satisfaction.*

1. INTRODUCTION : In today's highly competitive business environment, effective advertising strategies are crucial for companies to attract and retain customers. Advertising plays a critical role in shaping consumers' perceptions and influencing their purchasing behavior. Therefore, understanding the impact of advertising strategies on buyers' behavior is essential for businesses to create successful marketing campaigns (Farooq and Maqbool, 2024). It is much more than buying things; it also encompasses the study of how having or not having things affects people's lives and how the possession of a good or service influences people's state of being (Wardhana et al.2023).

The purpose of this dissertation is to investigate the impact of advertising strategies on buyers' behavior, with a focus on a case study of the Sony Center in Patna. Sony Center is a leading electronics retailer that operates in Patna, a rapidly growing city in India. The company has been using various advertising strategies to promote its products and services, such as television commercials, social media campaigns, and in-store promotions.

The study aims to identify the key advertising strategies used by Sony Center and examine their impact on buyers' behavior, including their attitudes, perceptions, and purchasing decisions. The research will employ a mixed-methods approach, combining qualitative and quantitative data collection methods to provide a comprehensive understanding of the research topic.

Overall, this research article seeks to contribute to the understanding of the impact of advertising strategies on buyers' behavior and provide insights for businesses to create effective marketing campaigns.

* ***Guest Assistant Professor, Vanijaya Mahavidyalaya, Patna University.***

2. STUDY AREA : Sony Center Patna is strategically located in a prime commercial area of Patna, with a spacious and well-designed showroom to showcase Sony products. The store is equipped with modern amenities, such as a comfortable customer lounge, demo zones, and ample parking facilities, providing a convenient shopping experience for customers.

Fig 1 : Location of Sony Center-The IT Zone, Patna

It is a leading electronics retail store located in the city of Patna, Bihar, India. It is an authorized retailer of Sony brand products, offering a wide range of consumer electronics, including televisions, home theaters, audio systems, cameras, smartphones, gaming consoles, and accessories.

3. MATERIALS AND METHODS : It outlines the overall plan and design of a research study, including the strategies, methods, and procedures employed for data collection, data analysis, and interpretation of findings. Research methodology serves as a roadmap for conducting research in a structured and organized manner, ensuring that the study is rigorous, reliable, and valid.

Type of Methodology : Descriptive Research

Sample Design : It is a particular definite plan formulation before collecting the data from the population. In sampling, there are 2 types of sampling proceduresi.e., probability sampling and non-probability sampling. In this research, only non-probability sampling is used.

Sample design:	Non-probability sampling
Sampling technique:	Random sampling
Sample unit:	Store visitors
Sample size:	100 respondents
Area of Study:	Sony Center, Patna

Source of Data : In this study, the data required was current data as well as existing data to support the collected data. Therefore, it was decided that for this research, both primary as well as secondary data sources will be utilized.

1. Primary Data Source : To collect primary data, a structured questionnaire containing closed-ended questions was used. The questionnaire was prepared with the help of "Google Forms" and was distributed among the consumers through Internet-based applications.

2. Secondary Data Source : Secondary data sources like the internet, magazines, newspapers, journals, books, etc. were used to collect the existing data in support of the study, the existing literature gave a base to the research and helped in further study.

4. RESULT

Table 1 : Respondents Divided by Gender

S.No.	Gender	No. of Respondents	Percentage
1.	Male	55	55%
2.	Female	45	45%
3.	Total	100	100%

As per the survey, out of 100 respondents, there are 55 male respondents and 45 female respondents.

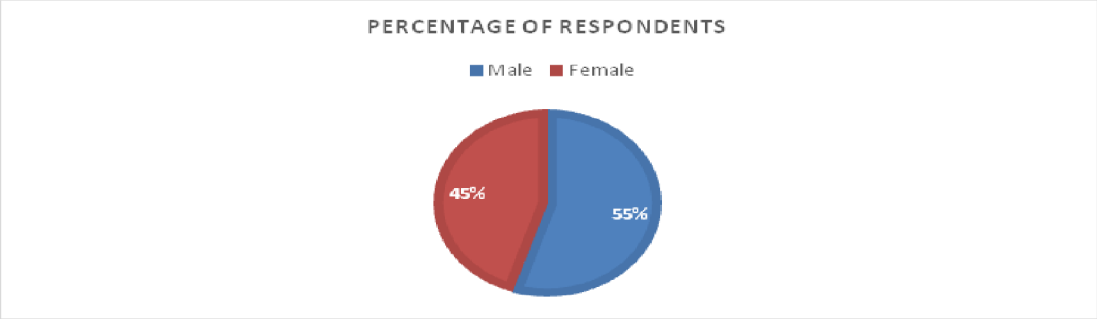

Fig 2 : Pie Chart Showing Respondents Divided on Gender

Table 2 : Respondents Divided by Age Group

S.No.	Age group (years)	No. of Respondents	Percentage
1.	20	42	42%
2.	25-30	36	36%
3.	30-40	18	18%
4.	40-50	04	04%
5.	Total	100	100%

As per the survey, 42% of the respondents are within 20 years age group, 36% of the respondents are within the 25-30 years age group, 18% of respondents are within the 30-40 years age group and the rest 4% respondents are within 40-50 years age group.

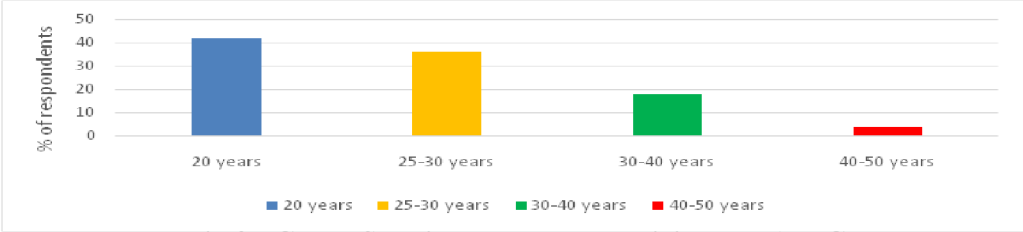

Fig 3 : Graph Showing Respondents Divided by Age Group

From the survey taken from different age groups of customers, most of the customers were under the age group of 20 years.

Table 3 : Respondents Divided Based on Occupation

S.No.	Particulars	No. of Respondents	Percentage
1.	Students	59	59%
2.	Professionals	30	30%
3.	Employees	09	09%
4.	Housewives	02	02%
5.	Total	100	100%

Among the respondents, there are 59% students, 30% professionals, 09% employees, and 02% housewives.

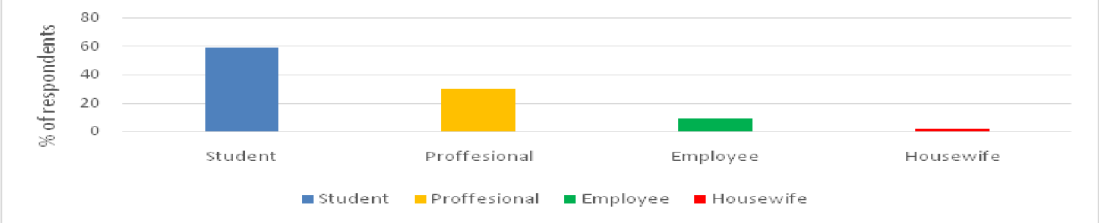

Fig 4 : Graph Showing Respondents' Occupation

In this survey, professionals and students replied more frequently than employees and housewives.

Table 4 : Respondents Divided on Frequent Visits to the Sony Center

S.No.	Particulars	No. of Respondents	Percentage
1.	Yes	55	55%
2.	No	45	45%
3.	Total	100	100%

From this survey, out of 100 percent of respondents, 55 percent of the respondents are frequent visitors while 45 percent of the respondents are less frequent visitors at Sony Center, Patna.

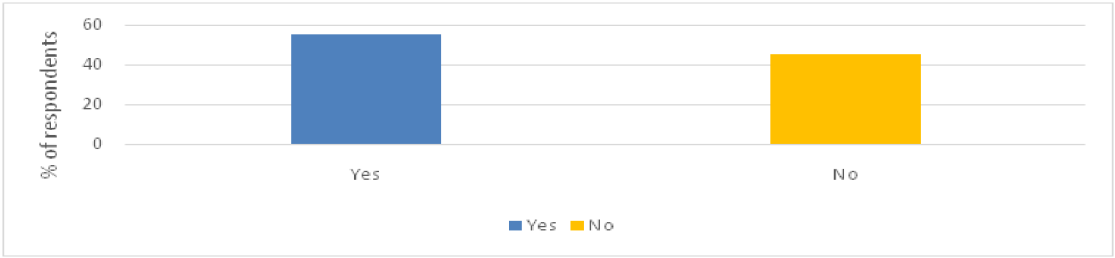

Fig 5 : Graph showing frequent visitors of Sony Center, Patna

As per the survey, 55 percent of customers were frequent visitors of Sony Center, Patna.

Table 5 : Respondents Divided on Recommending Sony Center to Family and Friends

S.No.	Particulars	No. of Respondents	Percentage
1.	Yes	88	88%
2.	No	12	12%
3.	Total	100	100%

From this survey, out of 100 percent of respondents, 88 percent of the respondents recommend it, while 12 percent of the respondents do not recommend Sony Center to their family and friends.

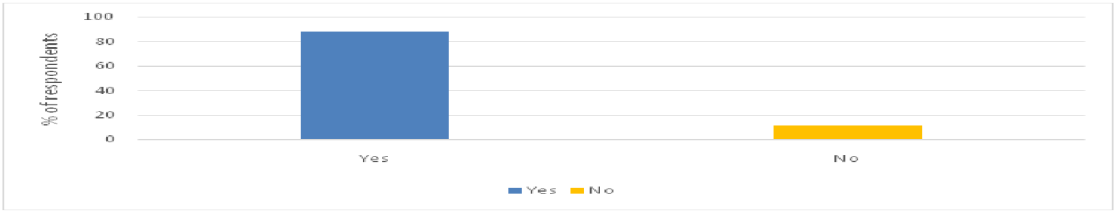

Fig 6 : Graph Showing Respondents Divided on Recommending Sony Center to Family and Friends

As per the survey, 88% of customers recommend Sony Center, Patna.

Table 6 : Respondents Divided on Whether Advertising Helps Visit Sony Center

S.No.	Particulars	No. of Respondents	Percentage
1.	Yes	87	87%
2.	No	13	13%
3.	Total	100	100%

From this survey out of 100 percent of respondents 87 percent of the respondents are attracted to Sony Center by the advertising activities while the rest 13 percent of the respondents are not attracted by the advertising activities of Sony Center, Patna.

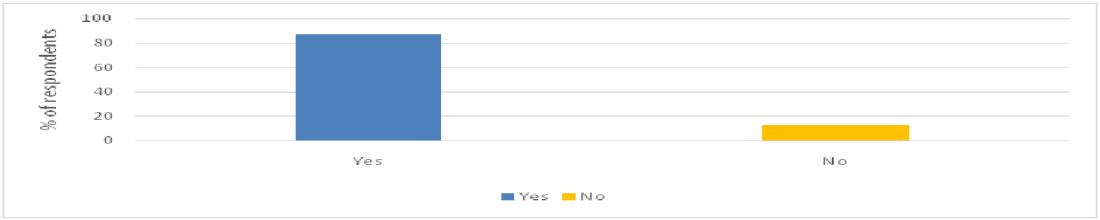

Fig 7 : Graph Showing Respondents Divided on Whether Advertising Helps Visit Sony Center

As per the survey, 87 percent of respondents believe Sony Center advertisements encourage visits.

Table 7 : Customer Schemes of Sony Center rated by Respondents

S.No.	Particulars	No. of Respondents	Percentage
1.	Good	63	63%
2.	Average	37	37%
3.	Poor	00	00%
5.	Total	100	100%

Based on the survey, out of 100 percent of respondents, 63% of customers rated the customer schemes of Sony Center as "good", while 37% rated them as "average".

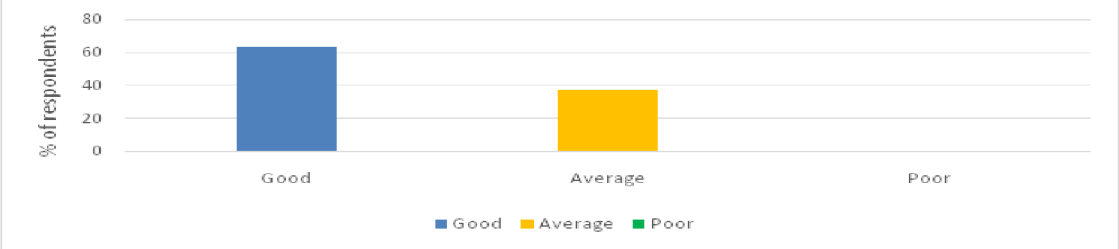

Fig 8 : Graph Showing Customer Schemes of Sony Center Rated by Respondents

As per the survey, 63 percent of the respondents are pleased with the customer schemes of Sony Center, Patna.

Table 8 : Respondents Divided on the Type of Promotional Activities that Attract Customers

S.No.	Particulars	No. of Respondents	Percentage
1.	Discounts	42	42%
2.	Advertisement	31	31%
3.	Extra Offer	27	27%
4.	Total	100	100%

Based on the survey, out of 100 percent of respondents, 42% of the respondents chose "discounts" as promotional activities, while 31% chose "advertisement", and the rest 27% chose "extra offer".

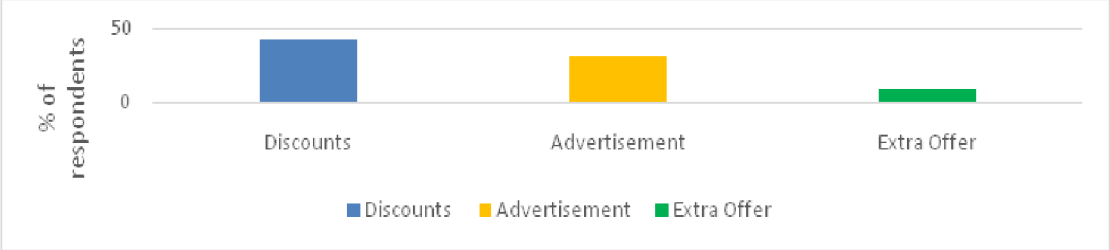

Fig 9 : Graph Showing the Percentage of Respondents Divided on the Type of Promotional Activities that Attract Customers

As per the survey, 42 percent of Sony Center customers prefer "discounts" as promotional activities.

Table 9 : Respondents Based on Sony Center Customer Service

S.No.	Particulars	No. of Respondents	Percentage
1.	Always	64	64%
2.	Sometime	31	31%
3.	Very rarely	05	05%
4.	Never	00	00%
5.	Total	100	100%

According to the survey, 64% of participants felt that Sony Centre customer care "always" resolves problems for their clients, 31% said "sometimes," and the remaining 5% said "very rarely."

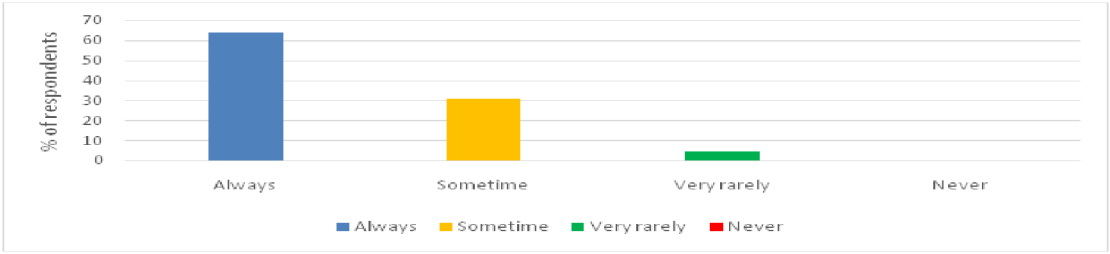

Fig 10 : Graph Showing the Percentage of Respondents Based on Sony Center Customer Service

As per the survey, 64 percent of the respondents believe that Sony Center Patna always resolves issues.

Table 10 : Extent of Satisfaction with Sony Center, Patna in Terms of Customer Care Support

S.No.	Particulars	No. of Respondents	Percentage
1.	Highly Satisfied	46	46%
2.	Satisfied	35	35%
3.	Moderately Satisfied	18	18%
4.	Dissatisfied	01	01%
5.	Total	100	100%

Based on the survey of 100% of respondents, 46% of customers were highly satisfied with the customer care support provided by Sony Center, Patna, while 35% of customers were "satisfied", 18% customers were "moderately satisfied" while the remaining 1% were "dissatisfied".

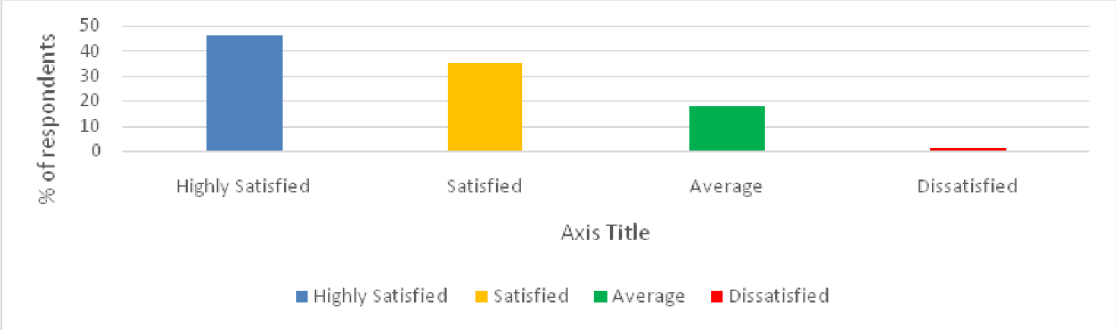

Fig 11 : Graph Showing the Extent of Satisfaction with Sony Center, Patna in Terms of Customer Care Support

As per the survey, the majority of the respondents are satisfied with the customer care support of Sony Center, Patna.

Table 11 : Respondents divided on whether Sony Center, Patna offers attractive offers

S.No.	Particulars	No. of Respondents	Percentage
1.	Yes	84	84%
2.	No	16	16%
3.	Total	100	100%

From this survey, out of 100 percent of respondents, 84 percent of the respondents are drawn to Sony Centre, Patna by the appealing offers, while the remaining 16 percent are not drawn towards the appealing offers.

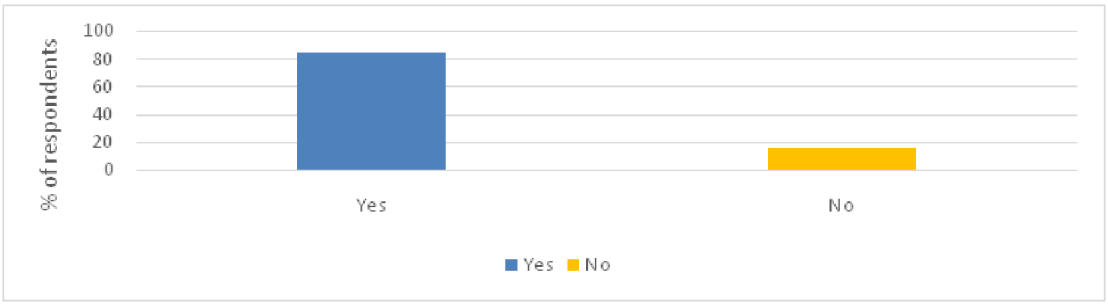

Fig 12 : Graph showing respondents divided on whether Sony Center, Patna offers attractive offers

As per the survey, 84 percent of respondents agree Sony Center, Patna offers good deals.

5. CONCLUSION : The advertising strategies implemented by Sony Centre in Patna have a significant impact on buyers' behavior. Through various advertising techniques such as digital marketing, social media campaigns, and in-store promotions, Sony Centre has been successful in creating brand awareness, generating interest, and influencing consumer behavior. The study revealed that advertising strategies played a crucial role in shaping consumer perceptions, attitudes, and purchase decisions.

Moreover, the case study also revealed that the integration of online and offline advertising strategies has been a key factor in shaping buyer behavior. The use of digital marketing channels has allowed Sony Centre to reach a wider audience, create personalized experiences, and facilitate easy access to product information, while in-store promotions have helped enhance the overall customer experience and build brand loyalty.

Overall, the impact of advertising strategies on buyers' behavior cannot be overstated. It has been evident that well-planned and executed advertising strategies have the potential to significantly influence consumer behavior, leading to increased brand awareness, customer engagement, and ultimately, higher sales and revenue for Sony Centre in Patna.

REFERENCES

1. Farooq, S., & Maqbool, A. (2024). Advertising as An Influencing Factor on Consumer Behavior. *Revista De Gestao Social E Ambiental*, *18*(9), e06587-e06587.

2. Wardhana, A. S., Pawito, P., & Satyawan, I. A. (2023). Marketing Communication Analysis of the Consumer Decision Making Process. *Formosa Journal of Science and Technology*, *2*(11), 3107-3120.

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Sociology : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 62-65

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

बिहार राज्य में ग्रामीण महिला श्रमिकों की शिक्षा एवं स्वास्थ्य स्थिति : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

*डॉ. कादम्विनी कुमारी**

सारांश : महिलाएँ समाज का एक अभिन्न अंग है। अतीत से ही महिलाओं का समााज में सर्वोपरि स्थान रहा है। कुल जनसंख्या का लगभग आध भाग महिलाओं का है। महिलाएँ सदैव हमारी सामाजिक सांस्कृतिक एवं पारिवारिक व्यवस्थाओं का आधर रही है। आज की परिस्थितियों में जीवन के हर क्षेत्र में इनका योगदान बढ़ रहा है। पुरुषों के साथ महिलाओं की सहभागिता से ही किसी देश, राज्य या क्षेत्र का विकास संभव है।

परिचय : महिलाओं की वर्तमान शैक्षिक स्थिति का खासकर श्रमिकों की स्थिति का समाजशास्त्रीय अध्ययन करने से पहले ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को देखना आवश्यक है। 1947 में स्वाधिनता प्राप्ति करने के उपरान्त महिलाओं की सामाजिक तथा शैक्षिक स्थिति में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। अज्ञानता, परतन्त्राता, रूढ़िवादिता तथा असहायता के बन्धनों से मुक्त होकर नारियाँ आज एक सम्मानजनक जीवन जी रही हैं। नारियों के प्रति पुरुषों के दृष्टिकोण में परिवर्तन आ रहा है। नारियों से सम्बन्धित सामाजिक मान्यताएँ बदल रही हैं। भारतीय संविधन में पुरुषों तथा नारियों को पूर्णरूपेण समान दर्जा देते हुए भी शिक्षा के प्रसार पर बल दिया गया है। स्वतंत्रता के उपरान्त नारी शिक्षा के मार्ग में आने वाली बाधाओं को जानने तथा उनका समाधान प्रस्तुत करने के लिए अनेक समितियों व आयोगों का गठन किया गया । सन् 1958 में गठित दुर्गाबाई देशमुख समिति तथा सन् 1962 में गठित हंसा मेहता समिति ने नारी शिक्षा के प्रसार से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किये। कोठारी आयोग (1964–66) ने भी महिला शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार के लिए अनेक महत्वपूर्ण सुझाव अपने प्रतिवेदन में दिये। सन् 1986 में घोषित नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भी नारी शिक्षा में क्रांतिकारी परिवर्तन लाये जाने का संकल्प दोहराया गया है। 11वीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत चार मानक निर्धारित कर दिए गए हैं। इनमें दो वर्षों तथा वर्ष 2007–08 व वर्ष 2008–09 के लिए यह अनुपात 65:35, वर्ष 2009–10 के लिए 60:40 वर्ष 2010–2011 के लिए 55:45 तथा वर्ष 2011–2012 और उसके बाद यह अनुपात 50:50 निर्धरित कर दिया गया है।

केन्द्रीय वित्त मंत्राालय द्वारा जारी किए गए आंकड़ों के अनुसार सरकार द्वारा जुलाई 2004 से लगाये गये शिक्षा अधिभार से वर्ष 2004–05 में 5010 करोड़ रुपये, वर्ष 2005–06 में 7638 करोड़ रुपये और वर्ष 2006–07 में 9833 करोड़ रुपये तथा वर्ष 2007–08 में 10993 करोड़ रुपये प्राप्त हुए हैं। वर्ष 2008–09 के केन्द्रीय बजट अनुमानों के अनुसार वर्ष 2008–09 में इस मद में 12023 करोड़ रुपये प्राप्त हाने की आशा व्यक्त की गई है। इस शिक्षा अधिभार के लगाये जाने से केन्द्र सरकार के पास प्राथमिक शिक्षा के लिए वित्तीय संसाधनों में उल्लेखनीय वर्ष के साथ–साथ प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की दिशा में भी उल्लेखनीय सपफलताएँ अर्जित की गयी हैं।

औपचारिक शिक्षा 1979, ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड योजना 1987, बेसिक शिक्षा परियोजना 1993, जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम 2004, कस्तूरबा गांधी विद्यालय योजना 2004, चरवाहा विद्यालय योजना 2004, राष्ट्रीय शिक्षा प्रोत्साहन योजना 2005, विशेष आवासीय बालिका विद्यालय योजना 2005, मॉडल स्कूल योजना 2008, इंस्पायर छात्रवृत्ति योजना 2008, दलित/पिछड़े/अल्पसंख्यकों के बच्चों हेतु मासिक छात्रवृत्ति जैसी कई महत्वपूर्ण योजनाएँ और कार्यक्रम संचालित किये गये हैं और इनका कई क्षेत्रों में अनुकूल प्रभाव भी दृष्टिगोचर हुआ है। सर्वशिक्षा अभियान (2001–2010) इन सभी कार्यक्रमों की तुलना में एक सर्वाधिक किये गये हैं।

* *तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर*

1975 में संयुक्त राष्ट्र संघ की ओर से 'अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष 1975' के उपलक्ष में मैक्सिको में विश्व सम्मेलन हुआ था। 1979 में गुटनिरपेक्ष एवं अन्य विकसित देशों का एक सम्मेलन बगदाद में भी हुआ था। 'विकास में महिलाओं की भूमिका' इसी विषय पर हवाना में भी 1981 में सम्मेलन हुआ। उससे निम्नांकित तथ्य उभरकर सामने आये–

1. अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष विकास में समुचित भागीदारी और मानवीय जीवन जीने के लिए महिलाओं को कठोर परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है।

2. आत्मविश्वास की सारी सम्भावनाएँ नारी होने, प्रजनन तथा परिवार पालने में समाप्त हो जाती है। उनका दोयम दर्जे (सेकेंड सेक्स) का होना ही बाधा का कारण है।

3. घर, परिवार, समाज, देश, सबके प्रति उनका सकारात्मक रूख हो, सबके विकास का संकल्प हो, तो शिक्षा की महती आवश्कता है।

ग्रामीण क्षेत्रों तथा सुविधाविहीन क्षेत्रों की नारियों को निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा दी जाए, जिससे आर्थिक–सामाजिक विकास को गति मिले तथा उनकी वैयक्तिक मुक्ति का द्वार उन्मुक्त हो। उनको सर्वांगीण विकास के अवसर मिले तथा सामाजिक परिवर्तन में उनकी भागीदारी हो। नगर की धनाढ्य जागरूक नारियों को विकास की तेज रफ्तार के साथ कदम–से–कदम मिलाकर चलने के लिए नाना प्रकार के शिक्षण–प्रशिक्षण–पुनश्चर्या की जरूरत है। मनोवैज्ञानिक चिकित्सा की प्रारंभिक जानकारी भी मिले, जिससे विधि–निषेध, करणीय–अकरणीय का अन्तर वे अपने विवेक से कर पाए हर परिस्थिति में वे पूर्णतः जागृत और विवेकशील हों। विमला मेहता (1979) का मानना है– 'नारी की शिक्षा का अर्थ है राष्ट्र की शिक्षा। एक नारी शिक्षित हुई तो कई शिक्षित होंगे। एक दीपक कई दीपकों को जलाएगा। नारी शिक्षा की बुनियादी खूबियां हैं बौद्धिक प्रगतिशीलता, जिसकी परिणति है राष्ट्र के प्रति गतिशीलता।' उनके अध्ययन का निष्कर्ष है कि प्रत्येक शिक्षित नारी को एक प्रकार का सामाजिक मूल्य विकसित करना है। एक प्रकार की सामाजिक मानसिकता उन मूल्यों के प्रति भी हो। शिक्षा तज्जन्य मूल्यबोध और उसके प्रति सतत जागरूकता लाती है। यही नई पीढ़ी में नए संस्कार और जीवन समर से जूझने की शक्ति भरती है।

महिला शिक्षा की समस्याओं तथा उनका समाधन करने के उपायों पर विचार करने के लिए सन् 1958 में भारत सरकार ने दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता में राष्ट्रीय महिला शिक्षा समिति का गठन किया, जिसे समिति की अध्यक्ष के नाम से दुर्गाबाई देशमुख समिति कहकर भी पुकारा जाता है। इस समिति का प्रमुख कार्य महिला शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं का अध्ययन करके उनके समाधन हेतु सुझाव देना था।

हंसा मेहता समिति : 1962 में राष्ट्रीय महिला शिक्षा परिषद् ने विद्यालय स्तर पर बालिकाओं के पाठ्यक्रम में अन्तर होने अथवा नहीं होने की महत्वपूर्ण समस्या पर विचार करने हेतु श्रीमती हंसा मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया जिसे समिति की अध्यक्ष के नाम पर हंसा मेहता समिति नाम से भी जाना जाता है। इस समिति ने विचार–विमर्श के उपरान्त सुझाव दिया कि विद्यालय स्तर पर बालक तथा बालिकाओं के पाठ्यक्रम में अन्तर नहीं होना चाहिए। समिति ने कहा कि भारत में जनतंत्रीय तथा समाजवादी समाज की स्थापना की प्रक्रिया चल रही है। अतः शिक्षा का सम्बन्ध व्यक्तिगत क्षमताओं, रूझानों तथा रुचियों से होना चाहिए, न कि यौन भेद से। समिति ने यह भी कहा कि कोई भी ऐसा कदम नहीं उठाना चाहिए जो लड़के तथा लड़कियों के बीच विद्यमान वर्तमान अन्तर को बढ़ाए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं महिला शिक्षा : सन् 1986 में घोषित नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में नारियों की शिक्षा में व्यापक परिवर्तन लाने की संकल्पना की गई है। शिक्षा को नारियों के स्तर में मूलभूत परिवर्तन लाने के साधन के रूप में प्रयोग करने को कहा गया है।

विवेचन से स्पष्ट है कि स्वतंत्रता के उपरान्त नारी शिक्षा के प्रति पूर्व प्रचलित संकुचित दृष्टिकोण को समाप्त करने का प्रयास किया गया है। आज भारत में नारियों को पुरुषों के समान शैक्षिक अधिकार प्राप्त है। वे धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, शैक्षिक आदि सभी क्षेत्रों में पुरुषों के समान सक्रिय रूप से भाग ले रही हैं।

बिहार में साक्षरता एवं महिला शिक्षा का विकास : बिहार में महिला शिक्षा खासकर मजदूरों महिलाओं की साक्षरता दर पूरे देश में असंतोषजनक ही कहा जा सकता है। राज्य सरकार महिलाओं एवं महिला मजदूरों के शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रयास की है जिससे इस क्षेत्र में प्रगति की जाय। बिहार में साक्षरता दर 2001 के 47.0 प्रतिशत से बढ़कर 2011 में 63.8 प्रतिशत हो गई है जो गत दशक में 16.8 प्रतिशत की वर्ष दर्शाती है।

यह दशकीय वर्ष बिहार में 1961 से लेकर अभी तक के सभी दशकों में हुई वर्ष दरों से ही अधिक नहीं है, 2010–11 दशक में देश के सभी राज्यों के बीच भी सर्वाधिक है। गौरतलब है कि पूरे देश के स्तर पर साक्षरता दर 2011 में 74.0 प्रतिशत है जो 2001 में 64.8 प्रतिशत थी जो 9.2 वर्ष दर्शाती है।

''स्वस्थ्य माँ, स्वस्थ्य बच्चे, सुखी परिवार'' कथन सत्य है, क्योंकि उत्तम स्वास्थ्य स्वस्थ एवं सुखी जीवन का आधर होता है एवं महिला के स्वास्थ्य पर पूरे परिवार का स्वस्थ्य निर्भर करता है। स्वस्थ माँ ही स्वस्थ शिशु को जन्म दे सकती है तथा उसका पालन–पोषण कर सकती है। परिवार–कल्याण के अन्तर्गत परिवार का सर्वांमुखी विकास, विशेषकर माँ और बच्चों के स्वास्थ्य और परिवार नियोजन पर निर्भर करता है। परिवार कल्याण कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य परिवार नियोजन है। कारगर महिला स्वास्थ्य–शिक्षा प्रसार के द्वारा इस उद्देश्य की प्राप्ति संभव है।

भारत के स्वास्थ्य क्षेत्र में कुल सरकारी व्यय सकल घरेलू उत्पाद का एक दशमलव दो प्रतिशत के बराबर है। संचारी रोग भारतीय महिलाओं की प्रमुख लोक स्वास्थ्य समस्या बनी हुई है। भारत के स्वास्थ्य क्षेत्र के बारे में विशेषज्ञों में आम राय है कि देश के विभिन्न भागों में और विभिन्न वर्गों में महिलाओं के लिए स्वास्थ्य सुविधाएँ एक जैसी नहीं है। देश में न केवल स्वास्थ्य सुविधाएँ अपर्याप्त हैं बल्कि कुशल जनशक्ति का भी घोर अभाव है।

महिला स्वास्थ्य शिक्षा प्रसार से जुड़ी अधिकतर समस्याओं को नीति निर्माताओं ने भी स्वीकार किया है जिसका प्रभाव 12वीं पंचवर्षीय योजना की तैयारी की प्रक्रिया में स्पष्ट दिखाई देता है। योजना के दृष्टिकोण–पत्रा में व्यापक स्वास्थ्य–शिक्षा सेवाएँ उपलब्ध कराने की आवश्यकता स्वीकार की गई हैं। संचारी रोग और निवारक स्वास्थ्य सेवाओं तथा ग्रामीण स्वास्थ्य सुविधाओं के स्तर में सुधार पर अधिक बल दिया गया है। जिलों को नियोजन, प्रशिक्षण और सेवा प्रदाय के अलावा पूंजी निवेश तथा मानव संसाधनों के अभाव को समाप्त करने की इकाई बनाने का सुझाव दिया गया है। सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा पर योजना आयोग द्वारा गठित उच्चस्तरीय विशेषज्ञ समूह ने सिफारिश की है कि स्वास्थ्य पर सरकारी खर्च सकल घरेलू उत्पाद के मौजूदा प्रतिशत से बढ़ाकर 12वीं योजना के अंत तक कम से कम ढ़ाई प्रतिशत कर दिया जाए। यह खर्च 2022 तक कम से कम 3 प्रतिशत के बराबर तक हो जाना चाहिए। अन्य जो सिफारिशें की गई हैं उनमें सभी महिलाओं को व्यापक स्वास्थ्य सुविधाओं का लाभ उठाने का अधिकार, दवाओं की खरीद पर सरकारी खर्च बढ़ाकर निःशुल्क दवाएँ उपलब्ध कराना, लोक स्वास्थ्य निवेश पर विशेष जोर और मानव संसाधन की समस्याओं के निराकरण के लिए अधिक प्रयास आदि है।

अप्रैल 2005 में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन की शुरूआत ग्रामीण क्षेत्रों में सभी लोगों को कम कीमत पर समान रूप से स्वास्थ्य सुविधाएँ मुहैया कराने तथा लोक जागरूकता लाने के उद्देश्य से की गई थी। यह मिशन विभिन्न राज्यों में स्वास्थ्य सेवाओं के असमान विकास की समस्या को दूर करने के एक नीतिगत उपाय के तौर पर शुरू किया गया था। केन्द्र इस मिशन के तहत स्वास्थ्य क्षेत्र के लक्ष्य को प्राप्त करने में राज्यों के स्वास्थ्य प्रणालियों को उचित आकार देने और सार्वजनिक स्वास्थ्य शिक्षा सेवाओं के मानदंड स्थापित करने में अग्रणी भूमिका निभाता है। शहरी गरीबों की स्वास्थ्य संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अनिवार्य प्राथमिक स्वास्थ्य शिक्षा तथा सुविधाएँ तुरंत उपलब्ध कराना भी एक ऐसा क्षेत्र है जिस पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

श्रमिक महिलाओं और बच्चों का कुपोषण, बालिकाओं का गिरता अनुपात, किशोरियों का स्वास्थ्य, ऐसी कुछ समस्याएँ हैं जिस पर तुरंत ध्यान देने की आवश्यकता है और इसमें महिला स्वास्थ्य–शिक्षा प्रसार कार्यक्रमों की अहम् भूमिका है। भारत एक अरब से अध्कि जनसंख्या वाला, विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है जिसमें, 29 राज्य, 9 केन्द्रशासित प्रदेश तथा विशिष्ट दर्जा प्राप्त राजधानी राज्य क्षेत्र दिल्ली शामिल है। भारत का संघीय स्वरूप है। संविधन के अनुसार केन्द्र एवं राज्यों के बीच कार्यक्षेत्र बांटे गये हैं। संविधन की 7वीं अनुसूची के अनुसार, कार्यक्षेत्र के विभाजन हेतु निम्नलिखित सूचियाँ बनाई गई हैं :–

(i) संघ सूची : इसमें केन्द्र सरकार के कार्यक्षेत्र से संबंधित विषय सम्मिलित हैं, रक्षा, विदेश जैसे विषय संघ सूची में ही शामिल हैं।

(ii) राज्य सूची : इसमें राज्य सरकार के कार्यक्षेत्र से संबंध्ति विषय सम्मिलित हैं। वित्त, गृह, स्थानीय प्रशासन इत्यादि विषय राज्य सूची में ही आते हैं।

(iii) समवर्ती सूची : इस सूची में राष्ट्रीय स्तर के व्यापक महत्व वाले विषय सम्मिलित हैं जिन पर केन्द्र एवं राज्य, दोनों ही सरकारों के संयुक्त प्रयासों की आवश्यकता होती है। जनस्वास्थ्य, चिकित्सा, स्वच्छता, शिक्षा, समाज कल्याण आदि विषय ऐसी ही श्रेणी में आते हैं।

इस प्रकार महिलाओं खासकर महिला श्रमिकों के स्वास्थ्य एक ऐसा विषय है जिसके लिए राज्य सरकारें उत्तरदायी हैं किन्तु केन्द्रीय सरकार की भी इसमें प्रमुख भूमिका है, स्वास्थ्य के विषय में राज्यों को सहायता प्रदान करना, केन्द्र सरकार का संवैधनिक कर्तव्य है।

सन्दर्भ–सूची

1. बी॰ विनायक एवं प्रेमनारायण शर्मा, 2011
2. डॉ॰ राधक कृष्ण सिंह, शिक्षा के बदलते मापदण्ड
3. भारत की जनगणना, 2001
4. आर्थिक सर्वेक्षण, बिहार सरकार, 2011–12
5. आर्थिक सर्वेक्षण, बिहार सरकार, 2010–11
6. कुरुक्षेत्र, गांवों में शिक्षा, मई 2011
7. दैनिक हिन्दुस्तान, 22 मई 2012
8. विकास यात्रा, पांच वर्ष 2010
9. गायत्री सिन्हा, गृह विज्ञान, उपकार प्रकाशन, आगरा
10. इमत्याज अहमद, कमर अहसन, 2011, बिहार एक परिचय

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Commerce : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 66-71

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Venture Capital : A Global and Indian Overview

Dr. Himanshu Kumar*

Abstract : *Venture capital serves as a specialized financial intermediary that merges technological expertise with financial acumen to offer both financial and managerial assistance to entrepreneurs engaged in innovative projects. It plays a crucial role in fostering industrial development by tapping into vast, underutilized potential and facilitating the growth of knowledge-based industries globally. In the United States and Europe, venture capital has been a longstanding presence, significantly contributing to business growth and expansion. In contrast, this concept is relatively nascent in India, with substantial progress occurring over the past five to seven years. The Government of India recognized the necessity for venture capital funds to support structural development and the growth of small-scale enterprises. This paper examines the current landscape of venture capital in India, its role, and identifies key shortcomings and challenges that hinder its growth. Additionally, it provides an overview of the global venture capital industry, with a particular focus on India. The conclusion drawn is that while the Indian venture capital sector is progressing positively, there is an urgent need to address the obstacles embedded in the legal, political, and economic frameworks to further advance the industry in India.*

Keywords : *innovative projects, knowledge-based industries, embedded obstacles, structural development, technological expertise.*

Introduction : Venture capital is increasingly recognized as a crucial financial intermediary in the 21st century. This financial model has played a vital role in fostering the growth of contemporary industries, including Information Technology, Information Technology Enabled Services, Clean Technology, Alternative Energy, Courier Services, Pharmaceuticals, and Health Care Services, among others. The impact of venture capital has been particularly notable in the advancement of nations such as the United States, Israel, Taiwan, and South Korea. However, the venture capital ecosystem and its evolution vary significantly across different countries. This research aims to examine the trends within the venture capital sector in India.

The venture capital sector plays a crucial role within the financial services landscape of an economy. Its potential to significantly enhance the growth and advancement of emerging economies, such as India, is noteworthy. The subsequent points elucidate the reasoning that underpins this research.

The financing of new enterprises that provide innovative products and services, as well as technology ventures and small to medium-sized enterprises, has consistently posed challenges across various economies. In the context of globalization, achieving technological self-reliance is essential for economic development and for establishing a competitive edge. The promotion of small and medium enterprises is vital, as they create job opportunities and contribute significantly to the gross domestic product (GDP). Venture capital serves as a financial tool that offers risk capital to small and medium enterprises, high-tech ventures, and startups, making it a crucial source of funding for developing economies like India.

* ***Department of Applied Economics & Commerce, Patna University, Patna***

Furthermore, Indian migrants have emerged as successful entrepreneurs in Silicon Valley, a renowned hub for innovation and entrepreneurship. This region boasts a sophisticated venture capital industry that fosters innovation and supports entrepreneurial endeavors. Consequently, it is essential to explore ways to cultivate a robust ecosystem in India. However, it may not be feasible to directly replicate the U.S. venture capital model in India due to the differing needs, entrepreneurial cultures, and innovation landscapes of the two countries.

This research was conducted to gain a deeper understanding of the development of the venture capital sector in India, the current trends within the industry, and the obstacles encountered by venture capitalists in the region. This investigation holds significant importance as venture capital is increasingly recognized as a vital financial intermediary that complements traditional financial systems. It has fostered the emergence of new industries, including information technology and information technology-enabled services, while also providing funding to critical and burgeoning sectors such as biotechnology, healthcare, and clean technology. These sectors are poised to be instrumental in addressing future environmental and health challenges.

Entrepreneurship is crucial for the advancement of developing economies. In periods of economic decline, when job opportunities diminish, numerous first-generation entrepreneurs may seek funding to establish their businesses. Venture capital serves as a financial tool that can facilitate these initiatives.

Definition of Concepts : This research examines and analyzes a range of concepts and variables associated with venture capital. The key concepts and variables addressed in this study are outlined below.

Venture capital refers to the financial investment made in ventures characterized by high risk, with the anticipation of achieving substantial returns. It encompasses investments in the form of equity, quasi-equity, and occasionally debt, which may be contingent upon the venture commencing sales. This type of investment is typically directed towards innovative technologies or high-risk enterprises led by entrepreneurs with relevant technical or professional expertise. The venture capitalist generally anticipates significant growth potential for the enterprise, contributes management and business acumen, seeks medium to long-term capital appreciation, and does not require collateral to secure the investment.

Venture capital is characterized by medium-term equity investment in unlisted companies, with returns primarily realized through capital gains at the conclusion of the investment period. The definition of venture capital can differ across various sources. In India, there is often no clear distinction made between venture capital and private equity; however, a notable difference exists. Venture capital generally pertains to investments made during the early phases of an innovative enterprise's development, whereas private equity involves investments at more advanced stages. It is crucial to comprehend the definition of venture capital transactions as outlined by TSJ Media, the research firm that provided the secondary data for this study. Venture capital transactions are typically associated with early-stage investments in a company's lifecycle. This research study is specifically centered on venture capital, rather than private equity. For the purposes of this study, the researcher has adopted the definition of venture capital as provided by TSJ Media, the source of the secondary data.

Venture Capital investments can be categorized as follows :

Early Stage : This includes the first or second round of institutional investments in companies that meet the following criteria :

(1) They are less than five years old, AND

(2) They are not affiliated with a larger business group, AND

(3) The investment amount is under $20 million.

Growth Stage :

(1) This encompasses either the third or fourth round of institutional funding, or

(2) The first or second round of institutional investments in companies that are more than five years old but less than ten years old, or in spin-outs from larger enterprises, AND

(3) The investment amount is also less than $20 million.

THE ROLE OF VENTURE CAPITAL IN THE EMERGENCE OF KNOWLEDGE-BASED INDUSTRIES IN INDIA

The integration of scientific technology and knowledge-driven concepts, when effectively supported by venture capitalists, can serve as a significant catalyst for economic development and sustainable wealth generation. The following outlines the contributions that venture capital can make in the context of emerging knowledge-based industries in India :

1. Numerous individuals who seek funding from venture capitalists possess innovative ideas but often lack the essential skills to transform these concepts into successful businesses. Venture capitalists can provide mentorship to assist these individuals in scaling their business plans.

2. Venture capitalists are instrumental in guiding companies to develop and commercialize new ideas by minimizing the costs associated with failure, thereby encouraging firms to embrace risks and explore potential growth avenues.

3. They offer invaluable insights and support in crafting marketing strategies, growth plans, and financing approaches.

4. Venture capitalists facilitate connections for entrepreneurs with a network of customers, financial institutions, consultants, and policymakers.

5. Additionally, venture capitalists assist portfolio companies in securing further financing as required.

VENTURE CAPITAL FINANCING: GLOBAL SCENARIO

The notion of venture capital emerged in the United States during the 1950s, when prominent financial entities such as the Rockefeller Group began to invest in nascent technology firms. This concept gained traction in the 1960s and 1970s as numerous private enterprises commenced funding projects characterized by high risk and potentially high returns. The American Research and Development Corporation, established as the first venture capital organization, financed over 100 companies and achieved profits exceeding 35 times its initial investments. Since that time, venture capital has experienced significant expansion in the United States, the United Kingdom, Europe, and Japan, contributing substantially to the economic growth of these nations.

The evolution and progress of venture capital across different countries are summarized as follows :

USA : Venture capital has predominantly been an American phenomenon, playing a pivotal role in the industrial advancement of the United States. The American Research and Development Corporation, founded by General Doriot shortly after World War II, is credited with initiating the institutionalization of venture capital in the country. The true advancement of venture capital occurred in 1958 with the passage of the Business Administration Act by the U.S. Congress. By 2016, the United States accounted for approximately 54% of total global venture capital investments. The more established venture capital markets in the U.S. tend to favor early-stage investments, with acquisitions (M&A) serving as the primary exit strategy for venture capital-backed companies, representing over 90% of all exits.

UK : The origins of the UK venture capital industry can be traced back to the 1930s; however, it was not until the early 1980s that it began to truly flourish. This growth was largely facilitated by the British government's introduction of tax incentives for investments in unlisted companies through the

business expansion scheme. Venture capital has become increasingly vital in supporting early-stage, high-growth companies, fostering innovation that contributes to the improvement and expansion of the UK economy. The robust venture capital landscape in the UK has established a conducive environment for disruptive technology firms. Currently, the UK stands as a global leader in sectors such as financial technology (fintech), enterprise technology, e-commerce, real estate, and travel. In 2016, a total of 936 transactions were executed, resulting in €4 billion in investments, which accounted for 34% of all deals made in Europe. The UK boasts the highest concentration of capital in Europe and serves as a significant funding source for the rest of the continent.

CANADA : The Canadian venture capital (VC) landscape is well-established and has experienced growth in both the number of transactions and the total capital invested; however, the average size of deals remains modest in comparison to that of the United States. In 2015, Canadian companies received a total of CAD 2.7 billion in venture capital. In terms of GDP, Canada's VC investment volume ranked third among developed nations, accounting for 0.08% of GDP. Sector-wise, the information and communication technologies (ICT) sector has attracted the largest portion of VC funding in Canada, representing 63% of total investments.

EUROPE : Since 1995, Europe has witnessed a significant rise in venture capital investments directed towards companies in their seed, start-up, or expansion phases. Nevertheless, when juxtaposed with leading global economies such as the United States, the European venture capital market continues to fall short in both scale and developmental stage. On average, US investors allocate venture capital to start-ups at a rate of 0.211% of GDP annually, which is over seven times the average for the EU. Between 2007 and 2015, VC firms within the EU financed more than 28,000 emerging companies, contributing a total of EUR 35 billion in venture capital. Typically, VC firms invest an average of EUR 1.3 million in each funding round for EU-based companies. In 2016, European companies raised €16.2 billion in venture capital.

France : The emergence of venture capital in France can be traced back to 1971 with the establishment of the Societies Financiers Innovation. Despite experiencing challenges during the economic downturn of 2008–2009, the French venture capital market has seen a notable recovery in fundraising activities, with expectations for further investment growth in the upcoming years. To foster a private venture capital sector focused on the seed stage, the French government initiated a EUR 600 million "fund of funds" program in 2011, aimed at supporting seed venture capital funds.

Germany possesses a robust tradition of governmental support for the business sector, akin to that of France, which originated from the post-World War II initiatives aimed at revitalizing the German industry. Currently, Germany ranks as the second largest venture capital market in Europe, following the United Kingdom.

JAPAN : Following the Second World War, several venture capital institutions were established in Japan, inspired by American venture companies, by prominent financial entities such as DIAWA Securities, SANYO Securities, the Yamiechi Securities group, and the International Bank of Japan, aimed at financing high technology industries. The venture capital landscape in Japan began to take shape in the 1970s, coinciding with the relaxation of listing norms and registration requirements for the stock exchange. The establishment of the Over-the-Counter (OTC) market in 1982 further accelerated the growth of venture capital in the country. In Japan, venture investments predominantly consist of equity stakes in more established private companies, as venture capital firms typically refrain from investing in startups.

SINGAPORE : The inaugural venture capital fund in Singapore, known as South East Asia Venture Investment (SEAVI), was launched in 1983 with contributions from the U.S. venture capital firm Advent International. The Economic Development Board of Singapore (EDB) made the first public

investment in a venture capital fund in 1986. In 1993, the Singapore Venture Capital Association (SVCA) was founded. The World Bank has recognized Singapore as the easiest place globally to conduct business. The country's stable legal framework, favorable tax policies, and government incentives for technology startups have significantly attracted the establishment of early-stage enterprises and venture capital funds. Over the years, Singapore has solidified its position as a major investment hub, with local fund managers representing over 55% of total private equity and venture capital investments in Southeast Asia. Currently, there are approximately 153 venture capital firms operating in the region. In 2016, venture capital investments in Singapore reached historic levels, with 100 deals totaling an aggregate value of $3.5 billion. A report by global valuation firm Duff and Phelps indicated that the technology sector constituted the majority of deal volume at 53% and deal value at 34%.

ISRAEL : Another country in which venture capital has gained prominence is Israel.

India : Venture capital in India emerged relatively late, with its inception occurring in 1973 following the recommendations of the Bhatt Committee. The first venture capital fund was established in 1975 by the Industrial Finance Corporation of India (IFCI). The landscape of the Indian venture capital industry is primarily influenced by public sector financial institutions. In India, venture capital funds are subject to regulation by the Securities and Exchange Board of India (SEBI). In 2016, the cumulative value of venture capital investments reached USD 15.0 billion across 971 transactions. Companies in the information technology sector and technology-focused startups were the most prominent, representing 56.6 percent of the total deal volume and 22.3 percent of the total deal value.

China : In China, the venture capital sector emerged in the mid-1980s as the government recognized the necessity of fostering high technology industries. Initial attempts were met with limited success due to a challenging regulatory framework. By the early 1990s, most venture capital-supported enterprises were State-Owned Enterprises (SOEs), and many venture capital funds were structured as joint ventures with these SOEs. The industry experienced significant growth between 1999 and 2000, coinciding with the expansion of the IT sector. Generally, Chinese venture capital markets exhibit a preference for less risky, later-stage companies. Initial Public Offerings (IPOs) account for the majority of exits for venture capital-backed firms in China. Over the past five years, venture capital funding has increased sevenfold, with total funding reaching US$49 billion through 1,635 deals in 2015, compared to US$7 billion in 2010. Additionally, the average deal size has doubled from US$15 million in 2010 to US$30 million in 2015.

REASONS AND SHORTCOMINGS FOR THE UNDERDEVELOPMENT OF THE VENTURE CAPITAL INDUSTRY IN INDIA

1. The venture capital ecosystem in India remains relatively underdeveloped. The industry is characterized by fragmentation, and angel investing is still in its early stages. Entrepreneurs are facing challenges in securing seed stage funding.

2. Currently, high net worth individuals and corporations lack incentives to invest in Venture Capital Funds (VCFs). The absence of such incentives makes it exceedingly difficult for domestic VCFs to attract capital from this investor segment, which holds significant potential.

3. The venture capital framework prioritizes the advancement of new innovations and technology development, necessitating ongoing collaboration between industry and research institutions. However, there is minimal interaction between these entities in India.

4. To date, VCFs are predominantly located in major urban centers, primarily benefiting entrepreneurs situated in these areas. It is essential to establish Venture Capital Funds in semi-urban and rural regions to tap into the potential of emerging entrepreneurs.

5. The long gestation periods and high risks associated with investments in startup companies, whether in the form of equity or debt, present considerable challenges for venture capitalists.

6. Compliance with local SEBI regulations, Foreign Direct Investment (FDI) rules, the Foreign Exchange Management Act (FEMA), and adherence to Central Board of Direct Taxes (CBDT) regulations for tax exemption claims pose significant obstacles to the growth of the venture capital industry.

CONCLUSION : The venture capital industry is undergoing significant transformations, mirroring the trends of an increasingly interconnected global landscape. Securing funding for new businesses that provide innovative products and services, as well as technology-driven ventures and small to medium enterprises, remains a persistent challenge across various economies. In this globalized context, fostering technological self-sufficiency is essential for economic advancement and for establishing a competitive edge. The promotion of small and medium enterprises is vital, as they play a crucial role in job creation and contribute to the overall GDP. While larger corporations continue to dominate the economic landscape, exhibiting greater resilience and a higher likelihood of success compared to small and medium-sized enterprises (SMEs), it is imperative for societies to move beyond traditional models. The development of new products and business initiatives is essential, and a culture of organizational change and entrepreneurship must be cultivated. Although numerous countries have recently implemented policies aimed at enhancing access to seed and venture capital, it is critical that the challenges associated with venture capital are not considered in isolation.

References

1. Chandra, Prasanna (1994), Appendix 23B-Venture Capital, Fundamentals of Financial Management, New Delhi : Tata McGraw Hill, p. 565

2. Pandey I. M. (1996), Strategic Role of Venture Capital, Venture Capital - The Indian Experience, New Delhi : Prentice Hall, p. 2

3. (E.d) Paxson Dean., & Wood, Douglas (1997), Encyclopedic Dictionary of Finance, Massachusetts : Blackwell Publishers, p. 195

4. Alexander Popov and Peter Roosenboom (2011), Venture Capital and Industrial Innovation : Evidence from Europe, 2nd Draft Manuscript for Economic Policy September 5, 2011,

5. Preqin Special Report : Asian Private Equity and Venture Capital, https://www.preqin.com/docs/reports/Preqin-Special-Report-Asian-Private-Equity-&- Venture-Capital-September-2016. pdf.

6. Venture Intelligence : India Private Equity Trend Report 2017, http://www.ventureintelligence.com/downloads/pe-trend-report-2017.pdf.

7. 2016 European Venture Capital Report, dealroom.com, https://www.slideshare.net/yoramw/dealroom-2016-european-venture-capital-report.

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 72-76

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

प्राचीन भारतीय इतिहास के मौर्यकाल में उद्योग एवं व्यवसाय : एक अध्ययन

*डॉ. ममता पाण्डेय**

मौर्य वंश की स्थापाना चन्द्रगुप्त मौर्य ने की थी, जो एक साधारण कुल और परिवार के थे। ब्राह्मणवादी परम्परा के अनुसार वे नन्दों के रनवास में रहने वाली एक शूद्र महिला, मुरा की कोख से पैदा हुए थे। हालांकि, प्राचीन बौद्ध परम्परा से पता चलता है कि मौर्य, नेपाल के तराई के पास गोखपुर क्षेत्र के पीपहलिवन के छोटे गणराज्य के क्षत्रिय वंश या शासक वंश के थे। चन्द्रगुप्त मौर्य ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापाना कर राजनीतिक एकता कि स्थापना की। इनके समय में मौर्य साम्राज्य ने सामाजिक, प्रशासनिक, धार्मिक तथा आर्थिक क्षेत्र में उन्नति की थी। प्राचीन भारत में कृषि गोरक्षा और वाणिज्य को सर्वदा प्राथमिकता प्रदान की गई है। वाणिज्य के लिए उद्योग–धन्धे और व्यवसायों का विकसित होना अति आवश्यक था। यदि भारतीय इतिहास का आदिकाल देखा जाय तो विश्व के लोग असभ्य या अर्द्धसभ्य थे। उस समय भी भारतीय जन–जीवन में किसी न किसी प्रकार का व्यवसाय और उद्योग–धन्धा प्रचलित था। इसका विकास इस द्रुत गति से हुआ कि विभिन्न व्यवसायों के नाम पर जातियों का नामकरण होने लगा था, जैसे– तंतु का कार्य करने वाले तन्तुवाय, चमड़े का कार्य करने वाले को चर्मकार आदि यह सब कहलाये। मौर्य काल में व्यवसाय की ओर शासन का विशेष ध्यान था। वह अनेक प्रकार से जहाँ कुछ व्यवसायियों एवं उद्योगों का प्रश्रय देता था, उनके सुरक्षा और उन्नति की व्यवस्था करता था वहीं कुछ उद्योगों का अपने निजी नियन्त्रण में रखता था और अपने कर्मचारियों की देख–रेख में उसको करवाता था। इसीलिए अब राज्य कर्मचारियों की संख्या पहले से अधिक हो गई तथा उनमें से प्रत्येक को उत्पादन का एक–एक विभाग सौंप कर राजा देश की समृद्धि करने लगा।

प्राचीन भारतीय इतिहास में मौर्य कालीन साम्राज्य का क्रमबद्ध रूप उपलब्द्ध नही होता है। तद्यपि मौर्य साम्राज्य का इतिहास अत्यन्त विशाल एवं समृद्ध था। इस वंश के प्रमुख शासकों में से चन्द्रगुप्त मौर्य, बिन्दुसार और अशोक के नाम उल्लेखनीय है। इनके समय में मौर्य साम्राज्य ने सामाजिक, प्रशासनिक, धार्मिक तथा आर्थिक क्षेत्र में उन्नति की पुराणों के अनुसार इस वंश का अंतिम शासक बृहद्रथ था। इसकी पुष्टि बाणभट्ट के हर्षचरित से भी हो जाती है। उसका सेनापति पुष्यमित्र शुंग था। पुष्यमित्र शुंग ने 184 ईसा पूर्व के लगभग अपने स्वामी बृहद्रथ की मृत्यु के साथ ही मौर्य वंश का अंत हो गया।

लेकिन ज्यादातर इतिहासकारों के दृष्टिकोण से प्राचीन ग्रन्थ प्रचुर संख्या में उपलब्द्ध नहीं हुए है। मौर्य साम्राज्य की अर्थिक विषय संबंधित विवरण कौटिल्य, मेगस्थनीज, स्ट्रैबो आदि अनेक विद्धानों की रचनाओं में प्राप्त होते है जिन परिस्थितियों में मौर्य साम्राज्य की स्थापाना हुई थी उनमें राज्य के उद्देश्यों की पूर्ति तथा राज्य का आय एवं व्यय व उसकी सुरक्षा का उपाय करने के लिए मौर्य शासकों को बहुत अधिक धन की आवश्कता थी। फलतः राज्य में आर्थिक क्रियाकलाप पर नियंत्रण रखकर एक व्यवस्थित साम्राज्य का परिचय दिया था। राज्य ने ऐसी व्यवस्था की जिससे वह अधिक से अधिक धन प्राप्त कर सकें। अतः उसे ऐसी आर्थिक नीति अपनानी पड़ी जिससे उसके राज्य की अर्थव्यस्था पर प्रत्यक्ष नियंत्रण रहे। इस नीति का परिणाम राज्य के लिए लाभदायी हुआ। मौर्यो ने मिश्रित अर्थव्यवस्था अपनायी जिसके अन्तर्गत कृषि, व्यवसाय एवं व्यापार–वाणिज्य की प्रगति हुई और जिसके कारण मौर्य युग की आर्थिक सम्पन्नता भी बढ़ी।

* *प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग, फ.अ.अ. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महमूदाबाद, सीतापुर (उ.प्र.)*

कौटिल्य के अर्थशास्त्र को मेगस्थनीज के लेखन का पूरक माना जा सकता है। समग्र रूप से अर्थशास्त्र का संकलन मौर्य काल के कुछ शताब्दी के बाद भले ही किया गया हो, लेकिन इसके कुछ अध्याय में, मौर्ययुगीन प्रशासन और अर्थव्यवस्था के बारे में वास्तविक सूचना और सामग्री मिलती है। इन दोनों स्रोतों से हमें चन्द्रगुप्त मौर्य की प्रशासनिक व्यवस्था और आर्थिक व्यवस्था को समझने में मदद मिनती है।

प्राचीन भारत में कृषि गोरक्षा और वाणिज्य को सर्वदा प्राथमिकता प्रदान की गई है। वाणिज्य के लिए उद्योग–धन्धे और व्यवसायों का विकसित होना अति आवश्यक था। यदि भारतीय इतिहास का आदिकाल देखा जाय तो विश्व के लोग असभ्य या अर्द्धसभ्य थे। उस समय भी भारतीय जन–जीवन में किसी न किसी प्रकार का व्यवसाय और उद्योग–धन्धा प्रचलित था। इसका विकास इस द्रुत गति से हुआ कि विभिन्न व्यवसायों के नाम पर जातियों का नामकरण होने लगा था, जैसे– तंतु का कार्य करने वाले तन्तुवाय, चमड़े का कार्य करने वाले को चर्मकार आदि यह सब कहलाये।

प्राचीन भारतीय इतिहास में अगर उद्योग एवं व्यवसाय की तरफ देखा जाये तो सिंधु सभ्यता का विस्तार क्षेत्र बहुत बड़ा था। तथापि उसके विभिन्न स्थलों से प्राप्त उपकरणों, औजारों, मृत्पात्रों, मुद्राओं, ईटों, बांट–बटखरों तथा कुछ अन्य वस्तुओं में मूलभूत एकरूपता दृष्टव्य है। इससे यह संकेत मिलता है कि कम से कम प्रमुख उद्योगों पर किसी न किसी रूप में राज्य का नियंत्रण था।

प्रारंभिक वैदिक काल में आर्यों की अर्थव्यवस्था मुख्यतः पशुपालन पर आधारित थी। अतः उद्योगों में विशेष प्रगति नहीं हुई थी। किन्तु उत्तरवैदिक काल में कृषि का विकास एवं प्रसार होने से उस पर आधारित शिल्पों और उद्योगों में उन्नति हुई, अनेक नए व्यवसायों का जन्म हुआ और कुछ व्यवसायों में विशिष्टीकरण हुआ था। घरेलू उद्योगों में स्त्रियों की सक्रिय भागीदारी थी। इसके अलावा वैदिक साहित्य में वस्त्र बुनने वाली (वायित्री) कढ़ाई करने वाली (पेशसकारी) वस्त्रों की रंगाई करने वाली (रजयित्री) अनाज पीसकर धनार्जन करने वाली (उपल प्रक्षिणी) टोकरी बनाने वाली (विदलकारी) स्त्रियों के भी उल्लेख हैं।[1]

ऋग्वेद तथा उत्तरवैदिक ग्रंथों में प्रयोग अयास शब्द के अर्थ के विषय में पर्याप्त मत–भिन्नता है। कुछ विद्वानों के अनुसार वैदिक साहित्य के विभिन्न संदर्भों में अयस का प्रयोग ताँबे, लोहे, पीतल, चाँदी एवं स्पात के लिए हुआ है। और शतपथ ब्राह्मण में यह सोने तथा सीसे के अतिरिक्त अन्य किसी भी धातु का द्योतक है। इन विद्वानों का यह भी मानना है कि संस्कृत शब्द लोह का मूल अर्थ तांबा था। परन्तु बाद में यह लोहे के लिए प्रयुक्त होने लगाा था। मैक्समूलर के अनुसार ऋग्वेद में अयस सोने, लोहे अथवा धातु के सामान्य अर्थ में आया है। श्रेडर के मतानुसार अयस संभवतः कृष्णता के लिए आया है, जिससे यूरोपीय लोग परिचित थे। मेक्डोनेल एवं कीथ ने अयस का अर्थ कांसा से लगाया है। और गार्डेन चाइल्ड ने ताँबा के वस्तु के होने का अनुमान लगाया है। एन.आर. बैनर्जी के अनुसार आर्य लोग ईरानी काल में ही ईरान तथा एशिया माइनर में लोहे से परिचित थे।[2]

वैदिक साहित्य में अयस से बने बाणाग्र, कवच, शिरस्त्राण, छुरे, चाकू, अंकुश, आभूषण, ताबीज तथा बर्तनों के उल्लेख प्रर्याप्त है। बाणाग्र तथा चाकू–छूरे सामान्यतः लोहे की ही बनते थे। इस सन्दर्भ में यह ध्यातव्य है कि उत्तरवैदिक काल से ही अयस एवं अयो लोहे के लिए सामान्य शब्द हो गए थे और विगत एक दो दशकों में विभिन्न स्थानों से मिले लौह उपकरणों आदि की जो प्राचीनतम तिथियाँ निर्धारित की कई थी जो ऋग्वैदिक संस्कृति की कालावधि में आती है। ऋग्वैदिक काल में आर्यों को संभवतः चाँदी की जानकारी नहीं थी। चांदी के स्पष्ट उल्लेख सबसे पहले उत्तर वैदिक साहित्य में ही प्राप्य हैं उत्तरवैदिक ग्रंथों में चाँदी के अलंकृत बर्तनों, निष्क (हार) तथा ताबीज के विवरण हैं तैत्तिरीय, संहिता में सोना–चाँदी (हिरण्य–रजत) एक साथ वर्णित है। कांसे के पात्रों के भी उल्लेख है।[3]

उत्तरवैदिक ग्रंथों में आए क्षौम तथा तार्प्य शब्दों के अर्थ कुछ विद्वानों ने क्रमशः मलमल एवं रेशमी वस्त्र लगाए हैं और कुछ ने दोनों को रेशमी वस्त्रों का द्योतक माना है।[4] मैक्समूलर के अनुसार क्षौम एवं उमा (खुमा) अलसी के रेशों की छाल से बना वस्त्र प्रतीत होता है। तार्प्य की पहचान निश्चित नहीं है। शतपथ ब्राह्मण में कौशेय रेशमी वस्त्र के लिए प्रयोग होता रहा है। वैदिक काल में, विशेष रूप से उत्तरवैदिक काल में धातु उद्योग काफी विकसित हो गया था। वाजसनेयी संहिता (18/13) में हिरण्य (सोना), अयस, श्याम लोहा, लोह (तांबा) सीस (सीसा) तथा त्रपु (टीन) वर्णित हैं। धातुकार के लिए सामान्य शब्द कर्मार था। अथर्ववेद में धातुकार को कुशल शिल्पियों में शामिल किया गया है। धौंकनी द्वारा अयस्क को गलाने तथा धातु गलाने वाले (ध्मातृ) के भी उल्लेख मिलते हैं। धौंकनी पक्षियों के पंखों से बनाई जाती थी।[5]

मौर्य काल में व्यवसाय की ओर शासन का विशेष ध्यान था। वह अनेक प्रकार से जहाँ कुछ व्यवसायियों एवं उद्योगों का प्रश्रय देता था, उनके सुरक्षा और उन्नति की व्यवस्था करता था वहीं कुछ उद्योगों का अपने निजी नियन्त्रण में रखता था और अपने कर्मचारियों की देख–रेख में उसको करवाता था। इसीलिए अब राज्य कर्मचारियों की संख्या पहले से अधिक हो गई तथा उनमें से प्रत्येक को उत्पादन का एक–एक विभाग सौंप कर रजा देश की समृद्धि करने लगा। उदाहरणार्थ सूत्राध्यक्ष वस्त्र व्यवसाय बुनकरों आदि की देख–रेख करता था, स्वर्णाध्यक्ष स्वर्ण आदि धातुओं के गहने के निर्माण, शुद्धता, कौशल आदि का दायित्व वहन करता था।

इस प्रकार विभिन्न व्यवसायों के लिए अलग–अलग अध्यक्षों और उनके अधीन विभागों की व्यवस्था की गई थी। दूसरे इस समय नगर–निगम बना था इसमें तीन सदस्य होते थे। इनके पाँच–पाँच सदस्यों की एक समिति बनी थी। इस प्रकार छः समितियों का उल्लेख मेगास्थनीज करता है। इनमें एक समिति का कार्य था उद्योग–धन्धों के देख–भाल करना तथा उसकी वृद्धि की व्यवस्था करना। कौटिल्य से ज्ञात होता है कि उद्योगों में चोरी करने वाले को या जिनसे जनता को कष्ट होता था उनको दंड देने के लिए भी राज्य की ओर से व्यवस्था थी। कंटक शोधन न्यायालय इसी उद्देश्य से बनाए ही गए थे। इसमें तीन अमात्य और तीन प्रदेष्टा मिलकर कार्य करते थे।

इनका कार्य था उन श्रमिकों को दण्ड देना जो कार्य में चोरी करते थे तथा जो अपनी चालबाजी के कारण ग्राहक या जनता को धोखा देते थे जैसे अच्छे कपड़े न धोने वाले धोबी को तथा कम मौलने वाले और मिलावट करने वाले व्यवसायी आदि को। राज्य निजी उद्योगों तथा उद्योग करने वालों की जानकारी रखने की व्यवस्था किया था। इसके लिए वहाँ जनता को व्यापार तथा उद्योग के लिए राजा से स्वीकृति लेनी पड़ती थी। उद्योगों का जनता के स्तर पर उन्नत तथा स्थायी रखने के लिए एक प्रकार के उद्योग करने वालों ने अपना निजी संघ बना लिया था जिसे श्रेणी कहते थे। इसमें उद्योग की वृद्धि तथा अन्य सम्भावनाओं पर विचार किया जाता था। राज्य की ओर से उद्योगों पर कर लगाया गया था। कर से जो भी आय होती थी उसको उद्योगों के विकास के लिए ही व्यय किया जाता था। जैसे–सड़क निर्माण, नालों का निर्माण, तालाबों का निर्माण आदि।[6]

उद्योगों के विकास के लिए राज्य की ओर से पर्याप्त व्यवस्था की गई थी। मजदूरों की छुट्टी के लिए नियम बनाए गए थे। कारीगरों की सुरक्षा के लिए चौकीदारों की नियुक्ति की गई थी। यदि कोई कारीगर को लूला या अंधा करता था तो उसकी हत्या कर दी जाती थी।[7] कच्चे मालों से तैयार माल की मात्रा निश्चित की जाती थी। इसमें मिलावट करने वाले को प्राणदंड भी निर्धारित था।[8] उद्योगों को दो कोटियों में विभक्त किया गया था। (1) राजकीय (जो राजा की ओर से होता था), (2) संघ–नियन्त्रित (व्यक्तिगत जिसके उद्योगपतियों का अपना संघ बना था) इसके अलावा दूसरे प्रकार से भी राज्य नियंत्रण रखा जाता था। राजकीय उद्योग में मजदूरी निश्चित थी जैसे– औजार, नाव आदि उद्योग में। दूसरे उद्योगों को राज्य प्रश्रय देता था। राज्य संचालित प्रत्येक उद्योग के अलग–अलग अध्यक्ष नियुक्त थे जैसे–लोहाध्यक्ष, सुराध्यक्ष आदि। राज्य के उद्योग अधिक विकसित थे जैसे–खान, वन–सम्पदा, शराब, बुनकर, पशुपालन आदि। राज्य ने औद्योगिक नियम बनाया तथा विनियम और वितरण नियंत्रित किया गया।[9] साथ ही साथ दुसरी तरफ मध्यम वर्ग का अन्त प्रारम्भ हो गया था। या यह भी कहा जा सकता है कि मध्यम वर्ग का अन्त हो गया।

राज्य द्वारा औद्योगिक नियम, कीमत, मजदूरी आदि तय हुई। कच्चेमाल का ज्ञान, विशेषीकरण, वंशानुगत उद्योग, श्रेणी संगठन बाजार विस्तार, राजकीय संरक्षण, सुरक्षा, विकासात्मक ऋण, कानूनी प्रश्रय, नुकसान होने पर पूर्ति की व्यवस्था उस समय थी। मजदूरों को मजदूरी से इनकार करने पर दंड दिया जाता था। लापरवाही या बेकारी काटने पर सात दिनों का वेतन काट लेते थे। जो मालिक मजदूरों को वेतन न देता तथा तंग करता था उसे भी दण्डित किया जाता था। मजदूरों की छुट्टी निर्धारित थी। उनके परिवार की पढ़ाई, बीमारी, विवाह और मृत्यु पर राज्य सहायता देता था। पेंशन व्यवस्था थी। इसे मजदूर के सेवा काल में मरने पर उसके वारिसों को दी जाती थी। मालिक मजदूर के बीच झगड़े का सुलह मध्यस्त कराता था। इनके बीच कन्टैक्ट होता था जिसके नियम निर्धारित थे। इनका पालन आवश्यक होता था। नियम पालन कराने के लिए प्रदेष्ठा (मजिस्ट्रेट) नियुक्त थे जो भी काम तय करते समय कारीगर की मजदूरी और उत्पादन की मात्रा तय की जाती थी। उत्पादन कम करने पर चाहे तो उस पर अर्थदण्ड लगाते थे या मजदूरी काट लेते थे।[10]

उद्योग के लिए राज्य से लाइसेंस लेनी होती थी। सरकार का दायित्व था कि सामाजिक समवस्था बनाए रखें। बिना स्वामी की स्वीकृति के मजदूरों को दूसरे मालिक के कारखाने में काम करना वर्जित था। इससे सरकार एक ओर अपना खजाना भरती थी तो दूसरी ओर सस्ती कीमत पर सामान उपलब्ध कराती थी। इस प्रकार उद्योगों में सरकार का दृष्टिकोण एक पक्षीय नहीं था।[11]

कृषि और पशुपालन के अतिरिक्त अनेक अन्य व्यवसाय प्रचलित थे। इनमें वस्त्र व्यवसाय विशेष उन्नतिशील था। सूती, ऊनी तथा रेशमी प्रकार के वस्त्रों का चलन था। वस्त्र उद्योग को अधिकारी को सूताक्ष्यक्ष कहते थे। इस उद्योग में पुरुष तथा स्त्री दोनों काम करते थे। मूलतः विधवा, असहाय, अपंग आदि स्त्रियाँ भी सूत कातने का काम करती थीं और पुरुष बुनने का काम करते थे जिनको राजकोष्ठागार से कच्चा माल दिया जाता था तथा तैयार माल विशिष्टता के आधार पर खरीदा भी जाता था। रंगाई और धुलाई का भी उद्योग इससे जुड़ा हुआ था। सूती और रेशमी वस्त्रों के दरों से अन्तर था। क्षौम का प्रयोग होता था। यहाँ विकसित तथा घरेलू वस्त्रोद्योग भी था। मदुरा, सौराष्ट्र, काशी, कलिंग, बंगाल आदि सूती वस्त्र व्यवसाइयों के गढ़ थे। मूल्यवान, रंग–बिरंगे, महीन तथा कामदार वस्त्र भी बनाये जाते थे। मगध तथा पाण्डय प्रदेश रेशमी और ऊनी वस्त्रों के प्रमुख केन्द्र थे। यहाँ 'वत्रोणा' नामक ऊन होता था। 'चिनपट्टा' शब्द का उल्लेख एक प्रकार के वस्त्र के सन्दर्भ में कौटिल्य के अर्थशास्त्र में हुआ हैं यह चीन का बना रेशमी वस्त्र था। भेंड़ के ऊन का कम्बल बहुतायत से बनता था। जंगली जानवरों के बाल का भी प्रयोग ऊनी कम्बल में किया जाता था। भिंगिनी तथा अपसारक नामक कम्बलों की चर्चा मिलती है जो वाटरप्रुफ की तरह वर्षावारण का काम करते थे। इन कम्बलों का निमार्ण नेपाल में होता था। यूनानी लेखकों ने महीन तथा जरीदार वस्त्रों का उल्लेख किया है। मलमल का चलन उस समय बहुत ज्यादा थी।[12]

मेगास्थनीज से ज्ञात होता है कि सोना, चाँदी, लोहा, ताँबा आदि धातुओं की अनेक खानें थीं। इनसे वस्त्र, आभूषण और आयुध बनाए जाते थे। रत्नों का भी ज्ञान था। आकराध्यक्ष नामक एक राजकीय अधिकारी का ज्ञान कौटिल्य से मिलता है जो खनिज तथा खनिज उत्पादन में सम्बन्धित था। इसकी खुदाई सरकार द्वारा कराई जाती थी। इस प्रकार की धातुओं का उल्लेख कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में किया है। खान के अध्यक्ष कारखानों के लिए कच्चा माल देते थे। इसी की देख–रेख में धातु के कारखानों में काम करते थे। इस कार्य को करने वाले लोगो के कागजात को पुरी तरह से जाँच की जाती थी उसके बाद उनकी नियुक्ति की जाती थी। इन कर्मचारियों को रखने के लिए पास दिया जाता था जिसको दिखाकर वे आ जा सकते थे। कुछ खानों को पट्टे पर व्यक्तिगत उद्यमियों को दिया जाता था। अनेक प्रकार के गहने तथा धातु निर्मित शस्त्रास्त्रों का ज्ञान मिलता है। प्रायः खान उद्योग राज्य के ही नियंत्रण में था। इसमें चोरी करने वालों को भयंकर दंड भी दिया जाता था।[13]

इसके अलावा उद्योग एवं व्यापार में बढ़ईगिरी का व्यवसाय भी बहुत ही अधिक विकसित था। वन्य–सम्पदा की अधिकता से नाव, बाँस की सामग्रियों आदि का प्रयोग बहुतायत रूप में किया जाता था।[14]

जिसके चलते उस समय नाविक का व्यवसाय अधिक प्रशस्त था जो यात्रा का मुख्य साधन था, और यह राज्य के अधीन भी था। बड़े–बड़े बन्दरगाह बने थे जहाँ विदेशी जहाज भी रुकते थे। जहाज में यात्रियों का टिकट निर्धारित था। चालक का भी वेतन निश्चित था। व्यक्तिगत नावों तथा राजकीय बेड़ा के लिए बड़े–बड़े पोतों के निर्माण की चर्चा विभिन्न स्रोतों से प्राप्त होती है।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में चर्म व्यवसाय का व्यापक ज्ञान अर्थशास्त्र में मिलता है। पशुओं के चमड़े से अनेक उपयोगी वस्तुएँ बनाई जाती थीं। **नियार्कस के अनुसार** लोग बड़े मोटे तलवे के कामदार और विचित्र जूते पहनेते थे जिसके कारण उनकी ऊँचाई अधिक हो जाती थी। उद्योग हेतु पशुओं के चमड़े को साफ करने तथा मुलायम बनाने की विधि से भी ये परिचित थे। अर्थशास्त्र में अनेक प्रकार के चमड़ों का उल्लेख किया गया है।

सुरा के लिए एक अलग विभाग बना था जिसके मुख्य कार्यवाहक को सुराध्यक्ष कहते थे जिसकी देख–रेख में यह विभाग रहता था जिसमें विभिन्न प्रकार की शराबें बनाई जाती थीं। इसका भी उत्पादन राजकीय नियन्त्रण में होता था। यद्यपि इस पर राज्य का एकाधिकार नहीं था। व्यक्तिगत उद्यमी भी सुरा बनाते थे।[15]

इसके अलावा उद्योगों में अनेक कुटीर उद्योग भी प्रचलित थे जैसे– चर्मकार, छाता बनाने वाले, नरकट तथा घास से चटाई आदि बनाने वाले, जरी तथा कशीदाकारी काम करने वाले, गधी, कुम्हारी आदि करने वाले।[16]

निष्कर्षतः मौर्यकाल में उद्योग एवं व्यवसाय राज्य में अग्रणी हो गया था। मौर्यकाल में कौटिल्य ने सभी उद्योगों के लिए बहुत से नियम और कानून बना रखा था। जिससे आमजन से लेकर व्यापारीयों को लाभ हो सके और वे लोग व्यापार बेहतर से बेहतर कर सकें जिससे मौर्यकालीन समाज की अर्थव्यवस्था ठीक बनी रहें।

संदर्भ–सूची

1. मिश्र, श्याम मनोहर, 'प्राचीन भारत में आर्थिक जीवन' प्रकाशक, प्रामानिक पब्लिकेशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1997, पृ. 127
2. वही,
3. आयरन, एज, पृ. 144
4. ऋ, 9/11, 13, पृ. 451
5. प्रिहिस्टोरिक एंटीक्वीटीज, पृ. 212
6. वैदिक इंडेक्स 1, पृ. 31–32
7. द्रश्टव्य आइ.एच.क्यू., पृ. 432
8. वही,
9. वही, पृ. 268
10. दीपांकर, आचार्य, कौटिल्य कालीन भारत' प्रकाशक, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, तृतीय संस्करण 2003, पृ. 124
11. एस.एम. मिश्र, सोम : ए नान इटाक्सीकेटिंग, के.डी. बाजपेई स्मृति विशेषांक, पृ. 246–50
12. धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ. 428
13. अल्विन, द राइज आफ सिविलाइजेशन इन इंडिया एण्ड पाक्स्तिान, पृ. 108–109
14. एस.आर. राव, लोथल, पृ. 78
15. वही, पृ. 79–80
16. वही,

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 77-79

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

शैक्षिक अनुसंधान की प्रक्रिया में शोध नैतिकता एवं कृत्रिम बुद्धिमत्ता की प्रासंगिकता

*डॉ. शशि कुमारी** *जगदीश कुमार***

शिक्षा और समाज को व्यक्ति नई दिशा का मार्गदर्शन करती है साथ–ही–साथ नवीन प्रत्ययो एवं मानदंडों को अस्तित्व में लाती है। समाज की मूलभूत सुविधाएँ शिक्षा द्वारा संभव है समाज के सामाजिक अन्तःक्रियाओं में जब शिक्षा वैज्ञानिक, तार्किक, मानवीय मूल्यों, नैतिकता, तकनीकी और राष्ट्रीयता को केंद्र मानकर अपने उद्देश्यों को पूरा करती है तो समाज विकास के सभी पक्षों एवं क्षेत्रों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रभाव बढ़ता है। शिक्षा में नवाचार, अनुसंधान, तकनीकी आज की आवश्यकता होती जा रही है शिक्षा प्रणाली में सुधार, तारतम्यता, नवीनता, सरसता, बोधगम्यता प्रभावशीलता इसी शोध कार्यों से सम्भव है।

शैक्षिक अनुसंधान : *शैक्षिक क्रियाओं, शिक्षण विधियों तथा अन्य क्षेत्रों में वैज्ञानिक प्रत्ययों के आधार पर नवीन तथ्यों को विकसित करना, खोज करना शैक्षिक अनुसंधान है।*

शिक्षा एक स्वतंत्र अध्ययन वाला क्षेत्र है, जिसकी व्यापकता, उपयोगिता व्यैक्तिक, सामाजिक, देश के नजरिए से अत्यंत महत्वपूर्ण है चूँकि शिक्षा एक व्यावहारिक विज्ञान है इसलिए शैक्षिक शोध का नवीन तथ्यों की प्राप्ति, खोज के साथ साथ उनका व्यवहारिकता, विश्वसनीयता, वैधता सरलता से भी होना चाहिए। यह एक जरूरी मन दण्ड समझा जाता है।

ट्रेवर्स के शब्दों में–शैक्षिक अन्वेषण वह प्रक्रिया है जो शैक्षिक परिस्थितियों में विज्ञान को विकसित कर रही हो।

जॉर्ज जे मुले–शैक्षिक समस्याओं के समाधान के लिए वैज्ञानिक विधि के व्यवस्थित संतुलित तथा बुद्धिमत्ता पूर्ण प्रयोग तथा अर्थापन को शैक्षिक अनुसंधान कहते हैं।

अनुसंधान की प्रक्रिया में वैज्ञानिक परीक्षण तत्व विद्यमान होता है इस वैज्ञानिक विधि में आगमनात्मक (Inductive) तथा निगमनात्मक (Deductive) दोनों तर्क विधियों को अपनाया जाता है जो कृत्रिम बुद्धिमत्ता शोध नैतिकता के कारण निरीक्षण की पूरी प्रक्रिया अर्थपूर्ण हो जाती है।

सी. सी. क्रोफोर्ड–अनुसंधान किसी समस्या के उत्तम समाधान के लिए के लिए क्रमबद्ध विशुद्ध चिंतन एवं विशिष्ट उपकरणों के प्रयोग की एक विधि है।

शोध नैतिकता शोधकर्ताओं के वैज्ञानिक के मानदंडों आचरणों, मानकों को नियंत्रित करती है शोध प्रतिभागियों की गरिमा, अधिकारों और कल्याण के रक्षा के लिए अनुसंधान नैतिकता का पालन करना आवश्यक है।

शोध नैतिकता–शोध नैतिकता किसी अनुसंधान प्रक्रिया में प्रयुक्त उपकरणों, साधनों, मानकों आदि को लगन, चेष्टा, ईमानदारी के साथ अर्थापन लाना है जो सही या गलत भेद कर सके। मूल्य सिद्धांत मानक जो शोध परियोजना के क्रियान्वयन परिणामों निष्कर्ष की रिपोर्टिंग सहित अन्य कई क्षेत्रों में दिग्दर्शन करता है।

शोधकर्ता द्वारा अनुसंधान में अन्वेषण की गतिविधियों में अनुसंधान की डिजाइन और कार्यान्वयन, समाज और अन्य लोगों के प्रति सम्मान संसाधनों एवं परिणामों का उपयोग, वैज्ञानिक कदाचार साथ ही साथ कुछ शर्तें, गाइड लाइन, नियम कानून का अनुपालन भी शोध में नैतिकता है।

* *असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र, श्री रामेश्वर दास अग्रवाल कन्या पी.जी. कॉलेज, हाथरस*

** *असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र, श्री रामेश्वर दास अग्रवाल कन्या पी.जी. कॉलेज, हाथरस*

शोध परियोजना तैयार करते समय एवं कार्य करते समय कई नैतिक सिद्धांतों को आधार बनाना चाहिए। शोधकर्ता के रूप में आप कार्य कर रहे हों तो सम्भावित प्रायोज्य/प्रायोज्यों से आँकड़े, मैन्युअल अनुसूची, प्रपत्र सहमति से वापस लेने की आवश्यकता है। प्रयोज्य/प्रायोज्या को किसी प्रकार का कोई नुकसान या जोखिम है तो उसे कम करना, गुमनामी और गोपनीयता की रक्षा करना भ्रामक पदों, टिप्पणियों, आंकड़ों एवं प्रथाओं का उपयोग करने बचना चाहिए। यह एक तरह नैतिकता का अपना कृत्य पक्ष है।

अकादमिक शोध एवं लेखन में रिसर्च इथिक्स शोधकर्ताओं के काम का मार्गदर्शन करने वाले नैतिक सिद्धांतों और मूल्यों को अनुग्रहित करती है। शोध और अंतरदृष्टि एकत्र करने में, सटीकता लाने के लिये कृत्रिम बुद्धि भी आवश्यक है। सत्यता के आधार पर शोध के अर्थापन, शोध की गलतियों को सुधारना, शोध कार्य में यदि कोई सूचना हो तो सन्दर्भ रेखांकित करना, पुस्तकें, संदर्भ ग्रंथ से पंक्तियों को उल्लेखित किया है तो उसे प्राथमिकता देते हुए संदर्भित करना शोध नैतिकता प्रमुख कड़ी है। शोध नैतिकता शोध कार्यों में पदों में तारतम्यता, विश्वसनीयता, पक्षपातविहीनता, आपसी तालमेल, सामंजस्य एवं उत्तरदायित्व को विकसित व दृढ़ करता है साथ ही शोधकर्ता को गाइड लाइन के कॉपीराइट, प्रदत्तों व अन्य अधिकारों की रक्षा करता है।

- नैतिकता नियमों का पुंज है जो व्यवहारों को नियंत्रित करता है।
- शोध नैतिकता एक ऐसे नैतिकता दिशा निर्देषों का संग्रह है जो निर्धारण करता है की वैज्ञानिक शैक्षिक अनुसंधानों के चरों प्रसारित किया जाये।
- शोध नैतिकता वैज्ञानिक शोधकर्ताओं के लिए आचरण के मानकों नियंत्रित करता है।
- शोध नैतिकता मुख्य रूप से जाँच का विषय है कि जो की अध्ययन में प्रतिभागियों के चयन प्रक्रिया पर प्रश्न खड़ा होता है।

शोध नैतिकता के मापदण्ड–शोध में नैतिक दृष्टि से कई सावधानियाँ रखी जानी चाहिए।

ईमानदारी (Honesty)–नैतिकता एक ऐसी अवधारणा है को बिना ईमानदारी, निष्ठा के परिपूर्ण नहीं होती है चाहे व्यक्तिगत जीवन में हो या फिर शैक्षिक अनुसंधान के क्षेत्र में हो। नैतिकता अनुसंधान की कार्यप्रणाली में शोध ाकर्ता को शोध की प्रकृति का के अनुरूप आँकड़े एकत्रित करने के लिए प्राथमिक स्रोत, अथवा द्वितियक स्रोत अपनाने, न्यायदर्श के स्वरूप पर चिंतन करने एवं लागू करने समझ पैदा करता है। शोधकर्ताओं मे ईमानदारी निष्ठा होनी चाहिए।

वस्तुनिष्ठता (Objective)–शोध कार्य में प्रयुक्त, शोध पद्धति, तथ्यों का संकलन, विश्लेषण, व्याख्या निष्पक्षता के साथ अन्य किसी तरह के पूर्वाग्रह से बचना चाहिए।

निरंतरता (Continously)–वादा, समझौता को निभाना निष्ठापूर्वक शोध कार्य करना साथ ही विचार तथा कार्य में निरंतरता बनाए रखना चाहिए। निरंतरता पूर्वक किया गया शोध कार्य तारतम्यता विश्वसनीयता को बढ़ता है।

निष्पक्षता (Fairness)–शोध कार्य में जो अध्ययन से जुड़ा तथ्य ना हो तो उससे बचना चाहिए। गाइड लाइन और मानवाधिकार का उल्लंघन करने वाले सभी पहलुओं और कारकों से बचना चाहिए। जिससे पक्षपात की सम्भावना दूर दूर तक ना दिखे।

खुलापन (Opennes)–शोधकर्ता को हमेशा अपने परिणाम डेटा और अन्य संसाधनों को साझा करने के लिये तैयार रहना चाहिए साथ ही आलोचनात्मक एवं रचनात्मक प्रतिक्रिया जो तर्क संगत स्वीकार करना चाहिए।

सतर्कता (Carefulness)–शोध कार्य में सम्भावित त्रुटि, वर्तनी त्रुटि और पूर्वाग्रहों के प्रति सतर्क स्वयं और अपने सहयोगियों के कार्य को सावधानी पूर्वक जाँच कर लेनी चाहिए तथा गतिविधियों को रिकॉर्ड के रूप रखना चाहिये।

गोपनीयता (Confidentaility)–शोध शोध समस्या से जुड़े तथ्यों, आँकड़ों को जब संग्रहित करते हैं तब प्रयोज्य (उत्तरदाता) की कुछ व्यक्तिगत जानकारी हो सकती है जिसे गोपनीय रखना चाहिए।

उत्तरदायित्व (Responsibillity)–शोधकर्ता को शोध समस्या का निरूपण या टॉपिक का चयन करते समय सामाजिक उन्नति सार्वजनिक शिक्षा को बढ़ावा देने वाले क्षेत्र अपनाना चाहिए। फिजूलखर्ची दोहराव वाले प्रकाशन से बचना चाहिए।

शोध नैतिकता के सामान्य सिद्धांत–शोध नैतिकता का सिद्धांत मे प्रमुख सिद्धांत हैं– 1. नुकसान के जोखिम को कम करने की कोशिश, 2. सूचित सहमति प्राप्त करना, 3. गुमनामी और गोपनीयता की रक्षा करना। 4. भ्रामक प्रथाओं से बचना, 5. वापसी का अधिकार।

कृत्रिम बुद्धि–कृत्रिम बुद्धिमत्ता एक ऐसी गतिविधि है जिसके क्रिया कलापों से मशीनों को मानव जैसा बुद्धिमान बनाने का काम किया है। बुद्धिमत्ता एक मानवीय गुण है जो किसी इकाई को अपने समायोजित वातावरण

में उचित दूरदर्शिता के साथ कार्य करने में सक्षम बनाता है। 'कृत्रिम बुद्धिमत्ता का तात्पर्य मशीन में मानव की तरह सोचने समझने निर्णय लेने कि क्षमता का विकास करना।'

जब कोई उपकरण, मशीन परिस्थितियों के अनुकूल सीखकर समस्याओं निपटाता है तो यह कार्य कृत्रिम बुद्धिमत्ता को संज्ञानित करता है। यह गति, भाषा की प्रोसेसिंग, सीखने, विचार करने, नियोजन, अवधारणा आदि का मिश्रित है।

कम्प्यूटर विज्ञान का एक अनुशासन जो मनुष्य द्वारा संचालित एवं निष्पादित कार्यों की भाति बुद्धिमत्ता से मशीनों को संचालित करने का ज्ञान कृत्रिम बुद्धिमत्ता है। यह बड़े से बड़े डेटा को विश्लेषण करने में मशीन लर्निंग, डीप लर्निंग (बड़ी मात्रा में असंचरित डेटा जैसे टेक्स्ट चित्र या वीडियो मध्यम से आटोमेटिक लर्निंग बनाने), जैसी उत्तम तकनीकी का प्रयोग, बिना मानव के दखल दिए करने में सक्षम है। आभासी सहायक, स्व चालित कारें, उपग्रह, रोबोट इत्यादि कुछ उदाहरण हो सकते हैं।

शिक्षा और कृत्रिम बुद्धिमत्ता–इंटेलीजेन्ट ट्यूटिरिंग सिस्टम (ITS) कृत्रिम संचालित ट्यूरिंग सिस्टम को प्रत्येक छात्रों की शैली एवं गति और व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुरूप बनाकर व्यक्तिगत, सीख और अनुभव प्रदान कर सकते हैं।

अधिगम विश्लेषण (L-A) सम्भावित शैक्षणिक चुनौतियों या पढ़ाई छोड़ने के जोखिम का पूर्वानुमान कर सकने के लिए प्रयोग संभव है। छात्रों के डेटा जैसे उपस्थिति, सहभागिता और प्रदर्शन से जुड़े तथ्यों का विश्लेषण कर सकते हैं। कृत्रिम बुद्धि की उपयोगिता, कार्यशैली के प्रभाव ने सरकार, उद्योग जगत शिक्षा जगत स्वास्थ्य विभाग जैसे मुख्य क्षेत्रों में विशेष पहचान स्थापित किया है।

शोध प्रक्रिया शोध परियोजनाओं में कृत्रिम बुद्धि की उपयोगिता–शोध परियोजना, शोध कार्य में शोध की प्रकृति के आधार पर चरों चयन के बाद एवं परिकल्पना को सत्यापित करने के लिए चरों के सापेक्ष आँकड़ों के संकलन में कुछ एप का प्रयोग किया जा रहा है।

- A-I परियोजना में निर्णयों की क्षमताएं बढ़ता है।
- A-I समस्या समाधान कार्यों का सार्थन करता है।
- प्रोजेक्ट नियोजन में A I का उपयोग की सम्भावना अधिक रहती है।
- अनुसंधान एवं शोध परियोजनाओं में बड़ी मात्रा में डेटा का विश्लेषण करते समय A I दक्षता में सुधार करता है।
- शोध परियोजनाओं को सफल बनाने में और त्रुटियों को कम करने, विफलतओं को कम करने की क्षमता है।

मस्तिष्क नेटवर्क के विश्लेषण–अल्जाइम रोग से संबधित तंत्रिका मे खराबी आ जाने पर लक्षण दिखाई देने पर कार्यात्मक MIR (FMIR) न्यूरोइमेजिंग डेटा से प्राप्त जानकारी जी की शुरुआती चरणों के दौरान दिमाग के टिशूओं में आने वाले परिवर्तनों की जानकारी ली जा सकती है। शोधकर्ता समय के साथ कई दिमागी परिवर्तनों का विश्लेषण करने के लिए मशीन लार्निग क्षमता के साथ तीक्ष्ण दिमादी परिवर्तनों पता लगाने के FMRI की क्षमता को जोड़ रहे हैं इस तकनीकी उद्देश्य Alzheimer's Disease (AD) के साथ सिजोफ्रेनिया, एटिज्म तथा मल्टीपल स्केलेरोसिस अन्य तंत्रिका से जुड़े अन्य अशुद्धियों की जानकारी लेना है।

शर्करा के स्तर की भविष्यवाणी–NIBIB द्वारा वित्तपोषित शोधार्थी पहनने लायक सेंसर से प्राप्त डेटा का उपयोग खून शर्करा के स्तर को बढ़िया तरीका से प्रतिबंधित करने के लिए मशीन लर्निंग मॉडल बना रहे हैं जिससे हृदयगति, त्वचा चलकता, तापमान शामिल है जिससे रोगियों की सुरक्षा बढ़ेगी जटिलताओं में न्यूनता आयेगी।

निष्कर्ष–शैक्षिक अनुसंधान, नवाचार, अनुसंधान परियोजनाओं, तकनीकियों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता अपना प्रभाव स्थापित किए हुए है। किसी भी शोध कार्य, शोध संस्थान, शोध परियोजना का एक दायरा होता है, कुछ नियम, कानून, शर्तें, विधि तथा निर्धारित कार्यशैली होती है इन सभी कारकों का अनुपालन शोध नैतिकता कम अंतर्गत आता है। शोध नैतिकता का इन के निष्कर्ष, परिणाम, वैधता, विश्वसनीयता पर सीधा और सार्थक प्रभाव रहता है।

सन्दर्भ–ग्रन्थ

1. https %<//www &dristi iias-com/hindi daily & updates/daily & news & editorials
2. https://www.drishtiias.com>paper 3
3. Kaushal pathsala https://kaushalpathsala.com>ethic.
4. 2020–2024 प्रगति रिपोर्ट भरोसेमंद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस अनुसंधान एवं विकास को आगे बढ़ाना।
5. राष्ट्रीय कृत्रिम बुद्धिमत्ता अनुसंधान और विकास रणनीति योजना, 2023, अद्यतन, मई 2023।
6. श्रीवास्तव, डी.एन., अनुसंधान विधियाँ, साहित्य प्रकाशन आगरा
7. राय, नाथ पारस, अनुसंधान परिचय, प्रकाशक–लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 80-84

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

विष्णु प्रभाकर के नाटकों में चेतना की अद्वितीय अभिव्यक्ति

*कंचन कुमारी**

विष्णु प्रभाकर एक प्रमुख मानवतावादी लेखक हैं। उनके नाटकों का केंद्रीय विषय मानवता है। उनके समस्त नाट्य साहित्य में चेतना की गहरी अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। वास्तव में, जीवन का कोई भी क्षेत्र उनकी नाटकीय प्रतिभा से अछूता नहीं रहा है, चाहे वह व्यक्तिगत, सामाजिक, राजनीतिक, नारी संबंधी या मनोवैज्ञानिक हो। उन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से उन सभी समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, जिनसे आज का व्यक्ति निरंतर संघर्ष कर रहा है। शोषण, भ्रष्टाचार, स्वार्थ, गरीबी, बेरोजगारी, और मूल्यहीनता जैसी विभिन्न समस्याओं को उन्होंने अपने नाटकों का विषय बनाया है और इन समस्याओं से जूझते पात्रों के माध्यम से चेतना को विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त किया है। उनके नाटकों के कथ्य का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि सभी नाटकों में चेतना का तत्व विद्यमान है। निश्चित रूप से, विष्णु जी का योगदान महत्वपूर्ण है।

1. सामाजिक चेतना : विष्णु जी को मुख्यतः सामाजिक चेतना से जुड़े लेखक के रूप में जाना जाता है। उनका समस्त साहित्य सामाजिक चेतना से प्रेरित है। उनके सभी नाटकों में कहीं न कहीं सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। उनके नाटकों के पात्र अन्याय और शोषण के खिलाफ विद्रोह करते हुए दिखाई देते हैं। ये सभी पात्र अपने ऊपर या समाज के किसी भी हिस्से पर होने वाले अन्याय के खिलाफ अपनी विद्रोही भावना को व्यक्त करते हैं। 'गांधार की भिक्षुणी' नाटक में आनंदी हूण युग की पीड़ा और बलिदान, पीड़ित जनता की, तथा जनता के अद्‌भुत विद्रोह का प्रतीक है। वह हूणों के अत्याचारों के खिलाफ जनता में चेतना जागृत करने के लिए प्रेरणादायक भाषण देती है– 'मालविको? हमें बहुत खुशी है कि आप लोग अपने देश से प्रेम करते हैं।[1] यहीं पर उत्पन्न हुआ वह महावीर जिसने शकों का नाश किया।...आज फिर आपके सामने वही स्थिति उत्पन्न हो रही है।'[1]

इसी प्रकार 'होरी' नाटक का गोबर एक प्रगतिशील सोच वाला युवक है। वह अन्याय के खिलाफ संघर्ष करता है। होरी नाटक में झुनिया के मामले में पंचायत द्वारा होरी पर दंड लगाए जाने की सूचना पाकर, वह दातादीन से कहता है– ''उन पंचों पर मुझे दावा करना है जिन्होंने दंड के बहाने मेरे डेढ़ सौ रुपए हजम कर लिए हैं। मैं देखूंगा कि कौन मेरा हुक्का–पानी बंद करता है और कौन बिरादरी से मुझे बाहर करता है।''[2] गाँववालों का शोषण करने वाले महाजनों की सच्चाई को उजागर करते हुए गोबर अपनी विद्रोही प्रतिक्रिया इस प्रकार व्यक्त करता है– ''यहाँ किसकी सेवा की जा रही है? कोई किसी का सेवक नहीं है। सभी समान हैं। यह तो एक मजाक है। किसी को सौ रुपये उधार दिए और फिर जीवनभर उस पर ब्याज लेते रहे। मूल राशि वैसी की वैसी। यह महाजनी नहीं, बल्कि खून चूसने का कार्य है।''[3] इस प्रकार गोबर के संवाद शोषण के खिलाफ उठाए गए विद्रोह को दर्शाते हैं। इसके साथ ही, गरीब किसानों के मन में शोषक वर्ग के प्रति जो घृणा है, वह होरी के संवाद के माध्यम से प्रकट होती है। वह कहता है– ''मोटे वे होते हैं, जिन्हें न ऋण का भय होता है न इज्जत का। इस समय में मोटा होना बेईमानी है। सौ को दुबला करके तब एक मोटा होता है।''[4] यहाँ होरी की व्यंग्यात्मकता के जरिए आर्थिक शोषण का शिकार बने सामान्य व्यक्ति की आर्थिक जागरूकता को उजागर किया गया है।

सूरदास नाटक में सामाजिक चेतना की गहरी छाप देखी जा सकती है। जब उसके साथ अन्याय होता है, तो वह शोषक वर्ग के खिलाफ अकेले ही न्याय की लड़ाई लड़ता है। उसके संवाद उसकी जागरूकता को स्पष्ट करते हैं। वह कहता है, 'यह मेरी संपत्ति है, जो मेरे पूर्वजों की मेहनत का फल है; किसी और का इस पर कोई

* *सहायक प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग, श्री राधा कृष्ण गोयनका महाविद्यालय, सीतामढ़ी (बाबा साहेब भीम राव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार)*

अधिकार नहीं है। यदि मेरी जमीन चली गई, तो मेरी जान भी उसके साथ जाएगी। यह मेरा दृढ़ संकल्प है।'[5] सूरदास नाटक में सामाजिक चेतना की गहरी छाप देखी जा सकती है। जब उसके साथ अन्याय होता है, तो वह शोषक वर्ग के खिलाफ अकेले ही न्याय की लड़ाई लड़ता है। उसके संवाद उसकी जागरूकता को स्पष्ट करते हैं। वह कहता है, ''यह मेरी संपत्ति है, जो मेरे पूर्वजों की मेहनत का फल है; किसी और का इस पर कोई अधिकार नहीं है। यदि मेरी जमीन चली गई, तो मेरी जान भी उसके साथ जाएगी। यह मेरा दृढ़ संकल्प है।''

विष्णु जी ने अत्यंत प्रभावशाली और सफल ऐतिहासिक नाटकों की रचना की है, जिनमें राजनीतिक जागरूकता को उजागर किया गया है। उन्होंने ऐतिहासिकता और पौराणिकता को वर्तमान संदर्भ में जोड़ते हुए उस समय के राजनीतिक माहौल और निरंकुश शासन व्यवस्था को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। विष्णु जी उस समय की राजनीतिक परिस्थितियों पर खेद व्यक्त करते हैं। उन्होंने आज की घृणास्पद राजनीति, भ्रष्टाचार, षड्यंत्र, छल–कपट, स्वार्थ और अवसरवादिता जैसी प्रवृत्तियों को अपने नाटकों में उजागर करने का प्रयास किया है। उनके नाटकों के पात्र इन परिस्थितियों से परेशान होकर उनके खिलाफ संघर्ष करते हैं। इन नाटकों में व्यक्त राजनीतिक चेतना का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है– 'नव प्रभात' नाटक में बंदी बनाए गए कलिंग के युवराज कुमार अशोक से बड़े साहस और आत्मसम्मान के साथ कहते हैं– 'कलिंग का राजकुमार कलिंग के अलावा किसी और सिंहासन के सामने झुकना नहीं जानता। कलिंग के युवराज के रहते कलिंग का स्वामी कोई नहीं हो सकता, अशोक। जिसकी (कलिंग के राजमुकुट की) ओर दृष्टि उठाने वाले की आंखें निकाल ली जाती हैं, अशोक।' युवराज की इस बात में अपने देश को गर्वित रखने और बाहरी शक्तियों की अधीनता से स्वतंत्र रहने की अटूट राजनीतिक इच्छा व्यक्त होती है। यहाँ राजनीतिक स्वतंत्रता की प्रबल आकांक्षा स्पष्ट होती है।

'गांधार की भिक्षुणी' नाटक में परंपरा से चली आ रही दासता का विरोध स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। आनंन्दी के इस कथन से स्वतंत्रता के लिए जागृत राजनीतिक चेतना को उजागर किया गया है। आनंन्दी कहती हैं, 'दासता से बड़ा कोई पाप नहीं है, मैं दासी नहीं बन सकती। मैं स्वतंत्र रहना चाहती हूँ।'[7] इसी प्रकार, जब मालवा पर मिहिरकुल का आक्रमण होता है, तो यशोवर्मन के नेतृत्व में जो युद्ध लड़ा जाता है, उसमें राजनीतिक चेतना का उच्चतम स्तर देखने को मिलता है। इसमें जनतांत्रिक शासन व्यवस्था को बनाए रखने की प्रबल इच्छा यशोवर्मन के कथन से प्रकट होती है। यशोवर्मन कहते हैं, 'मैं परंपरागत राजवंश की स्थापना नहीं करूँगा। मैं साधारण नागरिक के रूप में ही आपका नेतृत्व करता रहूँगा। मैं चाहता हूँ कि इस देष के नागरिक हमेषा अपने षासक चुनते रहें।'[8]

यशोवर्मन के संवाद के माध्यम से उसकी राजनीतिक जागरूकता और जन कल्याण की भावना को स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है। यहाँ विष्णु जी ने यशोवर्मन जैसे पात्रों का निर्माण कर उस समय के राजनेताओं की भ्रष्ट और स्वार्थी प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया है।

विष्णु जी 'चंन्द्रहार' नाटक में राजनीतिक चेतना को स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हैं। चन्द्रहार नाटक में देवीदीन द्वारा तत्कालीन शासकों से किया गया प्रश्न स्वतंत्रता के समय भारतीय जनता के मन में स्वतंत्र भारत के शासकों के प्रति उठने वाली शंकाओं को दर्शाता है। देवीदीन के इस प्रश्न में राजनीतिक जागरूकता का संकेत मिलता है। वह पूछता है, 'साहब, सच–सच बताइए, जब आप सुराज का उल्लेख करते हैं, तो आपकी आँखों के सामने कौन–सा चित्र उभरता है? क्या आप भी बड़े–बड़े महल में रहेंगे, जैसे अंग्रेज? क्या आप पहाड़ों की ताजगी का आनंद लेंगे? इस सुराज से देश का क्या लाभ होगा?'[9]

यहाँ अप्रत्यक्ष रूप से देवीदीन अपने शासकों की प्रवृत्तियों के खिलाफ विद्रोह करते हुए दिखाई देता है। इसी प्रकार 'सत्ता के आर–पार' नाटक में बाहुबली द्वारा राजनीतिक जागरूकता को उजागर किया गया है। इस नाटक में सत्ता की लालसा और मर्यादाहीनता पर चिंता व्यक्त करते हुए बाहुबली कहता है– 'धिक्कार है ऐसी सत्ता को, धिक्कार है उसके मोहजाल में फंसने वाले को। क्या मैंने ऐसी रक्तपिपासु और मर्यादाहीन सत्ता के लिए युद्ध किया?'[10]

बाहुबली के इस कथन से उसकी राजनीतिक जागरूकता और सत्ता के लालची नेताओं की अनियंत्रित प्रवृत्तियों के प्रति असंतोष प्रकट होता है। इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि विष्णु जी के नाटकों में राजनीतिक जागरूकता गहन रूप से विद्यमान है। उनके नाटकों के पात्र राजनीतिक जागरूकता से प्रेरित होकर अन्याय और शोषण के खिलाफ संघर्ष करते हुए अपनी चेतना को व्यक्त करते हैं।

3. राष्ट्रीय चेतना : विष्णु प्रभाकर जी के नाटकों में राष्ट्रीय चेतना की प्रबल अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। विष्णु जी के मन में देश के प्रति गहरी श्रद्धा प्रकट होती है। उनके नाटकों में देशप्रेम और राष्ट्रप्रेम की भावना समाहित है। वे अपने नाटकों के विभिन्न पात्रों के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना की सशक्त और सफल अभिव्यक्ति करते हैं। कलिंग का युवराज कुमार, यद्यपि संघमित्रा के प्रति प्रेम रखता है, फिर भी वह देशप्रेम को उससे अधिक महत्व देता है। वह संघमित्रा से कहता है– 'मेरी मृत्यु ही मेरा कल्याण है। कलिंग के महानाश की बेला में जब उसकी असंख्य युवतियों का सुहाग सिंदूर रक्त में मिल गया हो, तो मैं तुम्हारी मांग में सिंदूर नहीं भर सकता। आज मेरी आंखें तुम्हारा रूप देखने में असमर्थ हैं। आज मेरे कान तुम्हारी प्रणय–रागिनी सुनने के योग्य नहीं हैं।'[11]

युवराज के इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि व्यक्तिगत प्रेम की तुलना में राष्ट्रीय प्रेम की अधिक महत्वपूर्णता है, जिसमें राष्ट्रीय चेतना का समावेश है। इसी प्रकार 'गांधार की भिक्षुणी' यशोवर्मन राष्ट्रीय चेतना का एक जीवंत प्रतीक है। वह हुणों के अत्याचारों के खिलाफ जनता में जागरूकता उत्पन्न करता है। उसका यह कथन उसकी राष्ट्रीय चेतना को उजागर करता है। वह कहता है– 'कभी–कभी मुझे ऐसा अनुभव होता है कि मैं भी आनंद के साथ घूम–फिरकर जनता के साथ एक हो जाऊं। हम सभी मिलकर हुणों की शक्ति का सामना करें और उन अत्याचारों का प्रतिशोध लें जो उन्होंने तुम पर किए हैं। मुझे मालवा की पीड़ित जनता में नई आषाएँ जगानी हैं।'[12]

दीप्ति की इस उक्ति के माध्यम से 'टूटते परिवेश' में राष्ट्रीय भावना के ह्रास पर गंभीर चिंता व्यक्त की गई है। वह कहती हैं, 'देश कहाँ है? हम तो देश के भीतर एक और देश का निर्माण कर चुके हैं। इस भीतर के देश का नाम स्वार्थ है, जो प्रांत, प्रदेश, धर्म और जाति के विभिन्न रूपों में प्रकट होता रहता है।'[13]

'कुहासा और किरण' नाटक में नई पीढ़ी की राष्ट्रीय चेतना को व्यक्त करते हुए कहा गया है– ''हमारे लिए देश सर्वोपरि है। देश की स्वतंत्रता के लिए हमने अपने प्राणों की आहुति दी थी, इसे अब कलंकित नहीं होने देंगे।''[14] इसी प्रकार 'सत्ता के आर–पार' नाटक में बाहुबली का यह कथन राष्ट्रीय चेतना से भरा हुआ है। वह कहता है– ''अब कोई तर्क मुझे मेरे मार्ग से भटका नहीं सकता। भगवान आदिनाथ ने जो राज्य मुझे दिया है, उसकी रक्षा मैं अपने शरीर में रक्त की अंतिम बूँद रहने तक करूंगा।''[15] इसी तरह 'केरल का क्रांतिकारी' नाटक में विष्णु जी ने राष्ट्रीय जागरण को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है। अमुकुट्टी लोगों का मनोबल बढ़ाते हुए कहती है– ''हम अपनी मातृभूमि को गुलाम नहीं होने देंगे। हम प्राण दे देंगे, लेकिन गुलामी का पट्टा अपने गले में नहीं डालेंगे।''[16] इस नाटक में नायक वेलुत्तंपी के इस कथन में हमें अपने देश के प्रति आत्म–त्याग की भावना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। वह कहता है– 'स्वतंत्रता का स्वर्ण कमल बिना रक्त के दान के नहीं खिल सकता। मुझे रक्त का दान करना होगा। मेरे वतन की लाल मिट्टी को लाल रक्त की आवश्यकता है। मैं उसकी आवश्यकता को पूरा करूंगा।'[17] यहाँ वेलुत्तंपी में राष्ट्र के प्रति बलिदान की भावना निहित है। हम यह कह सकते हैं कि विष्णु प्रभाकर के नाटकों में राष्ट्रीयता का स्वर अत्यंत स्पष्टता से प्रकट होता है। राष्ट्र के प्रति उनमें गहरी संवेदनाएँ समाहित हैं, और यही संवेदनाएँ उनके नाटकों में विभिन्न पात्रों के माध्यम से प्रकट होती हैं।

4. सांस्कृतिक चेतना : विष्णु जी को अपनी संस्कृति के प्रति गहरा प्रेम है। उन्होंने पाश्चात्य सभ्यता के बढ़ते प्रभाव को हमेशा अपनी लेखनी का विषय बनाया है। वे अपने नाटकों के माध्यम से भारतीय संस्कृति पर हावी पाश्चात्य संस्कृति का विरोध करते हैं, जिससे हमारी नई पीढ़ी में उच्छृंखलता बढ़ रही है। उन्होंने मूल्यों में आई गिरावट को अपनी आँखों से देखा, जो उन्हें अत्यंत व्यथित करता था। अपनी संस्कृति के प्रति हो रहे उपहास को देखकर विष्णु जी ने अपनी सांस्कृतिक चेतना को नाटकों के माध्यम से व्यक्त किया है। उनके अधिकांश नाटकों में यह सांस्कृतिक चेतना प्रभावी रूप से प्रकट होती है। विष्णु जी के 'नव प्रभात' नाटक में रेवां के संवाद प्रेम की पवित्रता को उजागर करने में सफल हैं, जो भारतीय संस्कृति का प्रतीक है। इस नाटक में कलिंग के युवराज कुमार के प्रति अशोक की बहन संघमित्रा के प्रेम की गहराई को समझते हुए रेवा कहती है– 'प्रेम कितनी अद्‌भुत और पवित्र भावना है। सभी लोग प्रेम क्यों नहीं करने लगते?'[18] यहाँ प्रेम के महत्व को उजागर किया गया है, क्योंकि प्रेम भारतीय संस्कृति का एक उच्चतर स्तर है।

यही बात 'गांधार की भिक्षुणी' में यशोवर्मन के कथन के माध्यम से भारत की समकालीन संस्कषति को बनाए रखने के प्रति एक दृढ़ संकल्प व्यक्त किया गया है। वह यह कहते हैं कि 'हूणों की राजनीतिक शक्ति को नष्ट करके उन्हें समाप्त नहीं किया जा सकता। बल्कि, उन्हें अपने में समाहित करना ही उन्हें समाप्त करने का सही तरीका है।'[19] यशोवर्मन के इस संवाद के माध्यम से विष्णु जी ने सांस्कृतिक समन्वय की कोशिश की है।

'चन्द्रहार' नाटक में जालपा के मन में अलंकारों के प्रति जो आकर्षण दर्शाया गया है, वह भारतीय संस्कृति की पुरानी प्रवृत्तियों में से एक है, जिसे जालपा और रमानाथ के जीवन की त्रासदियों के माध्यम से उजागर किया गया है। इस नाटक में आभूषणों के लालच के कारण उत्पन्न होने वाले दुष्परिणामों को दर्शाकर सांस्कृतिक पतन को स्पष्ट किया गया है। इसी प्रकार, 'होरी' नाटक में विष्णु जी ने भारतीय संस्कृति में गाय के महत्व को प्रस्तुत किया है। एक किसान के मन में गाय पालने की जो इच्छा होती है, वह होरी के इस कथन से प्रकट होती है। होरी भोला से कहता है– ''आपका जीवन धन्य है कि आप गायों की इतनी सेवा करते हैं। हमें तो गाय का गोबर भी नहीं मिलता। गृहस्थ के घर में एक गाय का न होना कितनी लज्जाजनक बात है।''[20] यहाँ होरी के माध्यम से सांस्कृतिक जागरूकता को व्यक्त किया गया है। इसी प्रकार एक अन्य नाटक ''युगे–युगे क्रांति'' में यह दर्शाया गया है कि पीढ़ी दर पीढ़ी विवाह संबंधी मूल्यों में बदलाव आ रहा है। वर्तमान पीढ़ी ने वर्षों से चली आ रही विवाह की अवधारणा को भी अस्वीकार कर दिया है। इस पर विष्णु जी खेद व्यक्त करते हैं। वे नाटक के पात्रों के माध्यम से स्पष्ट करते हैं कि यह संस्था हर युग में बदलती है, और इसमें हस्तक्षेप करना उचित नहीं है। इस नाटक के संवाद हमारी संस्कृति को दर्शाते हैं। प्रदीप अपनी बेटी अन्विता के बारे में अपनी पत्नी जैनेट से कहते हैं– ''यह उसका अपना मामला है। हमें इसमें दखल देने का कोई अधिकार नहीं है।''[21] प्रदीप का बेटा अनिरुद्ध अपने पिता से कहता है – आपको गर्व होना चाहिए कि आपके बच्चों ने आपको इस जिम्मेदारी से मुक्त कर दिया है। इसी प्रकार प्रदीप की बेटी अन्विता के इस कथन से नई पीढ़ी के दृष्टिकोण को समझा जा सकता है। अन्विता कहती है, ''लेकिन डैडी, दुनिया बहुत तेजी से आगे बढ़ रही है। यदि हम समय के साथ नहीं चलेंगे, तो हम पीछे रह जाएंगे। बीता हुआ हर क्षण मिट जाता है और जो उसके पीछे भागते हैं, वे भी फॉसिल बनकर रह जाते हैं।''[23] उपर्युक्त संवादों के माध्यम से विष्णु जी ने पीढ़ीगत संघर्ष को दर्शाते हुए अपने देश के सांस्कृतिक परिवर्तन को प्रस्तुत किया है, जिसमें सांस्कृतिक चेतना कहीं न कहीं प्रकट होती है।

निष्कर्ष : निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि विष्णु जी के नाटकों में चेतना अनेक रूपों में प्रकट होती है। इसके माध्यम से वे समाज की खोखली मान्यताओं, विडंबनाओं, विषमताओं, शोषण, भ्रष्टाचार और अन्याय पर प्रहार करते हैं। उनके नाटकों में अभिव्यक्त चेतना के विभिन्न रूप इस प्रकार हैं–

- शोषण, अन्याय, गरीबी, बेरोजगारी जैसी समस्याओं के खिलाफ सामाजिक जागरूकता को प्रकट किया गया है।
- भ्रष्टाचार, स्वार्थ, अवसरवादिता, अत्याचार, निरंकुशता, सत्ता की लालसा, अपराध, और दमनकारी नीतियों के खिलाफ राजनीतिक जागरूकता को व्यक्त किया गया है।
- त्याग, बलिदान, राष्ट्रप्रेम, देश का गौरव, प्रेम, और करुणा जैसे महान भावों की अभिव्यक्ति तथा राष्ट्र विरोधी प्रवृत्तियों के खिलाफ राष्ट्रीय जागरूकता को उजागर किया गया है।
- सांस्कृतिक गौरव की अभिव्यक्ति की गई है। साथ ही, बदलते जीवन मूल्यों को भी दर्शाया गया है। संस्कृति के लिए हानिकारक तत्वों के खिलाफ सांस्कृतिक जागरूकता को प्रकट किया गया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि विष्णु जी का नाट्य साहित्य चेतना से जुड़ा हुआ है। इसमें हर जगह चेतना का प्रवाह है।

आधार–ग्रंथ

1. डॉ. वन्दना मिश्रा, विष्णु प्रभाकर के नाटकों में मानवीय संवेदनाएँ
2. डॉ. सुभाष रस्तोगी, विष्णु प्रभाकर का साहित्यिक योगदान
3. डॉ. सुधा मल्होत्रा, विष्णु प्रभाकर का व्यक्तित्व और उनकी रचनाएँ
4. डॉ. दिनेश चंद्र वर्मा, समकालीन हिंदी नाटक और नाटककार
5. डॉ. सूमा रोडनवर, विष्णु प्रभाकर के कथा साहित्य में सामाजिक तत्व
6. डॉ. बी.एस. विवेकानंद पिल्लै, विष्णु प्रभाकर के नाट्य साहित्य में सामाजिक जागरूकता
7. विष्णु प्रभाकर, विष्णु प्रभाकर : सम्पूर्ण नाट्य संग्रह
8. डॉ. हरदेव बाहरी, हिन्दी शब्दकोष, राजपाल प्रकाशन, नई दिल्ली।

संदर्भ–सूची

1. विष्णु प्रभाकर, विष्णु प्रभाकरः सम्पूर्ण नाटक, भाग–5, पृ. 90–91
2. वही, भाग–5, पृ. 385
3. वही, भाग–5, पृ. 388
4. वही, भाग–5, पृ. 418
5. विष्णु प्रभाकर, सूरदास, पृ. 47–48
6. विष्णु प्रभाकर, विष्णु प्रभाकर : सम्पूर्ण नाटक, भाग–5, पृ. 31
7. विष्णु प्रभाकर, वही, भाग–5, पृ. 113
8. विष्णु प्रभाकर, वही, भाग–5, पृ. 140
9. विष्णु प्रभाकर, वही, भाग–6, पृ. 249
10. विष्णु प्रभाकर, वही, भाग–4, पृ. 432
11. विष्णु प्रभाकर, वही, भाग–5, पृ. 64
12. विष्णु प्रभाकर, वही, भाग–5, पृ. 101
13. विष्णु प्रभाकर, वही, भाग–2, पृ. 43
14. विष्णु प्रभाकर, वही, भाग–6, पृ. 188

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Mathematics : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 85-91

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Generalized E-Fuzzy Metric Space and its Properties

*Dr. Ajay Kumar**

Abstract : *In this paper, Based on the above definitions, some interesting coincidence points, common fixed points, and fixed point results are obtained that generalize not only the applications and fuzzy mapping and several important results of generalized fuzzy metric space with multiplayer mapping in recent literature. We extend the application of generalized fuzzy metric space and generalized locations with fuzzy mapping such as quasi-pseudo-metric spaces and cone metric spaces. Some assumptions are also acceptable for α-commuting, α-weakly consistent mapping, L-fuzzy mapping for L-fuzzy sets, and a pair of βFL - L-fuzzy mappings. They do, but also decrease. Some survival theory for the solution of a generalized class of nonlinear integral equations. Some practical examples have also been presented to increase the validity of this work.*

Keywords : *Fuzzy Set, Fuzzy Theory. Metric Spaces and Cone Metric Spaces.*

Introduction : How to define fuzzy metric is one of the fundamental problems in fuzzy mathe- matics which is wildly used in fuzzy optimization and pattern recognition. There are two approaches in this field till now. One is using fuzzy numbers to define metric in ordinary spaces, firstly proposed by Kaleva (1984)[12], following which fuzzy normed spaces, fuzzy topology induced by fuzzy metric spaces, fixed point theorem and other properties of fuzzy metric spaces are studied by a few re- searchers, see for instance, Felbin (1992)[7], George (1994)[8], George (1997)[9], Gregori (2000)[10], Hadzic (2002)[11] etc. The other one is using real numbers to measure the distances between fuzzy sets. The references of this approach can be referred to, for instance, Dia (1990)[5], Chaudhuri (1996)[4], Boxer (1997)[2], Fan (1998)6, Voxmam (1998)[16], Przemyslaw, (1998)[14], Brass (2002)[3]. Re- sults of these researches have been applied to many practical problems in fuzzy environment. While, usually, different measures are used in different problems in other words, there does not exist a uniform measure that can be used in all kinds of fuzzy environments.

Therefore, it is still interesting to find some kind of new fuzzy measure such that it may be useful for solving some problems in fuzzy environment. The attempt of the present paper is using fuzzy scalars (fuzzy points defined on the real-valued space R) to measure the distances between fuzzy points, which is consistent with the theory of fuzzy linear spaces in the sense of Xia and Guo (2003)[17] and hence more similar to the classical metric spaces. The new definitions in this paper are different from the previous ones because fuzzy scalars are used instead of fuzzy numbers or real numbers to measure the distance between two fuzzy points. It is the first time that fuzzy scalars are introduced in measuring the distances between fuzzy points. Some other properties of fuzzy metric spaces, for instance, completeness and induced fuzzy topology are also given in this paper.

For the convenience of reading, some basic concepts of fuzzy points and de- notations are presented below.

Fuzzy points are the fuzzy sets being of the following form in the sense of Pu (1980)[15],

* ***Department of Matematics, Veer Kunwar Singh University, Ara, Bihar***

(λ, $y = x$,

$x_\lambda(y) = 0$, $y \neq x$, $\forall y \in X$,

where X is a nonempty set and $\lambda \in$ [1].

In this paper, fuzzy points are usually denoted by (x, λ) and the set of all the fuzzy points defined on X is denoted by $P_F(X)$. Particularly, when $X = R$, fuzzy points are also called fuzzy scalars and the set of all the fuzzy scalars is denoted by $S_F(R)$. A fuzzy set A can be regarded as a set of fuzzy points *belonging to* it, i.e.,

$$A = \{(x, \lambda) | A(x) \geq \lambda\}$$

or a set of fuzzy points *on* it,

$$A = \{(x, \lambda) | A(x) = \lambda\}.$$

This paper is organized as follows: In Section 2, fuzzy metric spaces, strong fuzzy metric spaces and fuzzy linear normed spaces are defined and some ex-amples are given to show the existence of these kinds of spaces; In Section 3, the convergence of sequences of fuzzy points and the completeness of induced fuzzy metric spaces are considered; In the last section, it is proved that the fuzzy topology induced by fuzzy metric spaces is consistent with the given one, see for instance, Pu (1980)[15], which implies in another way the usefulness of the fuzzy metric spaces defined in Section 2.

Fuzzy Metric Spaces : The purpose of this section mainly consists in defining fuzzy metric spaces, strong fuzzy metric spaces and fuzzy normed linear spaces. To do so, we first give some definitions related to fuzzy scalars.

Definition 1. Suppose (x, λ) and (y, γ) are two fuzzy scalars. A series of defi- nitions contains the following ones :

(1) we say $(a, \lambda) \in (b, \gamma)$ if $a > b$ or $(a, \lambda) = (b, \gamma)$;

(2) (a, λ) is said to be *no less than* (b, γ) if $a \geq b$, denoted by $(a, \lambda) \geq (b, \gamma)$ or $(b, \gamma) < (a, \lambda)$;

(3) (a, λ) is said to be *nonnegative* if $a \geq 0$. The set of all the nonnegative fuzzy scalars is denoted by $S^+(R)$.

Obviously, the orders defined in Definition 1^1 and Definition 1^2 are both partial orders. Note that when R is considered as a subset of $S_F(R)$, $(R, \geq)$ and $(R, \in)$ are the same as $(R, \in)$. Thus both $\geq$ and $\in$ can be viewed as some kind of generalization of the ordinary complete order $\geq$. It is obvious that the order defined in Definition 1^1 is stronger than the one in Definition 1^2.

We now present the definition of fuzzy metric spaces. It will be seen that it is very similar to the definition of ordinary metric spaces except that $\leq$ is replaced by $<$ in the triangle inequality. This is because that there exist no reasonable complete order in $S_F(R)^+$.

Definition 2. Suppose X is a nonempty set and

$$d_F : P_F(X) \times P_F(X) \to S^+(R) \qquad F$$

is a mapping. $(P_F(X), d_F)$ is said to be a *fuzzy metric space* if for any $\{(x, \lambda),$ $(y, \gamma), (z, \rho)\}$ _ $P_F(X), d_F$ satisfies the following three conditions,

(1) Nonnegative: $d_F((x, \lambda), (y, \gamma)) = 0$ iff $x = y$ and $\lambda = \gamma = 1$;

(2) Symmetric :

$$d_F((x, \lambda), (y, \gamma)) = d_F((y, \gamma), (x, \lambda));$$

(3) Triangle inequality :

$$d_F((x, \lambda), (z, \rho)) \setminus d_F((x, \lambda), (y, \gamma)) + d_F((y, \gamma), (z, \rho)).$$

d_F is called a *fuzzy metric* defined in $P_F(X)$ and $d_F((x, \lambda), (y, \gamma))$ is called a *fuzzy distance* between the two fuzzy points.

Note that fuzzy metric spaces have fuzzy points as their elements, i.e., they are sets of fuzzy points. There are many fuzzy metric spaces in the sense of Definition 2. To show this, some examples are presented below :

Example 1. Suppose (X, d) is an ordinary metric space. The distance of any two fuzzy points (x, λ), (y, γ) in $P_F(X)$ is defined by

$$d_F((x, \lambda), (y, \gamma)) = (d(x, y), \min\{\lambda, \gamma\}),$$

where $d(x, y)$ is the distance between x and y defined in (X, d).Then $(PF(X), d_F)$ is a fuzzy metric space.

Proof. It suffices to prove that d_F satisfies the three conditions in Definition 2. Nonnegative: Suppose (x, λ) and (y, γ) are two fuzzy points in $P_F(X)$. Since $d(x, y)$ is a distance between x and y, one has $d(x, y) \geq 0$. It follows from Definition 1 that $d_F((x, \lambda), (y, \gamma)) = (d(x, y), \min\{\lambda, \gamma\})$ is a nonnegative fuzzy scalar.

It is obvious that $d_F((x,\lambda), (y,\gamma))=0$ iff $d(x,y)=0$ and $\min\{\lambda, \gamma\} = 1$ which is equal to that $x = y$ and $\lambda = \gamma = 1$.

Symmetric : For any $\{(x, \lambda), (y, \gamma)\} \subset P_F(X)$, one has

$$\begin{aligned} d_F((x, \lambda), (y, \gamma)) &= (d(x, y), \min\{\lambda, \gamma\}) \\ &= (d(y, x), \min\{\gamma, \lambda\}) \\ &= d_F((y, \gamma), (x, \lambda)). \end{aligned}$$

Triangle inequality : For any $\{(x, \lambda), (y, \gamma), (z, \rho)\} \subset P_F(X)$, we have

$$\begin{aligned} d_F((x, \lambda), (z, \rho)) &= (d(x, z), \min\{\lambda, \rho\}) < (d(x, y) + d(y, z), \min\{\lambda, \rho, \gamma\}) \\ &= (d(x, y), \min\{\lambda, \gamma\}) + (d(y, z), \min\{\gamma, \rho\}) \\ &= d((x, \lambda), (y, \gamma)) + d((y, \gamma), (z, \rho)). \end{aligned}$$

Example 2. We denote R^n the usual n-dimensional Euclidean space. Suppose L is a fuzzy linear space defined in R^n. The distance between arbitrary two fuzzy points (x, λ), (y, γ) *belonging to* L, denoted by $d_{FE}((x, \lambda), (y, \gamma))$, is defined by

$$d_{FE}((x, \lambda), (y, \gamma)) = (dE(x, y), \min\{\lambda, \gamma\}),$$

where d_E is the usual Euclidean distance. Then (L, d_{EF}) is also a fuzzy metric space, where L is also viewed as the set of fuzzy points *belonging to* the fuzzy set L.

Proof. Since R^n is a metric space in the ordinary sense and L can be regarded as a subset of $P_F(R^n)$, d_{FE} is a fuzzy metric from Example 1. D

The two examples given above show that a fuzzy (linear) metric space can be constructed by a (linear) metric space in the usual sense, called an *induced (linear) metric space* of it and the metric of the space is called an *induced metric* of the original one.

Since $S_F^+(R)$ is not a complete ordered set, in the triangle inequality of Definition 2, $\leq$ is replaced by \ which is much weaker than it. A natural question is that whether there exist some kind of fuzzy metric spaces satisfying the triangle inequality with some partial order stronger than $<$, for example, {. The answer is positive and they are called strong fuzzy metric spaces.

Definition 3. Suppose X is a nonempty set and $dF : P_F(X) \times P_F(X) \to S^+(R)$ is a F mapping. $(P_F(X), d_F)$ is said to be a *strong fuzzy metric space* if it satisfies the first two conditions in Definition 2 and for any (x, λ), (y, γ), (z, ρ) in $P_F(X)$, one has (3^1) $d_F((x, \lambda), (z, \rho)) \{ d_F((x, \lambda), (y, \gamma)) + d_F((y, \gamma), (z, \rho))$.

It is obvious from Definition 2 and Definition 3 that every strong fuzzy metric space is a fuzzy metric space. The following example shows the existence of strong fuzzy metric spaces and the difference between these two kinds of spaces.

Example 3. L is a fuzzy linear space defined in R^n. The distance between arbitrary two fuzzy points (x, λ)

and (y, γ) *on* L is defined by

$$d_{FE}((x, \lambda), (y, \gamma)) = (d_E(x, y), \min\{\lambda, \gamma\}), \quad \text{..... (1)}$$

where d_E is the Euclidean distance. Then (L, d_{FE}) is a strong fuzzy metric space where L denote the set of fuzzy points *on* the fuzzy set L.

Proof. The first two conditions can be proved just as Example 1. Here we only prove the third one.

Given arbitrary three fuzzy points on L, (x, λ), (y, γ) *and* (z, ρ). Since (R^n, d_E) is a metric space, one has

$$d_E(x, z) \le d_E(y, z) + d_E(x, y). \quad \text{..... (2)}$$

In the case of that inequality (2) holds strictly, it is obvious from Definition 1^1 that condition (3^1) is satisfied. In the other case, there must exists some $\lambda \in F$ such that $y = (1-\lambda)x + \lambda z$. Let $\alpha = \min\{\lambda, \rho\}$. We have that $\{x, z\} \subset L_\alpha$. Since L_α is a fuzzy linear space, L_α is a linear subspace of R^n (see the Representation Theorem of fuzzy linear spaces due to Lowen (1980)[13]. It follows that $y \in L_\alpha$, i.e., $\gamma = L(y) \ge \alpha = \min\{\lambda, \rho\}$. This implies that $\min\{\lambda, \rho, \gamma\} = \min\{\lambda, \rho\}$.

Thus, one has

$d_{FE}((x, \lambda), (z, \rho)) = (d_E(x, z), \min\{\lambda, \rho\})$

$= (d_E(x, y) + d_E(y, z), \min\{\lambda, \rho, \gamma\})$

$= d_{FE}((x, \lambda), (y, \gamma)) + d_{FE}((y, \gamma), (z, \rho))$.

Consequently, condition (3^1) is satisfied. D

Note that the strong fuzzy metric space given above is a set of fuzzy points *on* some fuzzy linear space. Different from it, the fuzzy metric space in Example 2 comprises fuzzy points *belonging to* a fuzzy linear space. The difference is caused by that < is replaced by the partial order { which is much stronger than it.

Definition 4. Suppose that L is a fuzzy linear space. $(L, \cdot)$ is said to be a *fuzzy linear normed space* if the mapping: $L \to S^+(R)$ F satisfies :

(a) $(x, \lambda) = 0$ if and only if $x = 0$ and $\lambda = 1$;

(b) For any $k \in R$ and $(x, \lambda) \in L$, one has $k(x, \lambda) = |k| \cdot (x, \lambda)$;

(c) For any $\{(x, \lambda), (y, \gamma)\} \subset L$, one has $(x, \lambda) + (y, \gamma)$ { $(x, \lambda) + (y, \gamma)$.

The mapping $: x\ 1 \to x$ is called the *fuzzy norm* of $(L, \cdot)$. Note that a *fuzzy* linear normed space L has fuzzy points *belonging to* the fuzzy set L as its elements.

Example 4. Let $(G, \|\cdot\|_G)$ be a linear normed space defined on R. L is a fuzzy linear space defined in G and $\cdot_{FG}$ is a mapping from L to $S_F(R)^+$ defined by

$$(x, \lambda)_{FG} := (x_G, \lambda), \qquad \forall (x, \lambda) \in L.$$

Then $(L, \cdot_{FG})$ is a fuzzy linear normed space which can be verified similar to Example 2.

The following proposition given without proof shows the relationship between fuzzy linear normed spaces and fuzzy metric spaces.

Proposition 1. *Suppose* $(L, \cdot_{FG})$ *is a fuzzy linear normed space. Then* (L, d_{FG}) *is a fuzzy metric space, where* d_{FG} *is defined by*

$$d_{FG}((x, \lambda), (y, \gamma)) := (x, \lambda) - (y, \gamma)_{FG}.$$

Proof. It is omitted. D

Taking $G = R^n$ in Example 4, we have the following proposition, which shows the relationship between fuzzy norm and inner product of fuzzy points.

Proposition 2. *Suppose* $(L, \cdot FE)$ *is a fuzzy linear normed space defined in* R^n. *For any* $(x, \lambda) \in L$, *one has*

$$< (x, \lambda), (x, \lambda) > = 2\ (x, \lambda)_{FE},$$

where the inner product is defined in the sense of Xia and Guo (2003)[17]*, i.e.,*

$$< (x, \lambda), (y, \gamma) > = (< x, y >, \min\{\lambda, \gamma\}).$$

Proof. From the definition of inner product of fuzzy points, one has

$$\begin{aligned} < (x, \lambda), (x, \lambda) > &= (< x, x >, \lambda) \\ &= (x_E^2, \lambda) \\ &= (x_{E,} \lambda) \cdot (x_{E,} \lambda) \\ &= (x, \lambda)_{FE}^2, \end{aligned}$$

where $\cdot_E$ is the Euclidean norm. D

The completeness of Fuzzy Metric Spaces : In this section, we mainly consider the convergence of a sequence of fuzzy points and the completeness of induced fuzzy metric spaces. Since fuzzy scalars are used to measure the distances between fuzzy points, the convergence of a sequence of fuzzy scalars is considered first.

Definition 5. Let $\{(a_{n,} \lambda_n)\}$ be a sequence of fuzzy scalars. It is said to be *convergent* to a fuzzy scalar (a, λ), $\lambda \neq 0$, denoted by $\lim_{n\to\infty}(a_{n,} \lambda_n) = (a, \lambda)$ if $\lim_{n\to\infty} a_n = a$, $\{\lambda_i | \lambda_i < \lambda, i \in \mathrm{N}\}$ is a finite set and there exists a subsequence of $\{\lambda_i\}$, denoted by $\{\lambda_l\}$, such that $\lim_{n\to\infty} \lambda_l = \lambda$.

The requirement that almost all the $\lambda_i \in \mathrm{N}$ satisfy $\lambda_i \geq \lambda$ is natural since we hope that the degree of the convergence is not less than λ. A new definition of the convergence of a sequence of fuzzy points is presented below based on the fuzzy metric given in the last section.

Definition 6. Suppose $(P_F(X), d_F)$ is the induced fuzzy metric space of (X, d) and $\{(x_{n,} \lambda_n)\}$ is a sequence of fuzzy points in $(P_F(X), d_F)$. $\{(x_{n,} \lambda_n)\}$ is said to be *convergent* to a fuzzy point (x, λ),

if $\lim_{n\to\infty} d_F((x_{n,} \lambda_n), (x, \lambda)) = 0_\lambda$ and for any $\gamma \in (0, 1]$

such that $\lim_{n\to\infty} d_F((x_{n'} \lambda_n), (x, \gamma)) = 0_\gamma$, one has $\lambda \geq \gamma$. (x, λ) is called the *limit of the sequence,* denoted by $\lim_{n\to\infty}(x_{n,} \lambda_n) = (x, \lambda)$.

Proposition 3. *Suppose* $\{(x_{n,} \lambda_n)\}$ *is a sequence of fuzzy points in* $(P_F(X), d_F)$ *and* $(x, \lambda) \in (P_F(X), d_F)$, $\lambda \neq 0$. *We have that* $\lim_{n\to\infty}(x_{n,} \lambda_n) = (x, \lambda)$ *if and only if* $\lim_{n\to\infty} x_n = x$, $\{\lambda_i | \lambda_i < \lambda, i \in \mathrm{N}\}$ *is a finite set and there exists a subsequence of* $\{\lambda_i\}$*, denoted by* $\{\lambda_l\}$*, such that* $\lim_{n\to\infty} \lambda_l = \lambda$.

Proof. It is omitted. D

Definition 7. A sequence of fuzzy points $(x_n, \lambda_n) \in (P_F(X), d_F)$ is said to be a *Cauchy sequence* if there exists some $\lambda \in (0, 1]$ such that

$$\lim_{n\to\infty} d_F((x_{m+n,} \lambda_{m+n}), (x_n, \lambda_n)) = 0_\lambda, \quad \forall m \in \mathrm{N}.$$

Note that every Cauchy sequence of fuzzy points defined above has a unique fuzzy point as its limit, which is very similar to the classical one. We now begin to consider the completeness of fuzzy metric spaces.

Definition 8. An induced fuzzy metric space is said to be *complete* if any Cauchy sequence in it has a unique limit in the space.

Theorem 1. *Suppose* $(P_F(X), d_F)$ *is the induced fuzzy metric space of an or- dinary metric space* (X, d)*. Then it is complete iff* (X, d) *is complete.*

Proof. Necessity (Only if) : It is obvious.

Sufficiency (If) : Suppose $\{(x_{n,} \lambda_n)\}$ is an arbitrary Cauchy sequence of $(P_F(X), d_F)$. Since (X, d) is complete and $\lim_{n\to\infty} d(x_{m+n}, x_n) = 0$ for any $m \in \mathrm{N}$, there must exists some $x \in X$ such that $\lim_{n\to\infty} x_{n=x}$. For any $m \in \mathrm{N}$, denote the index set $\{l | \lambda_l = \min\{\lambda_{m+n}, \lambda_n\}, n = 1, 2 \cdots\}$ by L_m.

From the definition of Cauchy sequences of fuzzy points, there exists some $\lambda \in (0, 1]$ such that for any $m \in \mathrm{N}$, the set $\{\lambda_l | \lambda_l < \lambda, l \in L_m\}$ is finite and there exists a subsequence of $\{\lambda_l\}_{l \in Lm}$, denoted by $\{\lambda_k\}$, which is also a subsequence of $\{\lambda_n\}$, such that $\lim_{k\to\infty} \lambda_k = \lambda$. It is obvious that

$$\{l|\lambda_l < \lambda,\ l \in L_m\} \in \{n|\lambda_n < \lambda,\ n = 1, 2, \cdots\}.$$

Consequently, $\{\lambda_n|\lambda_n < \lambda,\ n = 1, 2, \cdots\}$ is also a finite set. From the above arguments, we have $\lim_{n\to\infty}(x_n, \lambda_n) = (x, \lambda)$. It implies that there exists a limit of $\{x_n, \lambda_n\}$ in $P_F(X)$. In the following we prove the uniqueness. By contradiction, assume that there is another limit of the same Cauchy sequence $\{(x_n, \lambda_n)\}$. Since we know x is the unique limit of $\{x_n\}$, we can denote by (x, γ) the limit different from (x, λ), $\gamma \neq \lambda$, say $\gamma > \lambda$. Then we have $\{\lambda_n|\lambda_n < \gamma\}$ is a finite set. From the above arguments, we know that $\lim_{k\to\infty}\lambda_k = \lambda$ and $\{\lambda_k|\lambda_k < \lambda\}$ is a finite set. Thus, taking $\rho = \frac{\lambda+\gamma}{2}$, we have

$$\{\lambda_k\}) \cap [\lambda, \rho],\ \in \{\lambda_n|\lambda_n < \gamma\}$$

is an infinite set. This contradicts that $\{\lambda_n|\lambda_n < \gamma\}$ is a finite set. Therefore, there is only one limit of the Cauchy sequence. D

Note that a strong fuzzy linear metric space is generally not complete. It can be seen through the counter-example given below.

Example 5. Consider the strong fuzzy linear metric space (L, dFE), where

$$(1\ L = (x, \lambda)|x \in R \setminus \{0\},\ \lambda = {}_2 - \{(0, 1)\}$$

and d_{FE} is induced by the ordinary Euclidean metric dE. The sequence $\{(\ ^1, \ ^1)\}_{n\ 2}$ in L is a Cauchy sequence in the sense of Definition 7. However, the limit of the sequence, $(0,\ 1)$ is not on the space L. $\overline{2}$

The Fuzzy Topology Spaces Tnduced by Fuzzy Metric Spaces : Fuzzy metric spaces given in this paper have many similar properties to the ordinary metric spaces. Except the relationship between distances and inner products of fuzzy points mentioned in the Section 2, a conclusion similar to that every metric space can induce a topology will be proved in this section. Here we introduce fuzzy topology in the sense of Pu (1980)[15] via fuzzy closed sets. It provides a convenient method to construct a fuzzy topology of any ordinary metric space. To do this, the definition of fuzzy closed sets with respect to induced fuzzy metric spaces is given first. Suppose (X, d) is an ordinary metric space. Since a fuzzy set A in X can be viewed as a set of fuzzy points belonging to it, A can be regarded as a subset of $P_F(X)$, called a fuzzy set in the induced fuzzy metric space $(P_F(X), d_F)$ in the following definition.

Definition 9. A fuzzy set A in $(P_F(X), d_F)$ is said to be *closed* if the limit of any Cauchy sequence in A belongs to it. A fuzzy set A in $(P_F(X), d_F)$ is said to be *open* if A^1 is a fuzzy closed set, where A^1 is defined by $A^1(x) = 1 - A(x)$, for any $x \in X$.

The following proposition shows that the new definition of fuzzy closed sets is reasonable.

Proposition 4. *A fuzzy set A in* $(P_F(X), d_F)$ *is closed if and only if every α-cut set of A,* $\alpha \in [0, 1]$, *is a closed set in* (X, d) *in the ordinary sense.*

Proof. It is omitted. D

In the following we will show that every induced fuzzy metric space can induce a fuzzy topology. To prove it, a lemma about Cauchy sequences of fuzzy points is given.

Lemma 1. *Any subsequence of a Cauchy sequence of fuzzy points is also a Cauchy sequence and has the same limit as the original one.*

Proof. It is obvious from Definition 7. D

Theorem 2. *Suppose* $(P_F(X), d_F)$ *is the induced fuzzy metric space of a metric space* (X, d). *Then* (X, T_F) *is a fuzzy topology space in the sense of Pu* (1980)[15], *called the fuzzy topology space induced by* $(P_F(X), d_F)$, *where* T_F *is defined by*

$$\mathrm{T}_F = \{A\ , \in P_F(X)|A \text{ is a fuzzy closed set in } (P_F(X), d_F)\}.$$

Proof. It suffices to prove that T_F satisfies the three conditions in the definition of fuzzy topology due to Pu (1980)[15].

(1) It is obvious that X and $\in$ are fuzzy closed sets.

(2) For any $\{A, B\}, \subset T_F$, we prove in the following that $A \cup B \in T_F$. For any Cauchy sequence of fuzzy points $\{(y_n, \gamma_n)\}$ included in $A \cup B$, A or B, say A, must contain a subsequence $\{(y_m, \gamma_m)\}$ of $\{(y_n, \gamma_n)\}$. From Lemma 1, $\{(y_m, \gamma_m)\}$ is also a Cauchy sequence and hence has a limit. Since A is a closed fuzzy set, the limit of $\{(y_m, \gamma_m)\}$ which is also the limit of $\{(y_n, \gamma_n)\}$ is included in A. In consequence, the limit of $\{(y_n, \gamma_n)\}$ is included in $A \cup B$, which implies that $A \cup B \in T_F$.

(3) For any $\{A_i\}_{i \in I}, \subset T_F$, where I is an arbitrary index set, it only need to be proved that $n_{i \in I} A_i \in T_F$. For any Cauchy sequence in $n_{i \in I} A_i$, denoted by $\{(x_n, \lambda_n)\}$, we have that $\{(x_n, \lambda_n)\}, \subset A_i$ for any $i \in I$. Since every A_i is a closed fuzzy set, the limit of $\{(x_n, \lambda_n)\}$ is in A_i for any $i \in I$. It follows that $n_{i \in I} A_i$ is a closed fuzzy set in the sense of Definition 9. Therefore one has $n_{i \in I} A_i \in T_F$.

The proof is completed. D

From the theorem given above we know that every fuzzy metric space can induce a fuzzy topology space, which implies in another way that the fuzzy measure defined in this paper is not only reasonable but also significant.

References

1. R. Biswas, *Fuzzy Inner Product Spaces and Fuzzy Norm Functions*, Inf. Sci. 53 (1991), 185- 190.

2. L.Boxer, *On Hausdirff-like Metirc for Fuzzy Sets*, Pattern Recognition Letters 18 (1997), 115-118.

3. P. Brass, *On the Noexistence of Hausdorff-like Metrics for Fuzzy Sets*, Pattern Recognition Letters 23 (2002), 39-43.

4. B. B. Chaudhuri and A. Rosenfeld, *On a Metric Distance Between Fuzzy sets*, Pattern Recognition Letters 17 (1996), 1157-1160.

5. P. Diamond and P. Kloden, *Metric Spaces of Fuzzy Sets*, Fuzzy Sets and Systems 35 (1990), 241-249.

6. J. L. Fan, *Note on Hausdorff-like Metrics for Fuzzy Sets*, Pattern Recognition Letters 19 (1998), 793-796.

7. C. Felbin, *Finite Dimensional Fuzzy Normed Linear Space*, Fuzzy Sets and Systems 48 (1992), 239-248.

8. A. George and P. V. Veeramani, *On Some Results of Fuzzy Metric Spaces*, Fuzzy Sets and Systems 64 (1994), 395-399.

9. A. George and P. V. Veeramani, *On Some Results of Analysis for Fuzzy Metric Spaces*, Fuzzy Sets and Systems 90 (1997), 365-368.

10. V. Gregori and S. Romaguera, *Some Properties of Fuzzy Metric Spaces*, Fuzzy Sets and Systems 115 (2000), 485-489.

11. O. Hadzic and E. Pap, *A Fixed Point Theorem for Multivalued Mapping in Propbalitistic Metric Spaces and an Application in Fuzzy Metric Spaces*, Fuzzy Sets and Systems 127 (2002), 333-344.

12. O. Kaleva and S. Seikkala, *On Fuzzy Metric Space*, Fuzzy Sets and Systems 12 (1984), 215-229.

13. R. Lowen, *Convex Fuzzy sets*, Fuzzy Sets and Systems 3 (1980), 291-310.

14. G. Przemyslaw, *Metrics and Orders in Space of Fuzzy Numbers*, Fuzzy Sets and Systems 97 (1998), 83-94.

15. B. M. Pu and Y. M. Liu, *Fuzzy Topology I : Neighborhood Structure of a Fuzzy Point and Moore-Smith Convergence*, J. Math. Anal. Appl. 76 (1980), 517-599.

16. W. Voxman, *Some Remarks on Distance Betwen Fuzzy Numbers*, Fuzzy Sets and Systems 100 (1998), 353-365.

17. Z. Q. Xia and F. F. Guo, *Fuzzy Linear Spaces*, Int. J. Pure and Applied Mathematics, to appear.

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Mathematics : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 92-98

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Application of Differential Equation in COVID-19 Outbreak Data Analysis

*Anil Kumar Yadav** *Prof. Lalan Kumar Singh***

Abstract : *Over the past year, the COVID-19 pandemic has affected people all over the world. India has already experienced this illness twice. The COVID-19 pandemic in India during its second phase was terrifying. The COVID-19 pandemic, according to a World Health Organization report, is an infectious disease that spreads quickly through human-to-human contact droplets. These are crucial times for data analysis related to the COVID-19 pandemic, and global action is needed to minimize the pandemic's effects as soon as possible. Here, we have used differential equation analysis to examine the COVID-2019 data. In addition, we have experimented with using the SIR epidemic model to analyze COVID-19 pandemic data. We have also suggested another approach in this proposed research work, which is known as the SIR model. A family of differential equations makes up the SIR model. The Euler method has been used to solve these differential equations. With the aid of SIR models, numerous researchers have effectively analyzed infectious diseases over the last few years. Therefore, this proposed study will be crucial in the future as the Indian doctors' government prepares their plan for the upcoming week. In summary, it can be concluded that the two models put forth will be highly beneficial for analyzing the COVID-19 outbreak datasets in India. illnesses using SIR models as a guide.*

Keywords : *Differential Equation, SIR Model, COVID-19 Data, Recovery Rate, Infection Rate.*

1. Introduction : COVID-19, caused by the novel coronavirus SARS-CoV-2, emerged in December 2019 in Wuhan, China. The disease quickly spread across the globe, leading to a pandemic declaration by the World Health Organization (WHO) on March 11, 2020. It is characterized by a range of symptoms, from mild respiratory issues to severe pneumonia and acute respiratory distress syndrome. Initially confined to China, COVID-19 rapidly spread to nearly every country and territory worldwide. Major outbreaks occurred in Europe, North America, and South America before affecting other regions. The pandemic has put immense strain on healthcare systems, leading to shortages of medical supplies, hospital beds, and healthcare workers. The surge in cases has overwhelmed many hospitals, particularly during peak waves of infection. The pandemic triggered a global economic downturn, with significant impacts on various sectors including travel, hospitality, and retail. Many businesses faced closures or reduced operations, leading to widespread job losses and economic instability.

Lockdowns, social distancing, and remote work became new norms. Educational institutions transitioned to online learning, and many social activities were curtailed. Mental health issues have increased due to isolation and stress. The pandemic has highlighted and exacerbated global inequalities, with disparities in access to healthcare and vaccines between high-income and low-income countries. Vulnerable populations have been disproportionately affected by both the health and economic impacts of the pandemic.

* ***Research Scholar, Department of Mathematics and Computer Science, Magadh University Bodh-Gaya***

* ***Associate Professor, Department of Mathematics, K.S.M College, Aurangabad***

Widespread testing and contact tracing have been crucial in controlling the spread of the virus. Various methods and technologies have been employed to track and manage outbreaks. The development and distribution of COVID-19 vaccines have been pivotal in controlling the pandemic. Several vaccines have received emergency use authorization and have been distributed globally, with varying levels of coverage and efficacy. Governments have implemented various public health measures, including travel restrictions, mask mandates, and social distancing guidelines, to mitigate the spread of the virus. Rapid vaccine development has been one of the most significant achievements in the fight against COVID-19. mRNA vaccines (e.g., Pfizer-BioNTech, Moderna) and vector vaccines (e.g., Astra Zeneca, Johnson & Johnson) have shown high efficacy in preventing severe illness.

Research into antiviral treatments and other therapeutics has led to the development of several drugs to manage symptoms and reduce the severity of the disease. Treatments like Remdesivir and monoclonal antibodies have been used in clinical settings. Continued surveillance of COVID-19 variants and adaptive strategies are necessary to manage ongoing outbreaks. Variants like Delta and Omicron have demonstrated different transmission dynamics and vaccine resistance. The long-term effects of COVID-19, including "long COVID" symptoms and potential impacts on public health systems, are areas of active research and concern.

A foundational text in epidemiology that provides an in-depth explanation of the SIR model and other compartmental models[1]. This author gives a comprehensive overview of the mathematical models used in epidemiology, including the SIR model[1,2,3]. *An Introduction* provides a comprehensive introduction to the mathematical modeling of biological processes, including population dynamics, epidemiology, and pattern formation. The book emphasizes the application of mathematical techniques to real-world biological problems.[4] The study by Tang et al. (2020) provides an updated assessment of the transmission risk of the novel coronavirus (2019-nCoV) using mathematical modeling. It highlights the estimated basic reproduction number (R_0) and discusses the implications for public health measures[6]. The study integrates epidemic modeling with machine learning techniques to enhance COVID-19 forecasts in the United States. By combining traditional epidemiological models with data-driven algorithms, it aims to improve the accuracy and timeliness of predictions. The approach seeks to better inform public health responses and policy decisions[7].

2. Methodology

2.1. SIR Model : The SIR model is a foundational epidemiological model used to describe the spread of infectious diseases within a population. It divides the population into three compartments :

1. S (Susceptible) : Individuals who have not yet contracted the disease but are at risk of becoming infected.

2. I (Infectious) : Individuals who are currently infected and capable of spreading the disease to susceptible individuals.

3. R (Recovered) : Individuals who have recovered from the disease and are assumed to be immune, thus no longer susceptible to the disease.

The basic SIR model is described by a set of differential equations that represent the rates of change of each compartment over time. The model makes several assumptions :

1. The total population is constant (no births, deaths, or migrations).

2. Individuals who recover from the disease gain complete immunity and do not return to the susceptible class.

3. The disease is spread through contact between susceptible and infectious individuals.

The differential equations for the SIR model are[1,2,3] :

1. Susceptible Individuals : $dS/dt = -\beta SIN$ (1)

2. Infectious Individuals: $dI/dt = \beta SIN - \gamma I$ (2)

3. Recovered Individuals : $dR/dt = \gamma I$ (3)

Where,

1. β is the transmission rate, representing the probability of transmission per contact between a susceptible and an infectious individual.

2. γ is the recovery rate, representing the rate at which infected individuals recover from the disease.

3. N is the total population, which is constant and given by $S + I + R$.

2.2. Basic Reproduction Number (R_0) – The basic reproduction number, R_0, is a key parameter in epidemiological models. It represents the average number of secondary infections produced by one infected individual in a completely susceptible population. For the SIR model, R_0 is given by :

$$R_0 = \frac{\beta}{\gamma} \quad (3)$$

- If , $R_0 > 1$ the disease will spread through the population.
- If , $R_0 < 1$ the infection is under control and disease will die out.
- $R_0 = 0$, the disease transmission is stable, with each case causing one new case.

2.3 Epidemic Threshold : The epidemic threshold is the value of R0R_0R0 that determines whether an outbreak will occur. The critical threshold for R0R_0R0 is 1. If R0R_0R0 is greater than 1, an epidemic is likely to occur; if it is less than 1, the disease will not spread significantly.

2.4 Disease Dynamics

- **Initial Phase :** At the start of an outbreak, the number of susceptible individuals is high, and the number of infectious individuals is low. The number of new infections increases as the disease spreads.
- **Peak Phase :** The number of infectious individuals reaches a peak when the number of susceptible individuals decreases significantly, reducing the number of new infections.
- **End Phase :** As more individuals recover and become immune, the number of infectious individuals decreases, and the epidemic eventually comes to an end.

3. Experimental Results : I have obtained COVID-19 data for India from the World Health Organization to conduct an experiment[5]. This dataset includes various metrics such as infection rates, recovery rates, and vaccination coverage. The goal is to analyze trends and patterns to better understand the impact of the pandemic in India. This analysis will contribute to ongoing research and may offer insights into effective response strategies.

Table 1 : India's COVID-19 Data (Source : Word Health Organization

S.No.	Date	Daily New Cases
1.	2021-01-01	89
2.	2021-01-02	151
3.	2021-01-03	77
4.	2021-01-04	106
5.	2021-01-05	101
	.	.
	.	.
30.	2021-01-29	4285

We create a table that includes the date, daily new cases, and the SIR model results. Let's go through the calculations for the first few days (only 5 days) in detail. Step-by-Step Calculation for the SIR Model using Euler's Method :

Let us consider at initial stage of COVID-19 : Susceptible (S_0) = 9911 Infected (I_0) = 89 and Recovered (R_0) = 0

Day 1 to Day 2 : Using the differential equations :

$$\frac{dS}{dt} = -0.3 * 9911 * \frac{89}{10000} \approx -26.625$$

$$\frac{dI}{dt} = -0.3 \cdot 9911 * \frac{89}{10000} - 0.1 * 89 \approx 17.787$$

$$\frac{dR}{dt} = 0.1 * 89 \approx 8.9$$

$$S_2 = S_1 + \frac{dS}{dt} \cdot \Delta t \approx 9911 - 26.625 = 9884.375S$$

$$I_2 = I_1 + \frac{dI}{dt} \cdot \Delta t \approx 89 + 17.787 = 106.757$$

$$R_2 = R_1 + \frac{dR}{dt} * \Delta t \approx 0 + 8.9 = 8.9$$

Day 2 to Day 3 : From the previous calculation, susceptible (S_2) = 9884.538, infected (I_2) = 106.562 and recovered (R_2) = 8.

$$\frac{dS}{dt} = -0.3 \cdot 9884.538 * \frac{106.562}{10000} \approx -31.600$$

$$\frac{dI}{dt} = 0.3 * 9884.538 * \frac{106.562}{10000} - 0.1 * 106.562 \approx 20.944$$

$$\frac{dR}{dt} = 0.1 * 106.562 \approx 10.656$$

$$S_3 = S_2 + \frac{dS}{dt} \cdot \Delta t \approx 9884.538 - 31.600 = 9852.938$$

$$I_3 = I_2 + \frac{dI}{dt} \cdot \Delta t \approx 106.562 + 20.944 = 127.506$$

$$R_3 = R_2 + \frac{dR}{dt} \cdot \Delta t \approx 8.9 + 10.656 = 19.556$$

Day 3 to Day 4 : From the previous calculation, (S_3) = 9852.938, infected (I_3) = 127.506 and recovered R_3 = 19.556

$$\frac{dS}{dt} = -0.3 \cdot 9852.938 * \frac{127.506}{10000} \approx -37.689$$

$$\frac{dI}{dt} = 0.3 * 9852.938 * \frac{127.506}{10000} - 0.1 * 127.506 \approx 24.939$$

$$\frac{dR}{dt} = 0.1 * 127.506 \approx 12.751$$

$$S_3 = S_2 + \frac{dS}{dt} \cdot \Delta t \approx 9852.938 - 37.689 = 9815.249$$

$$I_4 = I_3 + \frac{dI}{dt} \cdot \Delta t \approx 127.506 + 24.939 = 152.444$$

$$R_4 = R_3 + \frac{dR}{dt} \cdot \Delta t \approx 19.556 + 12.751 = 32.307$$

Day 4 to Day 5 : From the previous calculation susceptible (S_4) = 9815.249, infected I_4 = 152.444 and recovered R_4 = 32.307.

$$\frac{dS}{dt} = -0.3 \cdot 9815.249 * \frac{152.444}{10000} \approx -44.889$$

$$\frac{dI}{dt} = 0.3 * 9815.249 * \frac{152.444}{10000} - 0.1 * 152.444 \approx 29.644$$

$$\frac{dR}{dt} = 0.1 * 152.444 \approx 15.244$$

$$S_5 = S_4 + \frac{dS}{dt} \cdot \Delta t \approx 9815.249 - 44.889 = 9770.360$$

$$I_5 = I_4 + \frac{dI}{dt} \cdot \Delta t \approx 152.444 + 29.644 = 182.088$$

$$R_5 = R_4 + \frac{dR}{dt} \cdot \Delta t \approx 32.307 + 15.244 = 47.551$$

This process continues for all 30 days. The Euler method provides a straightforward way to approximate the solution to the differential equations, allowing us to see how the numbers of susceptible, infected, and recovered individuals change over time. The experimental results of proposed SIR model are given in table 2. The figure 1 shows the Experimental results of SIR model.

Table 2 : Experimental Result of SIR Model (Proposed Model)

Date	Daily New Cases	Susceptible (Euler)	Infected (Euler)	Recovered (Euler)
2021-01-01	89	9911.0000000	89.000000	0.0000000
2021-01-02	151	9884.5376300	106.562370	8.9000000
2021-01-03	77	9852.9380370	127.505726	19.556237
2021-01-04	106	9815.2488570	152.444334	32.306810
2021-01-05	101	9770.3604850	182.088272	47.551243

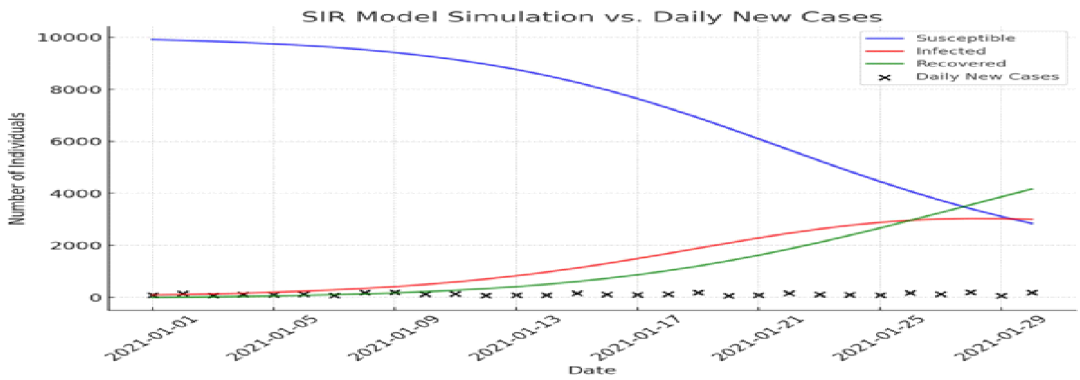

Figure 1: Experimental Results of SIR Model

Here we have the results of our analysis. The sample data of daily new COVID-19 cases was generated, and the SIR model was implemented and simulated. The steps of proposed SIR model are given below:

1. Estimate Parameters : Perform parameter estimation using actual data instead of assumed values.

2. Compare SIR Model with Data : Assess the fit of the model by comparing it to the actual daily new cases.

3. Sensitivity Analysis : Explore how changes in β and γ affect the model's predictions.

4. Visualize Results : Provide more detailed plots and visualizations for better understanding.

To estimate the parameters β and γ we can use a method such as least squares fitting to minimize the difference between the model's predictions and the actual data. We can calculate the model's predictions for daily new cases and compare them to the actual data. We can vary β and γ to see how sensitive the model is to these parameters. We can provide detailed plots to visualize the comparison between the model and the actual data.

Let us start with parameter estimation. We will use least squares fitting to estimate β and γ. I will write the Python code to perform this parameter estimation and then proceed to the comparison and visualization. After performing the parameter estimation using least squares fitting, we obtained the following estimated parameters :

Estimated Infection Rate (β): 0.589

Estimated Recovery Rate (γ): 0.470

3.1. Comparison of SIR Model with Actual Data : We integrated the SIR equations over the 30-day period using the estimated parameters. The plot below shows the SIR model simulation with the estimated parameters compared to the daily new cases. The Comparison of SIR Model with Actual Data are given in table 3. The figure 2 shows the comparison of SIR model with actual data.

Table 3 : Comparison of SIR Model with Actual Data

Date	Daily New Cases	Susceptible	Infected	Recovered
2021-01-01	89	9911.000000	89.0000000	0.00000000
2021-01-02	151	9856.187183	99.5071720	44.3056450
2021-01-03	77	9795.365474	110.876884	93.7576430
2021-01-04	106	9728.162680	123.081102	148.756218
2021-01-04	101	9654.255941	136.062372	209.681686

The plot and table show the comparison of the SIR model predictions with the actual daily new cases.

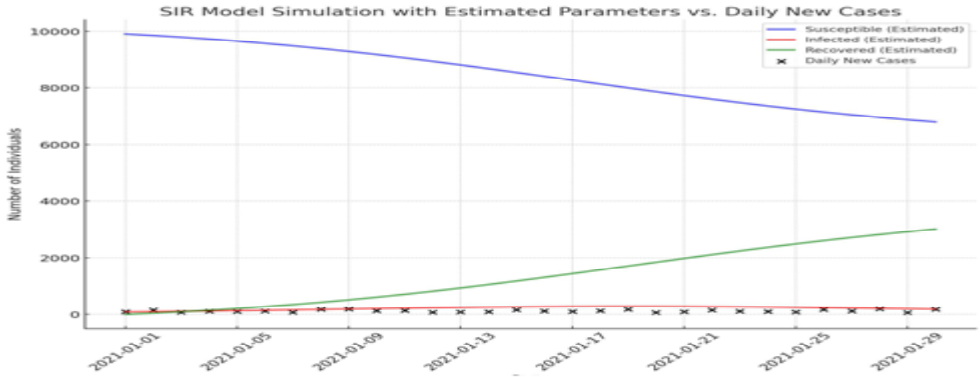

Figure 2 : Comparison of SIR Model with Actual Data

4. Discussion and Results : The estimated parameters for the SIR model, $\beta = 0.589$ and $\gamma = 0.470$, were obtained using least squares fitting, minimizing the difference between model predictions and actual daily new COVID-19 cases. The SIR model's predictions over a 30-day period show a decrease in the susceptible population as more individuals become infected, an initial increase in infected individuals followed by a decline as they recover, and a steady rise in the recovered population. The model aligns reasonably well with the actual data, capturing the general trend of the epidemic. Discrepancies can occur due to factors like changes in contact rates, data reporting inconsistencies, and population heterogeneity. The model's fit could be quantitatively assessed using metrics like Mean Squared Error (MSE). Despite its simplicity, the SIR model provides valuable insights into epidemic dynamics, though more complex models might be needed for greater accuracy. Further analyses, such as sensitivity analysis or incorporating additional factors, could enhance understanding and prediction accuracy.

5. Conclusion : The SIR model, using estimated parameters $\beta = 0.589$ and $\gamma = 0.470$ offers a foundational yet simplified representation of the COVID-19 epidemic dynamics over a 30-day period. The model accurately captures the initial rise and subsequent decline in the number of infected individuals, while the susceptible population decreases and the recovered population steadily increases. This alignment with the actual daily new cases indicates that the model can effectively depict the general trend of the epidemic's progression. However, discrepancies between the model's predictions and the actual data highlight the need for considering real-world complexities. Factors such as changes in behavior or policy, data reporting inconsistencies, and population heterogeneity are not accounted for in the basic SIR model, leading to potential variances. These factors suggest that while the SIR model is a useful starting point, it may require refinement for more precise predictions.

Quantitative assessment using metrics like Mean Squared Error (MSE) can provide further insight into the model's accuracy. Additionally, sensitivity analysis can help understand how variations in β and γ impact the epidemic's dynamics. For enhanced accuracy, more complex models incorporating factors such as exposed individuals (SEIR model), variable contact rates, or spatial heterogeneity should be considered. In conclusion, the SIR model with estimated parameters provides valuable insights into the spread of COVID-19, capturing the epidemic's overall trend. However, for more accurate and comprehensive predictions, additional factors and more sophisticated models are necessary to account for the complexities of real-world epidemic dynamics.

References

1. Anderson, R. M., & May, R. M. (1992), Infectious Diseases of Humans : Dynamics and Control. Oxford University Press.

2. Hethcote, H. W. (2000), The Mathematics of Infectious Diseases, SIAM Review, 42(4), 599-653.

3. Kermack, W. O., & McKendrick, A. G. (1927), A Contribution to the Mathematical Theory of Epidemics, Proceedings of the Royal Society A : Mathematical, Physical and Engineering Sciences, 115(772), 700-721.

4. Murray, J. D. (2002), Mathematical Biology : An Introduction (3rd ed.), Springer.

5. World Health Organization (WHO) (2020), Report of the WHO-China Joint Mission on Coronavirus Disease 2019 (COVID-19).

6. Tang, B., Bragazzi, N. L., Li, Q., Tang, S., Xiao, Y., & Wu, J. (2020), An Updated Estimation of the Risk of Transmission of the Novel Coronavirus (2019-nCov), Infectious Disease Modelling, 5, 248-255.

7. Zou, D., Wang, L., Xu, P., Chen, J., Zhang, W., Gu, Q. (2020), Epidemic Model Guided Machine Learning for COVID-19 Forecasts in the United States, medRxiv.

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Khortha : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 99-102

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

आदिम लोक कलाएँ और जनजातीय चेतना

*डॉ. कुमारी कंचन बरनवाल**

भारतीय संविधान में देश के जिन जनजातीय समूहों को अनुसूचित जनजाति (Scheduled Tribe) के रूप में सूचीबद्ध किया गया है वे खुद को 'आदिवासी' कहना पसंद करते हैं। आदिवासी मूलतः दो शब्दों 'आदि' और 'वासी' के योग बना है जिसका शाब्दिक अर्थ 'मूल निवासी' होता है। भारत के प्राचीन संस्कृत ग्रंथों से लेकर औपनिवेशिक काल तक इन्हें कई नामों से पुकारा गया है। 2011 की जनगणना के अनुसार इनकी जनसंख्या देश की कुल आबादी का 8.6 प्रतिशत (10 करोड़) है।[1] जो मुख्य रूप से उड़ीसा, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल और पूर्वोत्तर राज्यों में निवास करते हैं। मानवशास्त्रियों और इतिहासकारों के अनुसार अनुसूचित जनजाति समुदाय के लोग ही भारतीय उपमहाद्वीप के सबसे प्राचीनतम निवासी हैं। आर्यों के आगमन से पहले संपूर्ण भारत में इन्हीं का निवास था। इन्होंने ही यहां सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक व्यवस्था का निर्माण किया था जिसे हम 'सभ्यता–संस्कृति' कहते हैं।

मानवशास्त्रीय सर्वेक्षण के अनुसार भारत में 700 से ज्यादा अनुसूचित जनजातियां रहती हैं जिनकी अपनी विशिष्ट भाषा–संस्कृति, धर्म, रीति–रिवाज और कला परंपराएं हैं। इनमें से 32 जनजातीय समुदाय झारखंड में रहते हैं जो मूल रूप से आग्नेय (आस्ट्रो–एशियाटिक) और द्राविड़ परिवार की भाषाएं बोलते हैं। इन सभी जनजातीय समुदायों का जीवन अभिन्न रूप से कला से जुड़ा हुआ है। जो न केवल उनके जीवन में मनोरंजन और आनंद की सृष्टि करता है बल्कि वह उनके सामूहिक और सामुदायिक चेतना को भी अभिव्यक्त करता है। जिसे हम जनजातीय जीवन से संबंधित किसी भी उपक्रम में देख सकते हैं। चाहे वह धार्मिक अनुष्ठान हों, सामाजिक रीति–रिवाज हों, पर्व–त्यौहार हों या फिर शिकार, वनोपज, फसल आदि से जुड़ा कोई आर्थिक क्रियाकलाप हो। जनजातीय लोगों के वस्त्र, आभूषण, श्रृंगार वगैरह भी उनकी कलात्मक चेतना की आकर्षक अभिव्यक्ति होते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि जिन्हें हम 'कला' कहते हैं वह जनजातीय समाज के लिए जिंदगी जीने के लिए किया जाने वाला जरूरी काम होता है जिसे जनजातीय समाज के हर व्यक्ति को करना ही होता है। इस दृष्टि से जनजातीय समाज का हर सदस्य स्वभावतः एक कलाकार है और जिसके लिए उसे किसी कला प्रशिक्षण संस्थान में ट्रेनिंग लेने की जरूरत नहीं होती है। पीढ़ी–दर–पीढ़ी से संचित व हस्तांतरित ज्ञान और सामुदायिक चेतना उसके कलाकार व्यक्तित्व का निर्माण करती है।

भारतीय आदिवासियों की विशिष्ट जीवन शैली एवं परम्पराओं के बारे में 'राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग' की टिप्पणी है– ''जनजातीय लोगों की संस्कृति और पहचान उनके जीवन की एक अभिन्न हिस्सा है। उनके जीवन का ढंग, प्रथा एवं परम्परा, संस्थान, प्रथागत विधियाँ, भूमि उपयोग और समाजिक संगठनों का गठन आदि प्रायः प्रमुख आबादी से भिन्न हैं।''[2]

देखा जाए तो वास्तव में भारतीय दर्शन की इस अवधारणा : ''साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः'' को जनजातीय समाज ही चरितार्थ करता है। जिसमें कहा गया है कि साहित्य, संगीत और कला से रहित मनुष्य पशु के समान है। यानी साहित्य, संगीत और कला मनुष्य के जीवन का मूलाधार हैं और यही सांस्कृतिक तत्व वास्तव में मनुष्य को एक सामाजिक प्राणि या संपूर्ण मनुष्य बनाते हैं। इस अर्थ में साहित्य, संगीत और कलाओं के बगैर मनुष्यता अधूरी है। जनजातीय समाज की सांगीतिक और कलात्मक परंपराएं इसी दार्शनिक चेतना से हमारा साक्षात्कार कराती हैं। अनपढ़, गंवार, जंगली और असभ्य कहे जाने वाले जनजातीय लोगों की कलात्मक चेतना दूसरे समाजों की तुलना में अत्यंत विकसित और उन्नत है क्योंकि वे सामुदायिकता के सहजीवी जीवनदर्शन

* *असिस्टेंट प्रोफेसर, खोरठा विभाग, रांची महिला महाविद्यालय, रांची*

से सीधे जुड़ी हैं। वे इस बौद्धिक उलझन में नहीं रहते कि कला जीवन के लिए है, या जीवन कला के लिए है। इस संबंध में उनकी समझदारी बहुत साफ है कि कला और जीवन दोनों एक दूसरे के पर्याय हैं, एक दूसरे के लिए हैं। कला वही है जो जीवन के भौतिक और अभौतिक दोनों जरूरतों का पोषण करती है।

कला किसी भी समाज की अभिव्यक्ति का सबसे सर्वोत्तम माध्यम है। इसके अंतर्गत कई विधाएं आती हैं। जैसे, चित्रकारी, गीत–संगीत, नृत्य, शिल्प आदि। झारखण्ड क्षेत्र के प्राचीन इतिहास के अनुसार यहां का आदिवासी समाज पहले पूरी तरह से एक स्वावलम्बी समाज था। ''वह अपने दैनंदिन आवश्यकता के लिए शिकार, खेतीबारी के औजार से लेकर पहने जानेवाले वस्त्रों का निर्माण भी स्वयं कर लिया करता था। तब समुदाय की संस्कृति पर वाह्य संस्कृति का दबाव नही के बराबर था। इस कारण आदिवासी समुदायों की कला विधाओं पर कोई बाहरी प्रभाव भी नहीं था।''[3] इसकी तस्दीक उन गुफा चित्रों से की जा सकती है जो पुरातात्त्विक खोज के दौरान झारखण्ड के विभिन्न क्षेत्रों में मिले हैं। इस दृष्टि से देखा जाए तो आदिवासी समुदायों में कला का पक्ष अन्य पक्षों की तुलना में अधिक सशक्त रूप में विद्यमान होता है क्योंकि उनकी जीवन शैली में कला की विभिन्न विधाएं रची–बसी हुई हैं। उनके गीत, वाद्ययंत्र, चित्रकारी, शिल्प, नृत्य और गृह–निर्माण कला, सबमें कला के दर्शन हो सकते हैं।

आदिवासी कलाओं की विशिष्टता पर सबसे पहले नजर डालने वाले वेरियर एलविन का कथन इस संदर्भ में उल्लेख्य है– ''आदिवासियों की कला का असली महत्व उपयोगिता की दृष्टि से है। इसलिए हम उसे उपयोगिता अथवा सामाजिक उपादेयता से अलग करके कभी भी नहीं समझ सकते। आदिवासियों में कला कला के लिए नहीं होती। इनके लिए कला धार्मिक, अथवा जादू टोने के उद्देश्य की पूर्ति करती है और इनका सामाजिक महत्व होता है। इनकी कला का लक्ष्य मात्र सौंदर्य अथवा अलंकरण नहीं होता।''[4]

सृजनात्मकता और कलात्मकता आदिवासी संस्कृति का अभिन्न अंग है। आदिवासी जल, जंगल जमीन से जुड़े होते हैं। प्रकृति के विभिन्न उपादान उनकी कल्पनाशीलता को नया आयाम देते हैं। आदिवासी का अटूट रिश्ता अपने क्षेत्र विशेष की माटी, पाषाण, काष्ठ, बांस, रंग, हथकरघा, लोहा आदि से होता है। उनके नृत्य, गीत, संगीत, कहानियां, कला–कौशल शिल्प उनके सामाजिक, सास्कृतिक धार्मिक, मान्यताओं से जुड़े होने के कारण विशिष्टता रखते हैं। कला का संबंध प्रायः हर मनुष्य के साथ होता है। वन, पहाड़, नदी, झरनों के समीप रहने के कारण आदिवासी में स्वतः ही कला बोध का विकास होता आया है। परंतु उनमें कला जीवन केंद्रित होता है न कि कला केंद्रित। सामूहिकता ही आदिवासी संस्कृति की तरह कला का भी आधार है। यही परंपरा को आगे बढ़ाती भी है। पीढ़ियों तक विरासत को सौंपती है। देश के आदिवासी क्षेत्र का हर गांव एक सांस्कृतिक इकाई का निर्माण करते हैं। आदिवासियों की रिहाइश पूर्वोतर से लेकर अंडमान तक मध्य भारत से लेकर केरल, नीलगिरि, लद्दाख तक जहां भी है उन्होंने अपनी आवश्यकतानुसार सृजन किया, निर्माण किया। परंतु सभी मौलिक और विशिष्ट भी। उनकी विशिष्ट संस्कृति की तरह। श्रम संग उमंग में जीने वाला आदिवासी समाज कला के द्वारा अपने श्रम का परिहार तो करता ही है, श्रमजन्य थकान से भी निजात पाता है। मांदर तुहिला बनम, ढांक, नगाड़े आदिवासियों ने स्वयं निर्मित किया है।''बारह पट्टी का, नगाड़ा खरीदना है। भैया अखड़ा के किनारे–किनारे बजाकर घुमाऊंगा।''[5]

झारखंड की जनजातीय कलाओं के कई रूप हैं। करमाली और लोहरा लोहे के पारंपरिक कलाकार हैं, तो महली समुदाय की सांस बांस में बसी हुई है। चिक बड़ाईक लाल पाड़ वाले वस्त्रों के पारंपरिक कारीगर हैं। मलार लोग धातु शिल्प के जबरदस्त उस्ताद हैं जिसे 'डोकरा' कला कहा जाता है। संताल आदिवासी समुदाय पारंपरिक भित्ति चित्रकला और 'जादोपटिया' कला के लिए जगप्रसिद्ध हैं। खड़िया आदिवासी लोग अपने गोदने के लिए जाने जाते हैं। उरांव लोग लोकनृत्य और लोकसंगीत में विशेषता रखते हैं तो घासी समुदाय नगाड़ा, ढोल, मांदर जैसे पारंपरिक वाद्ययंत्रों को बनाने वाले कुशल कलाकार हैं। सिंहभूम के 'हो' आदिवासियों की खासियत तीर–धनुष और मिट्टी की वस्तुओं के लिए है। मुंडा आदिवासियों की पहचान बड़े–बड़े आकर्षक मुखौटों और उनको पहनकर किए जाने वाले विश्वविख्यात 'छऊ' और 'पाइका' नृत्य से है। कुड़मी समुदाय में टुसु पर्व के अवसर पर मनोहारी और अद्भुत 'चौड़ल' बनाये जाने की लोक परंपरा है। वहीं, पिछले एक दशक से बेदिया और गंझु समुदाय अपने 'कोहबर' और 'सोहराय' चित्रकला से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर धूम मचाये हुए हैं। कहने का तात्पर्य यह कि झारखंड का हर समुदाय किसी न किसी पारंपरिक कला में सिद्धहस्त है जो यहां के लोक कलाओं की दुनिया को विशाल, बहुरंगी, बेजोड़ और आकर्षक बनाते हैं। चाहे वह मुखौटा, बर्तन, बुनाई, चटाई, टोकरी, लकड़ी, धातु या फिर मिट्टी से जुड़ी परंपरागत कलाएं हों।

यहां के पारंपरिक शिल्प में घास–पात शिल्प, बांस शिल्प, पत्थर शिल्प, काठ शिल्प, मिट्टी शिल्प, धातु शिल्प और वस्त्र शिल्प से जुड़ी लोक कलाएं हैं। जबकि चित्रकला की लोक परंपरा के अंतर्गत जादोपटिया, सोहराय, कोहबर और अन्य आदिवासी समाजों में प्रचलित भित्तिचित्र आते हैं। वाद्य शिल्प में तार आधारित केंदरा, बनम आदि, चमड़ा आधारित ढोल, मांदर, नगाड़ा, टमाक आदि तथा बांस से बनायी जाने वाली बांसुरी प्रमुख लोक कलाओं में गिनी जाती है। इसके अतिरिक्त मुखौटों और चौड़ल का भी झारखंड के जनजातीय लोक एवं पारंपरिक कलाओं में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

कलाओं के इतिहास पर नजर डालने से पता चलता है कि चित्रकला आदिम लोक की सबसे प्राचीन कला है। जब इंसान पाषाण युग में था और बोली–भाषा की अवस्था तथा शब्दों से वह दूर था, तब उस पुरखा समय में उसने सबसे पहले चित्रों के जरिए ही अपनी भावनाएं व्यक्त की थी। दुनियाभर में पाये गये गुफा और शैल चित्र इसकी अद्‌भुत बानगी हैं। झारखंड में बड़कागांव, हजारीबाग स्थित 'इस्को' और अनेक क्षेत्रों में पाषाणकाल से लेकर लौह युग के बाद तक के गुफा एवं शैल चित्र मिले हैं। जिनसे पता चलता है कि झारखंड की लोक कलाओं में जनजातीय चित्रकला का इतिहास कितना पुराना है और यह परंपरा यहां कितनी समृद्ध रही है। पर्व–त्योहार, शादी–ब्याह और अन्य सामाजिक–सांस्कृतिक अवसरों पर दीवारों एवं घर के भीतर बनाये जाने वाले चित्रों और सदियों पूर्व गुफाओं एवं चट्टानों पर उकेरी गई आकृतियों में इतिहासकार काफी समानता पाते हैं।

भारत के आदिवासी इलाकों में पाए जाने वाले ऐसे ही गुफा और शैल–चित्रों से अभिभूत होकर डी. एच. गॉर्डन ने 1958 में प्रकाशित अपनी विश्वप्रसिद्ध पुस्तक 'दि प्रिहिस्टोरिक बैकग्राउंड ऑफ इंडियन कल्चर' में लिखा था– ''योरोप में अत्यंत पुरातन शिला–चित्र खोजे जा चुके हैं, उनसे भी अधिक पुराने चित्र अफ्रीका में पाये गये हैं जिनमें बहुत से तो अतिशय प्राचीन माने गये हैं। निस्संदेह अब भारत की पारी है कि पुरा–पाषाण–कालीन कला के एक केन्द्र के रूप में उसे भी मान्यता दी जाय।''[6]

जादोपटिया, कोहबर और सोहरायआदिवासी पुरातन समय से ही प्रकृति के उपासक रहे हैं। उनका जीवन प्रकृति के सहज सौंदर्य से प्रेरित रहा है और यह सौंदर्यबोध उनके द्वारा उकेरी जानेवाली चित्रकलाओं में स्पष्ट दिखती है। संताल में प्रचलित एक ऐसी ही प्राचीन लोक चित्रकला है जादोपटिया, जिसे झारखंडी लोकशैली भी कहा जाता है। जादोपटिया चित्रकला में मुख्यतः समाज के उद्‌भव, विकास, धार्मिक मान्यताओं, मिथकों, रीति–रिवाजों और नैतिकता की अभिव्यक्ति होती है। यह चित्रकला संतालों की पहचान है। संताली भाषा में चित्रकार को 'जादो' कहा जाता है। ये वास्तव में पारंपरिक कलाकार होते हैं और इनका पेशा चित्र दिखाकर समाज को इतिहास और नैतिकता की जानकारी देना होता है। ये कपड़े या कागज को जोड़कर एक पट्ट बनाते हैं फिर प्राकृतिक रंगों से उसमें चित्र उकेरते हैं। यह पट्ट पांच से बीस फीट तक लंबा और डेढ़–दो फीट चौड़ा होता है। इस पट्ट पर सुंदर चित्र उकेरकर लोगों के बीच प्रदर्शित किया जाता है. इसमें कई चित्रों का संयोजन होता है। चित्रकला का विषय संतालों के प्राचीन आदि धर्म के अलावा अब सिदो–कान्हू, तिलका मांझी, बिरसा मुंडा जैसे शहीदों की शौर्य गाथाएं और रामायण, महाभारत, कृष्णलीला के प्रसंग होने लगा है। यह कला वर्तमान पीढ़ी को पिछली पीढ़ी से विरासत में मिलती है परंतु विडंबना है कि अब यह लोक कला विलुप्ति के कगार पर है तथा इस कला को जानने वाले गिने–चुने कलाकार रह गए हैं।

सोहराय और कोहबर लोक चित्रकलाओं का भौगोलिक केन्द्र मुख्य रूप से रामगढ़, हजारीबाग और चतरा है। इन इलाकों में जंगल, झरनों और पहाड़ों के बीच बसने वाले आदिवासियों का जीवन प्रकृति के सहज सौंदर्य से प्रेरित होता है। उनका सौंदर्यबोध उनके घरों की सजावट में प्रतिबिंबित होता है। आम तौर पर साफ–सुथरे घरों की दीवारों पर चिकनी मिट्टी का लेप और मिट्टी व वनस्पति से प्राप्त रंगों से उकेरी जाने वाली आकर्षक आकृतियां आदिवासी समाज के सहज–सरल जीवन में निहित कला और सौंदर्यबोध का प्रमाण हैं। कोहबर कला में प्राकृतिक परिवेश, और स्त्री–पुरुष सम्बंधों के विविध पक्षों का चित्रण होता है, वहीं सोहराय कला में जंगली जीव–जंतुओं, पक्षियों और पेड़–पौधों को उकेरा जाता है। हजारीबाग जिला एवं आसपास के क्षेत्रों में लुप्तप्राय होती बिरहोर जनजाति के घरों (कुम्बास) की दीवारों पर मिट्टी का लेप चढ़ाकर मिट्टी के रंगों से बने चित्रों में कोहबर कला की विशेषताएं प्रतिबिंबित होती हैं। कोहबर की चित्रकारी विवाह के मौसम में जनवरी से जून महीना तक की जाती है। इसमें घर–आंगन में विभिन्न ज्यामितिक आकृतियों में फूल–पत्तियों, पेड़–पौधों और नारी प्रतीकों की अनूठी चित्रकारी की जाती है। जबकि सोहराय सोहराय चित्रकारी वर्षा ऋतु के बाद घरों की लिपाई–पुताई से शुरू होती है। दोनों कलाओं में फर्क उनके लिए चुने जाने वाले प्रतीकों में नजर आता है। कोहबर में सिकी (देवी) का विशेष

चित्रण मिलता है जबकि सोहराय में कला के देवता प्रजापति या पशुपति का।

इस तरह हम देखते हैं कि लोक कलाओं में जनजातीय चेतना का एक अलग ही और विशिष्ट स्वरूप के दर्शन होते हैं। चाहे वह कला की कोई सी भी विधा हो। गीत, संगीत और नृत्य की जो समृद्ध शैली आदिवासियों में प्रचलित है, उसके बारे में यह मुहावरा बहुत प्रसिद्ध है कि 'यहां चलना ही नृत्य और और बोलना ही गीत' है। यही वजह है कि कला के जितने भी रूप और विधाएं हैं, उनमें हमें जनजातीय चेतना स्पष्टता से दिखलाई पड़ती है। जो उनके अपने प्राकृतिक परिवेश और पर्यावरण से सीधे जुड़े हुए हैं। उनकी कलाओं की आत्मा जनजातीय जीवन के सामूहिक प्रकृति प्रेम और सामुदायिक सहजीविता में बसती है। जबकि मुख्यधारा कहे जाने वाले समाजों की कला में व्यक्तिगत कौशल और पांडित्य का जोर रहता है। इसलिए जहां भारतीय मुख्यधारा के समाज में कला सिर्फ कला के लिए है, वहीं जनजातीय जीवन में ऐसा कोई भेद नहीं है, बल्कि उनके लिए तो कला ही जीवन है और जीवन ही कला है। यह अलग बात है कि चेतना और वैचारिकी के स्तर पर विशिष्टता रखने के बावजूद जनजातीय कलाओं को अलग से मान्यता आज तक नहीं दी गई और उन्हें मुख्यधारा की लोक कला श्रेणी में ही समाहित करने का प्रयास किया जाता रहा है।

संदर्भ–सूची

1. भारतीय जनगणना आयोग, 2021
2. राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग, विशेष रिपोर्ट, मई 2012, पृ. 13
3. शिशिर टुडू, झारखंड की आदिवासी कला का वर्तमान', आदिवासी साहित्य, कला विशेषांक, अंक 7–8, जुलाई से दिसंबर 2016, दिल्ली, पृ. 384
4. वेरियर एल्विन, आदिवासियों की कला, 1959, पृ. 1215
5. आदिवासी साहित्य, कला विशेषांक, अंक 7–8, जुलाई से दिसंबर 2016, दिल्ली, संपादकीय पृ. 6
6. डॉ. जगदीश गुप्त, भारतीय प्रागैतिहासिक चित्रकला, नेशनल पब्लिशिंग हाउंस, दिल्ली, 1960 से उद्धृत

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 103-106

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

शरद सिंह के उपन्यासों में स्त्री संदर्भ-विमर्श के नवीनतम आयाम

*श्रीमती सुनीता सिंह** *डॉ. शिप्रा सिंह***

शोध सारांश–*हिंदी–साहित्य में एक सुपरिचित और प्रतिष्ठित नाम है, 'षरद सिंह' जिन्होंने नारी की दसदिक् पीड़ाओं को अपने साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान की है। गद्य एवं पद्य की अनेक विधाएं इनके साहित्य सृजन का आधार बनी हैं। इन्होंने अपने साहित्य की हर रचना के केंद्र में नारी को ही चुना है। शरद सिंह ने अपने साहित्य के आधार पर न केवल पाठकों और आलोचकों को स्थितियों की विद्रूपता दिखा कर चौंका देती है बल्कि उन्हें सोचने और विचारने के लिए भी मजबूर कर देती है। यदि इन्हें पिछड़े और शोषित महिलाओं के जीवन से रू–ब–रू कराने वाली बेबाक प्रवक्ता कहा जाए तो ये बिल्कुल असंगत नहीं होगा।*

मूल शब्द–*साहित्य, विमर्श, नारी, पितृसत्तात्मक, अभिव्यक्ति।*

व्याख्या–अपने साहित्य में नारी–पात्रों को यथार्थ से चुनती और किसी भी कथ्य, पात्र, घटनाक्रम को गढ़ने से पहले उसकी पूरी तहकीकात भी करती हैं। महेश दर्पण के शब्दों में– ''एक रचनाकार में जो बेलौस खुलापन होना जरूरी है, वह लेखिका के पास मौजूद है। उसमें अनुभवों के कथा रूप में बाँधने की कोशिश भी है और सहजता से उसके बीच अपनी बात कह देने की सलहियत भी।''[1]

अपने साहित्य में षरद सिंह ने, न केवल नारी–पात्रों का सहज और सुंदर चित्रण किया है, बल्कि उनके साहित्य में नारी जीवन भी है और नारी–मन के आवेग भी। नारी चाहे किसी भी वर्ग की क्यों न हो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है, क्योंकि पितृसत्तात्मक व्यवस्था तो केवल नारी का शोषण करना जानती है, उसे नारी वर्ग से कोई मतलब नहीं। नारी अमीर हो या गरीब, पढ़ी–लिखी हो या अनपढ़, घरेलू हो या कामकाजी उसका प्रत्येक स्तर पर शोषण ही होता रहा है, जो आज वर्तमान में नारी–विमर्श के आ जाने से कुछ हद तक कम जरूर हुआ है, परंतु पूरी तरह से खत्म नहीं हुआ है।

ऐसा नहीं है कि समाज और साहित्य में नारी–विमर्श का आगमन एकाएक हो गया हो, अपितु नारी–विमर्श समाज में नारी की स्थिति के प्रति एक सुदीर्घ प्रतिकिया की देन है, जिसके लिए राजा राममोहन राय, सावित्री बाई फुले, ज्योतिबा फुले, पंडिता रमाबाई, ताराबाई शिंदे, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, स्वामी दयानंद सरस्वती, सरोजनी नायडू, महात्मा गाँधी, अंबेडकर इत्यादि ने समाज में फैले नारी से संबंधित रूढ़ियों, अंधविश्वास और पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा बनाए गए कानून को जड़ से उखाड़ फैका और नारी को शिक्षित और पुरुषों के बराबर अधिकार दिलाने के लिए जीवनभर प्रयास करते रहे। इसी प्रकार पाश्चात्य परम्परा में मेरी वोल्सटनक्राफ्ट, सिमोन द बोउवार, बेट्टी फ्रीडन, केट मिलेट, जॉन मिल, विलियम थामस, जान स्टुअर्ट मिल, जर्मेन ग्रीयस, इत्यादि विद्वानों ने समाज में नारी की स्वतंत्रता के लिए, उनके सामाजिक व राजनैतिक अधिकारों के लिए तथा समाज में उसके प्रति होने वाले अत्याचारों का विरोध करके उसे न्याय दिलवाने में मुख्य भूमिका निभाई है। इसी प्रकार हिंदी साहित्य–परम्परा में मीराबाई, महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान, बंग महिला, कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुश्पा, ममता कालिया, मृदुला गर्ग, नासिरा शर्मा, मृणाल पाण्डे, सुषमा बेदी, सुधा अरोड़ा, कृष्णा अग्निहोत्री, उषा राजे सक्सेना, सुधा ओम ढींगरा, गीतांजलि श्री, मधु कांकरिया, क्षमा शर्मा और शरद सिंह आदि लेखिकाओं का साहित्य नारी–विमर्श के पूर्व–कथित मुद्दों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

* *शोध छात्रा (एम.ए.), हिन्दी विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, म.प्र.*

** *प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा, म.प्र.*

मीराबाई हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्शकार के रूप में सबसे पहले अपनी उपस्थिति दर्ज कराती है और कई मायनों में वे आज की आधुनिक कही जाने वा महिला विमर्शकारों से कई आगे हैं, क्योंकि जिस युग में मीरा ने पुरुषवर्चस्ववादी व्यवस्था के प्रति खुला विद्रोह किया, वह ऐसा युग था जिस समय नारी रूढ़ियों से पूरी तरह जकड़ी हुई थी। जब नारी पूरी तरह से पुरुष पर आश्रित थी, उसका अपना न कोई लक्ष्य था और न ही अस्तित्व, उसकी डोर तक पुरुष के हाथों में था। उसके बावजूद भी मीरा के रचनाओं में स्त्री चेतना और आत्मबोध का सशक्त स्वर सुनाई पड़ता है। उनका सम्पूर्ण साहित्य, नारी पर पुरुषों के आधिपत्य के विरुद्ध विद्रोह है। जब मीरा अपनी रचना में कहती है कि 'अपने घर का परदा कर लौं, मैं अबला बौराणी' तो रोहिणी अग्रवाल दो बातों को लक्षित करती हैं– ''एक हताश के गर्भ में फूटता स्त्री का विद्रोह और स्त्री के मनुष्यत्व के लिए पितृसत्तातम्क व्यवस्था के स्वरूप की पुनर्संरचना। मीरा का विद्रोह उन स्थितियों की पड़ताल करने की नैतिक जवाबदेही है जो अबला कही जाने वाली निरीह पराश्रित स्त्री को 'बौराने' और 'आक्रामक' होने को विवश करती है; बार–बार उन पूर्वग्रहों और जड़ताओं को चीन्ह लेने की आकांक्षा करता है जो स्त्री की आत्मविकास की नैसर्गिक आकांक्षा को 'लोकलाज' और 'कुलकानि' के उल्लंघन से जोड़ती है–उस कुत्सित मानसिकता को तुरंत निषिद्ध कर देने की मांग करता है जो पुरुष और व्यवस्था की हर अमानुषिकता को अनुशासन और नियम पालन का पर्याय बना देती है।[2], उसके बाद महादेवी वर्मा हिंदी साहित्य में ऐसा नाम है, जिन्होंने अपना जीवन स्त्री विषयक चिंतन में गुजार दिया और मरते दम तक स्त्रियों के हितों की रक्षा के लिए कार्य करती रही। उन्होंने अपनी रचना 'श्रृंखला की कड़ियाँ' में स्त्री के अस्तित्व की रक्षा और न्याय के लिए नारी बंधनों की श्रृंखला को तोड़ने का प्रयास भी किया और साथ ही नारी गरिमा को भी बनाए रखा। महादेवी वर्मा के शब्दों में–''अपने कर्तव्य की गुरुता भली–भाँति हृदयंगम कर यदि हम अपना लक्ष्य स्थिर कर सकें, तो हमारी लौह–श्रृंखलाएँ हमारी गरिमा से गलकर मोम बन सकती हैं, इसमें संदेह नहीं।[3], सुभद्रा कुमारी चौहान ने अपने प्रखर शब्दों में देश की नारी को नया रूप प्रदान किया। उनकी रचना 'झाँसी की रानी' मील का पत्थर साबित हुई।

सन् 1960 के आस–पास मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, मैत्रीय पुष्पा, मृदुला गर्ग, मृणाल पाण्डे, सूर्यबाला, चित्रा मुद्गल, उषा प्रियवंदा, अनामिका, कुमकुम शर्मा आदि अनेक लेखिकाओं ने स्त्रियों की समस्याओं पर खुलकर लिखा और पुरुष के सत्तातम्क सोच से समाज को अवगत कराया। यदि 21वीं सदी के साहित्य की बात करे तो, नारी–विमर्श में कुछ चर्चित नाम हैं जिन्होंने आज के साहित्य में अपनी विशेष छवि स्थापित की हैं, जिनमें प्रमुख हैं– सुषम बेदी, कृष्णा अग्निहोत्री, अर्चना वर्मा, उषा राजे सक्सेना, सुधा ओम ढींगरा, सुधा अरोड़ा, मधु कांकरिया, कात्यायनी, गीतांजलि श्री, शरद सिंह आदि। इन लेखिकाओं द्वारा रचित कहानी, उपन्यास, कविता, नाटक, आत्मकथा इत्यादि के माध्यम से नारी लेखन के जागरूक और संवेदनशील सार्थक हस्तक्षेप करने वाले विविध आयाम आज दिखाई देने लगे हैं। वरिष्ठ पीढ़ी की लेखिकाओं ने अपने लेखन में जहाँ मध्यवर्गीय और निम्न मध्यवर्गीय समाज के जिन सरोकारों को सीमित स्थान दिया था। वहीं आज की लेखिकारों में अपनी लेखनी में उन सरोकारों को विस्तृत स्थान दिया है। आज की महिला लेखिकाओं ने नारी के लिए प्रयुक्त पंक्ति आंचल में है दूध और आँखों में पानी की तस्वीर को उलट कर रख दिया है। उनके लेखन में आत्मविश्वास की पैनी धार और शिल्प में भी परिपक्तता देखने को मिलता है। आज की महिला लेखिकाएँ समाज को नारी के यथार्थ से परिचित कराने के लिए हर जोखिम उठाने से भी पीछे नहीं हटती है। शरद सिंह ऐसी ही लेखिकाओं में से एक हैं।

'पिछले पन्ने की औरतें' उपन्यास के द्वारा शरद सिंह ने साहित्य जगत में अपने लिए विशेष स्थान दर्ज कराया है। यह उपन्यास पाठकों को अन्दर तक झकझोर देता है और उस सच से भी अवगत कराता है कि किस प्रकार बेड़िया समुदाय की औरतें अपने पैरों में घुंघरू बाँधकर अपनी देह का व्यापर करने को विवश हैं। जिसकी कल्पना आज के 21 वीं सदी में तो बिल्कुल नहीं किया जा सकता, पर इस सत्य से भी मुँह नहीं फेरा जा सकता कि नारी के लिए इतनी सुविधाएँ और कानून–नियम बनाने के बाद भी आज भी शोषित होने को मजबूर है, परम्पराएँ आज भी उन्हें जकड़े हुए हैं और न चाहते हुए भी, वह उन परम्पराओं को निभाने के लिए मजबूर है।

ऐसा नहीं कहा जा सकता की हिंदी साहित्य में ऐसे उपन्यास पहले नहीं लिखे गए हो, ऐसे उपन्यास पहले भी लिखे जा चुके हैं, पर वह ज्यादातर कल्पना पर आधारित होते थे, जो पाठकों के मनोरंजन के लिए लिखे जाते थे, जबकि शरद सिंह द्वारा लिखा गया उपन्यास शोधपरक कृति है। डॉ. संदीप अवस्थी इस उपन्यास के संबंध में लिखते है कि ''लेखिका के साहस दृष्टि सम्पन्नता और छल रहित व्यक्तित्व की दाद देनी होगी उसने श्यामा बेड़नी के साथ अपनी शुरू की यात्रा को अंत तक निभाया और कहीं भी अपने लेखिका होने, साधन संपन्न होने

का दंभ गुमान उपन्यास में नहीं दिखाया है।''[4], बेड़िया समुदाय की औरतों के बारे में कहा जाता है कि समाज इन औरतों की उपस्थिति का अनुभव तो करता है, किंतु कोई भी इन्हें पिछले पन्नों से निकाल कर अतीत में नहीं लाना चाहता। क्योंकि लोगों के लिए तो यह औरतें मात्र बेड़नी हैं, जिन्हें अपने मनोरंजन के लिए नचाया जा सके, भोगा जा सके और जिन्हें परम्पराओं की जंजीरों से जकड़ कर गुलाम बना कर रखा जा सके। लेखिका के शब्दों में ''समाज में स्त्री की स्थिति पहले से अधिक जटिल है। एक ओर स्त्री को उपक्षित रखा जाता है तो दूसरी ओर अपेक्षित बनाकर रखा जाता है। सत्ता, समाज, संपत्ति पर उसका अधिकार है भी, और नहीं भी। न्याय की पोथियों में ये तीनों अधिकार स्त्री के नाम लिखे गए हैं, लेकिन यथार्थ पोथियों के बाहर पाया जाता है... न्याय दिलाने वाले से लेकर उसे एक ग्लास पानी पिलाने वाले भी दया और सहानुभूति के नाम पर लार टपकाने से नहीं चूकते है।[5]

एक पत्नी होने के नाते, एक स्त्री पुरुष पर जो भी अधिकार जमाती है, उन्हें इन बेड़नियों ने हँसते–हँसते त्याग दिया और खुद रखैल मात्र बनकर रह गई। विडम्बना है आजाद भारत देश में जहाँ नारी के अधिकारों को लेकर बड़े–बड़े भाषण दिए जाते हैं, सरकार इन लोगों से वोट तो वसूल करना जानती है, पर इनके उद्धार के लिए कुछ खास काम नहीं करती। सरकार द्वारा चलाने जा रही 'जाबली योजना' जैसी तमाम योजनाएं बस नाम की है, वह भी इनका षोशण करने से पीछे नहीं हटते –''न जाने कितने लोगों ने, समाजसेवा और उद्धारकर्ता के रूप में इन बेड़ियों से छल किया है...न जाने कितने लोग इनकी लड़कियों को बहला–फुसलाकर दूसरे शहरों में ले जाकर बेच देते हैं।''[6]

इस प्रकार हम देखते हैं कि अपने इस अनोखे उपन्यास के कारण शरद सिंह दूसरी नारी–विमर्शकारों की तुलना में बिल्कुल अलग नजर आती हैं। वे केवल समकालीन स्त्री यथार्थ का एक दुर्लभ पहलू सामने लाती हैं, बल्कि जिस शोधपरक शैली में उन्होंने इसे लिखा है, वह भी विलक्षण है और उनके इस उपन्यास ने समकालीन स्त्री लेखिकाओं में उनकी स्थाई प्रतिश्ठा बना दी है।

इसी प्रकार, शरद सिंह द्वारा रचित उपन्यास 'कस्बाई सिमोन' उनके पूर्व लिखित उपन्यास 'पिछले पन्ने की औरतें' से एकदम अलग है। हमेशा से नए–नए विषयों को अपने लेखन का माध्यम बनाने वाली लेखिका का यह उपन्यास 'लिव इन रिलेशन' पर आधारित है। ''जिस समाज में प्रेम करने को अक्षम्य अपराध की तरह देखने का आम चलन है, वहाँ ऐसे विषय पर कलम चलाना साहस की बात कही जाएँगी। वस्तुतः हिंदी–साहित्य के स्त्री–विमर्श के क्षेत्र में यह उपन्यास एक अहम हस्तक्षेप है, जिसमें न सिर्फ स्त्री की सदियों पुरानी परतंत्रता का प्रतिकार किया गया है, बल्कि उसे मुक्ति का विकल्प भी दिखाया गया है।''[7] उपन्यास की नायिका सुगंधा जब अपने प्रेमी रितिक के साथ एक ही घर में रहने लगती है, तब आस–पड़ोस के लोग उसके और रितिक के संबंधों के बारे में पूछ–पूछ कर उसका समाज में जीना मुश्किल कर देते हैं जिसकी वजह से उसे बार–बार अपना घर तक बदलना पड़ता है, घर जरूर बदल जाते हैं, पर पड़ोसियों के सवालों का अंत नहीं होता। वह रितिक से तो कुछ नहीं कहते बल्कि उसे ही विवाह का सुझाव देते हैं। सुगंधा इसका विरोध करती है और कह है– ''वाह! यह भी खूब रही, लोग चाहते हैं तो आप शादी कर ली जिए, लोग चाहते हैं तो आप तलाक ले लीजिए, लोग चाहते हैं तो आप जिंदा रहिए, लोग चाहते हैं तो आप मर जाइए, मेरा अपनी जिंदगी पर कोई अधिकार है या नहीं?''[8] 'लिव इन रिलेशन' में रहने के बाद रितिक पर पतिपन हावी होने लगा था, वह हर बात में सुगंधा की कमियाँ निकालने लगा था। सुगंधा के शब्दों में– ''पति बनते ही पुरुष अधिकारों से इस तरह भर जाता है कि उसके विचारों का आकार–प्रकार ही बदल जाता है। जिस औरत पर वह जान छिड़कता था, जिस औरत के पाँव में काँटा चुभने पर टीस उसके दिल में उठती थी, उसी औरत को मारने–पीटने का अधिकार उसे मिल जाता है और वह इस अधिकार का प्रयोग करने से भी नहीं चूकता है।''[9] सुगंधा अपने जीवन को आधुनिक रूप तो देना चाहती है, लेकिन वह समाज के साथ चलने को भी मजबूर है, क्योंकि वह कितनी भी आधुनिक क्यूँ न बन जाएँ, उसे रहना तो इसी समाज में है। सुगंधा 'सैंकेड सेक्स' की लेखिका सिमोन की तरह नारी स्वतंत्रता की प्रबल समर्थक थी, जिसके चलते उसने पितृसत्तातम्क बेड़ियों को तोड़ते हुए आधुनिकता के रंग में रंग कर पुरुष वर्चस्वाद को चुनौती तक दे डाला, तब वह शायद यह भूल गई थी कि वह सिमोन की तरह पेरिस में नहीं रहती थी। वह तो जबलपुर और सागर जैसे छोटे से कस्बे में रहने वाली लड़की है। जहाँ के समाज में आज भी नारी को लेकर पुरुष सोच दोयम दर्जे की ही है और यहाँ आज भी नारी पर शोषण करना पुरुश अपना अधिकार समझता है। उसे अपनी पैर की जूती के अलावा और कुछ नहीं समझता। उपन्यास में भी जिस रितिक के लिए सुगंधा पूरी दुनिया से लड़ती दिखती है, वही उसे अंत में अपनी 'रखैल' से सम्बोधित करने से भी नहीं हिचकता है। लेखिका ने कस्बाई सिमोन के माध्यम

से समाज के बदलते रूप और बदलते संबंधों के यथार्थ से पाठकों को परिचित कराया है साथ ही इसे आधार बनाकर समाज में नारी की स्थिति, नारी की दशा और साथ ही नारी–स्वतंत्रता के अधिकारों को लेकर कई प्रश्न भी उठाये हैं।

आजतक लाइव टी.वी. में लेखिका के पुस्तक पर दिए गए रिव्यू के अनुसार ''आँधी–तूफान के बाद खिलने वाली सुनहरी धूप जैसा चित्रण करती हैं शरद सिंह अपनी पुस्तकों में महिलाओं का। इस पुरुष प्रधान समाज में औरत की सुबह केतली में उबलती है, ओवन में पकती है, टोस्टर में सिंकती है। पल दो पल के लिए हांफती, फिर रोटियों की तरह तपती और सब्जी के साथ भुनती है। दाल के साथ भाप बनने और लंच बॉक्स में पैक हो जाने पर टाटा बाय बाय के बाद टंगी रह जाती है बाथरूम में छूटे गीले तौलिये की तरह।''[10] ऐसी तमाम नाजुक अनुभवों और महत्त्वपूर्ण अवधारणाओं का चित्रण अपने साहित्य में करती है शरद सिंह। इस रिव्यू की भाषा ही बताती है कि शरद सिंह का रचना–संसार कितना हमारे आसपास के जीवन को उठाती हैं, जो समकालीन नारी लेखन में असाधारण हैं।

निष्कर्ष : कहा जा सकता है कि नारी–विमर्श को सकारात्मक भावभूमि प्रदान करने की अतुल्य क्षमता शरद सिंह में है, जो इन्हें दूसरों से भिन्न करती है। जहाँ दूसरे महिला लेखिकाओं का नारी–विमर्श बड़े शहरों और मध्य वर्ग के इर्द–गिर्द ज्यादा घूमता है, वही दूसरी तरफ शरद सिंह की दुनिया अलग है। वे गाँव कस्बों से अपने पात्र लेती है और ज्यादा बौद्धिक या जटिल हुए बिना लोकप्रिय शैली में नारी संघर्षों को रख देती है। उनके नारी–स्वर में पितृसत्ता और स्वार्थ केन्द्रित तत्वों के लिए कोई जगह नहीं है। लेखिका के शब्दों में– ''मैं पुरुषों की विरोधी नहीं हूँ, किंतु उस विचारधारा की विरोधी हूँ जिसके अंतर्गत स्त्री को मात्र उपभोग की वस्तु के रूप में देखा जाता है।''[11] आधुनिक हिंदी साहित्य में कस्बाई, निचले और हाशिए के तबके की स्त्री की आवाज को शब्द देने और लिपिबद्ध करने का कार्य करती है शरद सिंह। वे वंचित और शोषित स्त्री–वर्ग की समस्याओं को समाज के सामने लाकर उन्हें पिछले पन्ने से मुख्य पृष्ठ पर लाने का लेखकीय दायित्व पूर्ण करती है। उनका लेखन अपने आप में अनूठा है। हिंदी जगत में इसी से उनकी खास छवि का निर्माण हुआ है। प्रस्तुत पत्र में विवेचित उनके दोनों उपन्यास इस तथ्य के साक्षी हैं कि उनकी यह इमेज निराधार नहीं है।

संदर्भ–ग्रंथ

1. सिंह, शरद, इन कहानियों को पढ़ते हुए, : तीली–तीली आग :, नई दिल्ली, सामयिक प्रकाशन, 2010, पृ. 7
2. अग्रवाल, रोहिणी, स्त्री–लेखन रू स्वप्न और संकल्प, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2011, पृ. 17
3. वर्मा, महादेवी, श्रृंखला की कड़ियाँ, नई दिल्ली, लोकभारती प्रकाशन, 2008, पृ. 26
4. प्रभाकर, प्रफुल्त (सम्पादक), अवस्थी, डॉ. संदीप (पुस्तक समीक्षा–पिछले पन्ने की औरतें), साहित्य नेस्ट पत्रिका, अक्टूबर 2012, पृ. 36,37
5. सिंह, शरद, पिछले पन्ने की औरतें, नई दिल्ली, सामयिक प्रकाशन, 2005, पृ. 261
6. यथावत, पृ. 218
7. WWW.SHABDANKAN.COM] https://www.shabankan.com>2014/02/novel-experts-cusbai-simon-sharad-singh-html.page no-2, 18/01/2019
8. सिंह, शरद, कस्बाई सिमोन, नई दिल सामयिक प्रकाशन, 2012, पृ. 67
9. यथावत, पृ. 64
10. https://aajtak.intoday.in/story/book-review-aaurat-teen-tasverein-1-779729.html, 17/01/2019
11. सिंह, शरद, 'पिछले पन्ने की औरतें', नई दिल्ली, सामयिक प्रकाशन, 2005, पृ. 7

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Commerce : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 107-112

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

An Analysis of Consumer Purchasing Behavior in Rural Bihar

*Prof. Lakshman Singh** *Sunny Kumar***

ABSTRACT : *Measuring the purchasing habits of rural consumers, including what they buy, their sources of purchase, and the quantities involved, is relatively straightforward. However, comprehending the underlying reasons for their purchasing decisions presents a significant challenge in rural India, as well as identifying the factors that motivate these decisions. This study aims to explore the various elements that influence the distinct buying behaviors of rural consumers and to elucidate the role these elements play in the decision-making process. Factors such as family size, product packaging, age, cultural influences, and advertising significantly impact consumer choices, while price is closely linked to the product itself. Rural consumers exhibit fundamental differences from their urban counterparts. Although lower literacy levels and limited exposure to products and services are well-documented, there are also notable variations in consumption patterns that directly affect income levels and flows, along with a high degree of interdependence that shapes rural consumer behavior. These aspects collectively contribute to the divergence of rural consumer behavior from that of urban consumers. To gain insights into these dynamics, a survey was conducted, and the Analytical Hierarchy Process technique was employed to analyze the interactions among the various factors. Additionally, these factors were prioritized to assess their relative importance.*

Keywords : *Attributes, consumer purchasing behavior, cultural influences, decision-making processes, and the rural market.*

INTRODUCTION : The National Sample Survey Organization (NSSO) characterizes rural markets as regions with a population of fewer than 5,000 individuals, a population density of less than 400 people per square kilometer, and at least 75 percent of the male workforce engaged in agriculture. Bihar, in contrast, is a highly populated area, with a density of no less than 1,102 individuals per square kilometer. Between the fiscal years 2004-05 and 2010-11, Bihar's economy experienced an annual growth rate of 11.36 percent, marking a significant revival of what had been a stagnant economic landscape. The growth rate for the state economy in 2010-11 compared to 2009-10 reached 14.8 percent, largely attributed to a considerable increase in public investment. Over the years, the economy of Bihar has undergone notable structural transformations, with the expansion of rural markets being a key factor. Rural incomes have been rising at an accelerated rate in recent years, contributing to nearly 40 percent of the total consumption of goods and services in Bihar. Non-food expenditures are increasing at an annual compound rate of 8.2 percent. Rural households are now acquiring a diverse array of products—including cars, mobile phones, flat-screen televisions, DTH services, motorcycles, hair oil, toothpaste, shampoo, shaving cream, and talcum powder—that were previously considered

* ***Ex. Head & Dean, Faculty of Commerce, J.P. University, Chapra***

* * ***Research Scholar, Faculty of Commerce, J.P. University, Chapra***

unattainable. Certain industrial sectors have experienced unexpected growth driven by rural consumers. The rural market in Bihar has experienced significant growth due to globalization and liberalization. This surge in demand and awareness has led to a notable increase in purchasing power among rural consumers. They are now investing more in health, hygiene, personal grooming, and packaged food products, which indicates a rise in their overall prosperity. Changes in consumption patterns, along with improved access to communication media, have made the rural market an essential component of sales growth for companies, particularly as urban markets become saturated with demand for various products and services. This increase in rural consumption is generating enthusiasm among policymakers and business leaders. Each new opportunity for a villager to utilize a mobile phone for crop protection opens up further possibilities for purchasing items such as small refrigerators or motorcycles. There is a growing acknowledgment that future global investment and growth will increasingly stem from rural populations, as their savings convert into consumption. The rise in rural purchasing power is evident in various ways, and while it is relatively straightforward to track what rural consumers buy, where they shop, and the volume of their purchases, understanding the motivations behind their buying decisions remains a challenge in rural India. Marketers must continuously analyze consumer responses to marketing stimuli and delve into the complexities of buyer behavior to refine their strategies effectively. This study primarily aims to explore the interactions and impacts of various factors on one another and their degree of association with rural consumer buying behavior. This study examines several factors, including price, family size, product packaging, age, culture, and advertising. It will primarily focus on how these elements influence consumer psychology and potentially alter purchasing behavior. To achieve this, the Analytical Hierarchy Process (AHP), a multi-criteria decision-making (MCDM) method, has been employed to analyze the interactions among these factors. Furthermore, this approach allows for the prioritization of each factor relative to the others. AHP, introduced by Saaty in 1980, is a straightforward and effective method for evaluating multiple objectives and is commonly utilized in various decision-making scenarios. It facilitates the subjective assessment of alternatives based on a hierarchical structure of criteria. At the highest level, the criteria are assessed, while at the lower levels, alternatives are evaluated according to each criterion. Evaluations are conducted independently at each level and sublevel. A pairwise comparison matrix is created to facilitate a subjective evaluation of each item pair.

OBJECTIVES :

1. To analyze the elements that influence the varying purchasing behaviors of rural consumers.
2. To examine the significance of these elements in the decision-making process related to purchases.

LITERATURE REVIEW : The ORG Survey (2011) revealed that key products comprising approximately 45-50 percent of the rural market included washing soaps, cleaning supplies, toiletries, and food and beverages. Additionally, the survey noted a remarkable growth rate in specific categories, particularly cosmetics and toiletries, over a five-year span. This growth in cosmetics suggests that rural women are keeping pace with their urban peers. Furthermore, the survey highlighted that many rural consumers do not possess the biases that often hinder their urban counterparts from embracing change. Some scholars equate consumer behavior with marketing; for instance, Robertson and Kassarjian (1991) characterize consumer behavior as "the scientific study of consumer actions in the marketplace." Conversely, others argue that consumer behavior exists independently of marketing or any specific field. Jacoby (1976) defined consumer behavior as "the acquisition, consumption, and disposition of goods, services, time, and ideas by decision-making units." Arndt (1976) posited that consumer behavior includes the challenges faced by individuals in society regarding the acquisition and realization of their standard of living. Consumers exhibit a willingness to explore new products, services, and processes. Psychologists have developed the hierarchy of effects model, which suggests that

behavior consists of three dimensions: cognitive, affective, and behavioral (Lavidge and Steiner, 1961). The cognitive dimension pertains to the development of awareness and knowledge, the affective component relates to feelings and attitudes, and the behavioral dimension encompasses the formation of conviction or intention, culminating in actual behaviors such as purchasing decisions (Lavidge and Steiner, 1961). In the field of marketing research, it has been established that individuals with a pronounced need for cognition engage in a more comprehensive processing and evaluation of advertising information compared to those with a lower need for cognition. These individuals are more likely to be swayed by thoughts pertinent to the message itself rather than by peripheral factors such as the attractiveness of endorsers (Haugtvedt and Petty, 1992), the credibility of the spokesperson (Petty and Cacioppo, 1986), humor (Zhang, 1996), or the sheer number of arguments presented (Cacioppo et al., 1983). A thorough literature review conducted by Cacioppo et al. (1996) indicated that those with a high need for cognition not only process information more deeply but also engage in a more extensive search for information than their low-need counterparts. This implies that individuals with a high need for cognition may utilize a broader array of information sources, thereby diminishing their reliance on interpersonal sources. Conversely, individuals with a low need for cognition exhibit less motivation to collect and process extensive information, often preferring to accept pre-processed information from trusted personal sources.

Murray and Schlacter (1990) characterized perceived risk as a multidimensional construct, reflecting consumers' pre-purchase uncertainties regarding the potential type and extent of loss associated with the acquisition and use of a product or service. The categories of potential loss include financial, performance, psychological, social, and convenience losses (Arndt, 1967b; Bansal and Voyer, 2000). Previous studies have consistently identified perceived risk as a crucial element in consumer information search (Arndt, 1967b; Chaudhuri, 2000; Murray and Schlacter, 1990). For instance, Arndt noted that to mitigate the risks associated with purchasing, consumers often develop strategies to manage risk, one of which involves seeking additional information from various sources (1967b: 303). Furthermore, Bansal and Voyer (2000) identified a negative relationship between product expertise and perceived risk.

ANALYZING THE INFLUENCES FROM THE PERSPECTIVE OF RURAL CONSUMERS :

Bihar, covering a geographical area of 94.2 thousand square kilometers, is divided by the Ganges River into two distinct regions: North Bihar, which spans 53.3 thousand square kilometers, and South Bihar, encompassing 40.9 thousand square kilometers. The proportion of the population engaged in agricultural production in Bihar is approximately 81%, significantly surpassing the national average. With urbanization remaining limited, nearly 90% of the state's population resides in rural areas. Over the past six years, rural Bihar has experienced substantial transformation. In response, companies have tailored their products to meet the needs of rural consumers, introducing smaller packaging options, such as sachets, and adopting coinage pricing strategies. Prominent firms like HUL, ITC, Tata, Godrej, and Eveready have developed innovative communication and distribution channels. Improvements in infrastructure, including enhanced road connectivity, telecommunication access, and increased household electrification, have facilitated the entry of consumer durables into rural markets. These developments have bolstered purchasing power and heightened demand for new products. The government's emphasis on poverty alleviation and support for the rural populace has resulted in considerable investment in various initiatives. The rural consumer in Bihar is transitioning from the historically deficient and uneducated archetypes, characterized by a reluctance to change and spend, to a more literate and value-oriented demographic. It is essential to examine the factors that shape the rural consumer's behavior.

CULTURE : Culture serves as a crucial factor influencing individual behavior in rural settings. As a child matures within a rural environment, he or she internalizes a specific set of values, perceptions, preferences, and behaviors shaped by family and other significant relationships throughout various life stages. The established behaviors exhibited by a community are fundamentally shaped by its cultural context. Nevertheless, the extent to which culture affects behavior is contingent upon the specificity of that culture and its interaction with other cultural influences. The culture of rural Bihar markedly contrasts with that of urban regions. Key characteristics of rural consumers include rituals, festivals, harvest seasons, and a reluctance to purchase new items. Management scholars have often referenced Hofstede's (1980, 1997) definition of culture, which describes it as "the collective programming of the mind that distinguishes members of one group or category from another" (Hofstede, 1997, p. 5). Culture impacts behavior through its various expressions: values, heroes, rituals, and symbols (Hofstede, 1997). These elements represent the ways in which culturally derived knowledge is preserved and communicated. Consequently, each cultural group exhibits distinct cultural expressions.

PRODUCT PACKAGING : Packaging is a critical component of product offerings in rural markets, as it relates to affordability, product identification, user convenience, and overall appeal. At the primary level, packaging serves to protect the product, while at the secondary level, it enhances aesthetics and sales attractiveness. Special attention must be given to packaging for rural markets due to challenges such as inadequate transportation systems, difficulties in safe storage stemming from limited cold storage facilities, and unreliable power supply in rural regions of Bihar. Over time, packaging materials have evolved significantly, with tetra packs becoming ubiquitous. The adoption of tetra packs has facilitated extended shelf life even without refrigeration. Most fast-moving consumer goods (FMCG), including shampoos, tea, confectioneries, and detergents, utilize plastic packaging. Rural consumers tend to favor vibrant colors; for instance, Lifebuoy is recognized as the red soap. Other notable examples include Dabur Lal Dant Manjan, Eveready red batteries, and Brooke Bond Red Label tea. The use of distinct lettering, local languages on packaging, and imagery or symbols that communicate product benefits significantly shape consumer perceptions of brands. The social and cultural diversity in rural Bihar necessitates variations in packaging for different products. Consumers often identify and recall brands through colors, visuals, or numerical identifiers, such as Godrej No.1 soap, 555 detergent bar, Ghari detergent, and Cycle agarbatti.

PRICE : The term refers to the monetary amount that a consumer is required to pay in order to gain the right to utilize a product (Hawkins, Best, and Coney 2001). The appropriate pricing significantly affects the quantity of various products or services that rural consumers are willing to purchase. Marketers often mistakenly view price as their sole tool when appealing to rural consumers. In truth, rural consumers prioritize value for money rather than price alone. Various development initiatives by both state and central governments have enhanced the financial flow in Bihar, resulting in an increase in the purchasing power of rural buyers. However, rural consumers do not typically recognize the premium value associated with brands; they tend to prefer products, particularly consumer durables, that fulfill basic functions. Products that are priced high and feature complex functionalities are generally not favored by rural consumers. The Gillette Guard was introduced to offer a high-quality shaving experience at an accessible price for men in rural regions. Rural consumers typically assess a product's price against a reference price deemed reasonable for that specific type of product. This reference price is often derived from either recollections of previous prices or the prices of comparable products within the same category. Based on this reference, consumers evaluate whether prices are excessively high, too low, or appropriately aligned. In the context of purchasing agricultural goods and wedding-related items, price is a crucial factor; however, it is not prioritized over quality.

FAMILY SIZE : The behavior of rural consumers is significantly shaped by the size and structure of their families. An increase in family size correlates with a rise in product consumption. Consequently, there is a heightened demand for family-sized or economy refill packages. Additionally, larger families typically have more income earners, resulting in increased overall family income and, subsequently, greater product consumption. This phenomenon often leads to the consumption of multiple brands within the same product category by various family members. In rural Bihar, there is a noticeable shift from the traditional large joint family system to a more individualized joint family system, where families reside together but maintain separate kitchens. This transition is driving a greater demand for consumer durables, as each newly established family unit requires essential items such as soap, shampoo, hair oil, refrigerators, pressure cookers, televisions, and DTH services.

ADVERTISING : The challenges of engaging with a rural audience are significant due to low literacy rates, limited media access, and the vast diversity in language, culture, and lifestyle. Effective communication with rural consumers necessitates that messages be straightforward and logical. Incorporating elements of education alongside entertainment and relatable life scenarios tends to resonate more with this demographic. For instance, Dabur has enlisted Bhojpuri film star Ravi Kishan to promote its chyawanprash product among consumers, dealers, and stockists in Bihar. The evolution of FM radio has established it as a viable medium for rural communication. Additionally, television has emerged as the fastest-growing and most favored mass medium in these areas. Traditional outdoor advertising methods, such as wall paintings, are prevalent in rural Bihar, serving as a constant reminder of brand names and logos while emphasizing key brand promises. Furthermore, haats, or weekly markets, present marketers with an excellent opportunity to convey their messages to a large audience that congregates at these locations regularly.

CONCLUSION : The results indicate that the consumption patterns of rural consumers are significantly shaped by family size and structure. Once the choice set is established during the evaluation phase of the buyer decision process, all brands selected are deemed acceptable by rural consumers. Nevertheless, the ultimate decision is influenced by the perceived risk associated with the product, as well as by key influencers such as opinion leaders, family members, and friends. Rural consumers experience a heightened sense of perceived risk due to challenges in gathering and processing pertinent information, leading them to make collective decisions. Marketers must address this perceived risk by highlighting user experiences and ensuring that service delivery is conveniently accessible to consumers. Quality and value are essential for the successful introduction of new products, as they enhance consumer productivity. For products perceived to offer comfort or enhance the quality of daily life, price becomes less of a concern, and additional features play a minimal role in influencing choices. Rural consumers also rely on observable sources, such as exhibitions and road shows, which allow them to personally assess products and absorb relevant information at their own pace. Marketers should aim to reduce the time spent on information searches by encouraging product trials and effectively reaching consumers through appropriate information channels. Additionally, it is crucial for marketers to comprehend the product-specific evaluation process, from conducting primary research to tracking the progression of their brand from the consideration set to the choice set. This approach addresses product deficiencies in comparison to competitors and enhances the likelihood of selection during evaluation. Ultimately, customer satisfaction is vital for establishing a profitable and sustainable relationship with rural customers.

REFERENCES

1. Avijit Ghosh, Small Towns, Big Leap Crest, The Times of India, 4 December 2010, http://www.timescrest.com/coverstory/small-towns-big-leap-4186.

2. Arndt, J. (1967), Role of Product Related Conversations in the Diffusion of a New Product, Journal of Marketing Research, 4, pp 291-295.

3. Bansal, H.S., Voyer, P.A. (2000), Word of Mouth Processes Within a Services Purchase Becker, Hulmut (1980), "Pricing : An International Marketing Challenge," In International Marketing Strategy, Hans Thoreli and Helmut Becker, eds., Oxford : Butterworth Heinemann Ltd. Berry, J. W. (1969), On Cross Cultural Comparability', International Journal of Psychology, 4, pp 119–128

4. Cacioppo, John T., Richard E. Petty, F Kao, and Regina Rodriguez (1986), Central and Peripheral Routes to Persuasion: An Individual Difference Perspective, Journal of Personality and Social Psychology, 51, pp 1032-1043.

5. Cacioppo, J. T., Crites, S. L., & Gardner, W. L. (1996), Attitudes to the Right : Evaluative Processing is Associated with Lateralized Late Positive Event Related Brain Potentials, Personality and Social Psychology Bulletin, 22, pp 1205–1219

6. Chaudhuri, A. (2000), A Macro Analysis of the Relationship of Product Involvement and Information Search : The Role of Risk, Journal of Marketing Theory and Practice 8 (1) : 1–14.

7. Chetwynd, J. and Harnett, G. (1978), (Eds) The Sex Role System : Psychological and Sociological Perspectives, Routledge, London, UK Decision Context Journal of Service Research, 3 (11), pp 166-77.

8. Deshpande, R. and Webster, F. E. Jr. (1989), Organizational Culture and Marketing : Defining the Research Agenda', Journal of Marketing, 53, pp 3–15.

9. Economic Survey of Bihar (2011-2012), Finance Department, Government of Bihar.

10. Holbrook, Morris B. (1995), Consumer Research, Introspective Essays on the Study of Consumption. Thousand Oaks, CA : Sage Publications.

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Commerce : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 113-117

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Marketing Approaches of Indian Automobile Firms : An Analysis of the Automobile Sector

*Prof. Lakshman Singh** *Md Aslam Hussain***

ABSTRACT : *In the current era of globalization, companies are increasingly expanding their production activities across various countries. This expansion presents distinct challenges, particularly due to cultural barriers that significantly influence operations. It is essential for businesses to understand the cultural dynamics of new markets and the critical elements that impact production in order to formulate effective promotional strategies. This study examines the cultural factors that influence the global automobile industry.*

The methodology employed aims to identify trends and market contributions within the Indian automotive sector. The research considers historical data and market segments, analyzing both past and contemporary trends within the economy and, more specifically, the industry, to conduct a comprehensive market analysis.

In this context, a promotional strategy must strive to be unique, focusing on differentiation—innovation and development are key. To achieve distinctive competitive advantages, an organization must be proactive and inventive in its marketing approach. Currently, through innovative marketing strategies, Maruti Suzuki has emerged as one of the leading and largest automobile retailers in India. The company has implemented a variety of brand positioning, advertising, and distribution strategies to capture market share.

Keywords : *Brand position, Marketing, Distribution, Commercial vehicle, utility of Vehicle*

INTRODUCTION : The marketing policy represents a comprehensive advertising strategy employed to achieve the objectives of a strategic marketing plan. This strategy encompasses a set of variables available to the consumer, which include the product or service itself (its attributes), its accessibility (the locations and times it is available, delivered, or distributed), its presentation (the methods of promotion), and, of course, the pricing that must be adjusted. Therefore, the marketing strategy signifies the integration of various elements, collectively forming a company's marketing framework. These elements are commonly categorized into four primary components: product, pricing, distribution, and promotion, which includes sales incentives, public relations, and advertising research.

Numerous studies have been conducted in the past; however, a significant gap remains in demonstrating the untapped potential of the passenger automobile market within the Indian context. This gap hinders a comprehensive understanding of the manufacturing landscape and the opportunities available for current and prospective car manufacturers. This paper aims to provide a thorough situational analysis of this scenario by conducting an industry analysis of the Indian passenger car sector, utilizing

* ***Ex. Head & Dean, Faculty of Commerce, J.P. University, Chapra***

* * ***Research Scholar, Faculty of Commerce, J.P. University, Chapra***

Porter's Five Forces framework. It is anticipated that the findings of this study will assist automobile manufacturers in shaping their strategic plans and commercial strategies as they consider the Indian market.

Objectives of the Learning :

1. To understand the roles and contributions of key figures in the Indian automobile industry.
2. To analyze and assess the trends among major players in the automobile sector.
3. To examine the factors that drive the growth of the automobile industry.
4. To evaluate the progress and advancements within the Indian automobile sector.
5. To recognize the marketing strategies employed by Maruti Suzuki India Limited.

BRAND POSITIONING STRATEGY OF MARUTI SUZUKI INDIA : Maruti Suzuki holds a significant market share of approximately 56.78% in the Indian passenger vehicle sector. As a subsidiary of Japan's Suzuki Motor Corporation, Maruti Suzuki India Limited is one of the largest automobile manufacturers in the country, commanding over 47.5% of the household car market. The company provides a comprehensive range of vehicles, including entry-level models such as the Maruti 800, stylish hatchbacks like the Alto, Swift, Ritz, A-Star, Stilo, Wagon-R, and SX4, as well as sedans such as the Dzire and various sports utility vehicles like the Grand Vitara. Since its establishment in 1983, Maruti Suzuki India has produced over 8.2 million vehicles domestically and exported more than 500,000 units to Europe and other regions. For the fiscal year 2009-2010, the company's revenue reached approximately USD 5.2 billion, with a net profit exceeding USD 243 million.

Numerous branded automobiles are positioning themselves based on various features such as cost, console size, safety mileage, and safety measures. Currently, Maruti Suzuki has implemented a highly effective multi-segment segmentation strategy to secure a leading position in distinct market segments, even offering an inaccessible version of its brand. In discussing the product landscape, Mayank Pareek emphasizes that Maruti Suzuki believes in conducting thorough research prior to launching a product. The Maruti team engages in extensive analysis of customer needs, striving to comprehend the demographics and psychology of their clientele to enhance their brand understanding.

Numerous branded automobiles are positioning themselves based on various features such as cost, console size, safety mileage, and safety measures. Currently, Maruti Suzuki has implemented a highly successful multi-segment segmentation strategy to secure a leading position in distinct market segments, even offering an inaccessible version of its brand. In discussing the product landscape, Mayank Pareek emphasizes that Maruti Suzuki believes in conducting thorough research prior to launching a product. The Maruti team engages in extensive analysis of customer needs, striving to comprehend the demographics and psychology of their clientele to enhance their brand understanding.

(a) Functional Buyers: This group consists of individuals who invest in luxury items primarily for their exceptional functionality and superior quality. Their purchasing decisions are guided by rational considerations rather than emotional impulses.

(b) Brand-Driven Consumers: In this segment, the primary motivators are the prestige associated with brand logos. The choice to purchase is largely influenced by a desire to display wealth. Individuals aged between 32 and 38 predominantly belong to this category and significantly contribute to the growth of luxury product sales.

(c) Young Luxury Consumers: This category includes the youngest demographic among those previously mentioned. These individuals are concentrated in specific regions.

It is essential for luxury brands operating in India to gain a comprehensive understanding of the mindset of rational consumers and to align their product offerings with this understanding. Consequently,

it is crucial for companies to adopt appropriate strategies that reflect an awareness of consumer behavior and purchasing criteria. Additionally, it is important to explore other factors that influence buying decisions within the Indian context.

CHALLENGES ENCOUNTERED IN THE INDIAN MARKET : The prevalence of a limited number of automakers in India is primarily attributed to the significant appeal of entry-level compact vehicles, which cater to first-time buyers. Nearly half of all new cars sold are entry-level compacts, a trend supported by government incentives such as reduced excise taxes for smaller vehicles and the price sensitivity of lower-income consumers.

The Indian luxury automotive sector faces various challenges that could hinder the future demand for its products. While an economic downturn is expected to impact the demand for such vehicles, there are additional factors that may influence growth, which are elaborated upon below.

1. Insufficient Development of Adequate Infrastructure : Since the early 1990s, the growing economy has necessitated an expansion of public transportation infrastructure. However, the progress made has not aligned with the anticipated growth. This issue is prevalent in urban areas as well. The inadequate development of transportation systems in India has resulted in a sluggish expansion of the sector.

2. Rise in Incidents of Labor Disputes : It is a well-known fact that, similar to other automotive sectors, this luxury segment also involves labor classes. While the vehicles are imported, many components are produced in India, which contributes to the routine compensation issues affecting the industry. Strikes have a detrimental impact on the operations of major brands. For instance, Maruti Suzuki recently faced significant losses, estimated at around 150,000 units of cars, due to labor unrest. Additionally, a three to four-month strike at the General Motors factory in Gujarat resulted in substantial losses for the company.

BRANDED IDENTIFIES THE MANUFACTURED GOODS

DIFFERENTIATION AND PURCHASER SWITCHING COSTS : The branding of manufactured goods serves as a significant barrier to entry in the high-end automobile market, where established brands possess a notably high level of brand equity over time. This factor is a primary reason consumers are inclined to pay premium prices for these vehicles. While the barriers to this exclusive market are substantial, there are various strategies that companies can employ to navigate these challenges. Some well-known firms in the automotive sector may enter the luxury car market through strategic alliances or by acquiring or merging with other companies. Maruthi Suzuki India Limited, a subsidiary of Suzuki Motor Corporation of Japan, stands as India's largest and leading passenger automobile manufacturer, currently commanding over 45 percent of the domestic car market, despite the influx of numerous multinational competitors in the years following liberalization. Recently, several new entrants have also emerged as significant players in the Indian passenger vehicle market, capturing a market share of 18.34 percent.

1. Maruthi 800: The Maruthi 800 was developed with the needs of the middle class and small families in mind. This vehicle was also aimed at urban professionals, designed to require minimal maintenance while offering superior fuel efficiency. Subsequently, the company introduced enhancements such as Multi Point Fuel Injection (MPFI) technology, along with modifications to the front grille, headlights, and taillights.

2. Maruthi Omni: Initially known as the Omni-Van, the Maruthi Omni was primarily targeted at passenger taxis, businesses, and larger families. It was positioned as a transportation solution that provided the benefits of a car while offering additional space. However, due to varying perceptions among consumers regarding the Omni-Van, it was eventually rebranded as the Maruthi Omni,

emphasizing its spaciousness. Recently, Maruti Suzuki introduced a new variant called Omni Cargo, designed specifically for cargo transport and catering to small traders.

3. Maruthi Alto: The Maruthi Alto was launched with the tagline "Let's Go." This vehicle is aimed at young couples embarking on various journeys. Through its television commercials, Maruthi positioned the Alto as a car for the youthful and spirited individual, while also highlighting its fuel efficiency.

4. Maruthi Wagon-R: In February 2000, Maruthi Suzuki launched a new iteration of the Wagon-R, which has since become one of the prominent models in the premium compact car segment. Initially, the Wagon-R was designed with a focus on functionality. However, in response to evolving market dynamics, competitive pressures, and consumer preferences, Maruti repositioned the Wagon-R from its original "Feel at Home" concept to one emphasizing "Stimulated Engineering." Several international car manufacturers are increasingly targeting high-growth emerging markets like India, particularly in light of the sluggish demand in more developed economies. Notably, several well-established automotive brands have successfully penetrated the Indian market, capitalizing on their accessibility. The threat posed by new entrants in the automotive sector is significant, especially within the small car segment. The burgeoning economy and rising consumer purchasing power have prompted various automotive companies to seize opportunities in this market. Currently, there are approximately five new entrants looking to establish themselves in the compact car sector. Barriers to entry include the competitive landscape created by existing players, customer switching costs, and the regulatory environment.

CONCLUSION : The automotive market is characterized by a dynamic and self-driven environment, poised for success with a diverse array of stakeholders and products. Numerous factors contribute to the remarkable expansion of the Indian automotive sector, particularly in the realm of passenger vehicle manufacturing. Key among these factors are the easy accessibility of transportation financing, attractive interest rates, and convenient installment plans. Maruti Suzuki India Ltd stands out as a leading entity in the Indian automotive industry, holding a significant position due to its innovative strategic marketing, promotional efforts, brand positioning, and advertising strategies. In the current landscape, the company's success hinges on the continuous development and refinement of its advertising strategies, alongside ongoing product and service innovation.

The pre-owned car market is poised for transformation into a more organized sector, driven by the involvement of both Indian and international car manufacturers, as well as major corporate entities in India. These automotive giants not only enhance their market presence through the pre-owned vehicle segment but also generate profits from this initiative. Unorganized pre-owned car dealers are striving to elevate their service standards to align with those of organized used car dealers, thereby adopting a more professional marketing approach. Industry consensus suggests that the pre-owned car segment could potentially double the size of the new car market within the next six to ten years, mirroring trends observed in developed nations.

The overall outlook for the Indian automotive manufacturing industry is currently favorable, with moderate threats from new entrants, low bargaining power of suppliers, relatively high bargaining power of buyers, significant risks from substitutes, and intense competitive rivalry. However, considering the projected growth rates for the coming years and the potential within the niche rural market in India, the overall outlook remains optimistic.

REFERENCES

1. Advertising Age, "Marketing Fact Pack (Annual Guide to Marketers, Media & Agencies)", Crain Communications, U.S, 2014.

2. Ashutosh Agrawal, "Innovations in Digital consumerism for Automotive Industry", Retrieved from Infosys.com: http://www.infosys.com/industries/automotive/whitepapers/Documents/digital-consumerism-automotive- industry.pdf

3. Chernev, A. (2003), When More is Less and Less is More : The Role of Ideal Point Availability and Assortmentin Consumer Choice, Journal of Consumer Research, 30 (2), 170-183.

4. Cooper, R. (1993), Winning at New Products : Accelerating the Process from Idea to Launch, 2ed edition, Boston, Addison-Wesley.

5. Dr. R. Satish Kumar, "Role of Social Media in Integrated Marketing Communication", South Asian Journal of Marketing & Management Research, Bangalore, India, 2012, 149- 155.

6. Dr. Garg R.K & Jain Sumit, Business Competitiveness : Strategies for Automobile Industry, Global Competition & Competitiveness of Indian Corporate, Kozhikode, Kerala, India, 2009, Retrived from dspace.iimk.ac.in

7. Fetscherin and Toncar (2008), Valuating Brand Equity and Product Related Attributes in the Context of the German Automobile Market, Article, Palgrave Macmillan 1350-23IX Brand Management Vol. 17, 2, 134–145

8. Gautam R & Sahil Raj, Growth of Indian Automobile Sector in the Era of Globalization, Indian Management Studies Journal, Volume 13 Number 1, April 2009.

9. Hoyer, W. & Brown, S. (1990), 'Effects of Brand Awareness on Choice for a Common Repeat Purchase Product', Journal of Consumer Research, Vol.17, No.2.

10. http://www.rushlane.com/bmw-tops-us-luxury-car-sales-for-november-129558.html

11. Kevin Root, E. K.,"The Impact of Social Media on the Car Buying Process", Retrieved from Dealer.com website: http://www.dealer.com/assets/APC-Study-21.pdf

12. K. Vijaya Sekhar Reddy, Roopalatha, and P. Bindu Madhavi, "Pleasure of Client Aggressive Marketing Policy by Management," Journal for Advanced Research in Commerce and Management Studies, pp. 48 – 53, 2016. E-ISSN: 2394-837X

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Commerce : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 118-121

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Analysis of Employee Productivity : A Comparative Study of Punjab National Bank and Central Bank of India

*Prof. Krishna Kumar** *Vijay Kumar Sharma***

Abstract : The rapidly evolving competitive landscape, driven by government policies of liberalization and globalization, has led to substantial transformations within the Indian banking sector. In order to thrive in a highly deregulated market, banks are increasingly prioritizing customer engagement. A comprehensive understanding of customer needs and the provision of exceptional service are crucial for the success of these institutions. As customer expectations rise and their sophistication increases, customer retention has emerged as a foremost priority for all banks. To foster customer loyalty, it is imperative to significantly enhance the quality of customer interactions, given the limited scope for differentiation in products, pricing, and technology. In this context, the role of employees is paramount, as every banking activity is intrinsically linked to the attitudes, motivation, and work culture of the staff. The capability of bank employees to provide prompt and courteous service is essential. Consequently, it is vital to assess the profitability of banks in relation to employee productivity. This paper examines the financial performance of Punjab National Bank and Central Bank of India, focusing on their workforce. The analysis highlights the initiatives undertaken by these banks to enhance their viability over a ten-year period from 2002 to 2011.

Introduction : Recent years have witnessed substantial transformations in the banking sector due to globalization, deregulation, and advancements in information technology. In the current landscape, characterized by diminishing customer loyalty, banks are not only focused on devising strategies to attract new clients but are also committed to retaining existing customers and fostering enduring relationships. The significance of employees in this context cannot be overstated, as every action within a bank is intrinsically linked to the employees' attitudes, motivation, and workplace culture. The caliber of human resources is a critical determinant of the bank's ability to provide value to its clients. Consequently, it is essential to assess the profitability of banks in relation to employee productivity. This study aims to evaluate the financial performance of selected public sector banks through the analysis of two key ratios: Business Per Employee and Profit Per Employee. These metrics reflect the employees' contributions to enhancing the banks' efficiency in terms of business generation and profitability. Additionally, gap analysis has been utilized to identify performance variances among the banks.

* *Head & Dean, Faculty of Commerce, J.P. University, Chapra*

** *Research Scholar, Faculty of Commerce, J.P. University, Chapra*

Literature Review : Numerous studies have been undertaken to evaluate various types of banks operating in India, utilizing different efficiency criteria over time. Following the nationalization of banks, concerns arose regarding the declining efficiency of the banking sector across multiple dimensions. In response, the Reserve Bank of India established several committees, including the Tondon Committee (1975), Luther Committee (1977), Chakravarty Committee (1986), and Narsimham Committee (1991), which examined various efficiency parameters and provided numerous recommendations aimed at enhancing the efficiency of Indian banks. Batra (2011) offers insights into human resource management practices within public sector banks, emphasizing initiatives designed to boost their productivity. Similarly, Sreenivas (2011) discusses the critical role of human resource management in these institutions. Tandon (2011) provides an analysis of organizational behavior within public sector banks. Additionally, Uppal (2010) presents an overview of second-generation banking sector reforms, including cost-benefit and productivity analyses, along with a comparative assessment of the efficiency of Indian banks.

Objectives of the Study : The study encompassed the following overarching objectives :

1. To investigate and assess the productivity levels of the chosen banks over a specified time frame.

2. To evaluate the disparities in productivity among the selected banks.

3. To formulate insightful conclusions and provide essential recommendations aimed at enhancing the productivity of both public sector banks.

Research Methodology : This study focuses on two prominent public sector banks: Punjab National Bank (PNB) and Central Bank of India (CBI). Financial data spanning a decade, specifically from fiscal year 2002 to fiscal year 2011, has been analyzed. The research utilizes selected variables, including Business per Employee and Profit per Employee, for both Punjab National Bank and Central Bank of India, which are presented in tabular format. The gap indexes have been calculated as the percentage difference in the values of these variables between PNB and CBI, expressed as a ratio of their combined value. The objective of constructing the Gap Index was to assess whether the disparity between the two banks diminished following various initiatives aimed at enhancing employee productivity during the ten-year period under review, from 2001-02 to 2010-11.

The business per employee ratio is an indicator of employee productivity. This metric is determined by dividing the total revenue generated by the bank by the number of employees. A higher ratio signifies greater efficiency and productivity among the workforce.

$$\text{Businessper Employee} = \frac{\text{Total Business}}{\text{NumberofEmployees}}$$

Total Business = Deposits+ Advances

The profit per employee metric is associated with employee productivity in terms of profit generation. It indicates the earnings produced by each employee within the bank. This ratio can be determined by dividing the bank's net profits by its total number of employees. A higher ratio signifies greater profitability for the bank.

$$\text{Profit per Employee} = \frac{\text{Net Profit}}{\text{Number of Employees}}$$

The calculations for the ratios of Business per Employee and Profit per Employee for PNB and CBI are presented below and can be examined using the following table :

Table 1 : Employee Productivity Ratios

(Rs. Lakhs)				
Year*	Business Per Employee		Profit Per Employee	
	PNB		PNB	CBI
1	2	3	4	5
2002	167.76		0.97	0.4
2003	195.65	167.85	1.43	0.77
2004	228.22	181.51	1.88	1.58
2005	276.87	206.89	2.42	0.93
2006	330.92	240.46	2.48	0.68
2007	407.41		2.68	1.35
2008	504.52		3.66	1.56
2009	654.92	560.28	5.64	1.71
2010	807.95		7.31	3.3
2011	1017.8		8.35	3.96

It is evident from Table 1 that the Business per Employee metric for both banks has shown a consistent upward trend during the specified time frame. Specifically, the Business per Employee for Punjab National Bank has risen by a factor of 5.06, increasing from Rs. 167.76 lakhs to Rs. 1017.8 lakhs between 2002 and 2011. Similarly, the Central Bank of India has experienced an increase of 4.61 times, with its Business per Employee growing from Rs. 148.77 lakhs to Rs. 835.17 lakhs in the same period. This upward trajectory in Business per Employee for both banks reflects an enhancement in productivity. Notably, the growth is more pronounced in Punjab National Bank, attributed to various initiatives aimed at boosting employee motivation, commitment, and overall productivity.

Table 1 indicates that Profit per Employee has experienced growth in both banks. Punjab National Bank has demonstrated an increase of 7.60 times, rising from Rs 0.97 lakhs to Rs 8.35 lakhs. In contrast, the Central Bank of India has recorded a growth of 3.16 times, moving from Rs 0.4 lakhs to Rs 3.96 lakhs during the period of 2002-2011 under examination. It is noteworthy that the Central Bank of India faced a decline in Profit per Employee from 2005 to 2008, attributed to rising operating expenses. Conversely, Punjab National Bank has maintained a consistent upward trend throughout the study period, benefiting from a high CASA ratio due to its extensive branch network.

Table 2 : Gap Index

Year	Business Per Employee	Profit Per Employee
2002	6.00	41.61
2003	7.65	30.00
2004	11.40	8.67
2005	14.47	44.48

2006	15.83	56.96
2007	14.56	33.00
2008	11.43	40.23
2009	7.79	53.47
2010	6.33	37.79
2010	6.33	37.79
2011	9.86	35.66
Percent Change from 2002 to 2011	64.30%	14.29%

It can be analyzed from the table.2 that in terms of Business per Employee the gap between Punjab National Bank and Central Bank of India has shown increase from 6.0. in 2002 to 9.86 in 2011 (64.3 per cent). The gap in respect of Profit per Employee has also shown a decrease from 41.61 in 2002 to 35.66 in 2011 (14.29 per cent). The increasing gap in case of Business per Employee is indicating the difference in business generated by both banks. The decreasing gap in Profit per Employee of both the banks is signaling the convergence of practices adopted by both banks to increase their profits. Thus Central bank of India has to take necessary steps to improve their operating efficiency.

Conclusion and Recommendations : An analysis of the data spanning a decade from 2002 to 2011 regarding productivity metrics, specifically Business per Employee and Profit per Employee, reveals that the Bank of Baroda significantly outperforms the State Bank of India. The disparity in performance between these two institutions concerning the aforementioned metrics has exhibited an upward trend throughout the period under review. It is imperative for the State Bank of India to implement effective measures to manage their non-performing assets. Enhancing operational efficiency, coupled with reduced provisioning, would be a beneficial strategy for bolstering the bank's performance. Additionally, it is essential for the bank to monitor and control the rising labor costs.

References

1. Uppal, R.K (2010), Indian Banking in Globalised World, New Century Publications, New Delhi

2. Batra, G.S. (2011), Human Resource Management-New Strategies, Oscar Publications, New Delhi.

3. Sreenivas, Talluru (2011), Banking Sector and Human Resource, Discovery Publications, New Delhi

4. Tendon, Sandeep (2010), Organisation Behaviour in Indin Banking, Oscar Publications, New Delhi

5. Nag, A. K and Shivaswmy, K. (1990), Foreign Banks in India - Recent Performance, Reserve Bank of India Occasional Papers, Vol. 11, No. 4, December, pp 297-328

6. Reserve Bank of India (1975), Report of the Study Group to Frame Guidelines to Banks for the Follow-up Credit, (Tandon Committee)

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

English Lit. : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 122-126

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Robinson Crusoe : An Utopian Man

Dr. Shippra*

Abstract : *Defoe had his part to play in the development of Utopia.He made it human ,all too human.He managed to humanize the adventure: 'Be patient , be industrious, be honest and you will atlast be rewarded for your labour.' .RobinsonCrusoe is constructed with a closeness that the other novels do not attempt and it touches greater depths of the mind. The book hold us so strongly because of its multiplicity. Steady seriousness make this novel unique. Defoe's limited and practical ideals find positive expression in Robinson Crusoe. We can relocate Utopia by Defoe's teachings.The highest ideas that can be merged with everyday life.His ideas make it practical and we can rescale it to manageable proportions.*

Keywords–*Utopia, Providence, Robinson Crusoe, Voyage, fiction, individualism.*

Introduction : Daniel Defoe moved toward novels as early as 1706,but in 1719 he really opened the line of his true novels with his world famous Robinson Crusoe.It is a great novel for all ages of men and was equally enjoyed by children and adults.Professor Frederick Breretonwrites, "Among the recollections of childhood that one treasures with an infinite gratitude is that delightful occasion when one first come under the magic spell of Robinson Crusoe. The joy that make come with the recapture of those exquisite hours is in itself sufficient justification for the renewal of the acquaintance, or rather would we say friendship - for was not poor Robinson Crusoe an intimate friend of our childhood ?"

Dr. Eric Berne says , "Any psycho analyst who has not read this remarkable work since his childhood may find its depth and interest for beyond his expectation." After the deserved success of this venture Defoe wrote novels, histories, pamphlets, works of instruction etc. The twenties proved to be his creative best when his best known works came out in succession. Memoirs of a Cavalier(1720),Life of CaptainSingleton(1720), Moll Flanders (1722), Journal of the Plague Year (1722) , History of ColonelJacques (1722)Roxana or the FortunateMistress(1724)etc.From a mere glance through the list, we can see how histories of actual persons like Peter the great and Jonathan Wild the great, were written side by side with "Histories" of fictious characters like Moll Flanders and Colonel Jacques.It is impossible, with Defoe,to know where facts end and fiction begins.

Defoe had read the adventures of Alexander Selkirk (Steele's account of Alexander Selkirk in English man) , a sailor who served in 1704 as a privateer under Dampier and was marooned on Juan Fernandez island, where he remained till rescued in 1709. But Defoe's Crusoe was intended as a moral fable, and the moral purpose, together with all the circumstantial details came out of the novelist own mind.Defoe's Robinson Crusoe shows the rudiments of Utopian fiction welcomed by Sydney and More in England.

It is a different kind of novel and is constructed with a closeness that the other novel do not attempt and it touches greater depths of the mind. It can be read in several ways. One can describe it

* ***Assistant Professor, English, Govt. Degree College Babrala Gunnaur, Sambhal (U.P.)***

as a version of the story of the prodigal son. Robinson is the prodigal son who leaves his father's house against advice and ruins himself not by riotous living but by a roaming disposition. He is left in a solitary and apparently desolate, repents and returns to his father.Prof. E.M.W. Tillyarddescribed it as aprogression from Do-well,Do-good to Do- best as in Piers Plowman: Theprogression from the practical life to the life of contemplation in its turn fitting man for an existence where action and contemplation are combined.

There is wide suggestiveness which is hall-mark of a great novel. The universality he evokes is highly remarkable. James Sutherland was right to say that Crusoe, "is first of all an English man of the lower middle classes making the best of the thing," and Coleridge was also right in saying that Defoe's excellence was "to make me forget my specific class, character and circumstances and to raise me, while I read him, into the universal man,"

The allegorical design is obvious E.M.W. Tillyard writes, "I can not escape the conclusion that Robinson Crusoe is nearer to the sort of thing you get in Banyan before and Kafka after than are any other of the chief novel of the 18th century."Crusoe is near to Milton's Adam and Banyan's Christian.

Crusoe's story is supposed to demonstrate how God's providence saves anoutcast who has sinned against the divine will by leaving his family and forgetting his religious training, out of a 'secret burning lust of ambition for great things.' Robinson Crusoeis the symbol of economic man, who by recapitulating on his Island all the basic productive processes, provides the economists with their favourite examples. Robinson Crusoe, one of the myths of modern civilization, does not celebrate only the material triumphs of its society, and the strength of its rational will to conquer the environment, it also prefigures some of the spiritual loneliness and social alienation which this civilization has brought with it.Some of this loneliness is itself or reflection of a force which did much to build modern civilization– 'PuritanIndividualism.'SoDefoe makes Crusoe write in his 'SeriousReflections.'

Robinson Crusoe (1719) was at once a recognized in England and throughout literary Europe as something different from the picaresque story to which it is akin. Robinson Crusoe was in elaboration of a contemporary incident that made a fascinating appeal to the imagination.The aim of Defoe was to invest his narrative with the sense of reality. He took as a model for his narrative the form that best produces the illusion of truth that of current memoirs with the accompaniment of a diary. Hebrings the story home to the Englishmen of the middle class, for whom he principally writes , by telling them that their condition in life is most conducive to happiness, and by giving to their peculiar tenets their trusts in dreams, their recognition of providence in the fortuitousconcurrence of events, and their dogmas of conversation.

Robinson Crusoe was the most immediate popular fiction that had been yet written.At once , it become a part of the world's literature. Defoe took advantage of its vogue to write many other adventures on land and sea. CaptainSingleton'stour across Africa is of good reading in Moll Flanders. The Journal of the Plague year is a documentary in appearance that public libraries still class it as a history, though it is a fictious throughout.

It is in Robinson Crusoe that Defoe's limited and practical ideals find positive expression. Here the **Hero** is matching his wits and his resolution with the forces of nature, and here, the energyis applied to constructive ends, and to producing order and a primitive culture out of the wasteful and unprofitable profusion of nature.In the process Crusoe is building up some sort of good life, and developing all that is best in his character.Crusoe's success is due to the sturdy qualities in his character, to hiscourage and patience, to his practical skill and his intelligence persistence.He has most of the qualities of the 'Complete English Tradesman.'Crusoe is all the more impressive, because Defoe never allows him to become a heroic, or even a romantic figure.He strikes no attitude, he never dramatizes his difficulties.

Defoe allows him a conventionally high flown outburst about the worthlessness of money, but almost at once he checks his extravagance.

Defoe had introduced, a false note, for it is one of Crusoe's guiding principle that "you never know when athing may come in handy". The bracing moral tone of Robinson Crusoe is an important element, it may be in the total impact made by Defoe's narrative, will hardly account for its continuing popularity for more than 200 years.

Robinson Crusoe owes much of itappeal to the imaginative value of its situation: the desert Island, and the ship wrecked mariner, utterly alone. The most remarkable instance of Defoe's imaginative understanding of his Hero occurs in the description of how Crusoe undertook to build a canoe or periagua. Fired by this new idea, he set to work immediately with his wretched tools and toiled incessantly.

For modern critics, the part of the book which seems most perplexing, where Defoe seems to have given fewest instructions on reading, is Crusoe's relationship with his God.There are two kinds of response to the book's spiritual concerns.First of all, there are those critics who stress Defoe's materialism and his concern with individual self- assertion in a hostile environment.Thus,Ian Watt largely dismisses Defoe's religious concerns. Johns J.Richetti talks of Crusoe's religious experiences as symptoms ofSchizophrenia, and Pierre Machereyrefers to Providence in the book as a mere-screen.For these writers ,Defoe has at best a superficial and conventional interest in religion.Crusoe himself then becomes the object of sceptical analysis, rather than the emotional protagonist of the text.

In Crusoe, the Preface promises that the hero will survive his dangers through the benignity of Providence and so the most important threat in spiritual rather than material.ThroughoutCrusoe, great emphasis is placed on the narrator's various instabilities and his used of the idea of Providence is simply part of the fabric of his age.Crusoe's relationship with Providence is more casual within the narrative than the preface have us believe.The function of thePreface is simply to allocate the ensuing narrative to the broad kinds of travel with which its prospective audience was already familiar.In fact, the world through which Crusoe moves obviously fraught with dangers than with source of comfort.One commentator has even seen the location of Crusoe as being a, 'Hobbesian state of nature transposed into a social world atomistic, volatile, where the mere existence of another person is a threat to the self.

It is certainly true that when Crusoe does concern himself with the hand of Providence, he is seeking to find pattern and meaning in his existence, as the heroes of spiritual autobiography did. However, in the fictional word of the Voyager, there is much greater emphasis on the observable and anticipated dangers of the world.There can be no doubt that selective quotation can make the book's commitment to effective Providenceseem very intense, but the unease with which the idea is occasionally handled reveals that Defoe had been working with in the assumptions of his audience and may have been reacting against their generic expectations. The use of Providence in the book is mainly to provide a vestigial coherence, and a promise of a partly comic conclusion.By being published as a book, rather than as a s Crusoe offers the readers some kind of contract of closure - the reader will always be aware of how near the end of the book he is, simply by the bulk of pages left to read. Providence is used to ensure that this conclusion is possible, and can therefore, disrupt the linear pattern of events. However, it is in fact only another event, of no more importance than any other one, and so the narrator is able to restart without trouble.The function of Providence in the two parts of Crusoe seems to be two fold.First of all, it can be used nearly to provide catastrophes, which then need no further explanation. Secondly, it provide some vestigial cohesion during the narrative, which offers some sense that the process is more than simply linear. The hesitation the reader is forced to feel over the role of Providence mirrors the voyager'sown state of anxiety and instability, and invites him to read the narrative within the category of the fantastic.

The devices of the narrative are best understood conventionally and generically. Crusoe behaves as he does not through the promptings of any unrevealed psychology, but because that is how the narrators of travel literature behaved in the book's time.Overall, it is a narrative which avoids irony,which seeks to enthrall and which offers a delight in factuality and novelty .It seeks to achieve its aim by working within the conventionalized language of early eighteenth century popular fiction, in which voyagers behaved in certain way. Thenovelty of Crusoe lies in its reserved compendiousness, and in its range of generic .By isolating the narrator, Defoe was able to concentrate, to the limit of the reader's attention,on survival and hardship. As the book progresses, a greater is shown in logistics then in salvation, and sufficiently idiosyncraticsituations are provided to retain that interest.

The central enterprise of the first two parts of Robinson Crusoe is to extend between mobility and stability, between jeopardy and security. In the opening chapter the nation of peril was central.It was central to all popular adventure tales. In Crusoe, that jeopardy arises from a volatile world, fraught with the dangers of tempest and hostile natives, wild animals and shipwrecks. It is explored by means of the robust central figure, whose own 'WanderingInclination' is the biggest of the hazards he has to face.The oscillation between adventure and prudence throughout the tale mirrors Defoe's own career, and without having to postulate anything as precise as allegory ,the two figures of author and creation share a sense of the world's obduracy.

Defoe, more than any other popular author of his time, attended to the mixed, sea-sawing understanding of life that his readers most must have known so well.In a dynamic society, some could rise quickly, but others could fall just as rapidly.Man's attend to seek as much security as possible in that dangerous world is latent throughout Crusoe.

Conclusion : The overall narrative of the Crusoe books is widespread and compendious. It is very tempting, but unfair and misguided, to try to extract one theme from the books. And by this one theme typify them.Most recently, the idea that the books own much to the genres of spiritual autobiography and confessional tale has been translated. The human image predominates.Man was confronted with an alien world.The new forces were unleashed by the age itself. Defoe's story is perhaps not a novel in the usual sensesince it deals so little with personal relations . But it is appropriate that the tradition of the novel should begin with a work that annihilated the relationship of the traditional social order, and thus drew attention to the opportunity and the need of building up a network of personal relationship on a new and conscious pattern; the term of the problem of the novel and of the modern thought alike were established when the old order of moral and social relationship was ship wrecked, with Robinson Crusoe, by the rising tide of Individualism.

Objectives–

1. To study Robinson Crusoe as the symbol of economic man.
2. To understand the travel and voyage literature.
3. To analyseCrusoe's relationship with Providence.
4. To explain the multiplicity in Robinson Crusoe.
5. To understand the term Utopia with reference to Robinson Crusoe.

References

1. https://en.wikipedia.org/wiki/Robinson_Crusoe
2. https://americanliterature.com/author/daniel-defoe/book/robinson -crusoe/summary
3. Mohammad Ahmed A., Hawara N. Karim, and Rebin A. Azeez, "Response to Individualism in Robinson Crusoe", Koya University Journal of Humanities and Social Sciences 2, no.1, May 24, 2019
4. Defoe, Daniel, Robinson Crusoe, London : Arcturus, 2009

5. Daniel Defoe, Robinson Crusoe, Introduction by Prof. Brereton, Collins 1986
6. F. Ellis (ed.), Twentieth Century Interpretation of Robinson Crusoe, Englewood Cliffs, N. J.,1969
7. R. Ayers, 'Robinson Crusoe : Allusive Allegoriek History', PMLA 1 xxxii, 1967
8. H. Swados, 'Robinson Crusoe : The Man Alone', Antioch Review, xviii, 1958
9. The Tempest and Robinson Crusoe, RES, xxi, January 1945
10. L. Stephen, History of English Thought in the Eighteenth Century, 2 vols., London and Newyork, 1876
11. Sir Walter Scott, 'Defoe', Miscellaneous Works, iv, Edinburgh, 1880
12. Homer, O. Brown, 'The Displaced Self In The Novels Of Daniel Defoe', p. 566

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 127-129

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

मृदुला गर्ग की कहानी-साहित्य का संरचना पक्ष

*राजेश्वरी देवी** *डॉ. नारायण***

सारांश–*जीवन की विविधताओं, मार्मिक प्रसंगों तथा सूक्ष्म समस्याओं को अपने कथा साहित्य का विषय बनाने और उसे अभिव्यक्त करने के लिए संरचना विविध रूप में अपनाई गई है। परंपरागत घेरे से आज कथा–साहित्य बाहर निकला है और अपनी अलग ही सरगम बजा रहा है। अतः जीवन का हर खण्ड, मार्मिक क्षण, अर्थपूर्ण घटना, कथा तंत्र में बँधने में समर्थ है। संरचनात्मक–पक्ष के नवीन पहलुओं और प्रयोगों का समीकरण कथा–साहित्य में दर्ज है। कहानीकार अपने अनुभव और संवेदना को अभिव्यक्त करने हेतु शिल्प का ही सहारा लेता है। जब कलाकार का अनुभव, कलाकार से बड़ा हो; तो जान लेना चाहिए कि कहानी का ढाँचा बार–बार टूटेगा और तेजी से बदलेगा। अतः कहानी साहित्य का संरचनात्मक पक्ष (अनुभूति पक्ष+अभिव्यक्ति पक्ष और वस्तुपक्ष+कलापक्ष) कहानी का निर्माण करने में सहायक होते हैं नामवर सिंह के अनुसार– ''छोटे मुंह बड़ी बात कहने वाली कहानी के बारे में प्रायः 'बड़े मुंह छोटी बात' कही जाती है। कहानी का यह दुर्भाग्य है कि वह मनोरंजन के रूप में पढ़ी जाती है।*

मूल शब्द–*संरचनात्मक, कहानी, अनुभव, मृदुला, अर्थपूर्ण।*

व्याख्या–मृदुला गर्ग की कहानियों के रचना–विधान का गहन अध्ययन करते हुए कहना चाहिए कि वस्तु और शिल्प पृथकत्व का बोध नहीं कराते। वस्तुतः लेखक की अनुभूति सामर्थ्य से ही कलमकारिता मे उत्पन्न होता है। लेखिका मृदुला गर्ग कहानी शिल्प की अपनी धारणा स्पष्ट करती है। ''कहानी में मौलिक तत्व होंगे तो शिल्प में भी प्रयोग होगा। केवल शिल्प का चमत्कार कहानी कथ्य को नवीनता नहीं दे पाता। ज्यादातर नए विषय का प्रयोग वही करता है जिसके पास कुछ नया कहने की इच्छा हो। सफलता कितनी मिल पाती है, वह अलग बात है।''[1]

'नेति–नेति' कहानी में भी ऐसे प्रयोग मिलते हैं। ''मैंने कहा, मुक्ति दो और उसी क्षण, वह...।''[2]

पहले जहाँ लेखिका की भाषा कसी सधी संयत भाषा थी वहीं बाद में वह फक्कड़पन और बेलोस हो गई। चुटीलापन उनकी 'इक्कीसवीं सदी का पेड़' कहानी में व्यक्त है। ''पेड़ को नहीं मालूम था, इक्कीसवीं सदी आएगी, आ गई। जब उसने उगना शुरू किया तो बीसवीं सदी थी या उन्नीसवीं, उसने पता करने की कोशिश नहीं की थी। पेड़ को सदियों से क्या लेना देना।''[3]

कभी वाक्य जब पुनः दोहराया जाता है तो वह वाक्य और अधिक वजनदार बन जाता है जिसे लेखक कहना चाहता है। मृदुला गर्ग ने भी पुनरावर्तन से भाषा को सार्थक बनाने का प्रयास किया है। मृदुला गर्ग की कहानी दुनिया का कायदा में यह दृष्टि विशेष महत्त्व रखती है। यह 'कितनी कैदें' कहानी संग्रह में संग्रहीत है वाक्यों की पुनरावृत्ति कहानी में व्यंग्य का प्रभाव और तेज और चमत्कार युक्त बना देती है। उदाहरण के लिए–

''यह तो दुनिया का कायदा है'' ''दुनिया का कायदा है।''[4] 'उसका विद्रोह' कहानी में एक ही वाक्य चार बार दोहराया गया है। जैसे– ''पर आज वह तैश में था और कुछ ऐसा कर देना चाहता था जिससे सब समझ जाए कि उसे बेबात इधर–उधर नहीं खदेड़ा जा सकता।''[5] यहाँ नायक का विरोध साफ जाहिर है 'दुनिया का कायदा' में ही से एक और उदाहरण उद्धृत है। ''तभी द्वार पर एक और अदाकर के आगमन ने चढ़ते दौर को और भड़का दिया।''[6] ''नगाड़े पर निर्मम प्रहार हुआ और एक नयी अदाकार प्रकाश पुंज में आ उपस्थित हुई।''[7]

* *शोध छात्रा (एम.ए. हिन्दी), श्री वेंकटेश वि.वि., तिरुपति चित्तूर, आंध प्रदेश*

** *एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, श्री वेंकटेश वि.वि., तिरुपति चित्तूर, आंध प्रदेश*

'हरी बिन्दी' कहानी का शीर्षक नायिका की स्वच्छन्द प्रवृत्ति का प्रतीक है। कहानी की नायिका धुंध में खुलापन और सूर्य के प्रकाश में घुटन महसूसती है। कहानी में प्रयुक्त धुंध और सूरज इन दो शब्दों की प्रतीकात्मकता को स्पष्ट करते हुए 'डॉ. मधुसन्दु' जी कहती हैं– ''यहाँ सूर्य का प्रकाश भारतीय जीवन में पति–पत्नी सम्बन्ध की स्पष्टता का द्योतक जिससे नायिका उकता चुकी है। धुंध जैसे अस्पष्ट रिश्तों के प्रति उसे लगाव है कि शायद वहीं से कोई जीवनदात्री अनुपम मोहक भावना मिल जाए।''[8]

'हरी बिंदी' कहानी का निम्नलिखित वाक्य स्पष्ट करता है कि सूरज का रोज निकलना सीधे सपाट यांत्रिक जीवन का प्रतीक है और धुंध नायिका की दिशाहीनता का। ''सूरज तो यहाँ रोज ही निकलता है पर धुंध कभी–कभी होती है। आठ महीनों में आज पहली बार।''[9]

'बर्फ बनी बारिश' में 'बिन्नी' अपने निर्णय पर कि 'वह पति व बच्चों के पास अमरीका नहीं जाएगी' अडिग थी। बर्फ के समान जमी और ठोस थी वहीं बिन्नी, 'अमर' (पति) की बीमारी का संदेश पाते ही 'बारिश' बन पिघल जाती है। यहाँ 'बर्फ' शब्द ठोस और दृढ़ निर्णय का प्रतीक है। वह 'बारिश', 'ममता', 'त्याग' और 'बलिदान' का प्रतीक है। पति के प्रति बिन्नी की भावनाओं का प्रवाह है। 'कितनी कैदें' में 'मीना' का बंद स्थान में घुटन महसूस करना उसकी मानसिक ग्रंथि की ओर संकेत करता है। अंत में लिफ्ट का पुनः चलना और 'मनोज' और 'मीना' का बाहर आना, 'मीना' की उस मानसिक ग्रंथि से छुटकारा का संकेत है। जीवन की आपबीती को छिपाते–छिपाते वह मानसिक यंत्रणा से गुजर रही थी जो अंततः खत्म हो जाती है।

'हरी बिंदी' कहानी असाधारण जीवन का आग्रह करने तथा एक दिन के लिए उसके खुलकर जीने की ओर इशारा करती है। 'अलग–अलग कमरें' कहानी में 'नरेंद्रदेव' का 'सुरेंद्रदेव' से डिस्पेंसरी अलग करने के लिए कहना उनमें आए परिवर्तन की ओर संकेत करता है और कमरों का अलग–अलग होना, पीढ़ियों की खाई की ओर संकेत करता है।

वास्तव में कहानी बनाई नहीं जाती। वह स्वयं ही अपना आकार ग्रहण करती है। मृदुला गर्ग ने विषय की गहराई में उतर कर आंतरिक चेतना का उद्‌घाटन किया है। ऐसा केवल शैली की वजह से ही हो पाया है। कमलेश्वर ने आज की कहानी शैली को विलीन शैली कहा है। कथा साहित्य का एक प्रमुख तत्व शैली होने से उसके कलापक्ष की महत्ता बढ़ जाती है। शैली के माध्यम से लेखक किसी भी विषय के भीतर घुसकर अपनी सोच का उद्‌घाटन कर सकता है आज का कथा साहित्य अपने सौंदर्य का अवतार है। यथार्थ के नजदीक वह सहज और सामान्य है।

मृदुला गर्ग ने अपने कहानी–साहित्य में कथा निरूपण की विविध शैलियों को अपनाया है। उनकी कथा–वर्णन की शैली इतनी अद्‌भुत है कि कथ्य अपनी संपूर्ण संवेदनशक्ति के साथ पाठक के समक्ष प्रस्तुत हो जाता है। मृदुला गर्ग की वर्णन शैली के विषय में डॉ. शुकदेव सिंह ने लिखा है– ''हिंदी में शायद ही किसी लेखक या लेखिका ने प्रसव की वेदना को उसके संपूर्ण कलाप को, इतनी, बारीकी और विस्तार से लिखा हो। पूरा का पूरा प्रसूति क्रिया का वर्णन बहुत ही तन्मयता और बारीकी से लिखा हुआ है और जच्चा की सारी हवस, खलिश, दर्द ओर छटपटाहट को लेखिका ने तरह–तरह से उलट–पुलटकर प्रत्यक्ष कराने की कोशिश की है, वह वर्णन अद्‌भुत है।''10

उनकी कहानी में भी विश्लेषण के दर्शन होते हैं। 'टोपी' कहानी में नायक 'अविजित' के मानसिक द्वन्द्व का निरूपण इस रूप में हुआ है– ''नही जानता था वह मेरठ में है, मै बिल्कुल नहीं जानता था, वह तंगी में हैं, बीमार है, उसे इलाज की जरूरत है, जानता तो जरूर उसके पास जाता, उसका इलाज कराता...च...मैं करता जरूर। अविजित की आवाज कमजोर पड़ती गयी और एक अन्य स्वर उसके भीतर पनप उठा। 'पिछली बार जब चड्‌ढा मिला था, तो उससे पूछा था वह कहाँ रहता है?''[11]

मृदुला जी की कथाएँ शब्दों के माध्यम से चेतना पर आघात व्यंग्य की धार की तिलमिलाहट के साथ प्रश्नों की बौछार भी करते हुए करती हैं। वे पाठकों को सजग और सचेत करती है। ऐसा उनके शैल्पिक वैशिष्ट्य के कारण ही हो पाया है। जाहिर है मृदुला गर्ग जीवन की लंबी यात्रा पर हैं। उन्होंने अपने कथा साहित्य के जरिए एक नई आस्था और उमंग जगाई है तथा आत्मनिरीक्षण के लिए प्रेरित किया है। अतः मृदुला जी का प्रयोग वाकई कथा–साहित्य का अद्वितीय पन्ना है।

'समकालीन कहानी में युवा चेतना' पुस्तक से प्रस्तुत उद्धृत वक्तव्य द्रष्टव्य है– ''जब हम शिल्प की बात करते हैं तब हम लगभग हर चीज की बात करते हैं, क्योंकि शिल्प, ही वह साधन है जिसके माध्यम से लेखक का अनुभव,

जो कि उसकी विषय वस्तु है, उसे अपनी ओर ध्यान देने के लिए विवश करता है, शिल्प वह एकमात्र साधन है जिसके द्वारा वह अपने विषय को खोजता है, उसकी छानबीन करता है, उसका विकास करता है जिसके माध्यम से वह उसके अर्थ को संप्रेषित करता है और अन्ततः उसका मूल्यांकन करता है।''[12] उपर्युक्त कथन मृदुला गर्ग की शिल्पपरक विशेषताएँ हैं।

मृदुला जी बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार हैं। काव्य को छोड़ साहित्य की शायद ही ऐसी कोई विधा होगी जिसे मृदुला जी की लेखनी का स्पर्श न हुआ हो। मृदुला जी ने सिर्फ कहानी उपन्यास जैसी चर्चित विधाओं पर लेखनी चलाई बल्कि निबंध, नाटक, संस्मरण, यात्रा साहित्य, अनुवाद आदि विधाओं पर भी उतनी ही प्रतिभा से लेखनी चलाई है। परंतु इनका पूरा अध्ययन अब तक नहीं किया गया है उनका साहित्य जितना महत्वपूर्ण है उतना ही कथेतर साहित्य मृदुला जी के कथेतर साहित्य का पूरा अध्ययन अभी तक नहीं किया गया है। इसलिए मैंने इस विषय को साकार करने का प्रयास किया है।

निष्कर्ष–मृदुला गर्ग के कहानी साहित्य का समग्र अध्ययन करने के पश्चात् हम कह सकते हैं कि उनकी महत्वपूर्ण मान्यताएँ कथेतर साहित्य विशेषकर निबंधों, नाटकों, संस्मरणों तथा यात्रा वर्णनों में भी स्पष्ट तौर पर सामने आती हैं। लेखकीय मान्यताएँ रचनाओं में तो स्पष्ट रूप से झलकती हैं, विद्वान व्यक्तियों द्वारा समय–समय पर लिए जाने वाले साक्षात्कारों द्वारा भी लेखकों के विचारों से हम परिचित हो पाते हैं अतः साक्षात्कार में खुलकर लेखक अपने को प्रकट करता है। वैसे मृदुला जी कई बार व्याख्यान देने विदेश जा चुकी हैं। उन्होंने अमेरिका के लगभग हर विश्वविद्यालय में व्याख्यान दिया है पर हमेशा बाहर के लोगों ने ही उन्हें आमंत्रित किया है यहाँ के लोगों ने उन्हें कभी किसी शिष्टमंडल का सदस्य बनाकर नहीं भेजा।

विशेषतः माने तो भारतीय नारी का स्वरूप विधि सृष्टि का, सत्य का नमूना है। सुकुमारता, सुन्दरता, मधुरिमा के साथ ही इसके प्रेम, वात्सल्य, सहिष्णुता दया और आत्मबल स्वभाव से ही प्राप्त है। नारी सृष्टि का मूलाधार हैं। गृहलक्ष्मी, जननी और कामिनी रूपों में नारी ही संसार–शासन का केन्द्र बिन्दु रही हैं। नारी के इन विविध गुणों के कारण ही वह बच्चों पर सबसे अधिक प्रभावी संस्कार कर सकती है। वह अपने शर्कर गुंठित उपदेश के आधार पर बच्चे पर योग्य संस्कार कर सकती है।

समाज में आदर सम्मान प्राप्त करने के लिए हमेशा से ही स्त्री को किसी न किसी रिश्ते के रूप में पुरुष का सहारा लेना आवश्यक होता है यही सीख दी जाती है भारतीय नारी को, मृदुला अपने साहित्य में सोच–विचार करने के बाद ही विषयों का चयन करती हैं। वह अपने लेखन में नारी को न्याय और स्वतंत्रता देने की पक्षधर है।

संदर्भ–सूची

1. मृदुला गर्ग से दिनांक 3 तथा 4 अक्टूबर, 2000 को उनके निवास स्थान पर डॉ. तारा अग्रवाल के साक्षात्कार के आधार पर
2. मृदुला गर्ग, मेरे देश की मिट्टी, अहा–नेति नेति, पृ. 51
3. मृदुला गर्ग, मेरे देश की मिट्टी, अहा–इक्कीसवीं सदी का पेड़, पृ. 89
4. मृदुला गर्ग, दुनिया का कायदा, पृ. 108
5. वही, पृ. 116
6. मृदुला गर्ग, टुकड़ा टुकड़ा आदमी, पृ. 79
7. मृदुला गर्ग, कितनी कैदें दुनिया का कायदा, पृ. 110
8. मृदुला गर्ग, कितनी कैदें, पृ. 34
9. मृदुला गर्ग, उर्फ सैम, पृ. 23
10. मृदुला गर्ग, चर्चित कहानियाँ, भूमिका से उद्धृत
11. मृदुला गर्ग, ग्लेशियर से, टोपी, पृ. 47
12. डॉ. ऋतु मंजरी, समकालीन कहानी में युवा चेतना, पृ. 143, 144

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 130-133

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

1942 की अगस्त क्रान्ति और इलाहाबाद

*कु. ज्योति**

शोध–संक्षेपिका : *औपनिवेशिक काल में भारत को गुलामी से मुक्त कराने के क्रम में सबसे महत्त्वपूर्ण क्रान्ति थी–अगस्त क्रान्ति, जिसे हम भारत छोड़ो आन्दोलन के नाम से जानते हैं। प्रस्तुत प्रपत्र में अगस्त क्रान्ति के दौरान इलाहाबाद में घटित प्रमुख घटनाओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। उन दिनों इलाहाबाद का स्वराज भवन आल इण्डिया कांग्रेस का मुख्यालय था। अगस्त क्रान्ति का मसौदा भी यहीं तैयार किया गया था। इलाहाबाद के हजारों छात्र–छात्राओं, किसानों, क्रान्तिकारियों ने इस क्रान्ति में बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया। सैकड़ों लोग पुलिस की गोली का शिकार हुए तथा सैकड़ों लोगों ने इस दौरान जेल की यातनाएं झेली। अतः यह प्रपत्र इलाहाबाद के उन्हीं वीर सपूतों के त्याग व बलिदान पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करता है।*

कुंजी शब्द–*आन्दोलन, इलाहाबाद, विद्यार्थी, जुलूस, पुलिस, विश्वविद्यालय, गोली।*

क्रिप्स मिशन की अफसलता से देश में असंतोष व्याप्त था। इस समय द्वितीय विश्व युद्ध अपने चरम पर था। जापान द्वारा सिंगापुर, मलाया, वर्मा पर अधिकार के फलस्वरूप भारत पर आक्रमण का खतरा बढ़ता जा रहा था। परिणामस्वरूप देश में वस्तुओं की कमी के चलते उनके मूल्यों में बेतहासा वृद्धि से देश की जनता त्रस्त थी।

10 मई 1942 को 'हरिजन' पत्रिका में गांधी जी ने लिखा कि ''भारत में अंग्रेजों की उपस्थिति जापानियों को भारत पर आक्रमण करने का निमंत्रण है।''[1] इस परिस्थति में भावी कार्यक्रम तय करने हेतु 29 अप्रैल, 1942 को इलाहाबाद में अखिल भारतीय कांग्रेस महासमिति की बैठक हुई। इसी क्रम में भारत छोड़ो प्रस्ताव जवाहरलाल नेहरू द्वारा लिखा गया।

आरम्भ में यह प्रस्ताव 'अंग्रेज शांतिमय तरीके से अपने देश लौट जायें' था। लुई फिशर ने महात्मा गांधी को सलाह दिया कि 'ब्रिटिश पीसपुल विडाल के स्थान पर 'क्विट इण्डिया' (भारत छोड़ो) अभिव्यक्ति लगा दी जाये।[2] कांग्रेस कार्य–समिति द्वारा 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' प्रस्ताव 7 अगसत, 1942 को बम्बई के ग्वालिया टैंक मैदान में अबुल कलाम आजाद द्वारा रखा गया जिसे 8 अगस्त को पारित कर दिया गया। गाँधीजी ने कहा, ''मैं पूर्ण स्वाधीनता से कम किसी चीज से संतुष्ट होने वाला नहीं हूँ... अब मैं आपको एक छोटा सा मंत्र दे रहा हूँ, आप इसे अपने दिल में संजोकर रख लें और हर सांस में इसका जाप करें वह मंत्र है ''करो या मरो'' हम या तो भारत को स्वतंत्र कराएंगे या इस प्रयास में मारे जाएगें, मगर हम अपनी पराधीनता को जारी रहते देखने के लिए जीवित नहीं रहेंगे।''[3] 9 अगस्त को ऑपरेशन जीरो आवर के तहत गांधी जी व अन्य बड़े नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। कांग्रेस को अवैधानिक घोषित कर दिया गया।

देशव्यापी भारत छोड़ो आन्दोलन से जनपद इलाहाबाद भी अछूता न रहा। यहां कांग्रेस के मुख्यालय स्वराज भवन को सरकार के खिलाफ गतिविधि चलाने के आरोप में जब्त कर लिया गया। भारत छोड़ो आन्दोलन की सार्वजनिक घोषणा करने के पूर्व 1 अगस्त, 1942 को इलाहाबाद में तिलक दिवस मनाया गया।[4]

इलाहाबाद में सब डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेटों को यह आदेश दिया गया कि सभी खद्दर पहनने वालों को पकड़ लिया जाय। एक तरफ से गिरफ्तारी, तलाशी, हवालात, जायदाद की कुर्की की जाए और किसी भी राजद्रोहात्मक कार्य में लगे व्यक्ति को थानेदार द्वारा गोली मारने का आदेश दिया गया। एक तरीके से यह मार्शल लॉ लगाने जैसा था।[5]

* *शोध छात्रा, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, ईश्वर शरण डिग्री कॉलेज, प्रयागराज*

9 अगस्त की शाम पांच बजे इलाहाबाद विश्वविद्यालय का एक बड़ा जुलूस अल्बर्ट रोड से पुरुषोत्तमदास पार्क के बीच निकाला गया। 10 अगस्त को भी शांतिपूर्वक जुलूस निकाले गए। चौक स्थित मोहम्मद अली पार्क में चल रही एक सभा के दौरान केशरवानी वैश्य पाठशाला के छात्र विद्यालय छोड़कर सभा में शामिल होने पहुँच गये। चौक की सभी दुकानें बंद कर दी गई और पूरे शहर में हड़ताल हुई। जिला कलेक्ट्रेट ने सभी विद्यालयों को अनिश्चितकाल तक बन्द करने का आदेश दिया।[6]

11 अगस्त को इलाहाबाद विश्वविद्यालय के छात्र–छात्राओं द्वारा एक जुलूस निकाला गया। इसी दिन इलाहाबाद से 20 किमी0 दूर ग्रांड ट्रंक रोड पर स्थित सैदाबाद गाँव के किसानों ने भी जुलूस निकाला। पुलिस ने उन्हें पीछे हटने का आदेश दिया। ऐसा न करने पर उन पर गोलियों की बौछार कर दिया गया जिसमें श्री सियाम्बर (24 वर्षीय किसान), श्री चन्द्रमा प्रसाद (34 वर्षीय ग्रामीण अध्यापक), श्री दयाल (18 वर्षीय किसान) और श्री सुबोध (24 वर्षीय किसान) वीरगति को प्राप्त हुए।[7]

12 अगस्त को इलाहाबाद विश्वविद्यालय के यूनियन भवन में सभा करने के बाद सुबह 11 बजे छात्र–छात्राओं का एक विशाल जुलूस कचहरी की ओर निकला। इसका नेतृत्व कमलेश मल्ल कर रहे थे। जुलूस में तीन छात्राएँ केशरिया वस्त्र धारण कर, हाथ में तिरंगा लेकर सबसे आगे चल रही थी। वे थीं–श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित, जस्टिस मुल्ला की बेटी और एक पुलिस अफसर की बेटी। इस जुलूस में हेमवती नन्दन बहुगुणा, राजमंगल पाण्डेय, यशोदा नंदन, प्रकाश मेहरोत्रा, मानस बिहारी मुखर्जी आदि शामिल थे।[8] इसी दिन एक अन्य जुलूस कर्नलगंज और इंडियन प्रेस के रास्ते कचहरी की ओर बढ़ रहा था। इसमें कमल बहुगुणा, चाँदतारा, तेजी बच्चन, चिंता मालवीय, कांति सरगा, कांता कोचर, दया मालवीय और कुमुद मालवीय शामिल थीं।[9] जैसे ही जुलूस कोतवाली के सामने पहुँचा अंग्रेज अधिकारी डिक्सन ने सबको हटने का निर्देश दिया। परन्तु जुलूस पूरे जोश से इंकलाब जिंदाबाद, 'महात्मा गांधी की जय' के नारे लगाता हुआ आगे बढ़ा चला आ रहा था। इस पर डिक्सन ने लाठी चार्ज करने और गोली चलाने का आदेश दे दिया। आगे की पंक्ति में छात्राएँ थीं जो घायल होकर गिर पड़ी। लड़कियों के हाथ से झण्डा छिनने का प्रयास किया गया। वे घिसटती जा रही थीं। जुलूस में शामिल लोग लेट जा रहे थे। पीछे से घुड़सवार उन पर डण्डे चला रहे थे।[10] तभी बीच से रीवां के एक नवयुवक लाल पद्मधर (इलाहाबाद विश्वविद्यालय के बी–एस.सी. के छात्र) आगे आए और जोर से चिल्लाये–''लड़कियों को क्यों निशाना बनाते हो? मुझ पर गोली चलाओ।'' एसपी ने उन पर गोली चला दी और आजादी के यज्ञ में श्री लाल पद्मधर ने अपनी आहूति दे दी।[11]

पुलिस ने दमनात्मक कार्यवाही तेज कर दी। लोग घायल होकर गिर पड़ रहे थे फिर भी वीरतापूर्वक बढ़ते जा रहे थे। लड़कियों ने घुड़सवारों की लगाम थाम ली। थोड़ी देर के लिए जुलूस भंग हो गया। कुछ समय बाद फिर जवाहर चौक में जुलूस निकला। पुलिस ने उन पर भी लाठी चार्ज किया।[12] बचाव के लिए उन्होंने भरे हुए ठेलों और लकड़ी के तख्तों की सहायता से सड़क पर एक दीवार जैसा खड़ा कर लिया। इनके दमन हेतु बलूच सैनिकों का एक जत्था पुलिस से आ मिला और उन्होंने गोलियाँ चलानी प्रारम्भ कर दिया। इससे जुलूस के नायक राजन की छाती में गोली लगी। गोलियों की आवाज सुनते ही लोग इधर–उधर भागने लगे। 13 वर्षीय सी.ए.बी. इण्टर कालेज के विद्यार्थी रमेशदत्त मालवीय ने भागते लोगों को रोकने का प्रयास किया। यह देखते ही पुलिस अधिकारी सार्जेण्ट ने रिवाल्वर से रमेश दत्त को गोली मार दी। वह वहीं वीरगति को प्राप्त हुए।[13] इस गोलीबारी में मरने वालों की संख्या सैकड़ों पहुंच गई। पूरे शहर में क्रोध की आग भड़क उठी। जनता ने संचार के तार काट दिये, डाकखानों पर धावा बोल दिया तथा उनमें रखे कागजात जला दिये। शहर में लोग अंग्रेजी टोपी छिन–छिन कर जलाने लगे। विद्यार्थियों ने किले से सामान ले जा रही कई सरकारी मोटरों को आगे हवाले कर दिया। सड़क पर बड़े–बड़े पीपे फैलाकर पुलिस की लारी के आवागमन को अवरूद्ध करने का प्रयास किया गया। जगह–जगह लोग पुलिस का डटकर सामना कर रहे थे। स्थानीय लोगों के एक जत्थे ने इण्डियन प्रेस में घुसकर डाकखाने के कागजात जला दिए।[14]

इस दिन जुलूस में सैकड़ों नागरिकों की हत्या का आँखों देखा हाल बयां करते हुए अदालत के भूतपूर्व सब डिविजनल श्री अमीर रजा साहब बताते हैं कि, ''मैंने निकट से देखा कि श्री पद्मधर सिंह की मृत्यु कानूनन गोली चलाने से नहीं हुई बल्कि जानबूझकर उनकी हत्या की गयी। दो सौ निहत्थे और निरीह छात्रों पर गोली चलाना युद्ध में वीरतापूर्ण कार्य न था। उन लोगों ने एक घण्टे से अधिक समय तक गोलियों का सामना किया। इस स्थिति में लाठी और गोली की वर्षा की गयी जो सर्वथा अनुचित था। निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि पुलिस

ने 10–10 मिनट पर 6 बार गोली चलाई।''[15] इस घटना के विरोध में अमीर रजा ने डिप्टी कलेक्टर के पद से इस्तीफा दे दिया।[16]

इस गोलीकाण्ड के विरोध में चौक से विशाल जुलूस निकाला गया। खुल्दाबाद सब्जी मण्डी निवासी 15 वर्षीया छात्र अब्दुल मजीद भी जुलूस में शामिल था। पुलिस ने रास्ता रोका तथा फायरिंग शुरू कर दी। मजीद को गोली लगी और वे वहीं गिर पड़े।[17] उनके एक हाथ में तिरंगा था। उनकी साँसे थमने से पहले तिरंगा दूसरे क्रान्तिकारी किशोर द्वारिका प्रसाद ने थाम लिया और वंदे मारतम् का नारा बुलंद किया। उन्हें भी गोली लगी और वे शहीद हो गये।[18]

आंदोलन में बड़ी संख्या में छात्रों की उपस्थिति को देखकर ब्रिटिश सरकार द्वारा इलाहाबाद विश्वविद्यालय को अनिश्चितकाल हेतु बन्द करने का आदेश दिया गया। लाल बहादुर शास्त्री व विजयलक्ष्मी पण्डित सहित इलाहाबाद के अन्य सक्रिय नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया।[19]

उस दौरान जो व्यक्ति गाँधी टोपी लगाकर चलता था, पुलिस उसे पकड़ लेती थी और टोपी को नाली में फेंकने, उस पर थूकने और पेशाब करने का आदेश देती थी।[20] एक नवयुवक दशरथ लाल जायसवाल को भी गाँधी टोपी पहनने पर उन्हें गोली मार दी गई।[21]

'क्रान्ति की मशाल और बंदूकें' नामक पुस्तक में बताया गया है कि भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान दारागंज के मठ क्रान्तिकारी गतिविधियों का बड़ा केन्द्र रहे थे। ऐसे ही एक मठ में रात्रि 11 बजे साइक्लोस्टाइल मशीन द्वारा क्रान्तिकारियों के संदेश वाले पर्चों की छपाई का काम हो रहा था। तभी पुलिस के आने की सूचना मिली। क्रान्तिकारियों ने छपी सामग्री का बंडल बनाया और तुरन्त वहाँ से निकल गये।[22] परन्तु साइक्लोस्टाइल मशीन इतनी भारी थी कि उसे तुरन्त हटाना सम्भव न था। एक महंत ने साइक्लोस्टाइल को रेशमी कपड़े से ढंककर उसके ऊपर भगवान राम और हनुमान की मूर्तियाँ रख दी तथा उन मूर्तियों पर फूलमाला चढ़ाकर बचे हुए क्रान्तिकारी साधु वेश में भजन कीर्तन करने लगे तथा इस प्रकार वे पुलिस को चकमा देने में सफल रहे।[23]

1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में इलाहाबाद के नौजवान विद्यार्थियों, क्रांतिकारियों, किसानों व जनसामान्य ने बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया और जिनमें हजारों को पुलिस के दमनचक्र का शिकार होना पड़ा। सैकड़ों को जान गँवानी पड़ी और कई लोगों को जेल की यातनाएँ सहनी पड़ी। जिनमें से कुछ नाम है– कैलाशनाथ काटजू, फिरोज गाँधी, लाल बहादुर शास्त्री, हेमवती नंदन बहुगुणा, कमला बहुगुणा, नेहरू परिवार, लल्लन मिश्र (करछना तहसील), महावीर (कीटगंज), बैजनाथ प्रसाद गुप्त (अहियापुर), ननका जी (बक्शी बाजार), अब्दुल मजीद (सब्जीमण्डी), द्वारिका प्रसाद (हिवेट रोड), हजारीराम पाण्डेय (हण्डिया), अखिल कुमार दत्त (दारागंज), अननत कुमार (सरायममरेज), अनादि कुमार दत्त (लूकरगंज), सियांबर, चन्द्रमा प्रसाद, दयाल, सुबोध (सैदाबाद), रमेशदत्त मालवीय (अहियापुर), उदित नारायण (सैदाबाद), ओंकार शरद (मिण्टो रोड), कन्धई (कीटगंज), कमला प्रसाद मोहिले (मालवीय नगर), कामता प्रसाद (कमालपुर), काली प्रसाद (कटरा), किरण कुमार (एल्गिन रोड), केदारनाथ वर्मा (मुट्ठीगंज), महावीर प्रसाद जायसवाल 'असहयोगी' (मुट्ठीगंज), मथुरा प्रसाद (फूलपुर), बैजनाथ पाण्डेय (हण्डिया), बद्री प्रसाद गुप्त, महेश प्रसाद जायसवाल (कीटगंज), मोहम्मद शहीद, रंजीत सीताराम पंडित, राजकिशोर, राधेश्याम केसरवानी, रूपनारायण त्रिपाठी (सरायइनायत), मंजर अली, रामलाल सिंह (कीटगंज), संग्राम सिंह (सोरॉंव), सी.ई. विल्सन, सुन्दरलाल, स्वराजदत्त, त्रिलोकी नाथ परमार आदि अनगिनत नाम हैं।[24]

जून 1945 में इस आन्दोलन के कई सत्याग्रही जेल से बाहर निकले थे। इस उपलक्ष्य में अगस्त 1945 में 'इलाहाबाद स्वाधीनता दिवस' मनाया गया जिसका निदेशन विश्वम्भरनाथ पाण्डे ने किया था। इस अवसर पर हुतात्माओं की स्मृति में कांग्रेस के अध्यक्ष के संदेश के साथ 'रजत–पत्रिका' का वितरण जवाहरलाल नेहरू द्वारा किया गया। इसके अतिरिक्त राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन ने शहीदों के लिए संग्रहित धन उनके परिवारों को प्रदान किया।[25]

इस प्रकार भारत छोड़ो आन्दोलन में इलाहाबाद का योगदान अमूल्य व अविस्मरणीय है।

सन्दर्भ–सूची

1. ग्रोवर, बी.एल., आधुनिक भारत का इतिहास, एस. चन्द्र पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 2012, पृ. 411
2. प्यारेलाल, महात्मा गांधी, द लास्ट फेज, वाल्यूम–1, पृ. 707
3. चंद्र, बिपिन, आधुनिक भारत का इतिहास, ओरियन्ट ब्लैकस्वॉन पब्लिकेशन, 2014, पृ. 322

4. पाण्डे, एस.के. प्रयाग एकेडमी पब्लिकेशन, पृ. 376

5. सिन्हा, हरेन्द्र प्रताप, भारत को प्रयाग की देन, पृ. 110

6. पाण्डेय, श्याम कृष्ण, भारतीय छात्र आंदोलन का इतिहास

7. सिंह, ठाकुर प्रसाद, स्वतंत्रता संग्राम के सैनिक (संक्षिप्त परिचय) भाग–3, इलाहाबाद डिविजन, सूचना विभाग, उ.प्र., पृ. 1972

8. https://dakshinkosaltoday.com/revolutionaries-of-the-freedom-struggle/

9. https://www.jagran.com/lite/uttar-pradesh/allahabad-city-lal-padmadhar-and-14-year-old-ramesh-dutt-malviya-were-martyred-at-prayagraj-in-12-august-1942-revolution-know-this-interesting-story-of-freedom-struggle-22974629.html

10. सहाय, गोविन्द, सन् 42 का विद्रोह (1946), पृ. 195

11. उपरोक्त

12. उपरोक्त, पृ. 195

13. उपरोक्त, पृ. 196

14. यादव, प्रकाश चन्द्र, इलाहाबाद के स्वतंत्रता आंदोलन में कांग्रेस का योगदान, कांग्रेस कमेटी इलाहाबाद, पृ. 32

15. यादव, प्रकाश चन्द्र, इलाहाबाद के स्वतंत्रता आंदोलन में कांग्रेस का योगदान, कांग्रेस कमेटी इलाहाबाद, पृ. 37–38

16. उपरोक्त

17. चोपड़ा, प्राणनाथ, भारतीय शहीदों का परिचय खण्ड–1, शिक्षा तथा युवा सेवा मंत्रालय, भारत सरकार, 1969, पृ. 5

18. उपरोक्त, पृ. 165

19. यादव, जे.एन.एस., लाल बहादुर शास्त्री, पृ. 20

20. सहाय, गोविन्द, पृ. 197

21. उपरोक्त

22. https://www.amarujala.com/amp/uttar-pradesh/allahabad/the-revolutionaries-of-allahabad-prayagraj-wrote-the-story-of-freedom-with-blood

23. उपरोक्त

24. सिंह, ठाकुर प्रसाद, स्वतंत्रता संग्राम के सैनिक (संक्षिप्त परिचय) भाग–3, इलाहाबाद डिविजन, सूचना प्रसारण विभाग, उ.प्र., 1972

25. नारायण, बद्री, सिंह, वाई.पी., प्रयाग : अतीत, वर्तमान और भविष्य, नगारी प्रिंटर्स, दिल्ली, 2003

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 134-140

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

भारत विभाजन की विभीषिका का हिन्दी फिल्मों में पुर्नचित्रण : 1947-1980

*डॉ. राहुल द्विवेदी**

भारत विभाजन दक्षिण एशिया की सबसे बड़ी त्रासदी थी, ऐसा विभाजन विश्व इतिहास की झलक पर कहीं भी प्रतिबिम्बित नहीं होता है। हिन्दुस्तान को दो सौ वर्षो की गुलामी से आजादी तो मिल गयी, परन्तु स्वतन्त्रता सेनानियों ने जो सपना देखा था वह खण्डित हो गया भारत का विभाजन दो हिस्सों में, भारत और पाकिस्तान में कर दिया गया। एक तरफ आजादी से करोड़ों लोगों के स्वप्न साकार हुए तो दूसरी तरफ विभाजन ने हमारे नवउदित स्वतन्त्र राष्ट्र के ताने–बाने को छिन्न–भिन्न कर दिया। विभाजन सहित स्वतन्त्रता का अर्थ रहा अचानक भड़क उठने वाली हिंसा और रोजगार तथा आर्थिक अवसरों की तंगी या अपनी पीढ़ियों पुरानी जड़ों से उखड़कर शरणार्थियों के रेले में सम्मिलित होने के बीच चयन करना।[1]

भारत विभाजन एक बहुआयामी मानव त्रासदी थी, जिसमें लगभग 10 लाख लोग मारे गए एवं 1.46 करोड़ लोगों का स्थानान्तरण हुआ। दिल्ली, कलकत्ता, लाहौर, करांची इत्यादि स्थानों पर दंगा भड़क गये महिलाओं एवं बच्चों को तमाम यातनाएँ झेलनी पड़ी। यह ऐसा विभाजन था जिसने भाई को भाई से अलग कर दिया। नेहरू के मित्र एवं उसकी जीवनी लिखने वाले लेनार्ड मोसले के अनुसार ''सिर्फ पंजाब में 6,00,000 लोग मारे गए। 1,40,00,000 शरणार्थी बना दिए गए, दोनों पक्षों द्वारा 1,00,000 युवतियों का अपहरण किया गया, बलपूर्वक उनका धर्म परिवर्तन किया गया था उन्हें नीलाम कर दिया।'[2] पंजाब की स्थिति से समूचें भारतवर्ष की वीभत्सता का अनुमान लगाया जा सकता है। विभाजन की योजना ने हिन्दुस्तान को जितनी क्षति पहुँचायी उतनी किसी दूसरी योजना ने नहीं। हिन्दुस्तान की धरती पर ब्रिटिश साम्राज्यशाही का यह आखिरी और बहुत शर्मनाक कार्य था। समय बीतने के साथ–साथ विभाजन के असाध्य कंलक के सामने स्वेच्छा से दी गयी स्वतन्त्रता की झूठी महिमा ध्वस्त हो जाएगी।[3]

कांग्रेस और मुस्लिम लीग के नेता एक दूसरे पर आरोप–प्रत्यारोप एवं ब्रिटिश साम्राज्यवादियों को खुश करने में लगे हुए थे और ब्रिटेन के लोग शुरू से 'बांटो और राज्य करों' की नीति के तहत दोनों समुदाय को आपस में लड़ा रहे थे। देश के राष्ट्रीय मुक्ति का आन्दोलन अब सशस्त्र क्रान्ति एवं साम्प्रदायिकता के उच्चतम शिखर को प्राप्त कर रहा था। इसी क्रम में 16 अगस्त, 1946 को 'प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस' मनाया गया। इसी दिन से होने वाले साम्प्रदायिक दंगों ने भारतीय परिदृश्य को पूरी तरह बदल दिया। समस्त देष में फैले साम्प्रदायिक दंगों ने भारत विभाजन की विभीषिका की पृष्ठभूमि तैयार की।

इसी बीच 20 फरवरी, 1947 को ब्रिटेन के प्रधानमंत्री क्लीमेन्ट एटली ने हाउस ऑफ कॉमंस से भारत सम्बन्धी नीति के बारे में बयान दिया ''अनिश्चिता की वर्तमान हालत खतरे से भरी है और अनिश्चितकाल तक जारी नहीं रखी जा सकती। महामहिम की सरकार यह स्पष्ट कर देना चहती है कि सन् 1948 के पहले ही जिम्मेदार भारतीय हाथों में सत्ता के हस्तान्तरण को पूरा करने के लिए आवश्यक कदम उठाने का उसका निश्चित इरादा है।[4] इसी घटना के बाद वायसराय के पद पर लार्ड बेवल की जगह लार्ड माउण्ट बेटन की नियुक्ति की गयी। इसी बीच साम्प्रदायिकता की आग और तेजी से भड़की जिसके चपेट मे सम्पूर्ण पंजाब आ गया, पंजाब की यूनियनिस्ट पार्टी के मलिक खिजिर हयात खाँ की संयुक्त सरकार ने 2 मार्च, 1947 को इस्तीफा दे दिया इसके बाद तो लाहौर,

* *असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सांगीपुर, प्रतापगढ़ (उ.प्र.)*

अमृतसर, तक्षशिला और रावलपिंडी में भयंकर मारकाट मच गई। पन्द्रह दिन के अन्दर ही साम्प्रदायिक दंगों में 2049 आदमी मारे गए और 1000 से ज्यादा लोग बुरी तरह घायल हुए दोनों तरफ से ऐसी नृशंसता बरती गयी कि हैवानियत भी शर्म खा जाए।[5]

लार्ड माउंटबेटन ने 24 मार्च, 1947 को वायसराय के पद का कार्यभार ग्रहण किया और देश विभाजन की ओर अग्रसर हुआ। नेहरू और पटेल धीरे–धीरे विभाजन के लिए तैयार हो गए और अन्ततः गांधी जी ने भी विभाजन के लिए मौन सहमति प्रदान की। चूँकि विभाजन एक बड़े भू–भाग, बड़ी जनसंख्या, बड़े संसाधन का करना था इसलिए भारत का विभाजन बड़ा विवादास्पद मुद्दा बन गया था। लार्ड माउन्टबेटन ने पंजाब व बंगाल के विभाजन के लिए सर साइरिल रैडक्लिफ की अध्यक्षता में आयोग का गठन किया गया जिसका कार्य था कि अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं का निश्चय तय सीमा में करना था रैडक्लिफ एवं वायसराय ने दोनों ने माना कि ये विभाजन लाखों लोगों के लिए कष्ट का कारण बनेगा।[6] पाकिस्तान में गैर–मुसलमानों के अधिकारों को न तो जिन्ना ने कभी निरुपित किया न ही मुस्लिम लीग ने, इसलिए विभाजन जो स्वतन्त्रता के जन्म के साथ जन्म लिया अत्यन्त त्रासदी पूर्ण था। एक तरफ पंडित नेहरू के साथ समस्त देशवासी नये स्वतंत्र देश में भविष्य के लिए सपना देख रहे थे वहीं दूसरी तरफ गांधी एवं अबुल कलाम आज़ाद के साथ विभाजन जैसी त्रासदी से अत्यन्त दुःखी थे एवं दंगों को रोकने तथा शरणार्थी की समस्या से मार्महत थे। लाशों से रेलगाड़ियाँ सीमा के आर–पार जाती रही, एक करोड़ से अधिक लोग बेघर हुए और शरणार्थी शिविरों की गन्दगी में कड़वी स्वाधीनता का स्वाद चखने लगे। कांग्रेस एवं लीग के नेता तो विभाजन को स्वीकार कर लिए, किन्तु क्या भारतीय जनसमुदाय ने विभाजन को स्वीकार किया इसका उत्तर अबुल कलाम आजाद ने दिया ''कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने बँटवारा मंजूर कर लिया था। किन्तु असली हालत बिल्कुल दूसरा था जब हमने मुल्क पर बँटवारे के ठीक पहले और बाद में नजर दौड़ाई तो हमने देखा कि मंजूरी सिर्फ कांग्रेस महासमिति के प्रस्ताव में और मुस्लिम लीग के रजिस्टर पर थी। हिन्दुस्तान की जनता ने बँटवारा मंजूर नहीं किया था। दरअसल उनके दिल और रूह इस ख्याल के ही खिलाफ बगावत करते थे।[7] विश्व इतिहास के फलक पर अगर नजर डाले तो जर्मनी का विभाजन, कोरिया का विभाजन, वियतनाम का विभाजन, सोवियत संघ का विभाजन इत्यादि हुआ परन्तु भारत विभाजन जैसी त्रासदी कहीं और देखने को नहीं मिलती इतने बृहद स्तर पर साम्प्रदायिक दंगे फैले कि इस तरह की वैमानस्यता कभी भी नजर नहीं आयी थी। पाकिस्तान से 60 लाख शरणार्थी आये थे उनका पुनर्वास करना था नौकरशाही तथा सैनिक सामग्री एवं सैनिक का बँटवारा करना, नकदशेष का विभाजन करना, हद तो तब हो गयी जब सिन्धु एवं अन्य नदियों के पानी का बंटवारा करना पड़ा। स्वतन्त्रता के उपरान्त 565 देशी राजवाडों का भविष्य क्या होगा यह अत्यन्त दुष्कर प्रश्न था।

इस महात्रासदी को साहित्य एवं सिनेमा में भी प्रस्तुत किया गया, इस महात्रासदी की व्यापकता एवं विकरालता का ही परिणाम था कि इस पर अनेकानेक उपन्यास, कहानी, संस्करण एवं फिल्मों का निर्माण हुआ जो इस दुःख भरी निशा का चित्रण करने का प्रयास करती है। कितने पाकिस्तान, आधा गाँव, ट्रेन टू पाकिस्तान, तमस, पिंजर, झूठा–सच इत्यादि उपन्यास विभाजन की विभीषिका का जीवन्त वर्णन करते हैं। टोबाटेक सिंह, बदला, सिक्का बदल गया, अमृतसर आ गया, ठण्डा गोश्त, मेरा वतन इत्यादि कहानी भी विभाजन से सम्बन्धित है।

बँटवारे के दर्द भरे इतिहास को जनसामान्य तक पहुँचाने का सबसे प्रभावी जरिया सिनेमा एवं टेलीविजन रहा है।[8] हिन्दी सिनेमा अपने शैशवकाल से ही राजनैतिक एवं सामाजिक सरोकारों का अपना केन्द्रीय विषय बनाया। 1897 ई. में जब भारत में डॉक्यूमेंट्री जैसी छोटी फिल्में बनने लगी तो उसमें दिल्ली दरबार (1902), ग्रेट बंगाल पार्टीशन मूवमेन्ट (1905) जैसी ज्वलन्त ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बन्धित फिल्में बनी इसी क्रम में प्रभात, बॉम्बे टाकीज एवं न्यू थियेटर्स का प्रवेश जब हिन्दी सिनेमा के हुआ तो प्रगतिशील एवं व्यापक अर्थों में राष्ट्रीय सिनेमा का प्रारम्भ हुआ। हालाँकि 1918 में सिनेमा पर सेंसरशिप का आदेश लागू कर राष्ट्रीय जागरण वाली फिल्मों के निर्माण में रूकावट डालने का कार्य किया गया। स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान धरती माता, दुनिया न माने, मजदूर, सिकन्दर, पुकार, धरती के लाल जैसी ऐतिहासिक यथार्थवादी फिल्मों का निर्माण हुआ। स्वतन्त्रता के बाद बँटवारे के दर्द को व्यक्त करने वाली हिन्दी फिल्म की अपेक्षा बंग्ला भाषा में विभाजन के भुक्तभोगी ऋत्विक घटक ने मेघे ढके तारे, कोमल गंधार एवं सुवर्ण रेखा फिल्म का निर्माण किया इसके लिए ऋत्विक घटक बिखवरा बेचैनी विस्थापन तथा मिलन के क्षणों का अत्यन्त कोमल बिम्बों की सहायता से निरूपण करते है।[9]

हिन्दी फिल्मों के कद्दावर अभिनेता पेशावर से बम्बई आये इसी तरह चेतन आनन्द एवं उनके भाई गुरुदासपुर से बम्बई, बी.आर. चोपड़ा लाहौर से बम्बई, सुनील दत्त, शेखर कपूर, सागर सरहदी, बलराज साहनी, सुरैय्या, राजेन्द्र कुमार, आनन्द बक्शी, गुलाम हैदर, दिलीप कुमार इत्यादि अभिनेता, निर्देशक, गायक, संगीतकार लोग विभाजन के बाद पाकिस्तान से भारत आये और हिन्दी सिनेमा को बुलंदी पर ले गये। चूँकि भारतीय विभाजन एक महात्रासदी था इसलिए उन घटनाओं और पात्रों पर फिल्म बनाना चुनौतीपूर्ण था इस तरह की फिल्मों के ऐतिहासिक घटनाओं की क्रमबद्धता हो साथ ही फिल्म देखते समय दर्शक को तथ्यों की भी जानकारी होती रहे है विभाजन को लेकर हिन्दी फिल्म निर्माताओं ने शुरू से ही फिल्में बनाने का प्रयास किया विभाजन की विभीषिका को लेकर अनेक फिल्मों का निर्माण हुआ जो निम्नवत् है :–

1. लाहौर	एम.एल. आनन्द
2. नास्तिक	आई.एस. जौहर
3. धर्मपुत्र	यश चोपड़ा
4. छलिया	मन्नू देसाई
5. वक्त	यश चोपड़ा
6. गर्म हवा	एम.एस. सत्थ्यू
7. तमस	गोविन्द निहलानी
8. मम्मो	श्याम बेनेगल
9. ट्रेन टू पाकिस्तान	पामेला रूक्स
10. द अर्थ 1947	मीरा नायर
11. हे राम	कमल हसन
12. गदर एक प्रेमकथा	अनिल शर्मा
13. पिंजर	चन्द्र प्रकाश द्विवेदी
14. खामोश पानी	सबीहा सुमार

'लाहौर' फिल्म 1949 में निर्मित हुई, जो भारत विभाजन को रेखांकित करती हुई महत्वपूर्ण फिल्म थी। इस फिल्म के चमन और लीलो, पड़ोसी होने के साथ–साथ कालेज के साथी एवं प्रेमी है किन्तु उनकी प्रेम कहानी उनके पविार द्वारा स्वीकृत की जानी है। इस फिल्म में देश के बंटवारे से लाहौर में उत्पन्न हुए दंगे एवं उसके शरणार्थी शिविरों में शरणार्थियों के बसने का जीवन्त उदाहरण है। स्वतन्त्रता के बाद विभाजन को समझाने वाली लाहौर निःसंदेह पहली फिल्म थी।

'नास्तिक' 1954 में निर्मित आई.एस. जौहर द्वारा विभाजन की पृष्ठभूमि पर निर्मित महत्वपूर्ण फिल्म है। इस फिल्म में विभाजन के बाद हुए दंगे एवं हिंसा तथा शरणार्थियों के वास्तविक फुटेज का उपयोग किया गया है। कहानी एक ऐसे व्यक्ति के बारे में है जो अपने माता–पिता के दंगों के मारे जाने पर भगवान में अपना विश्वास खो देता है और उसके भाई और बहन शरणार्थी के रूप में मर जाते है जब पुजारी उनकी मदद करने से इंकार कर देता है तो वह अपने भाई–बहनों की मौत का बदला लेने के लिए निकलता है। इसी फिल्म में कवि प्रदीप द्वारा लिखित एवं सी. रामचन्द्र द्वारा संगीतबद्ध गीत अत्यन्त प्रसिद्ध हुआ।

देख तेरे संसार की हालत क्या हो गयी भगवान,
कितना बदल गया इंसान... कितना बदल गया इंसान।
सूरज ना बदला चाँद न बदला ना बदला रे आसमान
कितना बदल गया इंसान... कितना बदल गया इंसान।[10]

'धर्मपुत्र' फिल्म आचार्य चतुरसेन के धर्मपुत्र उपन्यास पर आधारित फिल्म है। इस फिल्म का निर्माण बी.आर. चोपड़ा ने किया था जो स्वयं विभाजन से पीड़ित थे और लाहौर से बम्बई का सफर तय किया था। इस फिल्म में धार्मिक कट्टरता एवं साम्प्रदायिकता के मुद्दों को उठाया गया है। यह फिल्म रुपकों को पीछे ढकेलते हुए 1925 से शुरू होकर स्वतन्त्रता प्राप्ति तक के वर्षों में हिन्दू–मुस्लिम सम्बन्धों पर एक ईमानदार और यथार्थवादी नजर

डाली है। फिल्म की कहानी 1925 में शुरू होती है, यह कहानी दिल्ली के दो परिवारों नवाब बदरुद्दीन और गुलशन राय की है। इसी फिल्म में देशभक्ति बीत से ओतप्रोत साहिर लुधियानवी एवं एन. दत्ता के संगीत से सजाया गीत भारतीय जनमानस में बैठ गया।

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा।[11]

भारतीय इतिहास के इस कालखण्ड में नवउदित राष्ट्र के नये आदर्श, आशा, आकांक्षा, स्वप्न को साकार करने का काल था। पहली बार व्यापक स्तर पर आम चुनावों में सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार का प्रयोग–इस उद्वेलनकारी घटना प्रवाह ने आम जनमानस पर आच्छादनकारी प्रभाव छोड़ा। स्वतन्त्रता के बाद भारत के सामाजिक जीवन के विविध पक्षों के संयुक्त प्रभाव में ही भारत के हिन्दी सिनेमा की विविध प्रवृत्तियों ने आकार ग्रहण किया था। चूँकि राजनीति और कला का रिश्ता गणितीय नहीं हुआ करता, इसलिए इस काल की सिनेमा में वर्तमान के साथ–साथ भविष्य की चुनौतियों एवं समस्याओं का एहसास भी है। इसी क्रम में 'छलिया' फिल्म 1960 में मनमोहन देसाई द्वारा निर्मित विभाजन की विभीषिका की पृष्ठभूमि पर है। राजकपूर, नूतन, प्राण, रहमान के अभिनय से सजी यह फिल्म लाहौर से दिल्ली आने की कहानी है। छलिया मनमोहन देसाई की पहली फिल्म थी। इस फिल्म की कहानी फ्योडोर दोस्तोयेत्स्की की 1848 की लघु कहानी 'व्हाइट नाइट्स' पर आधारित है जो विभाजन के बाद अलग–थलग पड़े पत्नियों और बच्चों के मुद्दे पर केन्द्रित है।[12]

'वक्त' फिल्म का निर्माण 1965 में हुआ इसके निर्माता बी.आर. चोपड़ा थे इसकी कहानी अख्तर मिर्जा एवं अख्तर–उल–ईमान ने लिखी, इस फिल्म में सुनील दत्त, राजकुमार, शशि कपूर, शर्मिला टैगोर, बलराज साहनी के अभिनय से यह फिल्म सजी थी। यह फिल्म 'रूपक' के माध्यम से विभाजन को रेखांकित करती है।

विभाजन की विभीषिका को अनुरेखित करती हुई महत्वपूर्ण फिल्म थी 'गर्म हवा'। इस फिल्म का निर्देशन एम. एस. सथ्यू ने 1973 ई. में किया इस फिल्म के नायक बलराज साहनी थे। यह फिल्म कैफी आजमी एवं शमा जैदी द्वारा लिखित, जो प्रसिद्ध उर्दू लेखिका इस्मत चुगताई की एक अप्रकाशित लघु कहानी पर आधारित थी। एम.एस. सथ्यू कर्नाटक के प्रसिद्ध रंगकर्मी थे, जो फिल्म की बारीकियों की गहन जानकारी रखते थे इसलिए उन्होंने इस तरह महत्वपूर्ण मुद्दा फिल्म के माध्यम से समाज के सामने रखा। इस फिल्म में विभाजन के बाद भारतीय मुसलमानों में व्याप्त बेइत्मिनानी और हताशा भाव को प्रदर्शित करने वाले कई दृश्य हैं।[13] एम.एस. सथ्यू इप्टा से जुड़े थे। जिन्होंने गर्म हवा में विभाजन की त्रासदी को रूमानी तरीके से प्रस्तुत करते हुए कड़वी सच्चाईयों से पर्दा उठाया। इस फिल्म के संवाद कैफी आजमी एवं शमा जैदी ने लिखे थे। विभाजन की तलवार से केवल भू–भाग का ही बंटवारा नहीं हुआ था बल्कि भारतीयों की आत्मा में भी एक गहरी दरार खिंच गयी थी यह ऐसा समय था जब हिन्दू एवं मुसलमान की अलग–अलग छवि बना ली गयी थी जो घृणा एवं नकार से भी भरी थी गर्म हवा फिल्म ने अत्यन्त कलात्मक ढंग से इस छवि को व्यक्त किया। इस फिल्म का मुख्य चरित्र आगरा के सलीम मिर्जा ऐसे ही राष्ट्रवादी मुसलमान हैं जो विभाजन के बाद पाकिस्तान न जाकर भारत में रहने का फैसला लेते है।[14] इस फिल्म की कहानी एक स्टेशन से प्रारम्भ होती है सलीम मिर्जा पाकिस्तान जा रही अपनी आपा को विदा करने के लिए प्लेटफार्म पर खड़े है रेलगाड़ी स्टेशन से छूट चुकी है। सलीम मिर्जा का हाथ घायल पंक्षी के डैने की तरह हवा में लहरा रहा है यह फिल्म का केन्द्रीय बिम्ब है जिसकी आवृत्ति फिल्म में कई बार होती है।

फिल्म के नायक सलीम (बलराज साहनी) परिवार सहित आगरा में रहते है उनका कारोबार ठीक ढंग से चल रहा है किन्तु अचानक हुए विभाजन ने सलीम की दुनिया उजाड़ दी। उसका होने वाला दामाद उसकी रोती–बिलखती बेटी को छोड़कर पाकिस्तान चला जाता है, बेटी इस सदमे से उबर नहीं पाती और खुदकुशी कर लेती है। धीरे–धीरे सलीम के सगे सम्बन्धी सभी पाकिस्तान चले जाते है अन्ततः एक दिन सलीम को भी पलायन का दुखद फैसला लेना पड़ता है। वह स्टेशन के लिए निकले ही है कि एक जुलूस तांगे का रास्ता रोक लेता है। जुलूस में मेहनतकशों की एकता के लिए नारे लगाये जा रहे है। यह घटना सलीम के लिए निर्णायक बन जाती है। वह फैसला करते है कि पाकिस्तान न जायेंगे और भारत में रहकर ही अपने अधिकारों के लिए लड़ेंगे। यह फिल्म भारत विभाजन की त्रासदी पर रची गयी मानवीय संवेदनाओं से ओत–प्रोत फिल्म थी जिसमें विभाजन से उपजी समस्याओं का सटीक विवेचन प्रस्तुत किया गया था।[15]

इस फिल्म का उद्देश्य भारत विभाजन के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक कारणों के साथ ही साथ मानवीय परिणामों को दिखाना था। फिल्म निर्देशक एम.एस. सथ्यू के शब्दों मे ''गर्म हवा में मैं वास्तव में यह उजागर करना

चाहता था कि ये राजनेता क्या खेल खेलते है भारत में हममें से कितने लोग वास्तव में विभाजन चाहते थे।'' ज्ञातव्य हो कि सेंसर बोर्ड ने गर्म हवा के प्रदर्शन पर रोक लगायी थी लेकिन श्रीमती इन्दिरा गांधी के वैयक्तिक हस्तक्षेप के फलस्वरूप उस पर से प्रतिबन्ध हटा दिये गये। सथ्यू की पहली फिल्म को न केवल देश–विदेश में सराहा बल्कि संवेदनशील प्रस्तुति के लिए पुरस्कृत किया गया।

बंटवारे की पृष्ठभूमि पर एक महत्वपूर्ण फिल्म 'तमस' बनी यह फिल्म गोविन्द निहलानी द्वारा लिखित एवं निर्देशित है। यह फिल्म भीष्म साहनी के उपन्यास तमस पर आधारित है। यह फिल्म विभाजन के परिणामस्वरूप भारत में प्रवासी सिख एवं हिन्दू परिवारों की दुर्दशा से सम्बन्धित है। इस फिल्म में ओमपुरी, दीपा साही, भीष्म साहनी एवं सुरेखा सीकरी ने अभिनय किया है। इस फिल्म की कहानी 1947 के विभाजन के आस–पास प्रारम्भ होती है। नत्थू नामक एक निचली जाति के व्यक्ति को एक ठेकेदार सुअर मारने के लिए छोटी सी रकम देता है। अगली सुबह नत्थू को पता चलता है कि उसके द्वारा मारा गया सुअर किसी मस्जिद के अन्दर फेंक दिया जाता है जिससे शहर में दंगा प्रारम्भ हो जाता है जिससे नत्थू बहुत परेशान हो जाता है और वह शहर छोड़ने का निर्णय लेता है। घर छोड़ने से पहले ही पता चलता है कि समस्त पंजाब दंगा के चपेट में आ जाता है। नत्थू शहर छोड़कर पलायन करता है जहाँ रास्ते में उसकी माँ का देहान्त हो जाता है उसकी पत्नी को मजबूरन शरणार्थी शिविर में रहना पड़ता है। जहाँ वह एक बालक को जन्म देती है। एक भावात्मक क्षण में वह घोषणा करती है कि उसका बेटा एक दिन खुद अपनी लड़ाई लड़ेगा।[16] विभाजन के बाद हुई हिंसा का इस फिल्म में जीवंतता के साथ प्रदर्शित करने का प्रयास किया एवं शरणार्थी शिविर में रहने के दौरान होने वाली समस्याओं को भी अनुरेखित किया गया। आपातकाल के बाद देश की राजनैतिक परिस्थिति में काफी बदलाव हुआ जिसका प्रभाव हिन्दी सिनेमा पर भी पड़ा।

आपातकाल के बाद जनता पार्टी की मिली–जुली सरकार बनी जिसका परिणाम हुआ कि सेंसर बोर्ड ने फिल्म निर्माण पर कुछ नरमी बरती और इस दौर में विभाजन को लेकर कई फिल्मों का निर्माण हुआ। 1980 में श्रीमती इन्दिरा गांधी की सत्ता वापसी होती है और पंजाब की आतंकवादी समस्याओं से रू–ब–रू होना पड़ता है। भारतीय सेना की कार्यवाही से सिख समुदाय में असन्तोष बहुत बढ़ा जिसका परिणाम 31 अक्टूबर, 1984 को इन्दिरा गांधी की हत्या में निकला।[17] स्वाभाविक था कि फिल्मकार देश की इस हालत से चिंतित थे इसी से प्रभावित होकर उन्होंने हिन्दू–मुस्लिम को आधार बनाकर राष्ट्रीय एकता और साम्प्रदायिक सद्भाव बढ़ाने वाली फिल्मों का निर्माण किया।

भीष्म साहनी के उपन्यास तमस का निर्माण मूलतः टेलीविजन के लिए किया गया प्रदर्शन के पहले ही हिन्दू एवं मुस्लिम अतिवादियों ने इसका विरोध किया परन्तु विरोध प्रदर्शन के बावजूद गोविन्दनिहलानी की यह सवोत्कृष्ट कृति मानी जाती है यह फिल्म विभाजन के तिथि, तथ्य के साथ–साथ मानवीय संवेदना का भी निरूपण किया गया कैसे प्रारूप बनाकर सुनियोजित दंगा कराया जा सकता है इस फिल्म में बखूबी दिखाया गया। धर्म के आधार पर देश विभाजन की विडम्बना को 'मम्मो' में दिखाया गया है। श्याम बेनेगल की इस फिल्म की पटकथा खालिद मोहम्मद ने लिखी है। इस फिल्म में मम्मो एक ऐसी स्त्री महमूदा की कहानी है, जिसे देश के विभाजन के समय अपने पति के साथ पाकिस्तान के शहर लाहौर में बसना पड़ता है। कुछ समय बाद महमूदा अपने पति की मृत्यु के उपरान्त अस्थायी बीजा लेकर अपनी बहन के पास बम्बई चली आती है और यही रह जाना चाहती है परन्तु कानून उसकी इजाज़त नहीं देता। वह हर मुमकिन कोशिश करती है कि उसे पाकिस्तान न जाना पड़े वहाँ पाकिस्तान में उसका कोई सगा–सम्बन्धी नहीं है। किन्तु कानून का सहारा लेकर पुलिस उसे जबरदस्ती पाकिस्तान भेज देती है। फिल्म मम्मो की विडम्बना को बहुत गहरी तल्खी और संवेदना के साथ पेश करती है। एक औरत जो हिन्दुस्तान में पैदा हुई, जिसके बचपन और यौवन की यादे इस माटी से जुड़ी है जिसके करीबी रिश्तेदार यहाँ रहते है। सिर्फ इसलिए यहाँ नहीं रह सकती, क्योंकि वह विभाजन के समय पाकिस्तान चली गयी थी।[18] वह स्त्री पाकिस्तान इसलिए नहीं गयी थी कि वह पाकिस्तान समर्थक थी या उस देश में रहना चाहती थी बल्कि उसका होने वाला शौहर पाकिस्तान जाना चाहता था जब उसके शौहर जिन्दा ही नहीं रहे तो अब वह किसके साथ रहेगी क्या मम्मो की वेदना को लोग समझ सकते थे जिन्होंने हिन्दुस्तान एवं पाकिस्तान के बीच मजहब की दीवारें खींच रखी है। जमीन के टुकड़े को लेकर युद्ध करने वाले और लाखो–लाख लोगों के जीवन को खतरे में डालने वाले यह भूल जाते है कि देश और प्रान्त की दीवारें तो मनुष्य ने ही पैदा की है। धर्म और राष्ट्र के नाम पर जमीनों का बंटवारा करने वाले यह भी भूल जाते है कि मम्मो जैसी साधारण स्त्री के लिए इन

शब्दों का कोई अर्थ नहीं है।[19] इस फिल्म का महत्व इसलिए भी अधिक है कि यह उन लोकप्रिय फिल्मों के विरूद्ध भी खड़ी है जो राष्ट्रवाद और देश भक्ति के नाम पर हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बीच नफरत और विद्वेष को हवा देती है।

विभाजन की विभीषिका को निरूपित करने वाली अगली फिल्म 'ट्रेन टू पाकिस्तान' है। यह फिल्म खुशवन्त सिंह के उपन्यास ट्रेन टू पाकिस्तान पर आधारित है। इसका निर्देशन पामेला रुक्स ने किया था फिल्म में निर्मल पाण्डे, रजिर कपूर, मोहन अगाशे एवं दिव्या दत्ता ने अभिनय किया है। फिल्म में स्मृति मिश्रा ने मुस्लिम लड़की का किरदार निभाया है प्रतिदिन लाशों से पटी गाड़ियाँ गाँव से होकर गुजरती है लेकिन किसी को परवाह नहीं। स्थानीय मजिस्ट्रेट भोग–विलास में लिप्त है। एक दिन एक कम्युनिष्ट कार्यकर्ता गाँव पहुँचता है और लोगों को एकजुट करने का प्रयास करता है पंजाब में सिख डाकू और मुस्लिम महिला प्रेम कहानी मानो ठण्डा मरहम सा लागती हो बंटवारे की राजनीति से बेखबर यह युगल प्रेमी घुटन एवं सत्रास के माहौल में जिन्दा रहने की कोशिश करती है।

90 के दशक में बंटवारे को सम्बोधित करने वाली महत्वपूर्ण फिल्म मीरा नायर के निर्देशन में 'द अर्थ 1947' बनी। यह फिल्म एक पारसी परिवार की कहानी है जो हिन्दुओं, सिखों और मुसलमानों के बीच बढ़ते तनाव के प्रति तटस्थ रहने की आशा करती है। वह अपने माता–पिता बंटी एवं रुस्तम से लाड–प्यार पाती है और उनकी रक्षा करती है जिसका नाम शांता है उन सभी में आत्मीयता तथा सहयोग की भावना है। परन्तु विभाजन के साथ दोस्तों का यह एक बार एकीकृत समूह विभाजित हो जाता है। इसी फिल्म में ईश्वर, अल्लाह गीत पूरी फिल्म की रूपरेखा प्रस्तुत कर देता है।

ईश्वर, अल्लाह तेरे जहाँ में नफरत क्यों है,
जंग है क्यों तेरा दिल तो इतना बड़ा है
इसां का दिल तंग है क्यों।[20]

द अर्थ : 1947 में उन गरीब और मेहनतकश हिन्दुओं और मुसलमानों की व्यथा कही गयी है जो लड़ते झगड़ते हुए भी साथ–साथ जीना और मरना चाहते है। लेकिन विभाजन के कारण जिन्हें अपने वतन से भागना पड़ा। अपने परिवारवालों और सगे सम्बन्धियों से बिछुड़ना पड़ा, उनके त्रासद अन्त का सामना करना पड़ा यदि ऐसे उन्मादी समय में उनमें से कुछ उसके शिकार भी हुए तो समझ में आने वाली बात थी लेकिन वे लोगों की लाशों पर धर्म और राजनीति के सौदे नहीं कर रहे थे। वे कमजोर दुःखी, आत्मग्लानि से भरपूर थे। जिनसे उनकी जमीन छीन ली गयी थी और जिन्हें बेघर कर दिया गया था।

21वीं सदी के पूर्वार्द्ध में विभाजन को लेकर फिल्मों की अधिकता तो मिली लेकिन उसमें तथ्यों को लेकर नरमी बरती गयी इसी बीच 2001 में बॉक्स ऑफिस पर सबसे अच्छा कारोबार करने वाली गदर : एक प्रेम कथा का प्रदर्शन हुआ। यह फिल्म पूरी तरह से व्यावसायिक दृष्टिकोण को ध्यान रखकर निर्मित की गयी थी। इस फिल्म में बंटवारे के कारण लाखों लोगों के उजड़ने और दंगे–फसाद में मारे जाने की कथा है। विभाजन का सबसे मार्मिक दृश्य है कि इस महात्रासदी की सबसे ज्यादा शिकार औरतें हुई जो अपने घर–परिवार वालों से अलग हो गयी थी। इस फिल्म में विभाजन की त्रासदी को एक हद तक प्रेम कहानी को नया संदर्भ देने के लिए इस्तेमाल किया गया है। अत्यन्त खून खराबा के बाद यह फिल्म इंसानियत का संदेश देती है तथा इसका सबसे आदर्श 'अहिंसा परमो धर्मः' है। इस फिल्म में अन्त में खान अब्दुल गफ्फार खान की याद दिलाता है जो अन्त तक भारत विभाजन के सख्त विरोधी थे।

विभाजन की त्रासदी को लेकर भारत के इतर पाकिस्तान में भी काफी फिल्मों का निर्माण हुआ अभी हाल ही में पाकिस्तानी फिल्मकार सबीहा सुमर के निर्देशन में बनी फिल्म खामोश पानी है यह फिल्म भारतीय तथा पाकिस्तानी अभिनेता एवं अभिनेत्री के साझा प्रयास की यह पहली मिसाल हैं इसी क्रम में विभाजन को केन्द्रीय विषय बनाकर नवीनतम फिल्म 'पिंजर' बनी यह फिल्म अमृता प्रीतम के उपन्यास पर आधारित है। इस फिल्म की नायिका उर्मिला मातोंडकर है। इसका निर्देशन चन्द्र प्रकाश द्विवेदी द्वारा किया गया इस फिल्म को राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार से सम्मानित किया गया यह फिल्म विभाजन के गम्भीर विषय को लेकर निर्मित हुई। बेशक बंटवारे की भोगी पीढ़ी आज लुप्त होती जा रही है फिर भी अतीत के कटु अनुभवों से मुँह चुराना असम्भव है हालाँकि विभाजन को साहित्य, सिनेमा एवं अन्य माध्यम से दिखाने का प्रयास किया किन्तु इस महात्रासदी निष्पक्ष निरूपण करना

कठिन है। विभजन आज भी जिन्दा है, भारतीय जनमानस के हृदय में, आम लोगों की स्मृति में जिसकी टीस सीमावर्ती क्षेत्रों में लगातार ताजा होती रहती है। बंटवारा जिन्दा है नफरत जिन्दा है क्योंकि सरहदे जिन्दा है, अविश्वास जिन्दा है। बंटवारे के अराजकता भरे दौर में क्या–क्या हुआ इस विषय पर जानकारी आज भी अधूरी है। वह तभी पूरी हो सकेगी जब इस त्रासदी से सम्बन्धित अधिकांश साहित्य का संकलन पर अधिक सार्थक फिल्म बनाने का भी मार्ग प्रशस्त हो सकेगा।

21वीं सदी के पूर्वार्द्ध में विभाजन विषयक फिल्मों में उछाल आया है जो स्वागत योग्य है, परन्तु फिल्म निर्माता एवं निर्देशक फिल्म का निर्माण तथ्य एवं साक्ष्य के आधार पर करे तो जनमानस को यथास्थिति से परिचित होने का मौका प्राप्त हो सके। इस समय की फिल्मों में सबसे सकारात्मक प्रवृत्ति है कि महिलाओं एवं बच्चों को केन्द्रीय भूमिका में रखकर फिल्मों का निर्माण हो रहा है। चूँकि विभाजन की विभीषिका से प्रभावित सबसे ज्यादा महिलाओं व बच्चे ही हुए थे। ऐसी फिल्में समकालीन राजनैतिक नियमों के साथ न्याय कर सकेगी। उर्वरी भूटालिया का मानना है कि ''इतिहासकारों ने विभाजन के दौरान महिलाओं के अनुभवों पर बहुत कम ध्यान दिया है जबकि इस तरह की उथल–पुथल के दौरान महिलाओं को सबसे ज्यादा नुकसान उठाना पड़ा।[21] आधुनिक समय में इतिहास का फलक बहुत व्यापक हो गया है जिसमें तथ्य तिथि के साथ मनोभाव, संवेदना, प्रेम इत्यादि को शामिल किया गया।' सिनेमा भी इतिहास को समझने के क्रम में एक सशक्त माध्यम बनकर उभरा है। जिसके माध्यम से आम लोगों की भी पहुँच इतिहास के गूढ़ रहस्यों तक हो रही है जरूरत इस बात की है कि फिल्मकार मनोरंजन, व्यवसाय एवं सत्य के साथ सामांजस्य बनाकर प्रस्तुत करें।

सन्दर्भ–ग्रन्थ

1. सरकार, सुमित, आधुनिक भारत (1885–1947), राजकमल प्रकाशन, इलाहाबाद, 2016, पृ. 475
2. मासले, लेनार्ड, लास्ट डेज ऑफ ब्रिटिश राज, वीडेन फील्ड और निकोलसन, 1967, पृ. 244–46
3. लोहिया, डॉ. राममनोहर, भारत विभाजन के गुनहगार : लोकभारती, इलाहाबाद, 2009, पृ. 74
4. सेन, डॉ. धीरेन्द्रनाथ, रिवोल्यूशन बाइ कन्सेन्ट, विद्योदय लाइब्रेरी, कलकत्ता, पृ. 317
5. सिंह, अयोध्या, भारत का मुक्ति संग्राम, ग्रन्थ शिल्पी, दिल्ली, 2012, पृ. 656
6. बंद्योपाध्याय, शेखर : प्लासी से विभाजन तक और उसके बाद, ओरियण्ट ब्लैकस्वॉन, 2017, पृ. 454
7. आजाद, अब्दुल कलाम : इण्डिया विन्स फ्रीडम, ओरियण्ट ब्लैकस्वॉन, 1988, पृ. 213
8. जोशी, ललित : कथा चित्र, जनवरी–मार्च 2003, पृ. 136
9. वही
10. देखें, फिल्म : नास्तिक, 1954 निर्देशक आई.एस. जौहर
11. देखें, फिल्म : धर्मपुत्र, 1961, निर्देशक यश चोपड़ा
12. टाइम्स ऑफ इण्डिया, 16 दिसम्बर, 2007
13. जोशी, ललित, कथा चित्र पत्रिका, पृ. 137
14. अग्रवाल, प्रहलाद (सं.), हिन्दी सिनेमा बीसवीं से इक्कीसवीं सदी तक, साहित्य भण्डार, इलाहाबाद, 2013, पृ. 343
15. भार्गव, अनिल, हिन्दी सिनेमा सदी का सफर, सिने साहित्य प्रकाशन, जयपुर, 2013, पृ. 262
16. जोशी, ललित, कथा चित्र पत्रिका, पृ. 138
17. पारख, जवरीमल्ल, साझा संस्कृति, साम्प्रदायिक आतंकवाद और हिन्दी सिनेमा, वाणी प्रकाशन, 2012, पृ. 76
18. वही, पृ. 111
19. वही, पृ. 111
20. देखें, फिल्म : द अर्थ, 1947, निर्देशक : मीरानायर
21. भूटालिया, उर्वशी, वाइसेंस ऑफ वीमेन, इण्डियन रिव्यू ऑफ बुक्स, 1996, पृ. 4–5

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 141-143

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

प्राचीन भारत के संदर्भ में राष्ट्र की अवधारणा

डॉ. अनामिका मौर्य *

भारत एक प्रकृति प्रदत्त राष्ट्र है जिसका भाव अतीत से वर्तमान तक प्रवाहमान है। राष्ट्र भारतीय राजनीतिक चिन्तन परम्परा का आधार रहा है। भारत में अनेक सामाजिक, आर्थिक धार्मिक एवं राजनीतिक विविधताएँ होने के बावजूद भी एकता के बंधन में सदैव बंधा रहा है। इस एकता का मुख्य आधार हमारी भारतीय संस्कृति है। अनेक विदेशी आक्रान्ताओं के शासन करने के बावजूद भी भारत एक सांस्कृतिक बन्धन में बंधा रहा और विदेशी संस्कृति को भी अपने में समाहित कर लिया। रीति–रिवाज, परम्परायें, त्योहार, इतिहास, महाकाव्य, वेद, पुराण आदि के माध्यम से राष्ट्रत्व की अभिव्यक्ति होती है। जिस राष्ट्र का दर्शन हमारे वैदिक साहित्य में किया गया उस राष्ट्र की मान्यता पाष्चात्य चिन्तन में दूर–दूर तक नहीं है।

मैक्समूलर के अनुसार भारत एक दार्शनिक राष्ट्र था तथा आन्तरिक आत्मिक जीवन ने उसके बाह्य क्रियात्मक पक्ष को इतना अभिभूत कर लिया था कि राष्ट्र निर्माण के उसके समस्त गुण समाप्त हो गये थे।[1]

पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार भारत कभी भी एक राष्ट्र नहीं रहा, बल्कि विभिन्न जातियों का निवास स्थान रहा है।[2]

जहाँ अनेक जातियों, धर्मों, नस्लों और संस्कृति को मानने वाले लोग रहते थे। पाश्चात्य इतिहासकार का मानना है कि भारत राजनीतिक और प्रशासनिक दृष्टि से कभी एक नहीं रहा तो फिर एक राष्ट्र कैसे हो सकता है? इनके अनुसार राष्ट्र की अवधारणा ही पश्चिम की देन है। ब्रिटिश इतिहासकार जेम्स मिल ने लिखा है कि भारत एक राष्ट्र नहीं बल्कि एक महाद्वीप है।[3] पाश्चात्य विद्वान ही नहीं बल्कि भारतीय इतिहासकार रोमिला थापर का भी मानना है कि भारत के राष्ट्र के रूप में संगठित होने और राष्ट्रीयता के उदय और विकास में केवल ब्रिटिश शासन का योगदान रहा है। ब्रिटिश साम्राज्य के अभाव में भारतीय कभी भी भारत को राष्ट्र का गौरव नहीं दिलवा सकते थे, किन्तु यह एक भ्रान्त धारणा है।

भारत के सन्दर्भ में राष्ट्र शब्द अत्यन्त पुरातन है। सभ्यताओं के ऊषा काल में जब आज के तथाकथित विकसित राष्ट्रों में सभ्यता की किरणें भी प्रस्फुटित नहीं हुई थी तब भारत में वैदिक ऋषियों ने राष्ट्रभाव का दर्शन किया था। जिस राष्ट्र का दर्शन हमारे वैदिक मंत्रों के ऋषियों ने किया उस राष्ट्र की मान्यता से पाश्चात्य चिन्तन कोसो दूर है।

'राष्ट्र' शब्द का प्रथम प्रयोग वेद में हुआ है। ऋग्वेद संहिता में 'राष्ट्रं क्षत्रियस्य', 'राजा राष्ट्रानाम', 'राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य' आदि से ज्ञात होता है कि क्षत्रिय के द्वारा शासित भू–भाग को राष्ट्र कहते हैं। ऋग्वेद में ही विश्वामित्र कहते हैं, हे मनष्य! हम इन्द्र की स्तुति करें जो अंतरिक्ष तथा पृथ्वी दोनों के द्वारा भारत में जन्म लेने वाली की रक्षा करता है।[4]

यजुर्वेद में कहा गया है – 'वयं राष्ट्रे जागश्याम पुरोहितः' अर्थात् हम सभी राष्ट्र–जन राष्ट्र की रक्षा के लिए जाग्रत और जीवंत रहे। यह ब्रिटिशों का राष्ट्र राज्य नही अपितु राज्य एक व्यवस्था है, जो राष्ट्र का संरक्षण और पोषण करती है।[5]

अथर्ववेद में तो राष्ट्र में समानाधिकार, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्र हित, राष्ट्र की रक्षा, राष्ट्र की संकल्पना, देशभक्ति, देशप्रेम और देश के लिये बलिदान होने की भावना का सर्वप्रथम सुदृढ़ प्रतिपादन हुआ।[6] इसमें ही कहा गया है– 'ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रम' अर्थात् राष्ट्र ऋत, सत्य और तप है।[7] सत्य के साथ ऋत यानी शाश्वत नियमों में बंधा

* *असिस्टेंट प्रोफेसर, शशि भूषण बालिका विद्यालय डिग्री कॉलेज, लालकुआँ, लखनऊ*

सत्य होना चाहिए। इसलिए राष्ट्र का पहला आधार सत्य व दूसरा ऋत माना गया है। राष्ट्र तप को कर्तव्य मानकर करने से राष्ट्र विकास के रास्ते पर बढ़ता है।

अथर्ववेद में कहा गया है कि विभिन्न राजनीतिक संगठनों में राष्ट्र सर्वोच्च था। राष्ट्र की प्राप्ति देवों की कृपा पर आधारित थी। राष्ट्र केवल देश या जनता का वाचक नहीं है और न ही केवल भूमि के एक भाग में रहने वाले मानव समाज का बोध कराता है।[8]' राजते दिप्यते प्रकाशते शोभते इति राष्ट्रम्' अर्थात् जो स्वयं देदीप्यमान होने वाला है वह राष्ट्र कहलाता है। 'राजते तत राष्ट्रम' व्युत्पत्ति के अनुसार वह भू–भाग जो सर्वतंत्र स्वतन्त्र हो, किसी से दबाया ना गया हो, राष्ट्र कहलाता है।[9]

अथर्व संहिता से विश, क्षत्र, राष्ट्र और राज्य शब्द उल्लिखित है। 'विश' का प्रयोग मुख्यतया जन[10], प्रजा[11] अथवा राष्ट्रवासियों के अर्थ में किया गया है। 'क्षेत्र' शब्द प्रभुत्व, शक्ति, नेतृत्व, आधिपत्य, शासन आदि का अभिप्राय प्रकट होता है। इस संहिता में 7 बार राज्य और 58 बार राष्ट्र शब्द का प्रयोग हुआ है। जिसमें वैदिक आर्यों की राष्ट्रपूरक दृष्टि और परिकल्पना विशद् है।

राष्ट्र के प्रति अपनेपन की भावना राष्ट्रीय भावना का अनिवार्य अंग है। अथर्ववेद के ऋषि ने मातृभूमि से कहा–मनुष्य तुम पर ही उत्पन्न हुये हैं, तुम पर ही चलते–फिरते हैं और तुम ही उन्हें धारण करती हो।[12] धारण और रक्षण करने के कारण उन्होंने भूमि को माता और स्वयं को उसका पुत्र बताया है। राष्ट्रभूमि माता है और राष्ट्रवासी उसके पुत्र है। इससे न केवल मातारूप राष्ट्र के प्रति दिव्य, अकृत्रिम और आत्यंतिक प्रेम सम्बन्ध में अभिव्यक्ति होती है, अपितु देश के सभी जनों में परस्पर बंधुत्व–भाव की स्थापना भी हो जाती है।

अथर्ववेदीय मंत्रों में राष्ट्र–द्रोहियों के विनाश की कामना की गई है और राष्ट्रपोषकों का अभिनन्दन किया गया है। वैदिक ऋषियों ने राष्ट्र की उन्नति, समृद्धि और समग्रता के लिए अनेक प्रार्थनायें की है। अथर्ववेदीय दृष्टि से संस्कृति से दूर हटना राष्ट्र–विनाश का कारण है और दुराचार से राष्ट्र के प्रत्येक अंग का कल्याण होता है। स्त्री–चारित्र्य की रक्षा से राष्ट्रोन्नति होती है।[13]

राष्ट्रीय भावना से अनुप्रेरित अथर्ववैदिक आर्यों ने मातृभूमि में उत्तम एवं आदर्श राष्ट्र की अभिलाषा की है। पृथ्वी, जन और संस्कृति मिलाकर राष्ट्र बनता है। यही क्रम राष्ट्र की उत्कृष्टता का द्योतक है। पृथ्वी की भौतिक सम्पत्ति और उसके निवासियों के विकास की अपेक्षा उच्च संस्कृति का विकास उत्कृष्ट राष्ट्र का लक्षण है। यही राष्ट्र का प्राणतत्व है इसलिए उत्तम एवं आदर्श राष्ट्र की कामना करते हुये ऋषि की प्रार्थना है कि हमारी मातृभूमि हमारे उत्तम एवं आदर्शराष्ट्र में तेज और बल का आधार करें।[14]

उत्तर वैदिक काल में भारत की प्रसिद्ध पवित्र नदियों, जलाशयों, कुओं, समुद्र व वर्षा के जल से राजा का अभिषेक होता था। इसमें 16 प्रकार के जल व द्रव मिश्रित रहते थे। राजा कहता था– 'मैं जन का भरण करने वाला हो सकूँ इसलिए राष्ट्र को देने वाले जलों, मुझे राष्ट्र प्रदान करो।' कहते हुये राजा का अभिषेक किया जाता था।[15]

इस अनुष्ठान का भी वैधानिक महत्व था। देश की अनेक नदियों एवं जलाशयों से जल ग्रहण करना। इस देश की सांस्कृतिक एकता का प्रतीक था। कुओं तथा वर्षा का जल लेने से भारत भूमि के प्रति भक्तिभाव की सूचना मिलती है। यही कारण है कि कालान्तर में विदेशी सत्ता का राज होने के बावजूद भी भारत का राष्ट्र स्वरूप जीवन्त बना रहा।

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में राज्य के सप्तांग सिद्धान्त में राष्ट्र का विभिन्न कथनों में उल्लेख किया है और कृषि, धान्य, उपहार, कर, वाणिज्य लाभ, तीर्थ लाभ आदि राष्ट्र के लिए आवश्यक बतायें है। कामन्दक के नीतिसार में राजा द्वारा राष्ट्र समृद्धि और रक्षा की कामना की गई है।[16]

हमारे ऋषि राष्ट्र के ऐसे कल्याण की कल्पना करते थे जिसमें मूल भारतीय जीवन दर्शन, परम्पराओं, धर्म, आस्था एवं नैतिकता के आधार पर राष्ट्र का विकास व कल्याण हो। राष्ट्र जीवन सफल समर्थ व समृद्धशाली हो किन्तु अपने शाश्वत जीवन मूल्यों को सुरक्षित रखते हुये।

भारत का राष्ट्रभाव निसर्ग का परिणाम है। जिस दिन भारत की भूमि पर निवास करने वाले मानव ने इस भूमि को अपनी माता के रूप में देखा, उसी दिन भारत का राष्ट्रभाव प्रस्फुटित हो गया। जिसका प्रमाण मानव इतिहास के सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेदों में वर्णित है– 'माता भूमिः पुत्रों अहं पृथिव्याः' अर्थात् भूमि मेरी माता है और मैं उस मातृभूमि का पुत्र हूँ। यही दृष्टि भारत राष्ट्र की भावभूमि का प्रथम बीज है। यही राष्ट्र की दैवीय चेतना जिसे शास्त्राकारों ने चित्ति कहा है। सृष्टि के साथ सहजात यह चेतना राष्ट्र की आत्मा है जो उसकी सभ्यता, संस्कृति, इतिहास, राष्ट्रीय पुरुषों के चरित्र ही नहीं अपितु प्रकृति, पर्यावरण, नदी, पर्वत सभी के साथ अपनत्व का भाव

विकसित करती है। वैदिक ऋषियों ने स्पष्ट कहा है कि 'भूमि उन्हीं के लिए धन–धान्य, सुख–समृद्धि एवं वैभव रूपी पेय प्रदान करती है जिन लोगों में इसके प्रति मातृ भाव होता है। जन और भूमि का यह परस्पर सम्बन्ध पुत्र और माँ के सामान होता है।[17] हमारी राष्ट्रीयता का आधार भारत माता है केवल भारत नहीं। माता शब्द को हटा दें तो भारत मात्र जमीन का एक टुकड़ा रह जायेगा।'[18]

भूमि के टुकड़े मात्र होने से कोई राष्ट्र नहीं बन जाता। मनुष्य के जीवन में जो महत्व अस्मिता का है वैसा ही राष्ट्रीय अस्मिता का भी है। राष्ट्रीय अस्मिता के रहने से राष्ट्र जीवित रहता है। राष्ट्रीय अस्मिता, चित्ति की द्योतक है। प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में चित्ति की पहचान राष्ट्र की आत्मा के रूप में की गई है। चित्ति शक्तिशाली होने पर राष्ट्र का सर्वांगणि विकास होता है। प्रत्येक राष्ट्र की चित्ति उसका जीवन लक्ष्य होता है। उसके क्षीण होने से राष्ट्र दुर्बल होता है तथा उसके लोप होने से सम्पूर्ण राष्ट्र का विनाश हो जाता है। विश्व पटल पर प्राचीन यूनान, मिस्त्र, बेबीलोन सब अतीत की स्मृति बन गये। जिसका कारण वहाँ की राष्ट्रीय अस्मिता अर्थात् मूल प्रकृति के नष्ट होने के कारण ही हुआ।[19]

ब्रिटिश शासकों ने भारतीयों के मन में कुंठा पैदा करने की कोशिश की कि भारत कभी एक राष्ट्र था ही नहीं और अंग्रेजों ने राष्ट्रीयता से इनका परिचय कराया। भारत में प्राचीनकाल से राजनीतिक एकता भले ही न रही किन्तु सांस्कृतिक धरातल पर भारत सदैव एक राष्ट्र रहा है। यूरोपीय विचारकों ने जहां राजनीतिक एकता को राष्ट्रीयता का समानार्थी माना और इस्लामी देशों ने धर्म को राष्ट्रीयता का आधार माना, वहीं भारतीय विचारकों ने प्राचीनकाल से ही भारत को सनातन संस्कृति को राष्ट्रीयता का केन्द्र बिन्दु माना।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राष्ट्र एक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मनोभाव से परिपूर्ण अवधारणा है। राष्ट्र एक जीवंत आत्मा के समान है, जिसमें व्यष्टि से समष्टि तक का विचार समाहित है।

सन्दर्भ–ग्रन्थ

1. मैक्स मूलर, हिस्ट्री ऑफ एन्शियन्ट संस्कृत लिटरेचर पृ. 30–31
2. तिवारी, डॉ. शशि, संस्कृत साहित्य में राष्ट्रवाद और भारतीय राज्यशास्त्र, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, 2013, पृ. 1
3. मिल, जेम्स, द हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इण्डिया, बाल्डविन, क्राडांक एण्ड जाय, लन्दन, 1817
4. ऋग्वेद, 3.53.12
5. शर्मा, बलदेव भाई, भारत : सांस्कृतिक चेतना का अधिष्ठान, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृ. 58–59
6. अथर्व संहिता, 12/1, 13/1, 12/1/15
7. उपाध्याय, विभा, राष्ट्र एवं राष्ट्रवाद की भारतीय अवधारणा समीक्षा, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली, 2018, पृ. 19
8. अथर्व संहिता, 13/1/35
9. तिवारी, डॉ. शशि, संस्कृत साहित्य में राष्ट्रवाद और भारतीय राज्यशास्त्र, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, 2013, पृ. 01
10. अथर्व संहिता, 14/2/27
11. अथर्व संहिता, 3/4/2
12. अथर्व संहिता, 12/1/15
13. अथर्व संहिता, 10/3/16, 12/1/58, 6/78/2, 13/1/1–5
14. आबिदी, नाहीद, वर्तमान सन्दर्भ में वैदिक मूल्य, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 2022, पृ. 223
15. शतपथ ब्राह्मण, 5/3/4/19
16. उपाध्याय, विभा, राष्ट्र एवं राष्ट्रवाद की भारतीय अवधारणा समीक्षा, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली, 2018, पृ. 22
17. प्रकाश, डॉ. चन्द्र, जर्नल ऑफ इण्डियन थॉट एण्ड पॉलिसी रिसर्च, ISSN-2230–7001, मार्च–सितम्बर, पृ. 1
18. शर्मा, डॉ महेश चन्द्र, दीन दयाल उपाध्याय, सम्पूर्ण वांग्मय खण्ड–15, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ.23
19. भिषीकर, चन्द्रशेखर परमानन्द, पंडित दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन, खण्ड–5, राष्ट्र की अवधारणा, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 75
20. बाली, सूर्यकान्त, भारत की राजनीतिक के महाप्रश्न, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–2012, पृ. 13–14

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Psychology : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 144-150

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

उच्च माध्यमिक छात्रों के बीच शैक्षणिक तनाव पर एक अध्ययन

*डॉ. अल्पना कुमारी**

सारांश : *तेज़ गति से काम करते समय, कठिन समस्याओं का सामना करते समय, या किसी के द्वारा चिल्लाने पर तनाव उत्पन्न हो सकता है। यह संघर्षों, निर्णय लेने, या क्षमताओं पर दबाव डालने के कारण हो सकता है, या यह समय पर कई सामाजिक माँगों के कारण भी हो सकता है। हमने देखा है कि भावनात्मक स्थितियाँ लंबे समय तक नहीं टिकतीं, चाहे वे डर जैसी अप्रिय भावनाएँ हों, या खुशी जैसी सुखद भावनाएँ। फिर भी, कभी–कभी ऐसी स्थितियाँ लंबे समय तक बनी रह सकती हैं, या वे अत्यधिक उच्च स्तर तक पहुँच सकती हैं। जब ऐसा होता है, तो परिणाम को सामान्यतः 'तनाव' के रूप में वर्गीकृत किया जाता है, और यह मनोवैज्ञानिक और शारीरिक दोनों रूपों में प्रकट होता है। तनाव और इसके लक्षण, जैसे चिंता, अवसाद, और बर्नआउट, विभिन्न पेशों और व्यवसायों में लोगों के बीच एक सामान्य समस्या रहे हैं। पिछले कुछ दशकों में, इस घटना से निपटने के लिए लोगों को सिखाने के उद्देश्य से पुस्तकों, शोध रिपोर्टों, लोकप्रिय लेखों और संगठित कार्यशालाओं की बढ़ती संख्या ने चिंता उत्पन्न की है। इस अध्ययन का उद्देश्य उच्चतर माध्यमिक छात्रों के बीच शैक्षणिक तनाव के स्तर का पता लगाना है। वर्तमान अध्ययन में बिहार राज्य के पटना जिला में स्थित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में पढ़ने वाले 250 ग्यारहवीं कक्षा के छात्रों को शामिल किया गया है। नमूना सरल यादृच्छिक नमूना तकनीक का उपयोग करके चुना गया था। वर्तमान अध्ययन से पता चलता है कि उच्चतर माध्यमिक छात्र मध्यम स्तर के शैक्षणिक तनाव का सामना कर रहे हैं और उच्चतर माध्यमिक छात्रों के उप–नमून के बावजूद सभी में मध्यम स्तर का शैक्षणिक तनाव है। पुरुष छात्रों का शैक्षणिक तनाव महिला छात्रों की तुलना में अधिक है। षहरी छात्रों का शैक्षणिक तनाव ग्रामीण छात्रों की तुलना में अधिक है। सरकारी स्कूल के छात्रों का शैक्षणिक तनाव निजी स्कूल के छात्रों की तुलना में कम है। विज्ञान विषय के छात्रों का शैक्षणिक तनाव कला विषय के छात्रों की तुलना में अधिक है। जिन छात्रों के माता–पिता शिक्षित हैं, उनका शैक्षणिक तनाव उनके समकक्ष की तुलना में अधिक है।*

परिचय : तनाव को एक नकारात्मक भावनात्मक, संज्ञानात्मक, व्यवहारिक और शारीरिक प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है, जो तब उत्पन्न होती है जब व्यक्ति तनाव उत्पन्न करने वाले कारकों के साथ समायोजन करने या उनका सामना करने का प्रयास करता है। तनाव उत्पन्न करने वाले कारक उन परिस्थितियों के रूप में परिभाषित किए जाते हैं जो व्यक्तियों की दैनिक कार्यप्रणाली को बाधित करते हैं या बाधित करने की धमकी देते हैं, जिससे लोगों को समायोजन करने की आवश्यकता होती है। औरेबैक और ग्राम्बलिंग (1998) तनाव को एक अप्रिय भावनात्मक और शारीरिक उत्तेजना की स्थिति के रूप में मानते हैं, जिसे व्यक्ति उन परिस्थितियों में अनुभव करते हैं जिन्हें वे अपने कल्याण के लिए खतरनाक या धमकीपूर्ण मानते हैं।

हालाँकि, तनाव को विभिन्न तरीकों से समझा जाता है और यह विभिन्न व्यक्तियों के लिए अलग–अलग अर्थ रख सकता है। इसे उन घटनाओं या परिस्थितियों के रूप में देखा जाता है जो व्यक्तियों को तनाव, दबाव या नकारात्मक भावनाओं जैसे कि चिंता और क्रोध का अनुभव कराती हैं। इसके अतिरिक्त, कुछ लोग तनाव को मौजूदा परिस्थितियों के प्रति प्रतिक्रिया के रूप में परिभाषित करते हैं, जिसमें शारीरिक परिवर्तन (जैसे हृदय की धड़कन में वृद्धि और मांसपेशियों में तनाव), भावनात्मक और व्यवहारिक परिवर्तन शामिल होते हैं तनाव को हमेशा एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के रूप में माना जाता है, जो किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत व्याख्या और किसी भी खतरे वाली घटना के प्रति प्रतिक्रिया को शामिल करता है।

* *सहायक प्राध्यापक, मनोविज्ञान विभाग, महारानी रामेश्वरी महिला महाविद्यालय, दरभंगा, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा*

यह ध्यान देने योग्य है कि तनाव का लोगों पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकार का प्रभाव हो सकता है। इसका अर्थ है कि तनाव खतरे के प्रति एक सामान्य, अनुकूल प्रतिक्रिया हो सकती है। इसका उद्देश्य व्यक्तियों को संकेत देना और उन्हें रक्षा कार्रवाई करने के लिए तैयार करना है। उदाहरण के लिए, उन चीजों का डर जो वास्तविक खतरों का प्रतिनिधित्व करती हैं, व्यक्तियों को उनसे निपटने या उन्हें टालने के लिए प्रेरित करता है। अधिकांश मनोवैज्ञानिक यह मानते हैं कि मध्यम तनाव व्यक्तियों को उपलब्धियों की ओर प्रेरित करता है और रचनात्मकता को बढ़ावा देता है, हालांकि तनाव कठिन कार्यों पर प्रदर्शन में बाधा डाल सकता है ।

Auerbach और Grambling (1998) का तर्क है कि यदि तनाव का प्रभावी ढंग से प्रबंधन नहीं किया जाता है, तो यह गंभीर समस्याओं का कारण बन सकता है। इसके अतिरिक्त, जब कोई व्यक्ति दीर्घकालिक तनाव का सामना करता है, तो उसे शारीरिक बीमारियों (जैसे हृदय रोग) और मानसिक बीमारियों (जैसे चिंता विकार) का अनुभव होने की संभावना होती है। स्वास्थ्य मनोविज्ञान का क्षेत्र आंशिक रूप से इस पर केंद्रित है कि तनाव शरीर की कार्यप्रणाली को कैसे प्रभावित करता है और लोग तनाव प्रबंधन तकनीकों का उपयोग करके रोगों को रोकने या कम करने के लिए कैसे प्रयास कर सकते हैं।

तनाव किसी व्यक्ति पर असामान्य शारीरिक परिस्थितियों जैसे अत्यधिक गर्मी या ठंड, बीमारी, ऑक्सीजन की कमी, या तेज रोशनी के संपर्क में आने से उत्पन्न हो सकता है। लंबे समय तक ध्यान में खड़े रहना, पहाड़ पर चढ़ना, या लगातार पानी में डूबे रहना भी व्यक्ति पर अनुकूलन के लिए मजबूत माँगें रख सकता है।

तनाव के स्रोत : बर्नस्टीन एट अल. (2008) तनाव के स्रोतों को उन सभी परिस्थितियों या घटनाओं के रूप में परिभाषित करते हैं जो लोगों के दैनिक कार्यों में बाधा डालने का खतरा उत्पन्न करती हैं और उन्हें समायोजन करने के लिए मजबूर करती हैं। इन तनाव के स्रोतों को 'तनावकारक' कहा जाता है।

तनावकारक वे माँगें हैं जो आंतरिक या बाहरी वातावरण द्वारा उत्पन्न होती हैं, जो संतुलन को बिगाड़ती हैं, इस प्रकार शारीरिक और मानसिक कल्याण को प्रभावित करती हैं और संतुलन को बहाल करने के लिए कार्रवाई की आवश्यकता होती है (लाज़ारस और कोहेन, 1977)। हालाँकि, ये तनाव की गंभीरता और अवधि के मामले में भिन्न होते हैं; जो किसी व्यक्ति के लिए तनावपूर्ण है, वह दूसरे के लिए तनावकारक नहीं हो सकता।

उदाहरण के लिए, कुछ व्याख्यानों का छूटना पहले वर्ष के स्नातक छात्रों के लिए तनावपूर्ण हो सकता है, लेकिन किसी अन्य छात्र के लिए यह तनावपूर्ण नहीं हो सकता, जो उसकी अपेक्षाओं के स्तर पर निर्भर करता है। अंतिम परीक्षा देना या व्यस्त समय में ट्रैफिक में बैठना एक गुस्से में भरे शेर द्वारा हमले के समान नहीं है, जहाँ उच्च उत्तेजना लड़ाई या भावना को बढ़ावा दे सकती है। विनाशकारी घटनाएँ, प्रमुख जीवन परिवर्तन, और दैनिक परेशानियाँ तनावकारकों की प्रमुख श्रेणियों के रूप में मानी जाती हैं, जो ऐसी माँगें उत्पन्न करती हैं जिनके लिए लोगों को समायोजित होना आवश्यक होता है।

आउरबाख और ग्रामलिंग (1998) आपदाओं को एक अप्रत्याशित जीवन–धमकी देने वाली आपदा के रूप में देखते हैं, जो व्यक्तियों को इसके साथ सामना करने में असमर्थ बनाती है। उदाहरण के लिए, युद्ध, बाढ़, तूफान, आग, भूकंप, यौन उत्पीड़न और बवंडर सामान्य आपदाएँ हैं। प्रमुख जीवन परिवर्तन (जैसे, नौकरी खोना, तलाक, बीमारी, जीवनसाथी या परिवार के सदस्य की मृत्यु, और कारावास) हर वयस्क के लिए तनावपूर्ण स्थितियों के रूप में माने जा सकते हैं। अधिकांश तनाव जो लोग अपने दैनिक जीवन में अनुभव करते हैं, वह दैनिक परेशानियों के कारण होता है। दैनिक परेशानियों को उन उत्तेजनाओं, दबावों और परेशानियों के रूप में भी देखा जा सकता है, जो अपने आप में महत्वपूर्ण तनाव के कारक नहीं हो सकते, लेकिन जिनका संचयी प्रभाव महत्वपूर्ण हो सकता है। यह व्यक्तियों की नौकरियों, दैनिक जीवन की परिस्थितियों और व्यक्तिगत संबंधों से संबंधित हो सकता है (बर्नस्टीन एट अल., 2008)।

तनाव के प्रभाव : यह कहा गया है कि एक व्यक्ति तनाव के कारण चिंतित विचारों, ध्यान केंद्रित करने में कठिनाई या याददाश्त में समस्या का अनुभव कर सकता है। तनाव लोगों के व्यवहार में भी परिवर्तन ला सकता है, जैसे कि नाखून चबाना, तेज़ सांस लेना, दांतों को भींचना और हाथों को मरोड़ना। जब लोग तनाव में होते हैं, तो उन्हें हाथ और पैर ठंडे लग सकते हैं, पेट में तितलियाँ महसूस हो सकती हैं, और कभी–कभी दिल की धड़कन बढ़ जाती है, जो सभी तनाव के सामान्य शारीरिक प्रभाव माने जाते हैं, जो चिंता के भावनाओं से जुड़े होते हैं।

तनाव के प्रति शारीरिक और मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाएँ सामान्यतः एक साथ होती हैं, विशेष रूप से जब तनाव के कारण अधिक तीव्र हो जाते हैं। हालाँकि, तनाव की प्रतिक्रियाओं की एक श्रेणी अन्य प्रतिक्रियाओं को प्रभावित

कर सकती है। उदाहरण के लिए, हल्का सीने में दर्द दिल के दौरे के बारे में चिंता करने वाली मनोवैज्ञानिक तनाव प्रतिक्रिया को जन्म दे सकता है। शारीरिक प्रतिक्रियाएँ तब होती हैं जब कोई व्यक्ति एक भयानक दुर्घटना या अन्य डरावनी घटनाओं से बचता है, तो वह तेज़ सांस लेना, दिल की धड़कन बढ़ना, पसीना आना, और थोड़ी देर बाद कांपना अनुभव करेगा। ये प्रतिक्रियाएँ एक सामान्य पैटर्न का हिस्सा हैं जिसे लड़ाई या भागने की सिंड्रोम कहा जाता है। तनाव के प्रति मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाएँ भावनाओं, विचारों (ज्ञान) और व्यवहारों में परिवर्तन के रूप में प्रकट हो सकती हैं।

तनाव से निपटना : तनाव सभी लोगों पर समान रूप से प्रभाव नहीं डालता, लेकिन यह बीमारी और नकारात्मक अनुभवों का कारण बन सकता है। इसलिए, तनाव से निपटना एक महत्वपूर्ण कारक है, जो यह निर्धारित करता है कि लोग चिकित्सा सहायता और सामाजिक समर्थन की खोज कैसे करते हैं और वे पेशेवरों की सलाह पर कितना विश्वास करते हैं।

तनाव और निपटान का लेन–देनात्मक मॉडल तनावपूर्ण परिस्थितियों के निपटान प्रक्रियाओं का मूल्यांकन करने के लिए एक दृष्टिकोण है। तनावपूर्ण परिस्थितियों को एक व्यक्ति और उसके पर्यावरण के बीच लेन–देन के रूप में देखा जाता है। हालाँकि, बाहरी तनाव कारक इन लेन–देन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

इन लेन–देन को दो महत्वपूर्ण प्रकार के मूल्यांकन द्वारा परिभाषित किया जाता है : व्यक्ति द्वारा तनाव कारक का मूल्यांकन और व्यक्ति के लिए उपलब्ध सामाजिक और सांस्कृतिक संसाधनों के संदर्भ में तनाव कारक का मूल्यांकन।

पहला मूल्यांकन, जिसे प्राथमिक मूल्यांकन भी कहा जाता है, तब होता है जब व्यक्ति तनाव कारक का सामना करते समय संभावित खतरे का मूल्यांकन करता है। प्राथमिक मूल्यांकन को एक घटना के प्रमुख प्रभावों का व्यक्तिगत मूल्यांकन माना जाता है, जैसे कि तनावपूर्ण, सकारात्मक, नियंत्रित करने योग्य, चुनौतीपूर्ण या अप्रासंगिक। दूसरा मूल्यांकन व्यक्ति के लिए उपलब्ध संसाधनों और विकल्पों का आकलन है, ताकि वह वास्तविक तनाव कारक से निपट सके। यह किसी व्यक्ति द्वारा समाधान खोजने के लिए उठाया गया उचित कदम है।

शैक्षणिक तनाव : शैक्षणिक तनाव की परिभाषा उस चिंता और तनाव को दर्शाती है जो शिक्षा और अध्ययन से उत्पन्न होता है। डिग्री प्राप्त करने और शिक्षा के साथ अक्सर बहुत अधिक दबाव होता है। इसमें अध्ययन, गृहकार्य, परीक्षाएँ, प्रयोगशालाएँ, पठन और क्विज़ शामिल हैं। सभी कार्यों को पूरा करने, समय का संतुलन बनाने और अतिरिक्त पाठ्यक्रम गतिविधियों के लिए समय निकालने का तनाव होता है। शैक्षणिक तनाव विशेष रूप से उन विद्यालय के छात्रों पर अधिक प्रभाव डालता है जो अक्सर पहली बार घर से दूर रह रहे होते हैं।

शिक्षक समय पर कार्य पूरा करने की अपेक्षा करते हैं। छात्र पढ़ाई और लेखन कार्यों को पूरा करने में लगने वाले समय का सही आकलन नहीं कर पाते हैं, साथ ही अपने कार्य की प्रतियां प्रिंट करने में भी समय की कमी का अनुभव करते हैं।

तनाव और इसके प्रभाव, जैसे कि चिंता, अवसाद और बर्नआउट, विभिन्न पेशों और व्यवसायों के लोगों के बीच एक सामान्य समस्या के रूप में देखे जाते हैं। पिछले कुछ दशकों में, इस विषय पर किताबों, शोध रिपोर्टों, लोकप्रिय लेखों और संगठित कार्यशालाओं की बढ़ती संख्या ने चिंता का कारण बना दिया है, जो लोगों को इस घटना से निपटने के तरीके सिखाने का प्रयास कर रही हैं। केनान और पर्लबर्ग (1986) का तर्क है कि निराशा, चिंता और अवसाद की भावनाएँ उच्च स्तर के तनाव के संभावित परिणामों में से हैं। मैककैन एट अल. (2000) का कहना है कि तनावक केवल चिंता, अवसाद या तनाव उत्पन्न नहीं करते। इसके बजाय, तनावकों और व्यक्ति की धारणा तथा इन तनावकों पर प्रतिक्रिया के बीच की अंतःक्रिया तनाव का कारण बनती है। पर्यावरणीय तनाव तब उत्पन्न होता है जब किसी व्यक्ति द्वारा अनुभव किए गए पर्यावरणीय उत्तेजनाएँ या मांगें उसकी क्षमता से अधिक होती हैं।

शिक्षार्थियों के बीच शैक्षणिक तनाव पर लंबे समय से शोध किया गया है, और शोधकर्ताओं ने तनाव के कारणों के रूप में बहुत सारे असाइनमेंट, अन्य छात्रों के साथ प्रतिस्पर्धा, असफलताएँ और अन्य छात्रों या व्याख्याताओं के साथ खराब संबंधों की पहचान की है। शैक्षणिक तनाव के कारकों में छात्रों की उस व्यापक ज्ञान आधार की धारणा शामिल है जो आवश्यक है और इसे विकसित करने के लिए समय की कमी की धारणा। छात्र हर सेमेस्टर में पूर्वानुमानित समय पर शैक्षणिक तनाव का अनुभव करने की रिपोर्ट करते हैं, जिसमें सबसे बड़े तनाव के स्रोत

परीक्षा देने और अध्ययन करने, ग्रेड प्रतिस्पर्धा, और सीमित समय में बहुत सारे विषयों को समझने की आवश्यकता होती है। जब तनाव को नकारात्मक रूप से देखा जाता है या यह अत्यधिक हो जाता है, तो छात्रों को शारीरिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। तनाव को कम करने के लिए छात्रों द्वारा अपनाए जाने वाले तरीकों में प्रभावी समय प्रबंधन, सामाजिक समर्थन, सकारात्मक पुनर्मूल्यांकन, और अवकाश गतिविधियों में संलग्न होना शामिल है। परीक्षा या परीक्षण में अच्छा प्रदर्शन करने का दबाव और आवंटित समय शैक्षणिक वातावरण को बहुत तनावपूर्ण बना देता है। यह संभवतः संस्थान के भीतर और बाहर सामाजिक संबंधों को प्रभावित करता है, जो व्यक्तिगत व्यक्ति के जीवन को लक्ष्यों को प्राप्त करने की प्रतिबद्धता के संदर्भ में प्रभावित करता है।

संबंधित अध्ययनों की समीक्षा : सिबनाथ डे, एस्बेन स्ट्रोडल और जियानडोंग सुन (2012) ने भारत में निजी माध्यमिक विद्यालय के छात्रों के बीच शैक्षणिक तनाव का अध्ययन किया। इस अध्ययन का उद्देश्य भारत में निजी माध्यमिक विद्यालय के छात्रों के बीच शैक्षणिक तनाव और परीक्षा की चिंता की प्रचलनता का विश्लेषण करना है, साथ ही सामाजिक–आर्थिक और अध्ययन से संबंधित कारकों के साथ इसके संबंधों का भी। इस अध्ययन में 400 किशोर छात्रों (52 प्रतिशत पुरुष) को शामिल किया गया, जो कोलकाता के पांच निजी माध्यमिक विद्यालयों में कक्षा 10 और 12 में अध्ययन कर रहे थे। प्रतिभागियों का चयन बहु–चरणीय नमूना तकनीक का उपयोग करके किया गया और उन्हें अध्ययन–विशिष्ट प्रश्नावली के माध्यम से मूल्यांकित किया गया। परिणामों से पता चला कि 35 और 37 प्रतिशत छात्रों ने क्रमशः उच्च या बहुत उच्च स्तर के शैक्षणिक तनाव और परीक्षा की चिंता की रिपोर्ट की। सभी छात्रों ने उच्च स्तर के शैक्षणिक तनाव की सूचना दी, लेकिन जिन छात्रों के ग्रेड कम थे, उन्होंने उच्च ग्रेड वाले छात्रों की तुलना में अधिक तनाव का अनुभव किया। अतिरिक्त पाठ्यक्रम गतिविधियों में भाग लेने वाले छात्रों ने उन छात्रों की तुलना में परीक्षा की चिंता की अधिक रिपोर्ट की, जो इन गतिविधियों में शामिल नहीं थे।

मारवान जैद बताइनह (2013) ने एक अध्ययन किया जिसमें किंग सऊद विश्वविद्यालय के शिक्षा संकाय के अंडरग्रेजुएट छात्रों के बीच शैक्षणिक तनाव की जांच की गई। इस अध्ययन में कुल 232 विषयों का नमूना लिया गया, जो कि KSU के शिक्षा संकाय से प्राप्त हुआ। डेटा एक स्व–प्रशासित प्रश्नावली के माध्यम से एकत्र किया गया, जिसे व्याख्यान के समय छात्रों में यादृच्छिक रूप से वितरित किया गया। एकत्रित डेटा का विश्लेषण वर्णात्मक सांख्यिकी, सहसंबंध और विविधता के विश्लेषण (ANOVA) का उपयोग करके किया गया। परिणामों से पता चला कि शैक्षणिक अधिभार, पाठ्यक्रम की कठिनाई, अध्ययन के लिए अपर्याप्त समय, प्रत्येक सेमेस्टर का कार्यभार, परीक्षा की कठिनाई, कम प्रेरणा और उच्च पारिवारिक अपेक्षाएँ छात्रों के बीच मध्यम तनाव का कारण बनती हैं। इसके अलावा, यह पाया गया कि असफलता का डर अंडरग्रेजुएट छात्रों के बीच तनाव का प्रमुख स्रोत है। अध्ययन में यह भी पाया गया कि धार्मिकता के स्रोतों और शैक्षणिक तनाव के बीच सकारात्मक सहसंबंध था ($r= -300^{**}$, $p=.00$)। अंत में, अध्ययन ने यह निष्कर्ष निकाला कि विभिन्न अध्ययन स्तरों और विशेष छात्रों के बीच शैक्षणिक तनाव में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं था।

राजासेकर (2013), एएमईटी विश्वविद्यालय के प्रबंधन छात्रों के बीच शैक्षणिक तनाव का प्रभाव–एक विश्लेषण। इस अध्ययन ने प्रबंधन छात्रों के बीच शैक्षणिक तनाव के प्रभाव का मूल्यांकन किया। तनाव प्रबंधन में उन तकनीकों का समावेश होता है जो व्यक्ति को मनोवैज्ञानिक तनाव से निपटने के लिए प्रभावी मुकाबला तंत्र से लैस करती हैं। छात्रों की विभिन्न अपेक्षाएँ, लक्ष्य और मूल्य होते हैं जिन्हें वे पूरा करना चाहते हैं, जो केवल तब संभव है जब वे संस्थान के साथ एकीकृत हों। अध्ययन का उद्देश्य तनाव के वर्तमान स्तर, तनाव के स्रोतों और प्रबंधन छात्रों के लिए उपयोगी तनाव प्रबंधन तकनीकों का पता लगाना है। यह अध्ययन प्रबंधन छात्रों के बीच तनाव के शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, व्यक्तिगत, जनसांख्यिकी और पर्यावरणीय कारकों जैसे विभिन्न मानदंडों पर विचार करता है। नमूने में चेन्नई के एएमईटी बिजनेस स्कूल, एएमईटी विश्वविद्यालय के 100 छात्र शामिल हैं। डेटा को सुविधाजनक नमूना विधि का उपयोग करके संरचित प्रश्नावली के माध्यम से एकत्र किया गया।

अध्ययन की आवश्यकता और महत्व : आज के अत्यधिक प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण में, छात्रों को विभिन्न शैक्षणिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जैसे परीक्षा का तनाव, कक्षाओं में भाग लेने में रुचि की कमी और विषय को समझने में असमर्थता। शैक्षणिक तनाव वह भावना है जो किसी व्यक्ति की शैक्षणिक गतिविधियों में प्रदर्शन को लेकर चिंता या apprehension का अनुभव कराता है। यह छात्रों को परीक्षाओं में अपनी क्षमताओं के अनुसार प्रदर्शन करने में असमर्थ बना सकता है।

विद्यालय में, छात्रों पर विभिन्न प्रकार का शैक्षणिक दबाव होता है, जो पूर्णता की आवश्यकता, ग्रेड के बारे में चिंता, माता–पिता का दबाव, प्रतिस्पर्धा, खेल या कठिन कक्षा के बोझ से उत्पन्न होता है। कई युवा छात्रों में तंत्रिका टूटने, आतंक के दौरे, बर्नआउट और अवसाद के लक्षण भी स्पष्ट होते हैं। यह स्थिति सभी लोगों के लिए हमेशा तनावपूर्ण नहीं होती, और सभी लोग तनाव के समय समान भावनाओं या नकारात्मक विचारों का अनुभव नहीं करते हैं।

छात्रों को भविष्य के स्तंभ माना जाता है, जो हमारे देश को अगले चरण में ले जाने की जिम्मेदारी उठाते हैं, इसलिए उन्हें बेहतर स्थिति में होना चाहिए। इस तथ्य को जानने के लिए, शोधकर्ता ने उच्चतर माध्यमिक छात्रों के बीच शैक्षणिक तनाव का विश्लेषण करने का निर्णय लिया।

समस्या का विवरण : अन्वेषक द्वारा उठाई गई समस्या को इस प्रकार व्यक्त किया गया है– 'उच्चतर माध्यमिक छात्रों के बीच शैक्षणिक तनाव पर एक अध्ययन'।

अध्ययन के उद्देश्य : वर्तमान अध्ययन के शोधकर्ता ने निम्नलिखित उद्देश्यों का निर्धारण किया–

1. बिहार राज्य के पटना जिला में उच्चतर माध्यमिक छात्रों के बीच शैक्षणिक तनाव के स्तर का पता लगाना।
2. यह पता लगाना कि शैक्षणिक तनाव के संदर्भ में निम्नलिखित उप–नमूनों के बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर है या नहीं।

अध्ययन के अनुमान : वर्तमान अध्ययन के शोधकर्ता ने निम्नलिखित अनुमान तैयार किए हैं–

1. शैक्षणिक तनाव के संदर्भ में पुरुष और महिला छात्रों के बीच महत्वपूर्ण औसत भिन्नता है।
2. शैक्षणिक तनाव के संदर्भ में ग्रामीण और शहरी क्षेत्र के छात्रों के बीच महत्वपूर्ण औसत भिन्नता है।
3. शैक्षणिक तनाव के संदर्भ में सरकारी और निजी स्कूल के छात्रों के बीच महत्वपूर्ण औसत भिन्नता है।
4. शैक्षणिक तनाव के संदर्भ में विज्ञान और कला विषय के छात्रों के बीच मार्गदर्शन की आवश्यकताओं में महत्वपूर्ण औसत भिन्नता है।
5. शैक्षणिक तनाव के संदर्भ में उन छात्रों के बीच महत्वपूर्ण औसत भिन्नता है जिनके माता–पिता की शिक्षा साक्षर और निरक्षर स्तर पर है।

विधि : वर्तमान अध्ययन में, शोधकर्ता ने मानक सर्वेक्षण को एक विधि के रूप में अपनाया। मानक सर्वेक्षण विधि वर्तमान में विद्यमान तथ्यों का अध्ययन, वर्णन और व्याख्या करती है।

नमूना : नमूना एक जनसंख्या का एक छोटा अनुपात है जिसे अवलोकन और विश्लेषण के लिए चुना गया है। नमूने की विशेषताओं का अवलोकन करके, किसी व्यक्ति को उस जनसंख्या की विशेषताओं के बारे में कुछ निष्कर्ष निकालने में सहायता मिलती है जिससे यह निकाला गया है।

वर्तमान अध्ययन में बिहार राज्य के पटना जिला में स्थित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में पढ़ने वाले 250 ग्यारहवीं कक्षा के छात्रों को शामिल किया गया है। नमूना सरल यादृच्छिक नमूनाकरण तकनीक का उपयोग करके चुना गया था। यह नमूना संपूर्ण जनसंख्या का प्रतिनिधि नमूना बनाता है।

इस अध्ययन के शोधकर्ता ने डेटा संग्रह के लिए 'आर. बालाजी राव' द्वारा निर्मित और मानकीकृत शैक्षणिक तनाव स्केल का चयन और उपयोग किया।

शैक्षणिक तनाव मापने का विवरण : वर्तमान अनुसंधान का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य उच्च माध्यमिक विद्यालय के छात्रों में शैक्षणिक तनाव के स्तर का पता लगाना है। इस उद्देश्य के लिए, शोधकर्ता ने आर. बालाजी राव द्वारा निर्मित और मानकीकृत शैक्षणिक तनाव मापने का पैमाना उपयोग किया। इस पैमाने में कुल 40 प्रश्न शामिल हैं और प्रत्येक प्रश्न के लिए पाँच विकल्प उपलब्ध हैं, अर्थात् 'कोई तनाव नहीं', 'थोड़ा तनाव', 'मध्यम तनाव', 'अधिक तनाव' और 'अत्यधिक उच्च तनाव'।

छात्रों द्वारा दिए गए उत्तरों के लिए अंकन इस प्रकार होना चाहिए।

प्रतिक्रिया	वजन
कोई तनाव नहीं	0
थोड़ा तनाव	1
मध्यम तनाव	2
अत्यधिक तनाव	3
अत्यधिक उच्च तनाव	4

उच्च स्कोर उच्च तनाव का संकेत हैं और स्केल पर निम्न स्कोर निम्न तनाव का संकेत देते हैं।

आंकड़ों के विश्लेषण के लिए निम्नलिखित सांख्यिकीय तकनीकों का उपयोग किया गया है–

(क) वर्णात्मक विश्लेषण (औसत और मानक विचलन) और

(ख) भिन्नात्मक विश्लेषण (t परीक्षण)।

परिकल्पनाओं का परीक्षण

तालिका–1 : उच्चतर माध्यमिक छात्रों के शैक्षणिक तनाव स्कोर का औसत और मानक विचलन प्रदर्शित करना

परिवर्ती	नमूना	एन	औसत	मानक विचलन	t मान	0.05 स्तर पर महत्व
लिंग	पुरुष	136	96.82	32.12	0.64	सार्थक अंतर नहीं
	महिला	114	94.24	30.71		
स्थान	ग्रामीण	108	96.12	33.41	0.58	सार्थक अंतर नही
	शहरी	142	98.51	31.52		
प्रबंधन	सरकारी	160	91.12	32.48	0.71	सार्थक अंतर नहीं
	प्राईवेट	90	94.15	31.73		
विषय	विज्ञान	127	98.11	31.96	0.93	सार्थक अंतर नही
	कला	123	94.43	30.18		
माता–पिता की शिक्षा	शिक्षित	102	97.76	33.67	0.36	सार्थक अंतर नही
	अशिक्षित	148	96.24	31.36		

निष्कर्षों का सारांश : वर्तमान जांच के मुख्य निष्कर्ष निम्नलिखित हैं–

1. उच्चतर माध्यमिक के छात्रों में शैक्षणिक तनाव का स्तर मध्यम है और उच्चतर माध्यमिक के छात्रों के उप–नमूनों में भी शैक्षणिक तनाव का स्तर मध्यम है।
2. पुरुष और महिला छात्रों के शैक्षणिक तनाव स्कोर में महत्वपूर्ण अंतर नहीं है।
3. ग्रामीण और शहरी क्षेत्र के छात्रों के शैक्षणिक तनाव स्कोर में महत्वपूर्ण अंतर नहीं है।
4. सरकारी और निजी स्कूल के छात्रों के शैक्षणिक तनाव स्कोर में महत्वपूर्ण अंतर नहीं है।
5. विज्ञान और कला के छात्रों के शैक्षणिक तनाव स्कोर में महत्वपूर्ण अंतर नहीं है।
6. जिन छात्रों के माता–पिता शिक्षित और अशिक्षित हैं, उनके शैक्षणिक तनाव स्कोर में महत्वपूर्ण अंतर नहीं है।

निष्कर्ष : वर्तमान अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि उच्च माध्यमिक के छात्रों में शैक्षणिक तनाव का स्तर मध्यम है और उच्च माध्यमिक के सभी उपसमूहों में यह तनाव समान रूप से मध्यम स्तर पर है। पुरुष छात्रों का शैक्षणिक तनाव महिला छात्रों की तुलना में अधिक है। शहरी छात्रों का शैक्षणिक तनाव ग्रामीण छात्रों की तुलना में अधिक है। सरकारी स्कूल के छात्रों का शैक्षणिक तनाव निजी स्कूल के छात्रों की तुलना में कम है। विज्ञान विषय के छात्रों का शैक्षणिक तनाव कला विशय के छात्रों की तुलना में अधिक है। जिन छात्रों के माता–पिता शिक्षित हैं, उनका शैक्षणिक तनाव उन छात्रों की तुलना में अधिक है जिनके माता–पिता अशिक्षित हैं।

संदर्भ–सूची

1. ऑरबैक, एम.एस., और ग्राम्बलिंग, एस.ई., तनाव प्रबंधन मनोवैज्ञानिक आधार, अमेरिका : प्रेंटिस–हॉल, अंक., 1998

2. कार्वेथ, जे.ए., गेस्से, टी., और मॉस, एन. (1996), नर्स–मिडवाइफरी छात्रों के लिए जीवित रहने की रणनीतियाँ। नर्स–मिडवाइफरी जर्नल, 41(1), 50–54

3. कोहेन, एफ., 'कोपिंग' इन जे.डी. माताराज़ो, एस.एम. वाइस, जे.ए. हर्ड, एन.ई. मिलर और एस.एम. वाइस (सं.), व्यवहारिक स्वास्थ्य : स्वास्थ्य संवर्धन और रोग रोकथाम का एक हैंडबुक, न्यूयॉर्क विले, 1984

4. डेब, सिबनाथ, एसबेन स्ट्रोडल, और जियानडोंग सुन (2014), 'भारत में निजी माध्यमिक विद्यालय के छात्रों के बीच अकादमिक से संबंधित तनाव', एशियाई शिक्षा और विकास अध्ययन, 3,2, 118–134

5. एरकुटलु, एच. वी., चाफरा, जे (2006), नेतृत्व शक्ति के आधार और अधीनस्थों के कार्य तनाव के बीच संबंध : बुटीक होटलों से उदाहरण, प्रबंधन अनुसंधान समाचार 29(5), 285–297

6. फेयरब्रदर, के., और वार्न, जे. (2003), कार्यस्थल आयाम, तनाव और नौकरी की संतोषजनकता, जर्नल ऑफ मैनेजेरियल साइकोलॉजी 18(1), 8–21

7. कीनान, जी. और पर्लबर्ग, ए. (1986), अकादमी में तनाव के स्रोत : इजरायली मामला, उच्च शिक्षा, खंड 15, संख्या 1/2, 73–88

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Geography : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 151-153

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

An Analytical Study of Slope

*Dr. Sanoj Kumar**

Introduction : Slopes, defined as an gular inclination of terrain between hilltops and valley bottoms, resulting from the combination of many causative factors like geological structure, absolute and relative reliefs, climate, vegetation cover, drainage texture andfrequency, dissection index etc. are significant morphometric attributes in the study of landform of a drainage basin (Savindra Singh and R. Srivastava, 1975) Several techniques of the derivation and computation of average slope from topographical maps have been suggested from time to time e.g. J.L. Rich (1916), C.K. Went worth (1930) G.H. Smith (1938. 1939), E. Raize and J. Henery (1937), W.C. Calef (1950). but the technique of Went worth being easier and involving lesser measurement and calculation and more rapid procedure than other schemes have been widely used by several geomorphologists. Computation of slop angles from topographical maps or through field measurement involves tedious and time-consuming procedures.

Lithology and Slope Form : From the studies made by Fair Strhalher and Piower it appears that similar lithology gives rise to almost similar slope angles in various climatic regions. The quantitative slope analysis my broadly be discussed under the headings of (i) Average slope maps and (ii) Clinographic curves.

As the method of Smith is an important way to assess the averageslope of thererelativereflief yet, the values are always in height and not inangles. This is why, the method of Wentworth is often preferred, m orderto find out the slope of hill sides Wentworth applied the followingformula.

tan= Contour crossings per mile x contour interval / 3361 (constant).

Grids were drawn at an interval of 1" on the concerned topographicalsheets. Contour crossings were counted per mile. Then with the help of thesaid formula tangent values were found out and the angles of slope wereplaced in the centre of each grid. Isopleths were drawn at an interval of 2°.The hill side slope is clearly expressed by slope profile. Besides, otherareas of the slope are also represented. The table concerned shows thefrequency distribution among major slope categories and the areasenclosed under each category. By this method, the whole area is dividedinto grids with straight lines cutting at right angles.

(i) The first category seen in the northern and north-easternmountaionous or hilly parts of the region, represents the zone of maximumslope ie. above 15° that is characterized by steep slope. The totalgeographical area under this category is 69.25 sq. km. which stands for12.19% of the total area under study. This is mainly confined to the upperparts of the Dun and Sumeshwar ranges situation in the northern directionof the basin region.

(ii) The second category represents the zone of slope having 10° to15° inclination. This type of area extends on 94.74 sq km. which standsfor 16.68% to the total geographical area under study. This area extends inthe southern part of the previous category.

* *Assistant Professor (Guest), Department of Geography, Govt. Degree College, Sheoher*

The earth surface is ever undergoing modifications and therefore, theslopes have the same fate. Geomorphology is concerned with landforms,an understanding of the processes which fashion different elements ofslope merit mention. Slope is a function of a complex geomorphic forcessuch as tectonic, climatic, biotic and exogcnetic forces. It also includesdenudational processes like weathering, mass wasting, mass movementsof rock wastes, erosion and transportation of eroded materials downslopeetc.

Very rarely the areas on the earth surface or absolutely level. Nearlyall the landforms slope in one direction or another. Lilhology too plays animportant role in slope development.

Similar lithology gives rise to almost similar slope. From of slope andlithology are closely related. Various lithological conditions give rise todiverse nature of slope angles from works of Savigear (1960) or from thestudies made by Fair Stralher and Piower it becomes clear the impact oflithology on the nature of the slope. It's angles in various climatic regionsdiffer.

Climatology and Slope Form : The most important factor to influence the diverse forms of hillslopes is the climate. Rainfall and temperature are two significantparameters which influence the slope forms in the study region. Though,the distribution of rainfall is not uneven in such a small drainage basin butits seasonal contrast is of vital geomorphic significance. Nearly 88%concentration of annual rainfall occurs in rainy season i.e. from June toSeptember. Hence, during these this, maximum moisture is available forthe weathering and erosion of rocks.

Temperature" influences a large number of morphogenetic process.Statistically, Vant Holf's law states that an increase of 10°C multiplies theintensity of reactions by 2.5°. That heat depends on temperature and rangeof temperature.

Hence, a large part consisting of the basin area has been convertedinto peneplain or near to mean sea level. Some conical and dome-shapedhills are observed north of Someshwar range. The area with rocks issusceptible to chemical weathering. Water table is low here. " The heavydownpours soak the surficial mantle and incerase the weight of the soil tobe drawn down by the gravitational pull "in the region.

Vegetation and Slope Form : The vegetation is well preserved here. Upland cultivation, road andrailway construction as well as inhabitation due to growing populationhave encouraged deforestation. The growing population has forced thepeople to bring the hill slope under terraced farming.Thick natural vegetation is found in the large part of the study area.The region abounds in reserved and protected forest. Even then, thevegetation of the lower slopes is easily accessible to man and livestock asa consequent of it has been mostly depleted. But the vegetation on thehigher slopes is not accessible and is free from depletion.Shrubs andbushes are found on the slopes of newer sandstone ridges criss-crossingthe granite plain.

Deforestation accelerated the rate of river erosion. It includes thedevelopment drainage net hence, increases drainage density to cause rapiddissection of land surface. High drainage density coincides with the areasunder thick vegetation cover hence hill form has not been influenced muchbytheclothing of natural vegetation in the study rcgion.

Vegetational cover protects the soil and rock from the direct attack bythe exogenetic forces. Vegetation also influences transpiration. Though,vegetation causes higher precipitation it is also responsible for highertranspiration, which decreases the amount of run-off. Thus, vegetationinfluences drainage and drainage density also.

Anthropogenic Influence : The depletion of vegetal cover, overgrazing, terracing of field ofcultivation and the holes burrowed by wild animals have enhanced thepace of weathering and erosion on the hill slopes. Road and railwayconstruction and merciless consumption of building materials have also affected the slopes- If such -works are not diction-aced, the hills are boundto be wiped out before schedule.

Development of Slope Profiles : The study of slope profiles is very difficult. It may be said at theoutset that we are far from possessing any conclusive idea on thedeformation of slope profiles in

spite ofthe are that the problem has beenconsidered for at least half a century and different methods of approachhave been tried.(Sparks, I 960,p.55). The inteipretation given by Woodregarding slope profile fits welt in the basin. Free face can be explained byweathering. From there the weathered materials slip down to accumulateinthe forms ofscree on the waxing slope. The talus grow up gradually and is deposited over the free face is the long. Thus, a constant slope is formed.

Factors Affecting Slope Evolution : Slope movement and slope wash the down slope, tectonic history ofthe region, age of the rock and slope, vegetal cover etc. also influence theevolution of the slope. Pesci has pointed out that the present slopes are theresults of joint dynamism of the tectonic, structural, morphological andlithological conditions and climatomorphologic processes. The evolutionof the slope is controlled by structure, process and time. Intensity ofrainfall, infiltration capacity of soil intensity of weathering,quantity of debris to carried away.

Thus, the formation of slope is a complex interplay of a number ofinter-dependent variables. In the study region, convex and concave slopesare common. The upper convexity of the hill-slope is due to soil creepwhereas me down concavity is due to rill action. According to Gilbert, themiddle por ion between the said two slope segments is influenced havingheavy load during the rainy season but it is affected by soil creep duringdry season. The fluvial action affect the slope segment considerably and adownward declivity develops which gives rise to wanning slope.

The effect of landslide is not important in this study area. Hence,running water is the most important agent of slope erosion and wastetransportation. In the early stage of landscape evolution, running waterexerts direct influence on the evolution of hill slopes. As the study areahas reached the late maturity stage, stream action is minimum on theconvex and free face slopes. The lower concave slope ispredominantly under the influence of running water.

According to Harton, (Horton,R,E., !932,pp.350-361) the waxingslope is a region of no erosion as the energy of the sheet flow is notsufficient enough to erode the initial surface even in the most intensestorm. The run-off intensity, the length of overland flow,intial resistanceof surface, infiltration capacity, etc. are some of the dominant factorscontrolling the evolution of the hill-slopes in the study region. From thevarious profiles drawn across the hill-slopes, three different slopesemerge;

(i) A zone of free face.with steep angles having no soil and vegetalcover.

(ii) A less steep zone of debris slope plagued with gully erosion.

But all the above slope elements are not available everywhere. Theproportion of various elements of slope are dependent on stratigraphy,structure, micro-climatic elements and erosive capability law.

Bibliography

1. Clark, JJ. (1966), “Morphometry from Maps”, Eassay in Geomorphology, (eds), Dury, G.H. Hienemann, London, p, 235.

2. Choudhary, P.C. Roy (1960), "Bihar District Gazetteer, Champaran" The Superintendent Secretariate Press, Bihar, Patna,

3. Davis, W.M. (1899), “The Peneplain” CDS in Geographical Essays, D.W. Jonson, Dover Publication (1909) pp. 350-380.

4. Dury, G.H. (1952), “Methods of Cartographica! Analysis in Geographical Research” The Indian Geographical Society Silver Souvenir, p.139.

5. Fairbridge,W.R. (1968), eds, "Geomorpho logical Maps : Encyclopedia of Geomorphology" Reinhold Book Corporation, Newyork, Amsterdam, London, p. 626.

6. Fenneman, N.M. (1938), “Physiography of the Eastern United States” McGraw Hill, New York, Preface, p. vi.

7. Gilbert, G.K. (1909), “The Convexity of HiUtops” Journal, Geology, Vol.17, pp. 344-51.

8. Gansser, A. (1964), "Geology of the Himalayas" John Wiley and Sons, pp. 16-3 1. 36.

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Commerce : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 154-157

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

An Examination of Customer Perspectives on Core Banking Services Provided by Financial Institutions in Bihar

*Dr. Garima Mishra**

Abstract : *The banking institutions operating under the core banking system have implemented a variety of services, including Real Time Gross Settlement (RTGS), National Electronic Fund Transfer (NEFT), Electronic Clearance Service (ECS), cheque transactions, cheque collection, clearing services, automated teller machines (ATMs), SMS banking, and internet banking. These services facilitate cash payments, fund transfers, utility bill payments, dividends, and more. An attitude is generally understood as a positive or negative assessment of individuals, objects, events, activities, ideas, or virtually anything within one's environment, although there is ongoing discussion regarding its exact definition. This study specifically examines customer attitudes towards the core banking services provided by banks in Bihar, with the research confined to the geographical limits of Madurai. Consequently, respondents were selected exclusively from this area. A customer is defined as an individual who has conducted at least one transaction with a bank. This section aims to analyze customer attitudes towards core banking services in relation to various personal factors, including age, education, occupation, income, social factors, account types, expenditure, encouragement, awareness of services, savings, and family status. Furthermore, banks should enhance their technological capabilities and persist in executing their core banking solutions strategy. Such connectivity will enable a better understanding of customer needs, improve customer relationship management, and facilitate the offering of a wider range of value-added products, thereby enhancing the effectiveness of product sales.*

Keywords : *Services, satisfaction, accounts, banking and customer.*

INTRODUCTION : An attitude is characterized as a favorable or unfavorable assessment of individuals, objects, events, activities, concepts, or virtually any aspect of one's surroundings; however, there is ongoing discussion regarding its exact definition. For instance, Eagly and Chaiken describe an attitude as "a psychological tendency that is expressed by evaluating a particular entity with some degree of favor or disfavor." Core banking refers to the services offered by a network of interconnected bank branches.

Bank clients have the ability to access their funds and perform basic transactions at any of the affiliated branch offices. Core Banking typically refers to the operations carried out by a banking institution with its retail and small business clientele. Numerous banks categorize retail customers as their primary core banking clients, while maintaining a distinct division to cater to small businesses. Larger enterprises are handled through the institution's Corporate Banking division. Essentially, core banking encompasses the activities of depositing and lending money.

Scope of the Study : The banking institutions operating under the core banking system have implemented a variety of services, including Real Time Gross Settlement (RTGS), National Electronic Fund Transfer (NEFT), Electronic Clearance Service (ECS), cheque transactions, cheque collection,

* ***Faculty of BBA, Purnea Mahila College, Purnea***

clearing services, automated teller machines (ATMs), SMS banking, and internet banking. These services facilitate cash payments, fund transfers, and payments for utility bills, dividends, among others. This study aims to examine customer attitudes towards the core banking services provided by banks in Bihar.

Objectives of the Study : To examine customer perceptions regarding the core banking services provided by banks in Bihar. To provide appropriate recommendations based on the study's findings.

Methodology : Given the nature of the research topic and the data obtained from primary sources, an opinion study was deemed the most suitable approach for conducting the research. The interview schedule was developed in alignment with this methodology. The insights and recommendations presented are derived from the survey conducted among customers in the designated study area.

Data Sources : The research utilizes a combination of primary and secondary data. To gather information from banks and customers, the researcher employs an interview schedule for direct engagement. Additionally, secondary data is sourced from various materials, including bank records, interviews conducted with CEOs and bank managers, bank manuals, magazines, online publications, reports from software companies, consultancy reports, as well as journals and newspapers.

Sampling Design : The study is confined exclusively to the boundaries of Bihar. Consequently, respondents were selected solely from this specified area. A customer is defined as an individual who has conducted at least one transaction with a bank. Due to the complexities involved in defining a customer within banking services, the researcher considers a deposit holder to be a customer. For the selection of respondents, the researcher employs the cluster random sampling technique. A total of 120 customers from Bihar were contacted for this study.

Analysis of Customer Attitudes Toward Core Banking Services : This section endeavors to examine customer attitudes toward core banking services, taking into account various personal factors such as age, education, occupation, income, and social factors, including account types, expenditure patterns, encouragement, awareness of services, savings, and family status. Customer attitudes have been assessed using a five-point scale: very high (5 points), high (4 points), moderate (3 points), low (2 points), and very low (1 point). Table 1 presents the ratings provided by respondents in relation to these personal factors.

Table - 1. Customer Attitudes Toward Core Banking Services in Relation to Personal Factors

Personal Factors	VeryHigh	High	Moderate	Low	Very Low	Total	Score value	Rank
Age	175(33.65)	194 (37.31)	48(9.23)	92 (17.69)	11 (2.12)	520	1990	2
Education	195(37.50)	164 (31.54)	81(15.58)	48 (9.23)	32(6.15)	520	2002	1
Occupation	182(35.0)	153 (29.42)	66(12.69)	90 (17.31)	29 (0.19)	520	1929	4
Income	192(36.92)	155 (29.81)	55(10.58)	104 (20.0)	14 (2.69)	520	1967	3
Social factor	23 (4.42)	25 (4.81)	146(28.08)	233 (44.81)	93 (17.88)	520	1212	10
Type of accounts	99(19.04)	134 (25.77)	153(29.42)	121 (23.27)	13 (2.5)	520	1745	6
Expenditure	90(17.31)	96 (18.46)	143(27.5)	166 (31.92)	25(4.81)	520	1620	7
Encouragement	50 (9.62)	58 (11.15)	132(25.38)	221 (42.5)	59 (11.35)	520	1379	9
Awareness about services	177(34.04)	140 (26.92)	88(16.92)	100 (19.23)	15 (2.88)	520	1924	5
Savings	75(14.42)	48 (9.23)	151(29.04)	223 (42.88)	23 (4.42)	520	1489	8
Status of the family	26 (5.0)	14 (2.69)	140(26.92)	244 (46.92)	96 (18.46)	520	1190	11

Source : Primary data

In the age classification of the 520 respondents, a significant portion, specifically 37.31 percent, exhibited a high level of attitude towards core banking services. This was followed by those

demonstrating a very high level of attitude at 33.65 percent, while very low and low attitudes were recorded at less than 20 percent.

Regarding educational attainment, the majority, at 37.50 percent, displayed a very high level of attitude towards core banking services, with 31.54 percent showing a high level of attitude. Conversely, only 6.15 percent exhibited a very low level of attitude.

An analysis based on occupation revealed that 64.42 percent of respondents had either a very high or high level of attitude, while those with a very low level of attitude constituted less than one percent (0.19 percent). Furthermore, an income-based analysis indicated that individuals in higher income brackets demonstrated very high and high levels of attitude, accounting for 36.92 percent and 29.81 percent, respectively.

In the analysis of social factors, it was observed that the proportions of respondents exhibiting very low and low levels of attitude were notably high, accounting for 44.81 percent and 17.88 percent, respectively. Conversely, the percentages for very high and high levels of attitude were recorded at less than 5 percent each. A breakdown by account type indicated that the majority of respondents (29.42 percent) demonstrated a moderate level of attitude towards core banking services, followed by those with a high level of attitude (25.77 percent) and a low level of attitude (23.27 percent).

Furthermore, an expenditure-based analysis of the 520 respondents revealed that a significant portion (31.92 percent) exhibited a low level of attitude, while 27.5 percent displayed a moderate level of attitude. Regarding encouragement, 43 percent of respondents showed a low level of attitude towards core banking services, followed by 25.38 percent with a moderate level of attitude. Lastly, the analysis of awareness regarding services indicated that 34.04 percent of respondents had a very high level of attitude towards core banking services.

A significant proportion of respondents exhibited a high level of attitude, accounting for 26.92 percent. The analysis of savings revealed that a considerable number of individuals demonstrated a low level of attitude at 42.88 percent, while 29.04 percent displayed a moderate level of attitude towards core banking services. In terms of family status, a substantial segment of the respondents, specifically 46.92 percent, showed a low level of attitude towards core banking services within the study area. This was followed by those with a moderate level of attitude, which constituted 26.92 percent. The score values for each personal factor were determined using a five-point scale, and the findings are presented in Table 1.

The analysis indicated that the highest total score was recorded in the education category, which was ranked first among the personal factors. This suggests that education has significantly influenced the respondents' positive attitudes towards core banking services. Following education, the factors of age, income, occupation, and awareness of services were ranked second, third, fourth, and fifth, respectively. Conversely, the lowest scores were associated with family and social factors, which were ranked tenth and eleventh. A one-sample test was conducted, the results of which are presented in Table 2.

Table - 2. Rating Towards Core Banking Services – One Sample Test.

Sl.No	Personalfactors	t	Sig. (2-tailed)
1.	Age	76.554	.000
2.	Education	73.311	.000
3.	Occupation	67.088	.000
4.	Income	71.074	.000
5.	Social factor	54.750	.000

6.	Type of accounts	69.063	.000
7.	Expenditure	60.523	.000
8.	Encouragement	53.954	.000
9.	Awareness about services	70.038	.000
10.	Savings	58.199	.000
11.	Status of the family	54.110	.000

Source : Computed data

The test results indicated that the t-value demonstrated the significance of all the factors examined. Therefore, it can be concluded that there is no difference in the ratings of core banking services.

Findings Summary : The score for each personal factor was determined using a five-point scale. The analysis indicated that the education category received the highest total score, ranking first among the personal factors. This suggests that education significantly impacts the respondents' positive attitudes towards core banking services. The test results demonstrated that the t-value confirmed the significance of all factors examined. Therefore, it can be concluded that there is no significant difference in the ratings of core banking services.

Recommendations : Financial institutions ought to improve their technological infrastructure and persist in executing their core banking solutions strategy.

This enhanced connectivity will facilitate a deeper understanding of customer needs, improve customer relationship management, and enable the offering of a wider array of value-added products, thereby enhancing the effectiveness of product sales. The central office may focus on branches located in semi-urban and rural regions to implement core banking solutions.

Conclusion : In contemporary banking, customers serve as the foundation of financial institutions. To protect customer interests, banks have established dedicated customer service departments. Additionally, a mechanism for addressing customer grievances is commonly implemented within these institutions. Consequently, banks are consistently evaluating their customer care practices. It is important to recognize that the effectiveness of core banking is influenced not only by technological advancements but also significantly by the attitude, dedication, and engagement of staff at all levels, as well as the extent to which customers benefit from core banking solutions.

References

1. Selvaraj N (2016) Personal Variables and Perception of Customers on Service Quality of Commercial in Madurai. J Entrepren Organiz Manag 5: 177.

2. Selvaraj N (2016) Service Quality Gap in Public Sector Banks in Madurai. J Glob Econ 4: 178.

3. Selvaraj N (2016) Influence of Services and Quality of Private Banking in India. J Entrepren Organiz Manag 5: 178.

4. "Executive Leadership Drives Core Banking Replacement", The Asian Banker, Issue 98, pp 20-23.

5. Eagly, Alicelt, and Shelly Chaiken.1998. "Attitude Structure and Function". In handbook of social psychology, ed. D.T. Gilbert, Susan T. Fiske, and G. Lindze, 269-322. New York: McGraw-Hill.

6. Selvaraj N Gap between Perceived and Desired Levels in Commercial Banks in Madurai. Arts Social Sci J 7: 154.

7. Aaron M. French, "A Case Study on E-Banking Security – When Security Becomes Too Sophisticated for the User to Access Their Information" Journal of Internet Banking and Commerce, Vol.17, No.2, August 2012.

8. Abdelghani Echchabi, "Online Banking Prospects in Morocco: An Extension of Technology Acceptance Model", Journal of Internet Banking and Commerce, Vol.16, No.3, December 2011.

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Comp.Science : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 158-165

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

A Study to Know About the Loopholes in Using IOT Based Smart Waste Management System

*Manish Kumar** *Dr. Dharmendra Kumar*** *Shweta Kumari****

Abstract : *As waste in cities must be collected and transported for appropriate disposal, waste management is one of the most expensive investments. To improve the collection and disposal of waste, smart waste management technologies have been developed in recent years. Sensor-equipped waste bins help cities save resources and money by collecting data on waste disposal. Despite these seemingly effective approaches to waste management, there are still challenges to overcome. Trash bins near the point of creation are used for the disposal of waste during the waste management process. After that, trucks drive over to temporary collection sites to pick up the trash. The trash is recycled at these sites. While implementing this process may seem simple, it only solves a portion of the problem and creates others. Smart cities and communities, as well as water, waste management, and other industries have benefited from the Internet of Things (IoT). As well as its strengths are the high impacts it makes on daily life and the potential user's behavior. It must be energy-efficient, capable of communicating and sharing information across extended coverage, though, in order to be effective and increase its adoption. In the past, similar technologies were used, but they had drawbacks such as poor sensing accuracy due to varying weather conditions, unauthorized access by users, and short range capabilities. It is therefore necessary to improve and innovate in this area.*

Keywords : *IOT, smart waste management system, loopholes.*

Introduction : In the Internet of Things (IoT), physical objects and devices are networked and capable of interfacing with each other[1]. There are many types of physical objects and devices included in a network, including devices, machines, homes, and soon robots, all equipped with sensors, software, and network connectivity, which allows them to exchange information. Any natural or artificial object with a unique identifier like a number, name, or address and the capability to share data over the Internet is considered a 'thing' in IoT[2]. There has been considerable interest in IoT in several industries today and it has long been regarded as one of the most promising areas of technology for the future.

In order for IoT to provide true value to enterprises, connected devices must interact and integrate with their operations and systems[3]. IoT has led to a proliferation of devices, and these new smart IoT devices have been tagged as smart, capable of sensing, computing, communicating, and seamlessly integrating with the environment around them. As far as lifespan, resource capabilities, and communication technologies are concerned, smart devices consist of electronic components that are considered sensory swarms and heterogeneous in nature. Further, it is predicted that in the near future, smart devices will surpass traditional devices in accessing the Internet. In particular, it has been

* ***Research Scholar, Department of Computer Science & IT, Magadh University, Bodh Gaya***

** ***Assistant Professor, Department of Computer Applicatons Gaya College, Gaya Bihar***

*** ***Research Scholar, Department of Computer Science & IT, Magadh University, Bodh Gaya***

estimated that there will be 36 billion smart devices connected to the Internet by 2022[4]. A variety of applications are being used with IoT today, including monitoring the environment, smart logistics, automotive, power grids, smart cities and communities, healthcare, video surveillance, devices for monitoring waste, and smart meters. As one of the most common IoT applications in smart cities, waste management is one of the most commonly addressed areas due to its high impact on everyday life and the behavior of potential users.

There is an ever-increasing population, resulting in more waste being generated on a daily basis. Nonetheless, cities face the challenge of ensuring that these wastes are effectively managed. There are very limited approaches to managing wastes and they require a great deal of human effort. Therefore, some government or organization officials are unable to track and monitor waste generation in cities, resulting in unhealthy living conditions. As a result, keeping the environment clean is important for the health of the people and the reputation of the entire city[5]. Waste management has become a viable solution when using IoT-enabled solutions like Lower-Power Wide Area Networks (LPWAN) with long-range (LoRa) technology without human intervention. LoRa is a wireless, long-ranged, low-power, unlicensed IoT technology that operates in the industrial, scientific, and medical band (ISM). The technology offers cost-effective benefits as well as the ability to eliminate repeaters, extend battery life, improve network performance, and support heterogeneous devices[6]. The LoRa technology has enabled several IoT-enabled city waste management solutions. There are strengths and weaknesses to each of these solutions, both in terms of their design and operational approaches.

Objectives : We need to address waste smartly since it is a crucial issue. To make recycling and processing waste easier, we segregate waste at home. There was an irregularity between trash vans and homes, causing households to be spoliated. The overflowing of dustbins leads many civilians to dump them in open areas as a result. Pollution in the environment increases as a result. The Internet of Things has improved communication and information sharing over long distances while consuming less power because of its long-range communication paradigm. The purpose of this paper is to develop a smart waste collection system that utilizes IoT technology. The objective was to identify the technology used and loopholes in it.

Literature Review : The idea of an IOT-based dustbin is not a new one, IOT-based dustbins have been implemented and implemented much earlier[7]. There have been reports of systems where sensors in bins are used to determine if they are full or not. Through the Arduino SIM module, which used the Arduino board application, an automated message was sent if it was filled. In a case where the worker is available, the server forwards the message to him/her, who will proceed to the required address once notified of the message by the server. Another worker would be assigned the work if the worker was not available.

Smart dustbins were also used in real-time waste management by some authors for monitoring dustbin fill levels[8]. An individual can access information regarding all smart dustbins from anywhere at any time, so that appropriate action can be taken. Through the implementation of this proposed system, costs can be reduced, resources can be optimized, and smart dustbins can be used effectively. As a result, the city's traffic was indirectly reduced. Depending on the population of a particular area, garbage collection vehicles visit the area twice or thrice daily in major cities[9]. Each dust bin's status was informed in real time by the System so that the garbage collection vehicle could be sent only when the dustbin was full. The implementation of IR sensors, microcontrollers and Wi-Fi modules in a smart garbage management system is proposed.

By using this system, dustbins were cleaned quickly when garbage levels reached their maximum. The contractor who failed to clean the dustbin within the specified timeframe was disciplined by a higher authority[10]. In addition to monitoring fake reports, this system also reduced corruption in the overall management system. In the end, it helped to keep the society clean. Later on, dustbins equipped with Wi-Fi routers were introduced. Passive infrared sensors were used in the dustbin.

A temporary connecting code was displayed on the Wi-Fi router. A PIR sensor detects trash thrown into the dustbin and sends signals to the microcontroller. Upon detecting the signals, the microcontroller forwarded them to the router device. Once the signals were verified and random codes were generated, the router forwarded them again to the microcontroller. Forwarded by the microcontroller to the LCD display, the signals were scanned. Displayed on the LCD screen was this information. The user entered the random code generated by the router on the PHP interface hosted on the server. A Master Wi-Fi password was returned by the server after the request was made. The user connected to the internet by using the Master Wi-Fi password. The internet connection was disconnected after 10 minutes.

Application of IOT Based Smart Waste Management System

- The collection of wastes can be better managed by municipal corporations using this method[11].
- It is possible to guide trucks onto shortest cuts of land by using GPS and software applications (SA).
- As well as the "SMART CITY" project, "DIGITAL INDIA" is also supported.

An IOT-based Smart Waste Management System Uses the Following Equipment

GARBAGE CONTAINER : Usually made of metal or plastic, waste containers are used to temporarily store waste. A curbside dustbin usually consists of three types: trash cans, dumpsters, and wheelie bins[12]. A trash can is made from metal or plastic, whereas a dumpster is a large receptacle that looks like a skip. The contents of these containers are emptied by collectors, who then transport them to a landfill, incinerator, or crushing plant for disposal.

Fig. 1 : DUSTBIN

ULTRASONIC SENSOR : The ultrasonic proximity sensors use special sonic transducers that allow them to transmit and receive sound waves in alternate directions. When the transducer emits sound waves, an object reflects them back to the transducer[13].Ultrasonic sensors switch from emitting to receiving sound waves once they have emitted them. In proportion to the object's distance from the sensor, the elapsed time between emission and reception increases.

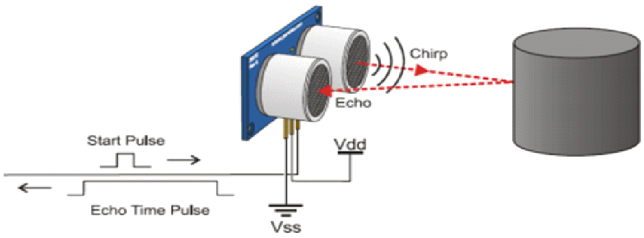

Fig. 2 :

WORKING OF SENSOR : It is possible to measure the distance between a source and a target using ultrasonic sensors that create high-frequency sound waves and analyze the echo they receive.

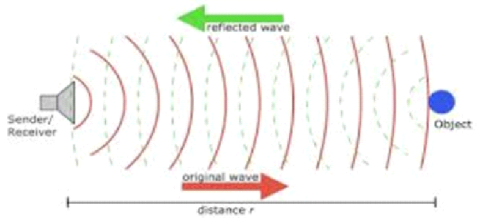

Fig. 3 : PRINCIPLE OF SENSOR

ARDUINO BOARD : A microcontroller-based kit by Arduino lets you create digital devices, interactive objects, and detect and control physical objects using an open-source computer hardware company and community[14].Several microcontroller board designs have been developed by several vendors using a variety of microcontrollers, which is the basis of the project. Various expansion boards (also called shields) and other circuits can be interfaced with these systems' digital and analog I/O pins. For loading programs from personal computers, some boards offer serial communication interfaces, including USB ports. In order to program the microcontrollers, the Arduino project provides an integrated development environment (IDE) based on Processing that supports C, C++, and Java programming languages[15]. In 2005, Arduino was introduced so novices and professionals could design and manufacture interactive devices with low-cost sensors and actuators. Thermostats, motion detectors, and simple robots are common examples of such devices targeted at beginning hobbyists.

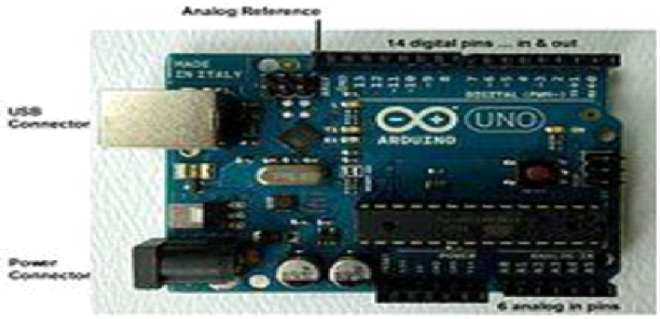

Fig. 4 :

The Arduino integrated development environment (IDE) allows you to develop cross-platform applications for Arduino platforms[16]. A variety of languages can be used with this IDE, which originated from the IDE for Processing and Wiring. Newcomers who are unfamiliar with software development can learn programming through this course. The simple one-click mechanism simplifies the compilation and loading of Arduino programs, by highlighting syntax, matching braces, and automatically indenting. A sketch is a program that you write using Arduino's IDE. It uses special rules to organize code in C and C++, which are supported by the Arduino IDE.

GSM MODULE : In In July 1991, the European Telecommunications Standards Institute (ETSI) deployed the first digital cellular network in Finland, the GSM (Global System for Mobile Communications, originally Groupe Special Mobile), which describes protocol specifications for second generation (2G) digital cellular networks[17]. As the world's leading mobile communication standard, it has over 90% market share in over 219 countries and territories today.

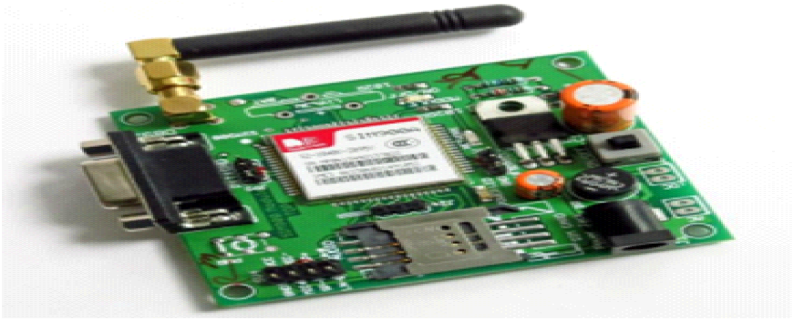

Fig. 5 : GSM MODULE

For their carrier frequency range, most 2G GSM networks use frequencies between 900 MHz and 1800 MHz. UMTS and GSM frequencies are used for 2G and 3G GSM networks, respectively[18].It is for this reason that Canada and the United States allocated 850 MHz and 1900 MHz bands instead of using them where they were already allocated. Since first generation systems previously used 400 and 450 MHz, it is rare for countries to assign them.

BREAD BOARD : Electronic prototypes are made using breadboards. A bread board was originally a polished wooden piece used to slice bread[19]. Nowadays, the term "breadboard" refers to an array of terminals that do not require solder. Solderless breadboards have been available since the 1970s. As a synonym for "prototype", "breadboard" can also be used. Unlike soldering breadboards, solderless breadboards are reusable. This makes it easy to experiment with circuit design and create temporary prototypes. As a result, students and technological educators are very fond of solderless breadboards[20]. This property was not present on older breadboard types. Prototyping printed circuit boards, such as stripboards (veroboards), cannot be reused easily after building a semipermanent prototype. It is possible to prototype a wide range of electronic systems using breadboards, which include circuit boards, digital circuits, and central processing units (CPUs).

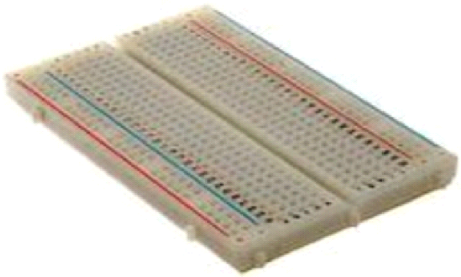

Fig. 6 : BREAD BOARD

Perforated plastic blocks with spring clips plated in tin or nickel silver alloy are used in modern solderless breadboards[21]. Tie points and contact points are both terms used to describe the clips. The specification of the breadboard often specifies how many tie points it has. The lead pitch (space between clips) is typically 0.1 in (2.54 mm). Integrated circuits (ICs) straddling a block's centerline can be inserted using dual in-line packages (DIPs)[22]. The remaining free holes can be filled with a variety of connecting wires and discrete component leads (such as capacitors, resistors, and inductors). Any of the holes may be used for discrete components or connecting wires if ICs are not used.

JUMP WIRES : The jumper wires for solderless breadboarding can be manufactured manually or come in ready-to-use jumper wire sets[23]. It can be challenging when working with larger circuits. The ends of some jump wires are fitted with tiny plugs that make them ready to use. Solid copper tin-plated

wire, 22 AWG (0.33 mm2) is usually a good selection for ready-made or homemade jump wires unless tiny plugs are attached. It is recommended that wire ends be stripped between 3/16 in and 5/16 in (4.8 to 7.9 mm). In the case of shorter stripped wires, insulation might be caught in the spring clips on the board (bad contact). It is more likely that a short-circuit will occur on a board when the stripped wires are longer. In particular, when inserting or removing wires from crowded boards, needle-nose pliers and tweezers should be used.

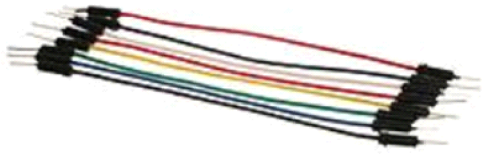

Fig. 7 : JUMP WIRES

Consistency is often achieved through using different colored wires and color-coding. While there are many types of signals and paths, the number of available colors is normally much lower. There are usually three wire colors allocated to main signals, supply voltages, and ground (such as red, blue, black), as well as for supply voltages and ground (such as red, blue, black).

Loopholes in Smart Waste Management System : Waste is disposed of in trash bins near its point of creation as part of the waste management process. Following pickup, the trash is transported to temporary collection sites by trucks[24]. The trash is recycled from these sites. Although the implementation of this process appears simple, it poses other issues and is only a partial solution.

Smart Sensors are Misunderstood in the Following Ways : There is a general misunderstanding of how this technology works since it is new and emerging. Waste disposal is often perceived as complicated and expensive, but it is not[25]. Their affordability, ease of use, durability, and cost-saving characteristics make them a very good choice.

The Smart Sensor is Set up in the Following Way : There is no single smart sensor that can be installed on any waste bin, regardless of how easy it is to use. It is also necessary to ensure that your sensor has a communication technology in place after purchase to ensure its effectiveness. Your garbage bin is monitored by this device, which also sends alerts to appropriate ports.

Routes that are not Optimal for Trucks : The use of excessive fuel is a result of poorly optimized truck routes. It is also possible that some bins are over-filled and others under-filled due to this. The environment is polluted and the aesthetic quality of overfilled bins is poor.

The Recycling Process : The solution does not end with smart technology. Other parts of the process involve properly disposing of wastes and sorting recyclable wastes[26]. From their creation points, all trash is disposed of in one bin, so the waste management company is responsible for sorting it. Manual sorting is the predominant method, so it takes a long time. Recycling used products, however, might be easier with an automated lifecycle management system[27]. In addition to the materials used to make the product, technical information about it, such as how it should be recycled, will greatly improve the recycling process.

Bins are not Distributed Uniformly When it Comes to Waste : Due to the simple distance measurement used by most smart sensors, it is possible for the sensors to read a full bin when it is only half full, even if trash was deposited unevenly in the bin.

Conclusion : It is imperative that waste management play a crucial role in transforming traditional cities into smart cities in order to achieve sustainability, boost public spending efficiency, improve urban mobility, and reduce the impact on the environment. Using the Internet of Things to manage

waste, intelligent waste management systems have been studied in recent literature to investigate variant characteristics. We described some useful application models related to waste management as well as the main search motives associated with the deployment of IoT infrastructures. A literature review was conducted to describe solutions to identified problems, analyzing, analyzing, and processing collected data in the process of obtaining an efficient solid waste handling solution. Through the use of IoT, waste containers can be tracked, garbage is monitored, locations with the highest demand can be identified, the shortest route for optimizing solid waste collection can be suggested, or citizens can be contacted to encourage the disposal of trash during times when the containers are available to receive it, which promotes citizenship and prevents significant problems caused by accumulating garbage outside of garbage collectors. Increasingly interconnected IoT devices are managing urban operations every day, improving citizen experiences and reducing carbon footprints. As a result, IoT will need more support from public and private sectors in order to make further inroads into waste management efficiency. This includes increased regulation and incentives, as well as greater innovation and engagement with various state agencies to build a more sustainable future using IoT applications.

Reference

1. Tayyaba, S.K., Shah, M.A., Khan, O.A., Ahmed, A.W., Software Defined Network (sdn) Based Internet of Things (IOT) A Road Ahead, In Proceedings of the International Conference on Future Networks and Distributed Systems 2017 Jul 19, pp. 1-8

2. Perwej, Y, Abou, Ghaly, M.A., Kerim, B., Harb, H.A., An Extended Review on Internet of Things (IOT) and its Promising Applications, Communications on Applied Electronics (CAE), ISSN. 2019 Feb :2394-4714.

3. Lee, I, Lee, K., The Internet of Things (IOT) : Applications, Investments, and Challenges for Enterprises, Business Horizons, 2015 Jul. 1; 58(4) : 431-40

4. Sharma, N., Shamkuwar, M., Singh, I., The History, Present and Future with IOT, InInternet of Things and Big Data Analytics for Smart Generation 2019, pp. 27-51

5. Queralta, J.P., Gia, T.N., Zou, Z., Tenhunen, H., Westerlund, T., Comparative Study of LPWAN Technologies on Unlicensed Bands for M2M Communication in the IOT : Beyond Lora and Lora WAN. Procedia Computer Science, 2019 Jan., 1; 155 : 343-50

6. Mdukaza, S., Isong, B., Dladlu, N., Abu-Mahfouz, A.M., Analysis of IOT - Enabled Solutions in Smart Waste Management, In IECON 2018-44th Annual Conference of the IEEE Industrial Electronics Society 2018 Oct. 21, pp. 4639-4644, IEEE.

7. Murugaanandam, S., Ganapathy, V., Balaji, R., Efficient IOT Based Smart Bin for Clean Environment, In 2018 International Conference on Communication and Signal Processing (ICCSP), 2018 Apr. 3, pp. 0715-0720. IEEE

8. Abuga, D., Raghava, N.S., Real-Time Smart Garbage Bin Mechanism for Solid Waste Management in Smart Cities, Sustainable Cities and Society, 2021 Dec. 1; 75 : 103347

9. Bano, A., Uddin, I., Al-Huqail, A.A., AIOT - Based Smart Bin for Real-time Monitoring and Management of Solid Waste, Scientific Programming, 2020 Dec. 29; 2020

10. Padal, J.R., C.M., Salado, M.J., Sobejana, N.P., SPAMAST Smart Garbage Bin Monitoring System Using Wireless Sensor Network, Journal of Engineering Research and Reports, 2019 Aug, 6 (3) : 1-6

11. Rahman, Md., Nejhum, Kanti Das, Fardin Rizvy Rahat, and Shamsul Arefin Alif, "Waste Management System Using RFID and Ultrasonic Sensor," Ph-D. diss., Brac University, 2022.

12. Abdullah, N., Alwesabi, O.A., Abdullah, R., IOT-based Smart Waste Management System in a Smart City, InInternational Conference of Reliable Information and Communication Technology, 2018 Jun, 23, pp. 364-371, Springer, Cham.

13. Latha, N.A., Murthy, B.R., Kumar, K.B., Distance Sensing with Ultrasonic Sensor and Arduino. International Journal of Advance Research, Ideas and Innovations in Technology, 2016; 2 (5) : 1-5

14. Jivani, M.N., GSM Based Home Automation System Using App-inventor for Android Mobile Phone, International Journal of Advanced Research in Electrical, Electronics and Instrumentation Engineering. 2014 Sep., 3 (9)

15. Zlatanov, N., Arduino and Open Source Computer Hardware and Software, J. Water, Sanit. Hyg. Dev. 2015 Nov. 10 (11) : 1-8.

16. Jaldén, J., Moreno, X.C., Skog, I. Using the Arduino Due for Teaching Digital Signal Processing, In 2018 IEEE International Conference on Acoustics, Speech and Signal Processing (ICASSP) 2018 Apr. 15, pp. 6468-6472, IEEE.

17. Fuentelsaz, L., Maícas, J.P., Polo, Y., The Evolution of Mobile Communications in Europe : The Transition from the Second to the Third Generation, Telecommunications Policy, 2008 Jul. 1; 32(6):436-49.

18. Gati, A., Conil, E., Wong, M.F., Wiart, J., Duality Between Uplink Local and Downlink Whole-body Exposures in Operating Networks, IEEE Transactions on Electromagnetic Compatibility, 2010 Sep. 20; 52(4) : 829-36.

19. Varghese, Bright, Gee, Jaickey, Joy Minj, and Likhith Reddy, "Smart Waste Management Using Internet of Things," 2020

20. Chamakura, Venkata Naga Krishna Vamsi, and VamshhiMallula, "Detecting Object Position Using Sensor Data," 2022.

21. Anitha, A., Garbage Monitoring System Using IOT, In IOP Conference Series : Materials Science and Engineering, 2017 Nov., 1 (Vol. 263, No. 4, p. 042027), IOP Publishing.

22. Okello, Walter, and Daud Mohamed, "A Mobile Phone Jammer System Using gsm 900 Frequency," 2015.

23. Zhe, Lau We, Athanaius Mckennzy Duat, Jerome Giovanie Anak ASAP, and Dr. Norasiah Binti Muhammad, "Rfid Grocery Cart," 2020

24. Shamin, N., Fathimal, P.M., Raghavendran, R., Prakash, K., Smart Garbage Segregation & Management System Using Internet of Things (IOT) & Machine Learning (ML), In 2019 1st International Conference on Innovations in Information and Communication Technology (ICIICT) 2019 Apr. 25 (pp. 1-6). IEEE.

25. Esmaeilian, B., Wang, B., Lewis, K., Duarte, F., Ratti, C., Behdad, S., The Future of Waste Management in Smart and Sustainable Cities : A Review and Concept Paper, Waste Management, 2018 Nov. 1; 81 : 177-95.

26. Gupta, P.K., Shree, V., Hiremath, L., Rajendran, S., The Use of Modern Technology in Smart Waste Management and Recycling : Artificial Intelligence and Machine Learning, In Recent Advances in Computational Intelligence, 2019, pp. 173-188, Springer, Cham.

27. Mingaleva, Z., Vukovic, N., Volkova, I., Salimova, T., Waste Management in Green and Smart Cities : A Case Study of Russia, Sustainability, 2019 Dec. 21; 12 (1) : 94

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 166-173

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

A Study of Attitude of Principals of Government Higher Secondary School towards the Teaching Strategies of their Probationary Teachers in Bihar

*B. Anamika** *Dr. Jaydev Pati***

Abstract : *The present study aimed to assess the level of the attitude of higher secondary school principals and to study the differences in attitude of higher secondary school principals towards probationary teachers In the present study 40 principals and 200 probationary teachers of forty government higher secondary school from Patna, Bihar where selected by using simple random technique.*

The principals of schools have different attitude towards teaching strategies of probationary teachers. As an individual aspect of attitude, it endures the organization of motivation, emotion, perceptual and cognitive processes. The core of attitude is the concept of the state of readiness. As the literal meaning, it is known as, "position assumed to serve some purpose". In some particular manner it is a predisposition to perceive, feel or behave towards specific objective or particular manner. Developing the appropriate attitude towards teaching is vital for the good impact for the teacher training programme. The teaching attitude is also dependent on the observation of principals of any school as the head of any school and different socio-economic and demographic variable of teachers which have been examined by the investigator in this study.

The principals of higher secondary schools showed a moderate level of attitude in every dimensions such as workability, self discipline, confidence, self – support , determination and attitude.Male and female principals of higher secondary school differ in persistence of attitude in demographic variable gender. Male principals mean score was greater than female principals mean score. Married principals showed high mean score than single marital status principals. Subject stream science and arts differ in mean score and arts group principals showed high mean score than science stream principals. Demographic, social and educational factors influence the attitude of principals towards teaching strategies of probationary teachers in higher secondary schools of Bihar.

Key Words : *Attitude, Principal, Probationary Teachers, Higher Secondary School.*

Intoduction : A school principal has magnificent role in shaping the vision facilitating the success of a school, teachers and its students. The principal leads the whole school system which includes teachers, students, non-teaching staffs, parents and the community partners. A school principal is the liaison between the school and the community leaders. All administrative works related to teachers, students and staff are managed by the principal of school. Academic leadership leads the principal to oversee every aspects of academia in school. Principal evaluates the teachers specially the probationary teachers very carefully. Principal may conduct classroom observations to assess the probationary

* ***Research Scholar, Department of Education, Education Magadh University Bodh Gaya***

** ***University Professor, Department of Education, Education Magadh University Bodh Gaya***

teachers and the students. School principals also arrange learning opportunities especially for probationary teachers, such as professional development, training and conference attendance, invite guest speakers for students.

Thus, to make an impact as the head of a school, principal carries characteristics of leadership, communication, innovation, trustworthiness, fairness, enthusiasm, motivational and flexible. This study will help the principals of schools to understand their attitude towards teaching strategies of probationary teachers. Help them to maintain the balance between work and leisure and they may be able to manage time and resources effectively. Principals may know their level of attitude based on the sub-components viz., leadership, administration, advocate and representative. It will improve the quality of teaching and learning, courses and the student's achievement through teaching styles using different teaching strategies of probationary teachers and also increase the critical thinking skills, decision making skills, problem solving skill, reasoning, knowledge, and experience. Probationary teachers may know how far they are capable of adapting the instructional strategies and teaching styles in the most appropriate way and get an insight on the focal issues in knowing the students' strengths and weakness with the help of teaching strategy. So this study will be helpful for probationary teachers to encourage their teaching with using different teaching strategies which in turn will create a healthy and better future for them. Therefore, researcher decided to find out the answers of research questions mentioned below with the help of this study.

Attitude : The word attitude can be defined as 'within the frame work of social psychology a subjective or mental preparation for any action'.

Principal : A school principal is magnificent for playing an important role in shaping the vision facilitating the success of a school, teachers and its students. The principal leads the whole school system which includes teachers, students, non-teaching staffs, parents and the community partners.

Higher Secondary School:- Education is the process of imparting and gaining knowledge through teaching and learning. And, school is the places where students go through the formal teaching learning. Every levels of education bring maturity among the students, but secondary level education motivates the realistic behavior of life among the students and prepares them for a bright future. Thus, secondary school students in this study refer to those students who are studying in class XIand XII.

Probationary Teachers:- The term is self-explanatory. Probation means, 'a process of testing or observing the character and abilities of a person new to teaching job. It refers to the certain time period a teacher receives after she/he entered the teaching profession. The probation period for schoolteachers appointed through direct recruitment process is for two years in state of Bihar.

Review of Literature

- Faiza Shaheen, Mahvish Fatima Kashif, Husna Daud, and Mariam Tariq (2016) investigated "Attitude of Prospective Teachers towards Teaching Profession". Data was collected from 300 student teachers (28 male and 272 female), Lahore. The result was found that there was no significant difference in the attitude on the basis of program and gender of pre-service teachers. The study can be more elaborative when some in depth qualities study on attitude of prospective teachers.

- Hasan Aydin, and Dolgun Aslam (2016) studied on "Determining Attitudes towards Pedagogical Teacher Training: A Scale Development Study". This study was helping to determine the attitudes of teacher candidates towards the Pedagogical teacher training. The purpose of the study measurement tool scan is utilized in future studies. The study showed that the attitude scale towards pedagogical teacher training was a valid and reliable tool.

- Fatma Kayan Fadlemula (2015) conducted a study on "Pre-service Teachers' Learning styles and Attitude towards Teaching Profession". A sample of 1321 pre-service teacher, studying in middle sized public University, located in the Mediterranean region of Turkey. Results revealed that pre-service

teachers mainly had converging and assimilating learning styles and they showed positive attitude towards teaching profession. Another one result found that there were significant differences in pre-service teacher's attitude sores considering their gender, teaching program, grade level, grade point average, and type of graduated high school.

- Jamwal et al. (2015) examined "Attitude of Potential Instructors towards Teaching". The most finding of the study became that there has been no large difference between attitude of potential male and female teachers towards component coaching. It is additionally exhibits that prospective teachers have high level of coaching and their attitude does not dissent with relevance variable sex.
- Daniel Andronache, MustaBocos, Victor Bocos and Cecilia Macri (2014) had undertaken a study on "Attitude towards Teaching Profession". The sample of subject involved in the study was compared of graduate students in educational sciences. The study demonstrated that there was a significant positive correlation between the size of the behavior and cognitive dimensions and also emotional dimension.
- Yuksel Gunduz (2014) studied "Factors that Contribute to Teacher Candidates' Attitudes towards Teaching Profession". The sample consists of 849 teacher candidates from various Universities. The study concluded that female teacher candidates had more positive attitudes towards teaching profession. The teacher candidates whose families have lower levels of income had more positive attitudes towards the profession. Students' attitudes towards teaching profession did not vary across gender variable.
- Oya Taneri, Funda Nayir, and Gerry Mcnamara (2014) had conducted on "Teacher Candidates' Attitudes towards the Teaching Profession-Worrying Trends" to investigate the attitudes of teacher candidates towards the teaching profession, and to explain the worrying trends about teaching in Turkey and Ireland. The sample size was 298. It was found that the results of the study will help educators and researchers to understand whether the teacher training institutions help the teacher candidates to have positive attitudes towards the teaching profession.
- Barwal (2011) in her study revealed that there exists significant difference in the attitude of male and female, graduate and post graduate, rural and urban secondary school teachers towards their teaching profession.
- Mehmet Ustuner et al (2010) examined "Attitude of Prospective Teachers towards the Profession of Teaching". The study found that there was a significant difference was found in gender, the type of the departments, program in the university entrance examination preference list, and the socio – economic status (SES) of the neighbourhood and family they live in.
- Sakshi Sharma and Jitender Kumar (2019) conducted a study on "Teaching Attitude of Student Teachers" the sample size was 290 student teachers from Rohtak. The sample was equally divided to gender, social strata, age, stream of education and previous job experience. The study revealed that there was a significant difference between male, female, arts, science subject streams. The major finding was found that there was a high significant difference in age.
- Sayedil Islam and Asikul Ansari (2018) conducted "A Comparative Study of Attitude towards Teaching Profession of Male and Female B.Ed. and M.Ed. Students of Aligarh Muslim University". Researcher selected 200 students from department of education in Aligarh Muslim University. The study explored that the attitude of trainee teachers towards teaching profession as per their course of study. The result was a significant difference of attitude among the female and male trainee teachers.
- Sivakumar, A. (2018) studied "Attitude towards Teaching among School Teachers in Coimbatore District", survey method was used for the study. 287 school teachers selected as sample. Result was found that the level of attitude towards teaching among school teachers was favorable.
- Ram Niwas (2018) conducted a study on "Teaching Competency in Relation with Attitude towards Creative Teaching of B.Ed. Trainee- Teachers", the sample size was 264 B.Ed. traineeteachers in various teachers training institutions. Based on the study, result was found that the influence of teacher training programme on attitude towards creative teaching of science stream was highest with comparison

of Humanities stream trainee teachers. There was a positive relation in the teaching competency with attitude of trainee teachers towards their creative teaching.

Rationale of the Study : Children are the future and future citizens of the country. Therefore, it is necessary to ensure that the probation period of government school teachers should be made highly effective to ensure the all round development of children. For this purpose, it was important to identify the basic attitudes of probationary teachers which resulted in making them very effective as teachers. Hence, it was felt important to assess the extent to which the various independent variables influence the teaching attitude of probationary teachers even as to make good about the shortcomings observed amongst the demographically less advantaged probationary teachers. Thus, the present study was carrying out to a study on attitude of principals towards the teaching attitude of probationary teachers.

Objectives of the Study : Following were the objectives of the study:

1. To assess the level of the attitude of higher secondary school principals.

2. To study the differences in attitude of higher secondary school principals towards probationary teachers.

Hypotheses of the Study : Following were the null hypotheses of the present study-

H_1 There is no significant difference between the attitude of principals of higher secondary schools towards teaching strategies.

H_2 There is no significant difference between teaching attitudes of probationary teachers.

Ho_3 There is no significant difference between the attitude of principal towards probationary teachers.

Ho_4 There is no significant difference between teaching strategies of probationary teachers.

Delimitations : The study is restricted to only principals of forty government higher secondary schools of Patna district only.Delimitations show the boundaries of the study keeping in view the shortage of time period and resources. The area of the study is also limited as-

- The respondents were contacted from Bihar state only.
- The study was delimited to Government higher secondary school only.

Method of the Study : Descriptive survey method was used to conduct the present study.

Population: Principals of 40 government higher secondary schools and 200 probationary teachers of these schools from Patna district only.

Sample : In the present study 40 principals and 200 probationary teachers of forty government higher secondary school from Patna, Bihar where selected by using simple random technique.

Tools Used :

- Standard Tool:- Teaching Attitude Scale by M. Olkin & M. Kaiser "Attitude towards Teaching Profession Scale"
- Teaching Strategy Scale of Probationary Teacher
- Teaching strategy Rank Sheet

The collected data was organized and analyzed by using appropriate statistical techniques such as Mean, standard Deviation and t- test.

Data Collection : The investigator had a personal visit to the government higher secondary schools in Patna, Bihar and collected the information and data with the permission of concerned principals and probationary teachers. For collecting the data investigator visited government higher secondary schools in Patna District, Bihar. In this period a good rapport was established with the probationary teachers and principals of Patna, Bihar.

Statistical Techniques Used in the Study : The collected data was organized and analyzed by using appropriate statistical techniques such as Mean, standard Deviation and t- test.

Results and Discussion : Hypotheses were analyzed and discussed separately one by one.

Table 1.1 : Shows the Level of Principals Attitude in Different Dimensions

Sl. No.	DIMESIONS	N	MEAN	SD	LEVELS
1.	Workability	40	31.84	6.36	MODERATE
2.	Self Discipline		49.17	9.41	MODERATE
3.	Confidence		31.33	6.12	MODERATE
4.	Self Support		47.00	9.17	MODERATE
5.	Determination		27.87	5.57	MODERATE
6.	Flexible Attitude		36.51	7.32	MODERATE

The above table presented the moderate level of principals attitude towards probationary teachers in every dimension such as workability, self discipline, confidence, self support, determination and flexible attitude.

Table - 2 : Shows the Level of Teaching Strategy of Probationary Teachers

Sl. No.	DIMESIONS	N	MEAN	SD	LEVELS
1.	Expertise Strategy	200	36.51	7.32	MODERATE
2.	Class Authority strategy		32.67	6.32	MODERATE
3.	Attitude Strategy		53.13	9.62	MODERATE
4.	Resource person strategy		55.53	9.64	MODERATE
5.	Representative strategy		60.53	7.71	MODERATE
6.	Teaching Style Strategy		43.52	8.10	MODERATE

The above table showed the moderate level of different teaching strategies used by the probationary teachers in every dimensions such as Expertise Strategy, Class Authority Strategy, Individual Strategy, Resource person Strategy and Teaching Style Strategy.

Table - 3 : Presented the Overall Mean Scores and Standard Deviation of Principals Attitude

SL.NO	Demographic Variables	Sub samples	N	Mean	SD
1.	Gender	Male	134	21.60	3.28
		Female	66	14.20	3.13
2.	Locality	Rural	70	14.80	1.92
		Urban	130	27.4	2.70
3.	Marital Status	Single	52	18.08	2.48
		Married	148	26.4	3.04
4.	Family Type	Nuclear	59	17.60	2.07
		Joint	141	26.2	3.50
	Teaching	10-20 years	75	19.81	2.17
5.	Experience	20 -30 years	125	22.40	3.45
6.	Age	30-40 years	30	13.60	2.30
		40 -50 years	50	15.00	3.53
		50 years above	120	20.9	3.23
7.	Educational Qualification	PG	147	27.4	2.70
		PG and Others	53	14.13	1.95
8.	Subject Stream	Science	94	19.80	2.38
		Arts	106	20.80	2.61

The above table 3 presented the overall mean score and standard deviation of principals attitude towards teaching strategy of probationary teachers . As per dimension gender male principals have high attitude with a mean score of 21.60. As regard to the dimension locality principals from the urban locality's attitude was high with the mean score of 27.4. Regarding marital status married principals have the high mean score of 26.4 than the single principals. Mean score based on family type joint family belonging principals have more mean score 26.2 than nuclear type family principals. With respect to teaching experience dimension principals who had experience of 20 to 30 years had high mean score of 22.40 than principals had experience of 10 to 20 years. With respect to the dimension age principals in above 50 years age group's attitude had high mean score of 20.9 than the other two

age group of principals. In the dimension educational qualification principals who were PG had high attitude with mean score 27.4 than PG and others. Regarding the subject stream the principals from arts group had high mean score of 20.8 than science stream principals.

Findings and Discussion on the basis of analysis of data the findings are stated as below :

1. The principals of higher secondary schools showed a moderate level of attitude in every dimensions such as workability, self discipline, confidence, self – support , determination and attitude.

2. The principals attitude towards probationary teachers had shown in six dimensions where the mean score of different dimension was measured workability 31.84, self discipline 49.17, confidence 31.33, self support 47.00, determination 87.87 and attitude 36.51.

3. The overall mean score and standard deviation of principals attitude through different demographic variables towards teaching strategy of probationary teachers as per dimension gender male principals have high attitude with a mean score of 104.46. As regard to the dimension locality principals from the rural locality's attitude was high with the mean score of 19.6. Regarding marital status married principals have the high mean score of 55.20 than the single principals. Mean score based on family type joint family belonging principals have more mean score 20.20 than nuclear type family principals. With respect to teaching experience dimension principals who had experience of 1 to 20 years had high mean score of 97.24 than principals had experience of 21 to 40 years. With respect to the dimension age principals in above 25 to 45 years age group's attitude had high mean score of 103.8 than the other two age group of principals. In the dimension educational qualification principals who were PG B. Ed had high attitude with mean score 53.29 than PG and others. Regarding the subject stream the principals from arts group had high mean score of 52.60 than science stream principals.

4. Male and female principals of higher secondary school differ in persistence of attitude in demographic variable gender. Male principals mean score was greater than female principals mean score.

5. The demographic variable habitant in locality manner showed that principals belongs to rural area had high mean score than urban areas.

6. Married principals showed high mean score than single marital status principals.

7. Family type demographic variable also showed high mean score to principals who belonged to joint family.

8. There was an interaction found in the principals who had teaching experience between 1- 20 years and they had high mean score.

9. As per the demographic variable age principals from 25- 45 years age group showed high mean score.

10. PG B. Ed and PG others principals showed the mean difference in educational qualification and principals who were PG B. Ed showed high mean score.

11. Subject stream science and arts differ in mean score and arts group principals showed high mean score than science stream principals.

Conclusion of the Study : In the present study a positive aspect of teaching attitude of probationary teachers' teaching strategies have come out. By selecting the probationary teachers, who have the highest level of teaching attitude would produce good quality of education and turns the result better in performance of higher secondary schools. Thus, the present research has made an attempt to study the principals attitude towards probationary teachers teaching attitude along with their teaching strategies.

BIBLIOGRAPHY

1. Barwal, S.K. (2011), "Attitude of Secondary School Teachers Towards their Teaching Profession", International Journal of Education and Allied Science (IJEAS), Vol-3, Issue-1 (Jan-Jun) / Page 1-200.

2. Faiza Shaheen, Mahvish Fatima Kashif, Husna Daud, and Mariam Tariq (2016), "Exploring the Attitude of Prospective Teachers Towards Teaching Profession", The Sindh University Journal of Education (Suje) Vol. 45 No. 2 (2016)

3. Fatma Kayan Fadlemula (2015), "Pre-service Teachers' Learning styles and Attitude towards Teaching Profession", Eurasian Journal of Educational Research, 15, 88-98.

4. Hasan Aydin, and Dolgun Aslam (2016), "Determining Attitudes Towards Pedagogical Teacher Training : A Scale Development Study", New Frontiers in Education, 44(3), 250-253.

5. Jamwal, A., Kumar, S., Bhat, Z.F., Kumar, A. And Kaur, S. (2015), "The Quality and Storage Stability of Chicken Patties Prepared with Different Additives", Nutrition & Food Science, Vol. 45 No. 5, pp. 728-739.

6. Oya Taneri, Funda Nayir, and Gerry Mcnamara (2014), "Teachers Candidates' Attitudes Towards the Teaching Pofession–Worrying Trends", Turkih Studies J., Vol 9/11, pp. 529-545.

7. Ram Niwas (2018), "Teaching Competency in Relation with Attitude Towards Creative Teaching of B.Ed. Trainee- Teachers", Journal of Education and Practice, Vol.9 (4), pp. 66-72.

8. Sakshi Sharma and Jitender Kumar (2019), "Teaching Attitude of Student Teachers" Pramana Res. J. (9):12 pp. 90-100.

10. Sayedil Islam and Asikul Ansari (2018), "A Comparative Study of Attitude Towards Teaching Profession of Male and Female B.Ed. and M.Ed. Students of Aligarh Muslim University", International Journal of Research in Social Sciences Vol. 8 Issue 2

11. Sivakumar, A. (2018), "Attitude Towards Teaching Among School Teachers in Coimbatore District", Review of Research J. Volume – 7 (10) pp.1-6

12. Ustuner, M. (2017), "Personality and Attitude Towards Teaching Profession : Mediating Role of Self Efficacy", Journal of Education and Training Studies, Vol. 5, No. 9; 2017.

13. Yuksel Gunduz (2014), "Factors that Contribute to Teacher Candidates' Attitudes Towards Teaching Profession", International Journal of Contemporary and Applied Studies of Man, Anthropologist, 18(3): pp. 799-810.

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 174-175

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

बिहार में तसव्वूफ का विस्तार

*डॉ. मो. इस्माइल**

बिहार तसव्वूफ या सूफीवाद का प्राचीन केंद्र रहा है। बिहार में मनेर शरीफ, पटना, गया, बिहार शरीफ ऐसे प्रमुख स्थल हैं, जहाँ बड़ी संख्या में सूफी दरगाह और खानकाह मौजूद रही है। बिहार के सुफी सिलसिलों में चिश्तियाँ, फिरदौसिया, कादरिया, नक्श बंदियाँ सिलसिले के महत्वपूर्ण सुफी और खानकाह महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। बिहार के प्रमुख सूफियों में यहया मनेरी, शर्फूद्दीन यहया मनेरी, शहाब उद्दीन पीर जगजोत, दौलत मनेरी, बीबी कमल आदि सूफियों ने न केवल सूफीवाद की दार्शनिक व आध्यात्मिक विचारों को प्रचार प्रसार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई बल्कि सामाजिक सौहार्द्रता जो सुफीवाद की एक विशेषता थी उसे भी स्थापित करने में अहम भूमिका अदा किया है।

सूफीवाद या तसव्वूफ मूलतः पवित्र कुरान के अनुसार पैगंबर मोहम्मद साहब के द्वारा व्यवहारिक जीवन में अपनाए गए उसे मार्ग का नाम है जिसके अनुसार एक व्यक्ति समस्त सांसारिक चिंताओं से मुक्त होकर संपूर्ण रूप से ईश्वर के समक्ष स्वयं को समर्पित कर देता है। इस तरह सूफीवाद इस्लाम के रहस्यवादी विचारों एवं उदार प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करता है। सूफीवाद मूलतः दार्शनिक व्यवस्था पर टिका हुआ है। इस दार्शनिक व्यवस्था के कारण ही सूफीवाद ने इस्लाम के मूल परंपरागत सिद्धांत (शरीअत) के साथ–साथ रहस्यवाद की आंतरिक गहराई हकीकत से समझौता कर लिया। जिस प्रकार धार्मिक विचारकों ने कुरान तथा इजमा को धार्मिक सिद्धांतों का आधार बनाया है। उसी प्रकार सूफियों ने भी अपना रास्ता कुरान तथा हदीस के भीतर से ही निकाला है किंतु उनके मार्ग व दिशा (तरीकत) हमेशा मेल नहीं खाते।

सूफीवाद के अनुसार मुरीद को ईश्वर की अनुमति प्राप्त करने के लिए कई मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। इस कार्य को सरल बनाने में पीर की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पीर एवं मुरीद परमानंद की अनुभूति के लिए समां का सहारा लेते हैं।परमात्मा,आत्मा,सृष्टि आदि आध्यात्मिक मूल्यों के संदर्भ में सूफियों ने काफी गहराई से ईश्वर की आराधना में मशगूल रहे और आखिरकार सूफी समुदाय दो अलग अलग वर्ग की पैरवी करना शुरू कर दिया। ये दो वर्ग हैं– वहदत उल वजूद और वहदत उश शहुद। वहदत उल वजूद सिद्धान्त का प्रतिपादन इबनूल अरबी (1140–1240) ने किया उन्होने प्रत्यक्ष रूप से इस्लामी शरीयत को चुनौती दी। इस सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर सर्वव्यापी हैं और सब मे उन्हीं की झलक है, उससे अलग कुछ भी नहीं है, सभी मनुष्य समान हैं। मूलतः यह विचार सर्वात्मवादी (pervading in spirit) था अर्थात सभी चीजों में चेतना या आत्मा की अस्तित्व को मानते हैं। इस विचार को मानने वाले सूफी मजारों पर जाकर इबादत करने की पद्धिती की शुरुआत की। शरीयत इस्लाम को मानने वालों द्वारा इसका विरोध किया गया क्योंकि यह इस्लाम के भावना के विरुद्ध था। शेख अलाउद्दीन सिमनानी (क–1336) वहदत उल वजूद के सिद्धान्त को त्याग कर वहदत उश शहुद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। सूफी रहस्यवाद की उच्च स्तरीय अनुभूति से उन्होंने ये बताया की ईश्वर और सृष्टि के बीच अंतर है। वे शरीयत का सख्ती से पालन करते थे।

सूफीवाद के उद्‌गम का पहला केंद्र बसरा और कुफा शहर था। और यही से यह तहरीक दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों में फैली। सूफी मत का प्रथम युग हजरत मोहम्मद साहब से लेकर अब्बासी खिलाफत के दौर तक है। इस युग में सूफियों का अधिक ध्यान शरीअत के प्रत्यक्ष कर्मों की ओर ही रहा। इन सूफियों ने नबी की समस्त क्रियाकलापों को अपनी जीवन शैली का भाग बनाया और उस पर कठोरता से अमल करते रहे। ओवैस करनी,

* *असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, वैशाली महिला कॉलेज, हाजीपुर*

हसन बसरी इस दौर के प्रमुख सूफियों में से थे। आठवीं से नौवीं सदी ईस्वी में से सूफियों ने रियाजतों या साधनाओं पर अधिक बल दिया। जप तप में ज्यादा जुटे। संसार त्याग की भावना बढ़ने लगी। उन सूफियों ने ऐसा इसलिए किया ताकि वे एकाग्र होकर अपने रब से ताल्लुक जोड़ ले। बायजी दवुस्तानी, जुनैद बगदादी इस युग के खास सुफी रहे हैं। दसवीं सदी के दौर में कुरान और हदीस की समस्याओं के हल के लिए फिकहः का निर्माण हुआ। इसके चार प्रधान इमाम थे। अबू हनीफा, इमाम मालिक, इमाम शाफई और अहमद बिन हंबली। इस युग के बुजुर्गों ने यह संदेश दिया कि जब तक अंतः हृदय की पवित्रता नहीं होगी, इंसान के जीवन में प्रसन्नता नहीं होगी। इसके लिए ईश्वर के समक्ष समर्पित होना पड़ेगा और मानवीय चरित्र के स्वभाव का स्तर उच्च करना होगा। 11वीं सदी ईसवी के सूफियों के दरमियान तवज्जो (ध्यान) की अवधारणा विकसित हुई। 12वीं सदी इमाम गजाली और अब्दुल कादिर जिलानी का युग माना जाता है। 13वीं सदी ईसवी के सूफियों में मौलाना रूम और शेख सादी का नाम प्रसिद्ध है। उनके विचारों ने मंगोल जैसे खूंखार बर्बर आक्रमणकारियों को भी इतना प्रभावित किया कि वह इस्लाम धर्म को स्वीकार करने लगे।

इस तरह सूफीवाद की वैश्विक स्तर पर मानवीय अंतर्भावों को काफी प्रभावित किया और सामाजिक सौहार्द्र एवं भ्रातृत्व की भावनाओं के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

संदर्भ–सूची

1. बल्खी, मुजफ्फर, फसीहउद्दीन बल्खी, हयात और कारनामें, डाल्टेनगंज, पलामू, 1988
2. रागिब, उल तिबाह, तारीख अफ़कार व उलूम इस्लामी (अव्वल, दोम), (तर्जुमा इफ्तेखार बल्खी) मरकजी, मक्तबा, इस्लामी, दिल्ली, 1982
3. संदेलवी, सलाम; तजुबी व वज्जीया, नसीम बुकडिपो, लखनऊ, 1976
4. फारुकी, शादाँ; तजकेरानज़्म शुमाल (अव्वल), हमीदी बरकी प्रेस, दरभंगा, 1987
5. नदवी, मौलाना अब्दुलबारी; तज़दीद तसव्वुफ व सुलूक, नामी प्रेस, लखनऊ, 1998
6. अब्दुल गफ्फार, जबान और मसा, सज़बान, शोब, लेसानियात, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, 1974
7. अस्करी, सैय्यद हसन; कम्प्रीहेंसिव हिस्ट्री ऑफ बिहार, भाग–2, खुदा बख्श ओरियंटल पब्लिक लाइब्रेरी, पटना, 1974
8. अस्करी, सैयद हसन; तब्काते बाबरी, खुदा बख्श ओरियंटल पब्लिक लाइब्रेरी, पटना, 1993
9. अस्करी, सैयद हसन; इस्लाम एण्ड मुस्लिम इन मेडिवल बिहार, खुदा बख्श ओरियंटल पब्लिक लाइब्रेरी, पटना, 1989
10. अस्करी, सैयद हसन; सुफिज्म एण्ड हिन्दुइज्म, खुदा बख्श ओरियंटल पब्लिक लाइब्रेरी, पटना, 1984

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Geography : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 176-179

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

बिहार पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव (एक तुलनात्मक और अनुमानात्मक अध्ययन)

*डॉ. आदित्य कुमार**

सारांश : *जलवायु परिवर्तन एक वैश्विक समस्या है। वर्तमान में, विश्व के प्रत्येक देश को जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का सामना करना पड़ रहा है। इस मौसम संबंधी घटना के कारण मौसम के पैटर्न में परिवर्तन आया है, मानसून की बारिशें असामान्य हो गई हैं, और प्राकृतिक आपदाओं की घटनाएँ बढ़ी हैं, जबकि प्रदूषण स्तर अपने उच्चतम स्तर पर है। विश्व और विशेष रूप से भारत ने पिछले कुछ वर्षों में कई प्राकृतिक आपदाओं और उनके संबंधित प्रभावों (जलवायु परिवर्तन के) का सामना किया है। यहाँ बिहार राज्य में जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का अध्ययन (तुलनात्मक और अनुमानात्मक) प्रस्तुत किया गया है।*

मुख्य शब्द : *कृषि, जलवायु, प्राकृतिक जल निकासी प्रणाली, वन, वन्यजीव, स्वास्थ्य जोखिम।*

परिचय : बिहार भारत का सातवाँ सबसे बड़ा राज्य है, जो कुल 96.30 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल में फैला हुआ है। यह एक भूमि–लॉक क्षेत्र है, जो उत्तर में नेपाल, पूर्व में पश्चिम बंगाल, दक्षिण में झारखंड और पश्चिम में उत्तर प्रदेश से घिरा हुआ है। राज्य को बड़े उपजाऊ जलोढ़ भूमि, घने नदी और जल निकासी प्रणाली, समृद्ध जैव विविधता और मजबूत मानव संसाधन क्षमता का आशीर्वाद प्राप्त है। बिहार की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि भी बहुत समृद्ध है। बिहार का जलवायु अर्ध–आर्द्र है, जो कई प्रकार के पौधों की वृद्धि के लिए अनुकूल है। बिहार सब्जियों का तीसरा सबसे बड़ा उत्पादक, फलों का चौथा सबसे बड़ा उत्पादक और लीची, अमरूद, मखाना का सबसे बड़ा उत्पादक है। बिहार की मिट्टी बहुत उपजाऊ है, क्योंकि 2/3 क्षेत्र विभिन्न जलोढ़ मैदानों के अंतर्गत आता है। एनसेप्टिसोल प्रमुख प्रमुख मिट्टी समूह है। कुछ मिट्टी पर्वतीय मिट्टी है, जो हिमालय की तलहटी में पाई जाती है। कुछ मिट्टी दक्षिण बिहार में लेटराइट मिट्टी है।

बिहार में जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में प्राकृतिक संसाधनों पर प्रभावों का अध्ययन भविष्य की रणनीति बनाने में कुछ निर्णायक साक्ष्य प्रदान करता है। बिहार 10.4% वार्षिक की तेज वृद्धि दर की ओर अग्रसर है और कृषि इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, इसलिए यह अध्ययन और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। राष्ट्रीय हित के दृष्टिकोण से, बिहार की उपजाऊ भूमि देश के अन्य हिस्सों की तुलना में कम अवनत है, इसलिए आने वाले वर्षों में बिहार से उत्पादन राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा के लिए एक आशाजनक क्षेत्र हो सकता है। संभवतः अगले पांच वर्षीय योजना में बिहार से उत्पादकता में तेजी देखने को मिलेगी। जलवायु परिवर्तन संभवतः संसाधनों पर नकारात्मक प्रभाव डालने की अधिक संभावना रखता है। जलवायु परिवर्तन के प्रभाव पड़ने की संभावित क्षेत्र निम्नलिखित हैं :–

1. कृषि
2. जलवायु क्षेत्र
3. नदी घाटी और प्राकृतिक जल निकासी प्रणाली
4. बाढ़, सूखा और मौसम में अनिश्चितताएँ
5. वन, वन्यजीव और जैव विविधता
6. मानव जीवनयापन और मानव स्वास्थ्य

* *पी-एच.डी., भूगोल विभाग, बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर*

कृषि और जलवायु परिवर्तन

बिहार में 4 कृषि जलवायु क्षेत्र पहचाने गए हैं। ये हैं –

क्षेत्र 1 : उत्तर समतल

क्षेत्र 2 : उत्तर पूर्व समतल

क्षेत्र 3 : दक्षिण पूर्व समतल

क्षेत्र 4 : दक्षिण पश्चिम समतल।

बिहार का कुल भौगोलिक क्षेत्र लगभग 93.60 लाख हेक्टेयर है, जिसमें से केवल 56.03 लाख हेक्टेयर शुद्ध कृषि क्षेत्र है और कुल कृषि क्षेत्र 79.46 लाख हेक्टेयर है। लगभग 33.51 लाख हेक्टेयर शुद्ध क्षेत्र और 43.86 लाख हेक्टेयर कुल क्षेत्र विभिन्न स्रोतों से सिंचाई प्राप्त करते हैं। प्रमुख खाद्य फसलें धान, गेहूँ, मक्का और दालें हैं। मुख्य ud nh Qly axkuk] vkyw rkd twV gS dqy tula[;k dk 76% कृषि पर सीधे या अप्रत्यक्ष रूप से निर्भर है।

जलवायु परिवर्तन का कृषि पर संभावित प्रभाव :

फसल पैटर्न में परिवर्तन–बिहार के अधिकांश हिस्से में चावल–गेहूँ की फसल प्रणाली अपनाई जाती है। जलवायु परिवर्तन के कारण गेहूँ की जगह धीरे–धीरे मक्का लिया जा रहा है और फसलों की बुवाई का समय भी बदल जाएगा।

उत्पादकता में कमी–जलवायु परिवर्तन के कारण गेहूँ उत्पादन वाले क्षेत्रों में उत्पादन में कमी आएगी। यह आलू, फूलगोभी, और पत्तागोभी जैसी अन्य समशीतोष्ण फसलों के लिए भी सत्य है। चावल के उत्पादन की बात करें तो यह मुख्य रूप से खरीफ मौसम में होता है। बिहार में पिछले कई वर्षों से मानसून अनुकूल नहीं रहा है। यदि मानसून की अनिश्चितता को वैश्विक जलवायु परिवर्तन से जोड़ा जाए, तो हम चावल की उत्पादकता में संभावित कमी का आकलन कर सकते हैं।

कीटों और रोगों में वृद्धि–जलवायु परिवर्तन के साथ कीटों और रोगों की घटनाओं में वृद्धि होने की संभावना है। इससे उत्पादकता में कमी आएगी।

जलवायु परिवर्तन और आर्द्रभूमि : आर्द्रभूमियाँ किसी भी पारिस्थितिकी तंत्र के महत्वपूर्ण घटक होती हैं। भारत में लगभग 4.1 मिलियन हेक्टेयर (Mha) आर्द्रभूमियाँ हैं, जिनमें से बिहार का हिस्सा 0.27 Mha है, जो मुख्यतः उत्तर बिहार में स्थित हैं। जलवायु परिवर्तन का आर्द्रभूमियों पर प्रभाव इनका संकुचन करेगा। इससे आर्द्रभूमि पारिस्थितिकी तंत्र भी deteriorate होगा। जलवायु परिवर्तन के अलावा, कई मानवजनित गतिविधियाँ भी आर्द्रभूमियों को बंजर भूमि में बदलने के लिए जिम्मेदार हैं। आर्द्रभूमियाँ मानवजनित गतिविधियों के कारण सबसे अधिक प्रभावित पारिस्थितिकी तंत्र हैं, जैसे कि भवनों का निर्माण जो प्राकृतिक जल निकासी प्रणाली को बाधित करता है। आर्द्रभूमियों से मिलने वाले प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष पर्यावरणीय लाभ निकट भविष्य में खो जाएंगे। आर्द्रभूमियाँ बड़ी संख्या में लोगों को रोजगार प्रदान करती हैं। यह मछली पालन, कृषि और कई घरेलू उपयोगकर्ताओं के लिए लोगों की आजीविका का स्रोत है। ये स्थानीय जलाशयों के रूप में कार्य करती हैं, अनेक जीवों का घर होती हैं और प्राकृतिक पुनर्चक्रण प्रणाली का हिस्सा होती हैं। आर्द्रभूमियों के संकुचन से पारिस्थितिकी तंत्र का प्राकृतिक संतुलन बिगड़ता है। आर्द्रभूमियों से मछली उत्पादन में कमी आएगी। सबसे खराब स्थिति में, उन क्षेत्रों में गंभीर जल संकट उत्पन्न होगा।

हम पटना के केस स्टडी पर ध्यान केंद्रित करते हैं। पटना बिहार की राजधानी है। 20 वर्ष पूर्व यहाँ कई wetlands थे जहाँ मछली पालन की प्रचुरता थी। लेकिन सरकारी नियामक एजेंसी की कमी और भूमि माफिया के कारण अधिकांश wetlands को आवासीय भूखंडों में परिवर्तित कर दिया गया है, जिससे प्राकृतिक जल निकासी प्रणाली बाधित हो गई है और मजसंदके के पारिस्थितिकी तंत्र में विघटन उत्पन्न हुआ है।

जलवायु परिवर्तन और नदियों के प्रवाह : बिहार एक घने नदी नेटवर्क से समृद्ध राज्य है। नदी गंगा राज्य को दो असमान भागों में विभाजित करती है। उत्तर बिहार का कुल क्षेत्रफल 53,300 वर्ग किलोमीटर है, जबकि दक्षिण बिहार का कुल क्षेत्रफल 40,900 वर्ग किलोमीटर है।

उत्तर बिहार में प्रमुख नदियाँ कोसी, गंडक, बागमती और बुढ़ी गंडक हैं। दक्षिण बिहार में सोन, पुनपुन, और फुलगु जैसी महत्वपूर्ण नदियाँ हैं। ये सभी नदियाँ अपना जल गंगा में प्रवाहित करती हैं। हाल के रुझान दर्शाते हैं कि नदी के प्रवाह में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे हैं।

नदी के चौनल की वहन क्षमता में अत्यधिक कमी आई है, जो कि सिल्टेशन के कारण हुआ है। नदी चौनल को अपनी प्राकृतिक दिशा बदलने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है। इससे निकटवर्ती क्षेत्रों में बाढ़ की स्थिति उत्पन्न हो रही है। जलवायु परिवर्तन के प्रभाव के कारण नदी की वहन क्षमता में और कमी आएगी। अस्थायी नदियाँ और भी सिकुड़ सकती हैं। जबकि स्थायी नदियों का प्रवाह गंगोत्री में ग्लेशियर के पिघलने के कारण बढ़ सकता है।

बाढ़, सूखा और मौसम में अनिश्चितता : उत्तर बिहार में बाढ़ और बिहार के कई जिलों में सूखा एक सामान्य समस्या है। उत्तर बिहार में बाढ़ का कारण कोसी नदी का उफान है, जिसके कारण कोसी को बिहार का दुःख कहा जाता है। कोसी में अधिक सिल्टेशन के कारण नदी का प्रवाह एक नया मार्ग अपनाता है। यह किसी भी संभव मार्ग से बहती है। इसी प्रकार, कई नदियाँ चरम मानसून के मौसम में अपनी क्षमता से अधिक बहती हैं, जिससे कई आस–पास के क्षेत्रों में बाढ़ आ जाती है।

सूखा की स्थिति का भी ऐसा ही हाल है। कई वर्षों से मानसून कमजोर रहा है। मानसून में भी अनिश्चितता बनी हुई है। वर्षा पर निर्भर क्षेत्रों पर अच्छे मानसून की उम्मीद में सबसे बुरा असर पड़ा है। पिछले वर्ष लगभग आधे जिले बाढ़ प्रभावित या सूखा ग्रस्त थे। जलवायु परिवर्तन राज्य में बाढ़ और सूखे की घटनाओं को अधिक बार ला सकता है। इसका सीधा असर राज्य की अर्थव्यवस्था पर पड़ेगा। इस स्थिति में गरीबों पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ेगा।

बिहार में वन क्षेत्र भौगोलिक क्षेत्र का 7.1 प्रतिशत है। हिमालय की तलहटी और छोटानागपुर पठार पर कुछ वन पाए जाते हैं। गंगा बेसिन, तराई और उप–हिमालयी क्षेत्रों में भी कुछ दुर्लभ वन देखे जाते हैं। बिहार के वनों में मुख्यतः आर्द्र पर्णपाती वन प्रकार शामिल हैं, जो राज्य की जैव विविधता को संरक्षित करते हैं। राज्य में 20 आरक्षित क्षेत्र हैं। जलवायु परिवर्तन के प्रभाव के साथ, वन्यजीव, वन और जैव विविधता और अधिक संकुचित हो जाएंगे।

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में, वन्यजीव, वन और जैव विविधता में परिवर्तन होने की संभावना है। कुछ मामलों में यह सकारात्मक होगा और कुछ में नकारात्मक। इसलिए, वैश्विक स्तर पर जो परिवर्तन होते हैं, वही स्थानीय स्तर पर भी होने की उम्मीद है।

मानव जीवनयापन और मानव स्वास्थ्य : मनुष्यों पर सीधे और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ेगा। विशेष रूप से कृषि और उससे जुड़े क्षेत्रों जैसे पशुपालन और मत्स्य पालन में लगे लोगों का जीवनयापन अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होगा। पर्यावरणीय बेरोजगारी लोगों को अत्यधिक भीड़भाड़ वाले शहरों की ओर धकेल देगी, जिससे शहरों में भीड़भाड़ बढ़ जाएगी। मानव स्वास्थ्य पर भी प्रभाव पड़ सकता है क्योंकि यह संदेह है कि मलेरिया और अन्य उष्णकटिबंधीय बीमारियों का पुनरुत्थान हो सकता है। उदाहरण के लिए, बिहार के मुजफ्फरपुर जिले में चमकी बुखार का पुनरुत्थान हुआ, जिससे कई शिशुओं की मृत्यु हुई।

निष्कर्ष : हालांकि यहाँ की भूमि अत्यंत उपजाऊ है और नदियों का घना जाल है, फिर भी जलवायु परिवर्तन के प्राकृतिक संसाधनों पर नकारात्मक प्रभाव की आशंकाएँ व्यक्त की जा रही हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव राज्य की अर्थव्यवस्था पर पड़ेगा। यह संसाधनों से समृद्ध लेकिन गरीब राज्य कई अनिश्चित समस्याओं का सामना करेगा। ये आशंकाएँ सही भी हो सकती हैं और गलत भी। हम जलवायु परिवर्तन के वैश्विक परिदृश्य को नहीं बदल सकते, क्योंकि यह अनिवार्य है। लेकिन जो संभव है, वह है पर्यावरण के प्रति सहानुभूति विकसित करना। पर्यावरणीय संसाधनों का संरक्षण, शमनात्मक कार्रवाई को अपनाना, वनीकरण और नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों का उपयोग कुछ ऐसे उपाय हैं जो नीति निर्माण और कार्यान्वयन दोनों स्तरों पर किए जा सकते हैं। सभी शमन योजनाएँ या कार्यान्वयन योजनाएँ तभी लागू की जा सकती हैं जब राज्य में मानव संसाधन की गुणवत्ता अच्छी हो। बिहार में मानव संसाधन की कोई कमी नहीं है, लेकिन दुर्भाग्यवश यहाँ गुणवत्ता का अभाव है। अशिक्षा, गरीबी, सामाजिक कुरीतियाँ और निम्न उत्पादकता कुछ ऐसे बाधाएँ हैं जो मानव संसाधन विकास में रुकावट डालती हैं। इस प्रकार, बिहार प्राकृतिक आपदाओं और मानवजनित गतिविधियों के कारण संसाधनों की कमी का सामना करेगा।

वैश्विक जलवायु परिवर्तन की समस्या जल्द ही स्थानीय जलवायु परिवर्तन की समस्या बन जाएगी। निकट भविष्य में हर कोई इस समस्या का हिस्सा बनेगा।

संदर्भ–सूची

1. मेसन, एस.; क्रुज़्केविज़, ए.; चेकाटो, पी.; क्रॉवफोर्ड, ए. नाजुक, डेटा–गरीब राज्यों में जलवायु डेटा और जानकारी का उपयोग और पहुँच; अंतर्राष्ट्रीय सतत विकास संस्थान : विनिपेग, एमबी, कनाडा, 2015

2. यू, क्यू.; कांग, एस.; एगुइलर, ई.; यान, वाई. 1961–2005 के दौरान पूर्वी और केंद्रीय तिब्बती पठार में दैनिक जलवायु चरम में परिवर्तन। ज. जियोफिज. रिस. वायुमंडल। 2008, 113, डी 07101

3. क्लेन टैंक, ए.एम.जी.; ज़िवयर्स, एफ.डब्ल्यू.; झांग, एक्स. बदलती जलवायु में चरम घटनाओं के विश्लेषण पर दिशानिर्देश, अनुकूलन के लिए सूचित निर्णयों का समर्थन; विश्व मौसम संगठन (डब्ल्यूएमओ): जिनेवा, स्विट्ज़रलैंड, 2009

4. रूएन, ए.सी.; गोल्डबर्ग, आर.; क्रिसंथाकोपोलोस, जे. कृषि मॉडलिंग के लिए जलवायु बलन डेटा सेट : अंतराल भरने और ऐतिहासिक जलवायु श्रृंखला के अनुमान के लिए संयुक्त उत्पाद। कृषि फॉर मौसम विज्ञान। 2015, 200, 233–248

5. सिद्दिक, एम.ए.जेड.; रहमान, एम. बांग्लादेश में अधिकतम, न्यूनतम और औसत तापमान का प्रवृत्ति विश्लेषण : 1961–2008, थ्योर. एप्ल. जलवायु। 2014, 116, 728–730

6. आईपीसीसी. जलवायु परिवर्तन, 2014, संश्लेषण रिपोर्ट; अंतरसरकारी जलवायु परिवर्तन पैनल की कार्य समूहों I, II और III का योगदान; कोर राइटिंग टीम, पचौरी, आर.के., मेयर, एल.ए., संपादक; आईपीसीसी, जिनेवा, स्विट्ज़रलैंड, 2014; ISBN 9789291691432

7. शिवकुमार, एम.वी.के., दक्षिणी सहेलियन और सूडानी जलवायु क्षेत्रों में वर्षा की शुरुआत से वर्षा ऋतु की संभावनाओं की भविष्यवाणी। कृषि और वनों की मौसम विज्ञान। 1988, 42, 300–305

8. आर कोर टीम, आर : सांख्यिकीय गणना के लिए एक भाषा और वातावरण; आर. फाउंडेशन फॉर स्टैटिस्टिकल कंप्यूटिंग।

9. पर्यावरण और जलवायु परिवर्तन, द्वारा सवालीया बिहारी

10. जलवायु परिवर्तन के लिए बिहार कार्य योजना 120–122

11. भारत में जलवायु परिवर्तन और कृषि : प्रभाव और अनुकूलन संपादक : शेराज महदी, सैयद (सं.)

12. स्वास्थ्य और पर्यावरणीय स्थिरता पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव पर अनुसंधान का हैंडबुक, सौम्यनंदा दिंदा (सिद्धो–कान्हो–बिर्सा विश्वविद्यालय, भारत)

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Comp. Science : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 180-184

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

A Protected Cloud Strategy for Managing Knowledge Content Systems in Tertiary Education

*Vijay Kumar Jha**

ABSTRACT : *The victory of an Organization is primarily depend on continuous investment learning as well as obtaining some or more new knowledge which create new business and improve and enhances new performance and techniques. So, this Knowledge Management should be resulting to more succeeding, or even greater than that of organizations objectives. As per modern methodologies and also paradigms came and emerged, New techniques and efforts should be made in businesses to clearly in line with them, specifically in the area of Knowledge Management. Nowadays, more popular and efficient one is Cloud Computing Paradigm, because of its less cost, time and efforts to fulfil the need for software development. Also it gives an excellent measures and ways to collect and reallocate knowledge. The proposed method split the data processing steps in three levels (i) Knowledge Create and Store for Content Management System, (ii) Knowledge Share for content management system (iii) Knowledge Acquisition for content management system. Knowledge is a vital component of engineering design and significant reductions in costs and product development time can be realized if engineering knowledge is reused. Where previously the geometric model took a central position, today design knowledge should have the focus: knowledge should be managed and engineered as a key business asset. Here the Knowledge is not easily measured. Therefore, for the organizations must manage knowledge effectively for the better use of skills and experience among the employees. KM is a managerial activity which develops transfers, transmits stores and applies knowledge and provides the real information to take proper decisions for the development of the organizations, businesses, government bodies, non-governmental organizations (NGOs), research institutes and international development and financial institutions. A system is used for the application as well as the utilization of Knowledge Management within the organization termed as the knowledge management system (KMS). In knowledge Management System (KMS) , databases allowing the storage and retrieval of explicit research and technical and management knowledge in text format . The main challenge exists in the secured data storage and sharing from the data owner and user group. This thesis discusses the data storage, sharing and security over the KMS. The proposed work over comes the problems using the secured data sharing over the cloud server. This can be performed the knowledge in Content Management System. The sharing and acquiring the knowledge in Content Management System goals are solved by extracting the knowledge from the experts.*

Key Word : *organization, knowledge, content management, government, investment, education etc.*

Introduction : The knowledge can be termed as the familiarity, awareness or understanding anything like information, facts, skills or descriptions. These things captured through result of regular activity or education through discovering, perceiving or learning. Generally the knowledge represents

* ***Ph.D (Computer Science), IGNOU***

as a theoretical or practical understanding of subjects. The knowledge indirectly shows the practical skill or directly shows a knowledge gain through individual subject. The subject nature may be systematic or regular manner. The knowledge acquisition includes the process like perception, reasoning and message communication with the feature of complex and cognitive nature. Sometimes the knowledge relates with the capacity of acceptance in the human beings. The knowledge system needs in the collecting, gathering and managing the information.

The knowledge management can be enabling and give confidence in distribution of thoughts, teamwork and the try to cache the current details. The concept of the managing the knowledge through the process of knowledge management. The process able to simulate the innovation technology and cultural changes that adapts within the structure of an organization. These activity meets the changing requirement of the business, which becomes an important factor for improving the profit of an organization's decision making ability. A confidence for all employees in accessing over all expertise held within the organization. A smarter workforce team can built with the characters like faster activity, informed decisions for the benefits of company. So the knowledge management defined as follows:

Definition for Knowledge Management : The term knowledge management involves the process in creation of new thought, sharing the resources and the managing the knowledge based information relates with the organization. This activity shows the multidisciplinary approach strength for achieving the organizational objectives with the help of proper use of knowledge. This boost efficiency for an organization's decision making ability. An activity makes sure for an employee access with the overall expertise held with the organization. Therefore a work force with the smarter activity, which can built with the faster manner in improvement of the decision for the benefits of the company.

Generally the education sector has the necessary to maintain the information as records for the students from the college and the schools. Currently school follows the procedure like the time table processing, schedule, examination, reporting task, and student operation and performance evaluation about the students. The organization norm enables the KM by allowing the large amount of data with the operation of capture, processed storage and collected over the people in the right direction with the proper right timing. The technology with the Internet services and interfaces linked with the web activity and the networking connection like internets in the school buildings networking connection, web based portals with the key infrastructures. The key infrastructure three fundamental processes for the knowledge management.

Knowledge Acquisition : The student activity can be improved through the knowledge acquisition process. The processing steps involves the activity like extracting the information, structuring the process and knowledge organization extracts the source of information from the human working with the expert knowledge with the software system. So the expert system involves the developing strategies for creating skills and inter relationship that runs over the data capturing tools with the process of filtering the data ability and hints capture tools and electronic with the whit board activity.

Current evaluation techniques like information technology indirectly support the knowledge data acquisition process. Generally the knowledge acquisition refers with the knowledge data acquisition includes the extraction process, structuring the processing steps and organizing the knowledge from the domain experts with scheduled program.

Knowledge Verification : The processing prototype involves the action of verification experts for a system. . The work of the experts to analysis the data present in the system. The data format in terms of the heuristics and need to verify with the help of experts team present in the system. Sometimes the data knowledge present in the system may be sufficient or incomplete in solving the problem. Suddenly the alternative process of applying knowledge acquisition techniques to solve the problem in the experts system. Finally the In knowledge acquisition process various tools and techniques were developed with the features of different strength and the limitations.

Generally available techniques like the protocol analysis, interviewing tools, repertory grid analysis and various kind of observations. Here the interviewing is the techniques helps in the eliciting knowledge taken from the higher level experts and the design requirements in knowledge acquisition process might be completed. The standard format involves free- form or questions in terms of unstructured sessions lies among the field experts with the knowledge engineering. A main problems occurred by the export system has lagging in the domain experts. The information present in the domain experts directly describe the reasoning for the procedure and action concerned for the human reasoning. A interviewing is more effectively transformed known as the structured interviewing. This concepts aim in orientation process and the clearly stated goal stated. The experts either fills out a set of questions design with the questionnaire cards, the answering the questions carefully based on the establishment of domain model involve in the problem solving process. This techniques helps in the reducing the interpolation problem, which viewed through the unstructured interviewing with the distortion caused with the domain experts subjectively. The different in techniques lie knowledge acquisition techniques and the working platform tools residential with the different strength and boundaries.

Drawbacks or Disadvantages of Large Data Storage :

- The big data is unstructured.
- Analysis of big data removes the principles of privacy
- The manipulation of customer records done using the large storage of data.
- The techniques increase the social satisfaction.

In shortly, big data is more dangerous. Hence it needs the legal frame work with the transparency. It has the potential over the control for the data, which can be used for making safer and not inert force. Sometimes decision for the big data with the cloud has the serious problems. In company, there exist three different ways to collect the data about the customer. The data collection among them is directly or indirectly in tracking their customer. Most of the firms in asking the customer directly the data points and in relationship with them. Hence the big data storage uses the database of data with the unstructured for the schemes in particular form. Therefore the individual row have the same set of values present in the column. The NoSQL gives the better performance for storing the large amount of data. Many open source systems gives the better NoSQL DBs exist for analyzing the Big data. Hence the bigdata helps in organizing creation of new growth idea and opportunity with the newly developed companies or industrial data.

Challenges in Large Data Management : The challenge in existing the large amount of data generated by the large industries and the organization with the research institutions increases in fast rate These huge amount of data not used for the analysis purpose. So there exist the condition for the preserving the data and the ability growth scale of increases growth of the transfer rate quality. The storage of huge quantity of data becomes more complex during regulate to solve big data problems.

Important Variable that Characterizes its Features :

Volume : The data set gather from the business unit, research, scientific sector, government and social media interact with on line networking in the huge size regularly. The data storage size and the scales were the important factor for the process. The storage demand rise up to the reaching the big data in the required size of the peta bytes and the extra bytes. The traditional system facing the difficult to handle huge amount of data.

Variety : The data creation process is entirely different in the big data composing¬ through various levels of data like raw material data types like structured, semistructured data. Some relationship exist between the data types leads to leads to the traditional process.

Velocity : The huge storage of data might be characterized with the factor of¬ velocity involves the action of data speed in receiving the transmission with the various devices. So the transmission of

data for high level real time environment becomes very critical for the process. A data flow for the high velocity capture and the data flow cannot process in the traditional existing system.

Complexity : Sometimes the data complex is nature with the diverse type and the¬ representation. There exist relationship exist between a connection and the correlation among the data hierarchies. Several data changes have the several of impacts.

Knowledge Management : Theory Based on the three individual perspective for the knowledge management can leads the different estimation and various definition.

Information the executives are two essential points for the business running.

Execution is the important part of the business cycle and drawback of the business system, strategies and practical degree for the association. Making the connection between the association scholarly resources for both records and individual ability and positive business results.

Information the board is the change of information as experiences, understandings, and functional expertise that we as a whole have in different appearances like books, innovation, practices, and conventions inside associations, all things considered, and in the public arena when all is said in done. The process with the technological affects with the perspective knowledge for the broad of idea with the data changing the information and easy access. The unstructured data for the individual uses its requirement.

Research Objective :

1. Security in cloud registering be a significant alarm.

2. The data content in the cloud is important to put away inside scrambled structure. It confines the customer from getting to the mutual data straightforwardly. For this reason intermediary and financier administrations are important to utilize.

3. Encryption assists with ensuring moved data just as the data put away in the cloud. Encryption additionally assists with shielding data from any unapproved access; however it doesn't forestall data misfortune.

Research Methodology : Knowledge management systems are multiplying through organizations as management looks to increase upper hand by enhancing and sharing knowledge over the organization. Unfortunately there are dangers and results related with knowledge management systems that may not be sufficiently controlled and inspected, and may penetrate security concerns and enactment. This section tends to these issues and gives a framework and rules to management to give assurance over their KM systems. The security can be accomplished through of cryptography strategies. The cryptography is utilized to make sure about and ensure information throughout correspondence. Encryption be a cycle includes the transformation process the unique in order with an undesirable form. Unscrambling is a cycle of changing over encoded/scrambled data in a form that is lucid and perceived by a human or a PC. Encoded data is known as "figure text" and can just be decoded with a key or password. While encryption cannot secure against all digital assaults, the innovation makes data burglary a significantly more troublesome undertaking for programmers, decreasing the danger of such an assault against cloud server.

Conclusion : The Knowledge Engineering (KE) explored the importance of the smart learning system in the ubiquitous computing environment. As well as knowledge sharing and knowledge transfer obtained by knowledge engineering approach. The main purpose of this Content Management system helps in accessing the content in any time and any place. This makes the learning at any possible condition. The knowledge management successfully integrated with an individual organization with the cloud computing environment for students in the higher education. The proposed method creates the way in improving the quality of the higher education, which makes the student improvements in learning. So that the quality of higher education increases in the aspects of learning. The knowledge

among the network gives rise to knowledge with an interaction among the individuals and the learning community. The chapters discussed about a knowledge engineering approaches for moving towards the knowledge processing techniques like acquisition, clear view of data, organization activity and content storage. And gives the way for the optimal solution in the security in outsourcing data. The data outsourcing with the cloud storage activity and the algorithm with the cloud storage activity gives the peaceful result in both the linear and nonlinear programming model with derived functions in the data security for users and owners. The method not only provides the cryptographic security to data and also the correct data through the verification model. The Knowledge-Guru system allows the user made attachment with the interest, such that student can use of interested topics and that can upload the article and materials related to the topics. The Knowledge-Guru System has the various high level for the user interface help them to provide a dynamic way of providing the content using the three major modules. The large number of articles can be added for the student acquisition more easy searching categories. Therefore the Knowledge-Guru system provides a digital library for their students. The Secured Content reaches the students with the quality of Experts for acquiring the knowledge. The research techniques focused on the principle, techniques and tools, created for the knowledge acquisition.

References

1. Abdullah, R. and Talib, A.M, "Knowledge Management System Model in Enhancing Knowledge Facilitation of Software Process Improvement for Software House Organization", Proc. International Conference on Information Retrieval & Knowledge Management, 2012, 60-63.

2. H., Eriksson, "A Survey of Knowledge Acquisition Techniques and Tools and their Relationship to Software Engineering", Journal of Systems and Software 19, 1992, 97-107.

3. Joseph, Siryani, Ph.D. Candidate, Bereket Tanju, Ph.D., and Timothy Eveleigh, D.Sc., "A Machine Learning Decision-Support System Improves the Internet of Things' Smart Meter Operations", IEEE Internet of Things Journal, 2327-4662 (2017).

4. Kalaiselvi, K. and Uma, G.V., "Integrated Knowledge Management Approach for Academic Improvement in Ubiquitous Computing", International Journal of Computer Applications 11 (3) (2010) 24-28.

5. Laud, P. & Pankova, A., "On the Impossibility of Privately Outsourcing Linear Programming", ACM CCSW, (2013).

6. Murray, Jennex, Alexandra Durcikova, "Integrating IS Security with Knowledge Management : Are We Doing Enough to Thwart the Persistent Threat", IEEE Computer Society, 978-1-4799-2504-9/14 $31.00 © 2014 IEEE.

7. Renata, S. S. GuizzardiI & Anna, Perini, "Analyzing Requirements of Knowledge Management Systems with the Support of Agent Organizations", Analyzing Requirements of Knowledge Management Systems, Vol.11, 20.

8. T., Jiang, X. Chen, J. Li, D. S. Wong, J. Ma, and J. Liu, "TIMER : Secure and Reliable Cloud Storage Against Data Re-outsourcing," In Proc. 10th Int. Conf. Inf. Secur. Pract. Exper., Vol. 8434. May 2014, pp. 346–358.

9. Wang, C., Renand, K. & Wang, J., "Secure and Practical Outsourcing of Linear Programming in Cloud Computing", Proc. 30th IEEE Int. Conf. Comput. Commun. (INFOCOM), (2011), pp.820-828.

10. Zander, U., & Kogut, B. (1995), "Knowledge and the Speed of the Transfer and Limitation of Organizational Capabilities : An Empirical Test", Organization Science, 6

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 185-191

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

उच्च शिक्षण संस्थानों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के नैतिक विकास का अध्ययन

*अशोक कुमार सिंह** *डॉ. रामेन्द्र तिवारी***

सारांश : ***प्रस्तुत समस्या कथन के अन्तर्गत ''उच्च शिक्षण संस्थानों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के नैतिक विकास का अध्ययन'' किया गया है।*** *प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया है। प्रस्तुत अध्ययन में प्रयागराज जनपद में स्थित उच्च शिक्षण संस्थानों में अध्ययनरत् बी. ए. कला एवं वाणिज्य वर्ग के छात्र एवं छात्राओं को जनसंख्या माना है। प्रस्तुत अध्ययन हेतु प्रयागराज जनपद के 20 उच्च शिक्षण संस्थानों का चयन करते हुए न्यादर्श के रूप में विद्यार्थियों का चयन यादृच्छिक विधि द्वारा किया है। इसमें बी0ए0 प्रथम वर्ष के छात्र–छात्राओं को सम्मिलित किया गया है, जिसमें व्यावसायिक (कॉमर्स वर्ग) के 300 विद्यार्थियों तथा पारम्परिक पाठ्यक्रमों (कला वर्ग) के 300 विद्यार्थियों अर्थात् कुल 600 विद्यार्थियों का चयन किया है।*

नैतिक विकास *(Moral Development Scale) : प्रस्तुत परीक्षण का निर्माण डॉ. अल्पना सेन गुप्ता (Ph.D.) (मनोविज्ञान के एसोसिएट प्रोफेसर वाणिज्य महाविद्यालय (एम.यू.) पटना, बिहार व डॉ. शगूफा फखरूद्दीन (Ph.D.) तदर्थ शिक्षक मोहम्मद एंग्लो अरेबिक प्लस टू स्कूल पटना, शहर, बिहार) के द्वारा किया गया है। आँकड़ों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि एवं टी–अनुपात सांख्यिकी विधियों का प्रयोग किया है। इसके पूर्व के अध्याय में प्रदत्तों के विश्लेषण एवं व्याख्या का प्रस्तुतीकरण किया गया, जिसके आधार पर कई निष्कर्ष प्राप्त हुए, व्यावसायिक एवं पारम्परागत पाठ्यक्रम में अध्ययनरत छात्रों का नैतिक विकास में कोई सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण अंतर नहीं पाया गया, अर्थात दोनो समूहों (व्यावसायिक एवं पारम्परागत) के छात्रों का नैतिक विकास समान है।*

कुंजी शब्द : *उच्च शिक्षण संस्थान, नैतिक विकास।*

प्रस्तावना– शिक्षा मानव के सर्वांगीण विकास का एक मात्र साधन है। शिक्षा के अभाव में मानव जीवन सदैव अज्ञानता के अन्धकार में भटकता रहता है। शिक्षा ही एक मात्र साधन है जो मानव जीवन को सही अर्थ में सुखमय बना सकती है। शिक्षा के प्रसार से समाज में फैली समस्त कुरीतियों और बेरोजगारी की समस्या को दूर किया जा सकता है। शिक्षा के माध्यम से समाज की सांस्कृतिक प्रगति तथा आध्यात्मिक मार्ग प्रशस्त हो जाता है। शिक्षा समाज में न्याय स्वतंत्रता तथा शान्ति जैसे आदर्शों को स्थापित करने का कार्य करती है। शिक्षा वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक मानव के सम्पूर्ण विकास में उपयोगी सिद्ध हुई है। शिक्षा वह साधन है जिसे अपना कर मानव अज्ञानता के बन्धन से मुक्त होता है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने 'आध्यात्म विद्यानाम' कह कर इस सिद्धान्त का समर्थन किया है। शिक्षा युग के सापेक्ष होती है, शिक्षा का स्वरूप भी बदलते युग के साथ परिवर्तित होता रहता है ताकि बदलते हुए दौर में लोग उस शिक्षा से लाभान्वित हो सके। शिक्षा मानव को पशु की श्रेणी से उच्च बनाने का कार्य करती है। एक शिक्षित व्यक्ति अपने देश व समाज के लिए एक अशिक्षित व्यक्ति की अपेक्षा अधिक लाभकारी सिद्ध होता है।

** शोध छात्र, शिक्षाशास्त्र, नेहरू ग्राम भारती (मानित) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)*

*** सहायक आचार्य, शिक्षक शिक्षा विभाग, नेहरू ग्राम भारती (मानित) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)*

शिक्षा सदैव अपनी संस्कषति को जीवित रखने का कार्य करती है और हमारी संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित करने का कार्य बड़ी ही सुगमता से करती है। अगर हम ये कहें कि किसी भी देश की संस्कृति को जीवित रखने का कार्य शिक्षा ही करती है, तो यह बात सौ फीसदी सही है। शिक्षा मनुष्य में सदगुणों का विकास करती है जिससे मनुष्य समाज में अच्छे कार्य करते हुए एक आदर्श जीवन व्यतीत करता है।

किसी भी राष्ट्र का विकास मुख्य रूप से उसके शैक्षणिक संस्थानों के मानकों पर निर्भर करता है। छात्रों के व्यवहार में अमूल परिवर्तन लाने के लिए शिक्षा सबसे शक्तिशाली और प्रभावी साधन है। शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति को व्यक्तित्व में और व्यक्तित्व को व्यक्ति में विकसित किया जाता है। शिक्षा सीखने की सुविधा, या ज्ञान, कौशल, मूल्यों, विश्वासों और आदतों के अधिग्रहण की प्रक्रिया है। शैक्षिक विधियों में शिक्षण, प्रशिक्षण, कहानी, चर्चा और निर्देशित अनुसंधान षामिल हैं। शिक्षा अक्सर शिक्षकों के मार्गदर्शन में होती है, हालांकि शिक्षार्थी खुद को शिक्षित भी कर सकते हैं। शिक्षा औपचारिक या अनौपचारिक सेटिंग्स में हो सकती है और किसी भी अनुभव का उस पर एक प्रारंभिक प्रभाव पड़ता है जो किसी के विचार, अनुभव या कृत्यों को शैक्षिक माना जा सकता है।

शिक्षा, भारतीय परंपरा के अनुसार, केवल जीविका कमाने का साधन नहीं है, न ही यह केवल विचार की नर्सरी है या नागरिकता के लिए एक विद्यालय है। यह आत्मा के जीवन में एक दीक्षा है, सत्य की खोज में मानव आत्मा का प्रशिक्षण और पुण्य का अभ्यास। हालांकि, एरिस्टोटल ने माना कि शिक्षा विशेष रूप से वास्तविकता की दुनिया में मनुष्य की बुद्धि को विकसित करने के लिए मौजूद है, जिसे पुरुष जान और समझ सकते हैं। कुछ सरकारों और संयुक्त राष्ट्र द्वारा शिक्षा के अधिकार को मान्यता प्राप्त है। अधिकांश क्षेत्रों में, शिक्षा एक निश्चित उम्र तक अनिवार्य है।

शिक्षा को राष्ट्रीय विकास की कुंजी माना जाता है। लेकिन आज अधिकांश देशों में शिक्षा प्रणाली व्यक्तिगत और सामुदायिक आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं है। यह शिक्षा प्रणाली युवाओं के जीवन और उनकी जरूरतों और अपेक्षाओं के प्रति उत्तरदायी नहीं है। यह उच्च आर्थिक विकास को बनाये रखने में विफल और जनता की आर्थिक स्वतंत्रता को रोकने में भी असमर्थ है। आज के दौर में छात्रों के लिए डिग्रियां और सर्टिफिकेट मात्र एक कागज के पेज ही रह गई है इसलिए एक ऐसी कुशल शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता है जो प्रतिस्पर्धी अर्थव्यवस्था की विशेषताओं वाला एक मजबूत सामाजिक और आर्थिक जीवन ला सके। आज के वर्तमान समय में ऐसी शिक्षा प्रणाली की जरूरत है जिसमें अधिक प्रतिस्पर्धी अर्थव्यवस्था को बनाये रखने के लिए एवं विश्वसनीय व्यापक आर्थिक वातावरण बेहतर बुनियादी ढाँचा और एक सहायक राजनीतिक और सामाजिक वातावरण हो। आज के दौर में न केवल बड़े बल्कि मध्यम, छोटे और ग्रामीण उद्यमों को भी रोजगार पैदा करने के लिए उचित महत्व मिलना चाहिए। व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है और जिस समाज में रहता है उस समाज के कुछ आदर्श या मानदण्ड पहले से ही निर्धारित होते हैं। ये आदर्श या मानदण्ड मानव समाज की उन्नति के लिए अति आवश्यक होते हैं इन आदर्शों और मानदण्डों को अपना कर मानव अपना तथा अपने समाज में रह रहे लोगों का उत्थान करता है क्योंकि समाज व्यक्ति के सम्बन्धों का एक जाल होता है और सभी मानव एक दूसरे से गुने–बुने रहते हैं। हमारा समाज अपने लोगों से यह उम्मीद करता है कि जो भी आदर्श या मानदण्ड पहले से समाज के हित के लिए निर्धारित किये गये हैं व्यक्ति उनका पालन करे। समाज में रह रहे व्यक्ति के व्यवहार को यही आदर्श या जो सामाजिक बन्धन होते हैं उस व्यक्ति को निर्देशित करने का कार्य करता है और इन आदर्शों का अपने से पहले व्यक्ति में तथा इनके बीच में संघर्ष होता है क्योंकि बालक प्रारम्भ में इन नियमों को आसानी से नहीं स्वीकार करता है परन्तु बालकों को यह करने के लिए सामाजीकृत किया जाता है। सामाजीकृत या सामाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें समाज में प्रचलित मानदण्ड अपनाने में समाहित करता व सीखता है कि कैसे व्यक्तिगत इच्छा एवं सामाजिक मानदण्ड के बीच का संघर्ष कम किया जाए इसी को नैतिक विकास की संज्ञा दी जाती है। व्यक्ति की जब समाजीकरण की प्रक्रिया होती है तो उसके नैतिकता का विकास होता है और इसी फलस्वरूप उसका सामाजिक एवं बौद्धिक विकास भी होता है। अतः हम यह कह सकते हैं कि नैतिक विकास से सामाजिक एवं बौद्धिक विकास का गहरा सम्बन्ध होता है। नैतिक विकास को कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इस प्रकार परिभाषित करने का प्रयास किया है।

जीन पियाजे के अनुसार– ''नैतिक विकास न्याय के परिपक्व तथा स्वस्फूर्त (AUTONOMOS) प्रत्ययों की प्राप्ति है।

मैकडूगल के अनुसार– ''स्थाई भाव चरित्र की इकाइयां है और चरित्र स्थाई भावों की अवस्था अथवा उसका संगठन है।

स्थाई भाव एक प्रकार से अर्जित प्रवृत्ति है। और ये स्थाई भाव संवेगों का संगठन होता है। ये स्थाई भाव कई प्रकार के होते हैं जैसे– देश भक्ति से सम्बन्धित स्थाई भाव, धार्मिक स्थाई भाव, सामाजिक स्थाई भाव, बौद्धिक स्थाई भाव, सौंदर्यपरक स्थाई भाव आदि। मानव में आत्म सम्मान को सर्वोच्च स्थाई भाव माना जाता है। सभी स्थाई भाव, आत्मसम्मान स्थाई भाव के अन्तर्गत Govern होते हैं और एक व्यक्ति के व्यवहार को निर्देशित करने का कार्य करते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि मनुष्य में नैतिक गुणों को ग्रहण करने की प्रक्रिया को ही नैतिक विकास कहा जाता है।

नैतिकता का अर्थ होता है– नीति के अनुसार चलना। नीति का अर्थ है– सोच समझकर अपनाए गए नियम और व्यवहार। आशय यह है कि सोच समझकर कर बनाए गए नियम व व्यवहार के आधार पर अपने जीवन को चलाना ही नैतिकता कहलाती है। नैतिक विकास आम तौर पर सही या गलत होने के लिए दिए गए समाज की संख्या के आधार पर किए गए कार्यों का मूल्यांकन है। नैतिक विकास उन मूल्यों को संदर्भित करते हैं जो किसी व्यक्ति के चरित्र और व्यक्तित्व से संबंधित होते हैं जो सही और पुण्य के अनुरूप होता है। वे एक व्यक्ति के आत्म–नियंत्रण को प्रकट करते हैं। नैतिक विकासों के उदाहरण ईमानदारी, अखंडता, जिम्मेदारी की भावना, करुणा आदि हैं। नैतिक विकासों का क्षेत्र बल्कि एक बहस है।

नैतिक विकास सही या गलत या वांछनीय या अवांछनीय होने के लिए रखी गई चीजें हैं। जबकि नैतिकता को कभी–कभी मनुष्यों में सहजता के रूप में वर्णित किया जाता है, वैज्ञानिक दृष्टिकोण यह है कि नैतिकता के लिए एक क्षमता आनुवंशिक रूप से हमारे अंदर निर्धारित की जाती है, लेकिन नैतिक विकासों का सेट, उदाहरण के लिए, शिक्षण, और माता–पिता और समाज से अलग है। विभिन्न संस्कृतियों में बहुत अलग नैतिक विकास प्रणालियां हैं। नैतिक विकासों, परंपराओं, कानूनों, व्यवहार पैटर्न और मान्यताओं के साथ, एक संस्कृति की परिभाषित विशेषताएं हैं।

सही विकल्पों का चयन करने और गलत लोगों को छोड़ने में हमारे स्व को कैसे तैयार किया जाता है, यह शब्द नैतिकता द्वारा सीखा जाता है। बच्चा अपने घर से, आसपास के क्षेत्रों से क्या सीखता है और अनुभव करता है, भावनात्मक अनुभव सामाजिकता के उनके कौशल को सुधारने और गलत और सही के बीच न्याय करने में उनकी मदद करते हैं। सभी समाज अपने लिए कुछ नियम बनाते हैं तथा उसका पालन करते हैं और उन्हें हम नैतिक समाज की संज्ञा देते हैं। नैतिकता एक उच्च मानवीय गुण है यदि यह गुण मानव में विद्यमान होता है तो मानव जीवन सुन्दर, सुखद एवं सुरक्षित बनता है। इसी कारण मानव एक दूसरे पर भरोसा व विश्वास करते हैं। सच कहा जाए तो मानव जीवन इसी नैतिकता पर आधारित है अगर हमारे देश के विद्यार्थियों में ये सारी नैतिक बातों का समावेश हो तो निश्चित ही हमारे समाज व देश का भविष्य उज्ज्वल होगा। अगर विद्यार्थियों में नैतिकता अधिक होती है तो वह उतने ही विश्वसनीय समझे जाते है। इस बात से सभी भली भाँति परिचित हैं कि व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है अगर उसमें नैतिकता का समावेश होगा तो निश्चित ही वह समाज व देश के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। परन्तु आज हमारे विद्यार्थियों में नैतिकता का ह्रास हो चुका है जिस कारण वे सही और गलत में भेद नहीं कर पा रहे हैं और नैतिकता के अभाव में वे गलत मार्ग पर भटक रहे हैं। दूसरों के प्रति उनकी सहानुभूति लगभग शून्य हो चुकी है। आज के विद्यार्थियों में अच्छे विचारों, शिष्टाचार, आदर, विनम्रता और सहनशीलता जैसे नैतिकता का अभाव दिखाई देता है। शिक्षा का माध्यम ऐसा हो जो विद्यार्थियों में इन नैतिक गुणों का समावेश कर सके। ये नैतिक भाव हमारे विद्यार्थियों को अच्छी पुस्तकों के माध्यम से प्रदान किया जा सकता है। अगर विद्यार्थियों में नैतिक गुण नहीं है तो उसका जीवन व्यर्थ है। एक विद्यार्थी को चाहिए कि वह अपने संस्कार, संस्कृति और अपने देश से प्रेम करे तथा नैतिकताा के मार्ग पर चले। उसे चाहिए कि वह समाज में रह रहे अन्य लोगों से प्रेम करे तथा अपने कर्तव्य के प्रति सजग रहे। यदि विद्यार्थी इन नैतिक गुणों को अपनायेगा तो निश्चित ही वह समाज के लिए एक आदर्श मानव साबित होगा। आज हमारे समाज में नैतिकता के अभाव के कारण अनेक अव्यवस्थाएं फैल चुकी हैं। सरकारी व गैर सरकारी सभी विभागों में नैतिकता के अभाव के कारण भ्रष्टाचार का माहौल व्याप्त हो चुका है जिस कारण देश के प्रगति का मार्ग लगभग बाधित हो गया है। हमारे विद्यार्थी ही देश का भविष्य हैं यदि शिक्षा के दौरान इनमें नैतिक गुणों का विकास किया जाए तो निश्चित ही वो समाज व देश के लिए लाभकारी सिद्ध होगें तथा देश को उन्नति के मार्ग पर ले जाने में सहायक होगा। आज के आधुनिक युग

में नैतिक शिक्षा की आवश्यकता है जो विद्यार्थियों को मानवता के मूल गुणों से जोड़ सके तथा समाज को आदर्श मार्ग की ओर मोड़ सके जिससे समाज में व्याप्त कुरीतियों का अन्त हो सके।

अतः विद्यार्थियों को चाहिए कि वह समाज के नैतिक मानदण्ड को अपनाये तथा समाज व देश को विकास के मार्ग पर ले जाये। अगर विद्यार्थियों को विद्यालय में नैतिक मूल्य नहीं सिखाये जायेगें तो विद्यार्थियों में अनैतिक गुण सदैव विद्यमान रहेगें और वह पूरे जीवन अपने निजी स्वार्थ के लिए झूठ का सहारा लेते रहेगें और छात्रों में नैतिक गुणों को विकसित करने की जिम्मेदाारी अध्यापक की होती है अतः एक शिक्षक में नैतिक गुणों का समावेश होना चाहिए। अतः यह एक शिक्षक की जिम्मेदारी होती है कि उस बच्चे को नैतिक गुणों से परिचित कराये तथा सही मार्ग पर चलने की सलाह दे। इस प्रकार स्कूलों और कॉलेजों में ईमानदारी और सच्चाई के उदाहरण उपदेश या नैतिक उपदेश की तुलना में अधिक प्रभावी होते हैं। विद्यार्थी अत्यन्त संवेदनशील होते हैं। वे बहुत जल्द अपने शिक्षकों की नकल कर लेते हैं। शिक्षकों को हमेशा उचित कार्य करना चाहिए और एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए। यदि विद्यालय का वातावरण उचित न हो तो सुसंस्कृत एवं परिष्कृत परिवारों के कुछ छात्र भी नैतिक मूल्यों को खो देते हैं। विद्यार्थियों में यह गुण होता है कि वो अपने शिक्षकों के नैतिक मूल्यों को आत्मसात करते हैं। परिणामस्वरूप हम यह कह सकते हैं कि यदि इन नैतिक मूल्यों को प्राथमिक विद्यालय से ही छात्रों में स्थापित किये जाये तो भविष्य में ये छात्र अपना और दूसरों का सम्मान सीखेगें और भविष्य में समाज के नकारात्मक प्रभावों को दूर करने में सहायक सिद्ध होगें और अच्छे नागरिकों के रूप में अपने देश की सेवा करेगें।

शोध की आवश्यकता एवं महत्व–वर्तमान समय में हमारे देश के उच्चतर माध्यमिक स्तर के स्कूल में पारम्परिक पाठ्यक्रम की पूर्ण रूप से आलोचना होने लगी है। पारम्परिक पाठ्यक्रम आज के दौर में विद्यार्थियों के लिए अनुपयोगी सिद्ध हो रहा है। कई शिक्षाविद और पेशेवर लोगों ने वैकल्पित स्रोतों की उचित व्याख्या की है, जिसमें पारम्परिक पाठ्यक्रम के साथ–साथ व्यावसायिक पाठ्यक्रम भी पढाये जाते हैं और ये व्यावसायिक पाठ्यक्रम वर्तमान समय में रोजगार परक शिक्षा की दृष्टि से बहुत उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। व्यावसायिक शिक्षा द्वारा किसी खास क्षेत्र में कुशल बनाया जाता है। अतः उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में व्यावसायिक शिक्षा को शिक्षा का प्रमुख भाग के रूप में शामिल करना चाहिए जिससे वर्तमान समय की सबसे बड़ी बेरोजगारी की समस्या से निजात मिल सके। आज के दौर में पारम्परिक शिक्षा पूर्ण रूप से ग्रहण करने के बाद हमारे युवा और युवतियां नौकरी के लिए दर–दर भटक रहे हैं और ऐसे में उनके मन में हीन भावना का विकास हो रहा है और जिसके परिणाम स्वरूप उनके मानवीय मूल्य और नैतिक मूल्य का ह्रास हो रहा है जिसके कारण हमारी सभ्यता और संस्कृति का भी ह्रास हो रहा है। युवा पीढ़ी आज के आधुनिक दौड़ में पूर्ण रूप से मानवीय मूल्य और नैतिकता से वंचित हो चुकी जिसके कारण हमारा देश आर्थिक संकटों से गुजर रहा है। व्यावसायिक शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात युवा और युवतियों को रोजगार प्राप्त हो जा रहे हैं जिस कारण उनको आर्थिक संकटों से जूझना नहीं पड़ रहा है और परिणाम स्वरूप उनमें मानवीय मूल्य और नैतिकता का विकास हो रहा है जो मानव समाज व देशहित के लिए अति आवश्यक है।

अध्ययन का उद्देश्य–

1. व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत छात्राओं एवं पारम्परागत पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत छात्राओं के नैतिक विकास में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

2. व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत छात्रों एवं पारम्परागत पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत छात्रों के नैतिक विकास में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

अध्ययन की परिकल्पना–

1. व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत छात्राओं एवं पारम्परागत पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत छात्राओं के नैतिक विकास में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

2. व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत छात्रों एवं पारम्परागत पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत छात्रों के नैतिक विकास में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध विधि–अनुसंधान की प्रकृति के आधार पर ही शोध विधियों का चयन किया जाता है। प्रस्तुत अनुसंधान में अध्ययन की प्रकृति को देखते हुए वर्णनात्मक अनुसंधान विधि का अनुपालन किया गया है।

जनसंख्या एवं न्यादर्श–प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में शोधार्थी द्वारा प्रयागराज जनपद में स्थित दस–दस उच्च शिक्षण संस्थानों में व्यावसायिक शिक्षा में अध्ययनरत बी.कॉम. के 300 विद्यार्थियों और पारम्परिक शिक्षा में अध्ययनरत बी.ए. के 300 विद्यार्थियों को जनसंख्या माना गया है और उनका चयन स्तरीकृत यादृच्छिक न्यादर्श विधि से किया गया है।

उपकरण–नैतिक विकास (Moral Development Scale) : प्रस्तुत परीक्षण का निर्माण डॉ0 अल्पना सेन गुप्ता (Ph.D.) (मनोविज्ञान के एसोसिएट प्रोफेसर वाणिज्य महाविद्यालय (एम.यू.) पटना, बिहार व डॉ. शगूफा फखरूद्दीन (Ph.D.) तदर्थ शिक्षक मोहम्मद एंग्लो अरेबिक प्लस टू स्कूल पटना, शहर, बिहार) के द्वारा किया गया है।

सांख्यिकी विधियां–आँकड़ों के विष्लेशण हेतु मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि एवं टी–अनुपात सांख्यिकी विधियों का प्रयोग किया है।

उद्देश्य–1: व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत छात्राओं एवं पारम्परागत पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत छात्राओं के नैतिक विकास का तुलनात्मक अध्ययन।

1. H_0 व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत छात्राओं एवं पारम्परागत पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत छात्राओं के नैतिक विकास में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

Subject	Gender	N	Mean	SD	SE_M	t-value	df	p-value
B.Com.	Female	150	38.69	4.46	0.36	0.825	298	0.410
B.A	Female	150	38.27	4.50	0.37			

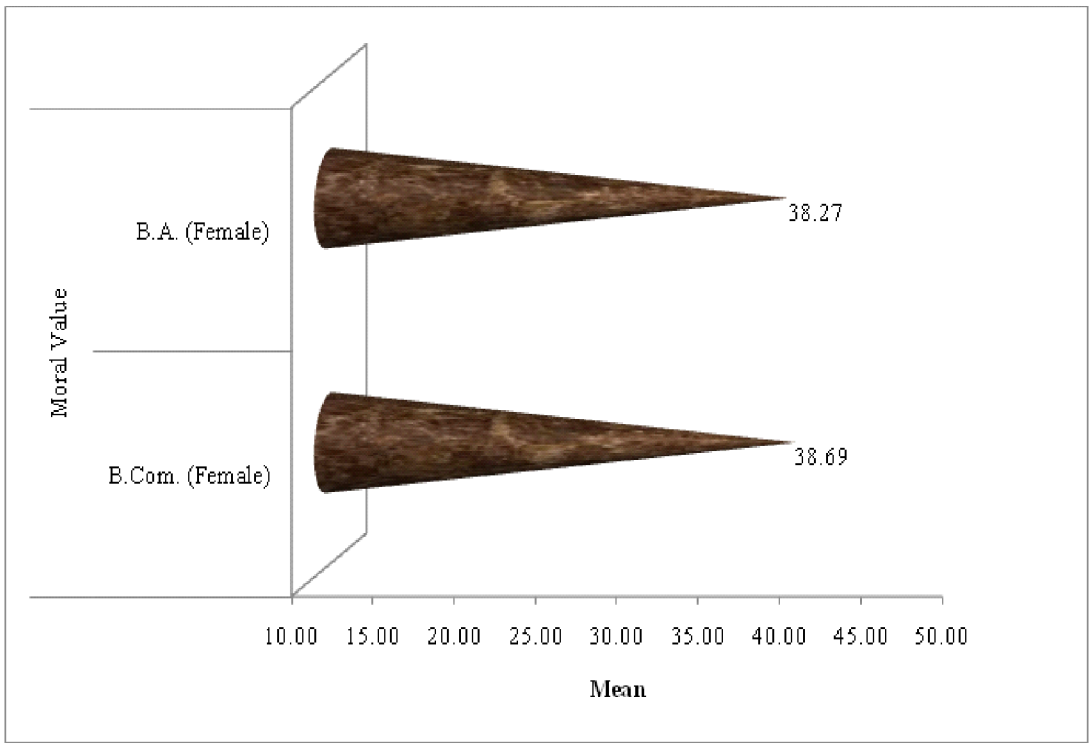

उपरोक्त सारणी से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार व्यावसायिक पाठ्यक्रम एवं पारम्परागत पाठ्यक्रम में अध्ययनरत छात्राओं का नैतिक विकास का औसत स्कोर 38.69 एवं 38.27 है तथा मानक विचलन 4.46 एवं 4.50 है। पारम्परागत पाठ्यक्रम एवं व्यावसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत छात्राओं का नैतिक विकास के औसत स्कोर में बहुत कम अंतर है। परिगणित टी का मान 0.825, डिग्री ऑफ फ्रीडम 298, पी–वैल्यू 0.410 है जो कि सार्थकता मान 0.05 से अधिक है। अतः यह स्वतन्त्र वितरण की शून्य परिकल्पना को अस्वीकार नहीं की जाती है। प्राप्त आंकड़े बताते हैं कि व्यावसायिक एवं पारम्परागत पाठ्यक्रम में अध्ययनरत छात्राओं के नैतिक विकास में कोई सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण अन्तर नहीं है।

उद्देश्य– 2 : व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत छात्रों एवं पारम्परागत पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत छात्रों के नैतिक विकास का तुलनात्मक अध्ययन।

2. H_0 व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत छात्रों एवं पारम्परागत पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत छात्रों के नैतिक विकास में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

Subject	Gender	N	Mean	SD	SE_M	t-value	df	p-value
B.Com.	Male	150	39.57	3.88	0.32	0.655	298	0.513
B.A	Male	150	39.28	3.70	0.30			

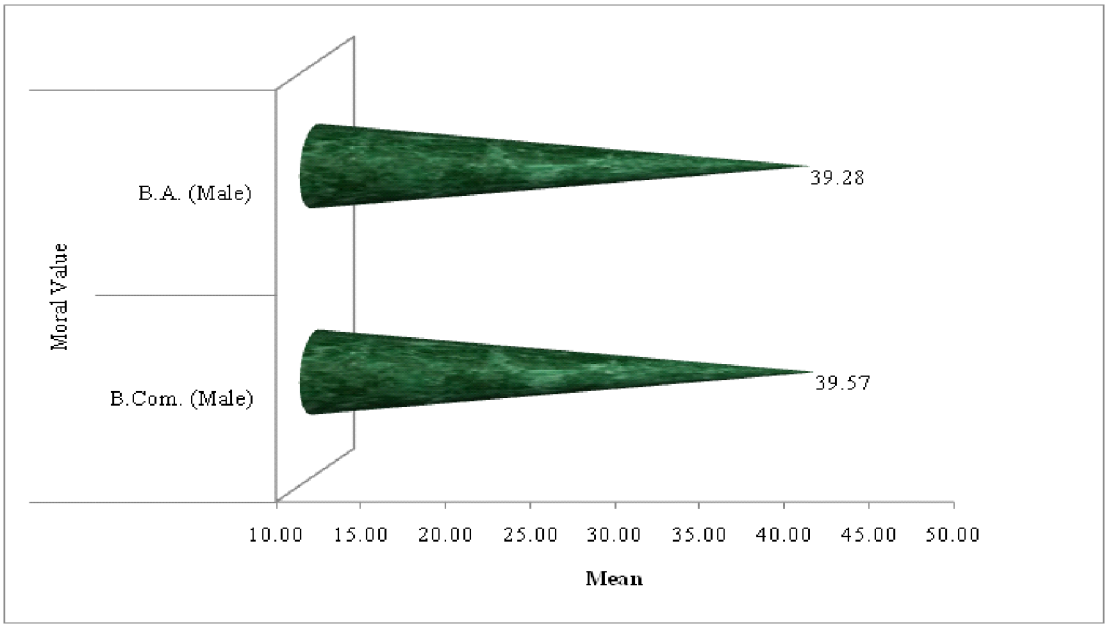

उपरोक्त सारणी से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार व्यावसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत एवं पारम्परागत पाठ्यक्रम में अध्ययनरत पुरुष विद्यार्थियों का नैतिक विकास का औसत स्कोर 39.57 एवं 39.28 है जबकि मानक विचलन 3.88 एवं 3.70 है। पारम्परागत पाठ्यक्रम में अध्ययनरत पुरुष छात्रों की तुलना में व्यावसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत छात्रों का नैतिक विकास का औसत स्कोर मात्र 0.29 अधिक है। परिगणित टी का मान 0.655, डिग्री ऑफ फ्रीडम 298, पी–वैल्यू 0.513 है जो कि सार्थकता मान 0.05 से बहुत अधिक है, परन्तु सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण नहीं है। साथ ही दोनों समूह के छात्रों के टी का मान में बहुत कम अन्तर है। अतः यह स्वतन्त्र वितरण

की शून्य परिकल्पना को स्वीकार की जाती है। प्राप्त आंकड़े बताते हैं कि व्यावसायिक एवं पारम्परागत पाठ्यक्रम में अध्ययनरत छात्रों का नैतिक विकास में कोई सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण अंतर नहीं है, अर्थात दोनों समूहों (व्यावसायिक एवं पारम्परागत) के छात्रों का नैतिक विकास समान है।

निष्कर्ष–

- पारम्परागत पाठ्यक्रम एवं व्यावसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत छात्राओं का नैतिक विकास के औसत स्कोर में बहुत कम अंतर पाया गया। यह अन्तर कोई सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण नहीं है।
- व्यावसायिक एवं पारम्परागत पाठ्यक्रम में अध्ययनरत छात्रों का नैतिक विकास में कोई सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण अंतर नहीं पाया गया, अर्थात दोनो समूहों (व्यावसायिक एवं पारम्परागत) के छात्रों का नैतिक विकास समान है।

सुझाव–प्रस्तुत शोध के परिणामों के आधार पर आज शिक्षा में मूल्यों की कमी के कारण जो विस्फोटक स्थिति पैदा हो रही है और इसे दूर करने के लिए विद्यार्थी के अभिभावक उसका परिवार, समाज और शिक्षण संस्थान सभी को निरन्तर प्रयास करने की नितान्त आवश्यकता है। व्यावसायिक एवं पारम्परिक शिक्षा में अध्ययनरत विद्यार्थियों के विद्यालयी पाठ्यक्रम में मूल्य शिक्षा पाठ्यक्रमों को अनिवार्य रूप से शामिल किया जाना चाहिए, जिससे वर्तमान समय में हो रहे मूल्यों के ह्रास से विद्यार्थियों को बचाया जा सकता है और उन्हें मूल्यों के विकास के प्रति प्रेरित किया जा सकता है।

सन्दर्भ–सूची

1. मोदी, विकास, नैतिक मूल्य और शिक्षा, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
2. डॉ. मिश्र, भास्कर (2014), मूल्य आधारित शिक्षा, नई दिल्ली।
3. शर्मा, आर.के. एवं दूबे, श्रीकृष्ण (2007), मूल्यों का शिक्षण, राधा प्रकाशन मंदिर, आगरा।
4. डॉ. भौमिक, आभिजीत (2014), सामाजिक जीवन मूल्य एवं शिक्षा, ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
5. प्रोफेसर पाण्डेय, रामशकल (2009), मूल्य शिक्षा के परिप्रेक्ष्य, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।
6. दास, सयान (2008), मूल्य आधारित शिक्षा, दीप प्रकाशन, नई दिल्ली।

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 192-193

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

उदय प्रकाश व्यक्तित्व एवं साहित्य सृजन

*पंकज कुमार यादव** *डॉ. अरविन्द कुमार यादव***

समकालीन हिन्दी साहित्य के नवीनतम हस्ताक्षर उदय प्रकाश जी समाजवादी एवं मानवतावादी साहित्यकार है। उदय जी प्रमुख रूप से कवि और कहानीकार है। इनकी कहानियाँ का अनुवाद अंग्रेजी तथा लगभग सभी भारतीय भाषाओं में होता आ रहा है। उदय प्रकाश जी का जन्म मध्य प्रदेश के अनूपपुर जिले के सीतापुर नामक एक छोटे गांव के निम्न मध्यमवर्गीय परिवार में 1 जनवरी, 1952 को हुआ था। नियति की विडंबना यह थी कि बारह वर्ष की अल्प आयु में ही उदय जी की माता श्रीमती गंगा देवी स्वर्ग सिधार गयी। कुछ वर्ष बाद उदय जी के पिता प्रेम कुमार सिंह ने भी दम तोड़ दिया, तो बालक उदय जी आश्रयहीन हो गये।

उदय जी का बचपन सीतापुर गाँव में बीता। माँ उन्हें कविताएँ सुनाया करती थी। बचपन से ही उनके मन में कविताओं पर विशेष रूचि उत्पन्न हो गयी थी। उदय जी के पिता जी साहित्यिक अभिरूचि के व्यक्ति थे। घर में सभी साहित्यिक पत्र–पत्रिकायें आती थी। फूफी गीत गाती और भजन लिखती थी। उदय जी के बचपन में एक ऐसी घटना घटित हुयी जो भुलाई नहीं जा सकती वह घटना यह थी कि बालक उदय जी सोन नदी में डूब ही चुक थे मर जाते परन्तु कपड़ा धुलने वाली स्त्री ने इन्हे बचा लिया था। नदी की तेज धार में तैर कर बालक उदय प्रकाश को बाहर निकाला उसके परिश्रम से जब बालक दुबारा जिन्दा हुआ तो उसको इतना आश्चर्य हुआ कि वह रोने लगी इस घटना के बालक उदय जी के मन में स्त्रियों के प्रति विशेष चाह उत्पन्न की। तब से वे स्त्रियों को बहुत चाहते हैं क्योंकि सिर्फ स्त्रियाँ ही जानती है कि किसी जीवन को नया–नया जन्म कैसे दिया जाता है। अपना विचार व्यक्त करते हुये स्त्रियों के बारे में उदय जी ने कहा है ''वह हमे बड़े–बड़े संकटो से निकालती है। लेकिन अक्सर एक ओर बड़े संकट में डाल देती है। वह है उनमें प्रेम का संकट''[1]

उदय जी मूलतः कवि है। वे युगीन चेतना से प्रभावित है। उनकी कविता और साहित्य में जीवन दर्शन की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। समकालीन गतिविधियों के प्रति से सर्तक है। समकालीन आपकी कृतियाँ का मूल तत्व है, जिसके माध्यम से आपके दर्शन विचार संचारित हुये है। वर्तमान हिन्दी के ख्यात कवि एवं कथा साहित्यकार उदय जी को कविता लिखने की प्रेरणा अपनी माँ से प्राप्त हुयी थी कविता के बारे में पहली जानकारी अपनी माँ की कविताओं के पन्नों से मिली थी। उनकी माँ जब ससुराल आयी थी तो वे सारी गीत अपने साथ ले आयी थी, जो अपने बचपन में अपनी सहेलियों के साथ निज गाँव में गाय करती थीं। उसके बारे में उदय प्रकाश ने स्वयं कहा है– ''कजली, सोहर, चैती, फगुआ, बिरहा, विदेशिया आदि लोकगीतों के प्रति बचपन में ही उदय जी के मन में जो पहला लगाव उत्पन्न हुआ था उसका यश केवल मौं को ही दिया जा सकता है।''[2]

उदय प्रकाश का पहला प्रकाशित काव्य संग्रह 'दरियाई घोड़ा' है इसमें सात कहानियाँ संकलित है जिसमें टेपचू नामक कहानी बहुचर्चित हुयी है। शोषण और दमन के खिलाफ सर्वहारा वर्ग के समझौता विहीन संघर्ष को इस कहानी में क्रमबद्ध किया गया है। 'टेपचू' कहानी में टेपचू नामक मजदूर को केन्द्र में रखकर समंतवादी और पूँजीवादी सत्ता केन्द्रों के मानवीय शोषण और दमनकारी नीति का पर्दाफाश किया गया है। टेपचू बचपन में ही सामंतवादी शोषक का शिकार हुआ था। उसका असली नाम अल्ला बख्श था। वह अपने जीवन संघर्षों में लगातार पराजित होता जाता है।

* *शोध छात्र, हिन्दी विभाग, जे.एस. विश्वविद्यालय शिकोहाबाद, फिरोजाबाद*

** *शोध निर्देशक, हिन्दी विभाग, जे.एस. विश्वविद्यालय शिकोहाबाद, फिरोजाबाद*

'तिरिछ' कहानी की रचना कहानीकार ने सन् 1984 की थी। सन अस्सी के बाद जो आधुनिकीकरण का दौर षुरू हुआ उसमें नयी संस्तुति फैल गयी।' ...और अन्त में प्रार्थना' इसमें चार आत्मकथाएँ, तेरह लघु कथाएँ दो कहानियाँ संगृहीत है। इसका मुख्य पात्र डॉ. वाकणकर के माध्यम से भारतीय संस्कृति के तथाकथित संरक्षकों की अन्दरूनी अपसंस्कृति का अनावरण किया गया है।

उदय प्रकाश जी अस्योत्तर कविता के अग्रणी कवि तथा प्रतिश्ठित कथाकार है। उन्होंने हिन्दी कविता के वस्तु एवं शिल्प दोनों में जादुई चमत्कार दिखाया है। हिन्दी में जादुई यथार्थवाद की षुरूवात उदय प्रकाश जी ने की। प्रेमचन्द और नयी कहानी साहित्य की तकदीर बदलने की कोशिश उदय प्रकाश के जरिए की गई है। उदय प्रकाश जनवादी साहित्यकार है। कहानी कविता और अन्य सारी रचनाएँ उनकी सच्ची प्रतिबद्धता और भारतीय साहित्य की राष्ट्रीय विरासत के मिसाल है।

सन्दर्भ–सूची

1. गंगा प्रसाद पाण्डेय, महाप्राण निराला, पृ. 283
2. उदय प्रकाश, अपनी उनकी बात, पृ. 45
3. उदय प्रकाश, कवि ने कहा, पृ. 5
4. सी. भास्कर राव जमशेदपुर, हंस पत्रिका, अक्टूबर 2005

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 194-196

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

लोककल्याणकारी की अवधारणा और भारतीय चिंतक महात्मा गाँधी

*डॉ. रश्मि जोशी**

जब हम 'लोक' शब्द का प्रयोग करते हैं तो हमारे मस्तिष्क में पूरा मानव समाज विशेष रूप से सामान्य भौतिक संसाधनों के साथ जीने वाले लोग आ जाते है। 'लोक' का शाब्दिक अर्थ जगत या संसार होता है। ऋग्वेद वेद में 'जन' के समानार्थी शब्द के रूप में लोक का प्रयोग हुआ है। लोककल्याण की अवधारणा के पीछे आशय है कि वह दृष्टि जो जन के कल्याण हेतु हो जिससे सबका भला हो। जिसमें मानव जाति के सत्कर्म के लिये स्थान हो।

भारतीय चिंतन परम्परा में सदैव ऐसे चिंतक रहे है जिन्होंनें व्यक्तिगत स्वार्थ चिंतन प्रणाली से हटकर जनता की सेवा की। अपने ज्ञान और चिंतन के केंन्द्र में सदैव मानवता को रखा। भारतीय साहित्य के स्तम्भ मुंशी प्रेमचंद लिखते हैं ''वह ज्ञान जो मानवता को पीस डाले, ज्ञान नहीं, कोल्हू है।''[1] भारतीय दर्शन के क्षेत्र में देखे तो अध्यात्म और मानववाद के उपर ही अपना ध्यान ले गया है। आज 21वीं शताब्दी के दौर में जब इंसान मशीन बनता जा रहा, व्याक्ति लाभ ही जीवन का अंतिम उद्देश्य हो गया है। उस समय पीछे मुड़कर देखना और उन चिंतकों और दर्शनों की ताकत को पहचानना पड़ेगा जिससे मानव जाति का कल्याण हो सके। आज की इस जटिल मानवीय संबंधों की दुनियाँ में खुद को पहचान पाना और पहचान बनाना कठिन होता जा रहा है। आज अगर देखा जाये तो मनुष्य की समस्याओं की जड़ कहाँ है, तो हमें दिखेगा कि भौतिक संसाधनों की अधिक प्राप्ति का सुख ही मानव जाति को पतन के रास्ते पर ले जा रहा। गाँधी जी कहते है कि ''हिन्दुस्तान के सात लाख गाँवों में फैले हुए ग्रामवासी करोडों जीवित यंत्रो के विरुद्ध इन जड़ यंत्रों को प्रतिद्वंदिता में नहीं लाना चाहिये। यंत्रों का सदुपयोग तो यह कहा जायेगा कि उसने मनुष्य के प्रयत्न को सहारा मिले और उसे वह आसान बना दे। यंत्रों का मौजूदा उपयोग का झुकाव तो इस ओर ही बढ़ता जा रहा है कि कुछ इने गिने लोगों के हाथ में खूब संपत्ति पहुंचाई जाय और जिन करोड़ों स्त्री पुरुषों के मुंह से रोटी छीन ली जाती है, उन बेचारों की जरा भी परवाह न की जाय''[2] गाँधी ने सदैव मनुष्य को प्रेम की दृष्टि से देखा भेद की दृष्टि से नहीं। उनका दृष्टिकोण सदैव इस बात में है कि मनुष्य अपने सोच और व्यवहार से मानव का कितना कल्याण कर लगता है। मानव कल्याण ही गाँधी के विचारों के केन्द्र में है। राष्ट्रवाद का सच्चा स्वरूप के संदर्भ में गाँधी सदैव भौगोलिक सीमा से ज्यादा मानव स्वातंत्रता और संगठन को सर्वोपरि माना है। अपने राश्ट्र के हित जब आप दूसरों को कश्ट देते हो तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि आपमें मनुष्य बनने की योग्यता नहीं है। देश प्रेम की मेरी कल्पना यह है कि वह हमेशा, बिना किसी अपवाद के हर स्थिति में, मानव जाति के विशालतम हित के साथ सुसंगत होना चाहिये। यदि ऐसा न हो तो देश प्रेम की कोई कीमत नहीं।''[3] गांधी का दृष्टिकोण समानता का था वह अन्य देशों कि जनसंख्या का प्रश्न हो या स्त्री और पुरुष की शिक्षा और सामाजिक स्तर का। बेबाकी के साथ गाँधी ने उस अन्याय का पर्दाफाश किया जिनके वजह से स्त्री दोयम दर्जे की मानी जाती रही है। वह स्त्री और पुरुष दोनों का योग देश की समृद्धि में देखना चाहते है। वह समाज के कानून और रूढी को आड़े हाथों लेते है जिसने स्त्री उत्पीड़न को कम नहीं किया और न ही अधिकार प्रदान किये। लिखते है ''कानून की रचना ज्यादतर पुरुषों के द्वारा हुई है। इस काम को करने में का जिम्मा मनुष्य ने अपने ऊपर खुद ही उठा लिया है उसने हमेशा न्याय और विवेक का पालन नहीं किया है। स्त्रियों में नये जीवन

* *बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी*

का संचार करने के हमारे प्रयत्न का अधिकांश भाग उन दूषणों को दूर करने में खर्च होना चाहिये, जिनका हमारे शास्त्रों ने स्त्रियों के जन्मजात और अनिवार्य लक्षण कहकर वर्णन किया है।''[4] गाँधी ने लोग कल्याण का सबसे सषक्त माध्यम शिक्षा को मानते है। किंतु शिक्षा का उपयोग साध्य और साधन में सदैव पवित्रता के साथ होनी चाहिये। अच्छे और बुरे की पहचान करने की क्षमता हमारे अंदर विकसित हो। शिक्षा धन अर्जन करने का सिर्फ माल्यम नहीं होना चाहिये बालक इसका उपयोग कल्याण हेतु भी हो। गांधी शिक्षा के उपर पाश्चात्य प्रभाव नहीं देखना चाहते थे। उनका मत था कि हम अपनी भाषा में शिक्षा प्राप्ति करें से जिसका उद्देश्य सदैव मानव कल्याण रहा है। वह कहते है। तालीम का अर्थ क्या है? अगर उसका अर्थ सिर्फ अन्तर ज्ञान ही है, तो वह तो एक साधन जैसी ही हुई। उसका अच्छा उपयोग भी हो सकता है। एक शस्त्र से चीर–फाड़ करके बीमार को अच्छा किया जा सकता है और कहीं शस्त्र वही शास्त्र किसी की जान लेने के लिये भी काम में लाया जा सकता है। अक्षर ज्ञान भी ऐसा ही है। बहुत से लोग उसका बुरा उपयोग करते हैं''[5] लोक कल्याण की सोच से मानव मूल्याण नहीं हो सकता इस बात को गाँधी जी जानते थे। सोच को धरातल पर लाना जरूरी है और इस हेतु मानव को आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में पहल किया। हर व्यक्ति का सम्मान हो और वह दूसरों का सम्मान करे इसी सोच की वजह से गाँधी ने ग्रामोद्योग, ग्राम स्वराज, शरीर श्रम, अधिकार और कर्तव्य जैसे जीवंत मुद्दों पर अपनी राय रखी। अल्प संख्यक, स्वदेशी जाति अवधारणा की समस्या, अस्पृश्यता का अंत को गांधी ने अपने केन्द्रीय चिंतन में रखा। लोक कल्याण में स्वदेशी के प्रति गाँधी कहते है। ''स्वेदशी की भावना का अर्थ है हमारी वह भावना, जो हमें दूर को छोड़कर अपने समीपवर्ती प्रदेश का ही उपयोग और सेवा करना सिखाती है।''[6] वहीं वह अस्पृश्यता का वर्णन करते हुये कहते है कि ''मेरी राय में हिन्दू धर्म में दिखाई पड़ने वाला अस्पृश्यता का वर्तमान रूप ईश्वर और मनुष्य के खिलाफ किया गया भयंकर अपराध है।''[7]

इस प्रकार से हम देखते है गाँधी ने सदैव ऐसे राष्ट्र की संकल्पना प्रस्तुत की जिसमें मनुष्य के विकास और नैतिक पक्ष की छूट हो। नैतिक जीवन ही स्थायी होता हे जिसके केन्द्र में 'सबका साथ सबका विकास' का भाव छिपा रहता है। गाँधी भी इसी भाव को लेकर जीवन में आगे बढ़े और आज उनके विचार मानव को एक दिशा दिखलाने का कार्य कर रहे है।

वर्तमान परिदृश्य में पूरा विष्व जिस तरीके से धार्मिक कट्टरता के तरफ बढ़ता जा रहा है वहाँ गांधी के ये विचार लाभप्रद साबित हो सकते है कि सभी धर्मों का समान रूप से सम्मान हो। धर्म की कट्टरता का खामियाजा पूरी दुनिया मध्ययुग में झेल चुकी है इसलिये आज यह जरूरी है कि सभी के मनुष्य भाई चारे के साथ आगे बढ़े। गांधी लिखते है कि ''ईसाई और यहूदी धर्म के अलावा हिन्दू धर्म और उसकी शाखायें, इस्लाम और 'पारती धर्म सब सजीव धर्म है। दुनिया में कोई भी धर्म पूर्ण नहीं है। सभी धर्म उनके मानने वालों के लिये समान रूप से प्रिय हैं। इसलिये जरूरत संसार के महान धर्म के अनुयायियों में सजीव और मित्रतापूर्ण संपर्क स्थापित करने की है न कि हर सम्प्रदाय द्वारा दूसरे धर्मों की अपेक्षा अपने धर्म की श्रेष्ठता जताने की व्यर्थ कोशिश करके आपस में संघर्ष पैदा करने की। ऐसे मित्रतापूर्ण संबंध के द्वारा हमारे लिये अपने–अपने धर्मों की कमियाँ और बुराइयाँ दूर करना संभव होगा।''[8] वास्तव में मनुष्य का कल्याण इस बात में निहित है कि वह मानवता के लिये क्या आदर्श स्थापित कर सकता है। आज भारत विश्व में सर्वाधिक युवा आबादी वाला देश है, जो निश्चित तौर पर हमारे लिये सौभाग्य का विषय है। लेकिन यह ध्यान रखने की जरूरत है यह विशाल युवा वर्ग एक दिन विशाल वृद्ध समुदाय में बदल जायेगा। उस समय हमारे सामने प्रश्न होगा कि हमने बाद वाली पीढ़ी को क्या आदर्श रूप दिया? भौतिकता के इस अंधकूप में गिरने से बचना होगा अपने ज्ञान का उपयोग दुनियाँ को सुंदर और पवित्र बनाने के लिये करना होगा। गांधी जी कहते है ''अपना सारा ज्ञान और पांडित्य तराजू के एक पलड़े पर और सत्य तथा पवित्रता को दूसरे पलड़े पर रखकर देखों। सत्य और पवित्रता वाला पलड़ा पहले पलड़े से कहीं भारी पडेगा। नैतिक अपवित्रता की विशैली हवा आज हमारे विद्यार्थियों में भी जा पहुँची है ओर किसी छिपी हुई महामारी की तरह उनकी भयंकर बराबरी कर रही है।''[9] गाँधी के सपनों में व्यावहारिकता का सार है जो नैतिकतता के आवरण से ढ़का है। लोक कल्याण वास्तव में इसी पवित्रता और नैतिकता से ही स्थायी हो सकता है। ''केवल नैतिक संयम के द्वारा ही हमे नैतिक फल मिल सकता है। संयम के दूसरे तमाम साधन अपने हेतु के ही विनाशक सिद्ध होगें''[10]

संदर्भ–सूची

1. प्रेमचंद, गोदान, अनुपम प्रकाशन, अशोक राजपथ, पटना, पृ. 175
2. महात्मा गाँधी, मेरे सपनों का भारत, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 14
3. वही, पृ. 18
4. वही, पृ. 188
5. गाँधी, हिन्द स्वराज, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी
6. गाँधी, मेरे सपनों का भारत, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 104
7. वही, पृ. 212
8. वही, पृ 220
9. वही, पृ. 130
10. वही, पृ. 198

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 197-199

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

इक्कीसवीं सदी के हिन्दी उपन्यासों में बाजार और किसान

*डॉ. भानु प्रताप सिंह**

वैश्वीकरण और बाजारवाद ने सम्पूर्ण विश्व को बदल कर रख दिया। भारत भी इससे अछूता नहीं रहा, भारत में उदारीकरण और वैश्वीकरण के प्रयोग ने 21वीं सदी के प्रारम्भ में अपना प्रभाव दिखाना शुरू कर दिया। औधोगिक जगत पर इसका सकारात्मक प्रभाव पडां परन्तु इसका विपरीत प्रभाव कृषक वर्ग को झेलना पडा।

एक किसान के लिये उसका खेत जमीन का एक टुकडा मात्र नहीं बल्कि उसकी जीवन शैली व संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। बदलते समकालीन परिदृश्य ने ग्रामीण समाज को अपने प्रभाव में ले लिया। पूँजीवाद अब हावी हो रहा था खेती में हो रहे घाटे व बडे साहूकारों, प्रभुत्व जीमदारों के शोषण ने किसान को अपने घर अपने जमीन से पलायन करने पर मजबूर कर दिया। शहरी परिवेश में पोषित बच्चों के लिये खेती केवल आमदनी का स्रोत बनकर रह गयी। रेहन पर रंग्घू के राघुनाथ जब अपने छोटे बेटे राजू से पूछते है कि ''मैनेजमेंट के ज्ञान का उपयोग खेती के ही बिजनेस में नही हो सकता?''[1] खेती की जमीन को अब पूँजी के रूप में देखा जा रहा था। ''रघुनाथ के पास गाँव की जमीन के सिवा कुछ नही था और उस जमीन को वे अनमोल समझते थे। बेटे उसे कैश में भुना कर देखते थे और कह रहे थे कि इससे ज्यादा तो मेरी एक महीने की इनकम है।''[2]

20वीं सदी के अंत में उदारीकरण संम्पूर्ण राष्ट्र में प्रभावी कर दिया गया। शहरी व ग्रामीण जीवनशैली व आय में असमान रूप से वृद्धि ने आम किसान को शहरों में पलायन पर मजबूर कर दिया। हिन्दी उपन्यास में कलम के जादूगर प्रेमचन्द्र ने अपनी लेखनी से किसानों की समस्याओं को केन्द्र में लाने का प्रयास किया। इसी क्रम को अन्य उपन्यासकारों ने अपने लेखन में स्थान देकर आगे बढ़ाया। विस्थापन को हम 'चलती चाकी' उपन्यास में देख सकते हैं ''नहीं जायेगे सर, अभी डेढ़ महीना हुआ है ज्वाइन किए। तनखाहो नहीं मिला है। जायेंगे तो फिर नौकरी चली जाएगी। बहुत कर्जा है बाबूजी के ऊपर।''[3]

पूँजीवाद से बढ़ती प्रतिस्पर्धा में किसान अंतिम पंक्ति में खड़ा नजर आता है। किसान परम्परागत पद्धति पर अनाज उगाते है इसका कारण तकनीक का अल्पज्ञान और नकदी फसल के लिए लागत मूल्य का अभाव। वीरेन्द्र जैन' के दो उपन्यासों 'डूब' और 'पार' में ग्रामीण समाज के विस्थापन का सर्वश्रेष्ठ, उद्धाहरण नजर आता है।

भारत का एक बड़ा ग्रामीण वर्ग खेती–किसानी पर निर्भर है जिसके कारण भारत एक कृषि प्रधान देश के रूप में जाना जाता है। राष्ट्र की वृद्धि में कृषि का महत्व साफ देखा जा सकता है। कृषि केवल उत्पादन ही नहीं बल्कि रोजगार का भी क्षेत्र है। भारत की 50 प्रतिशत से अधिक आबादी कृषि क्षेत्र पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निर्भर है।

तकनीक विकास ने अन्य क्षेत्रों को लाभ का अवसर दिया परन्तु किसान की आय में कोई वृद्धि नहीं हो सकी। इसका कारण मँहगी तकनीक लागत मूल्य में इजाफा करती है तो वहीं उत्पादित फसलों की उचित कीमत न मिलने से किसानी घाटे का कारोबार बनती जा रही है।' इससे उबरने के लिए किसानों ने कर्ज लेना शुरू किया और कर्ज अदायगी न कर पाने के कारण किसानों ने अपनी जमीनें बेचनी शुरू कर दी। उदारीकरण और पूँजीवाद का ऐसा प्रभाव हुआ कि भूमि से जीविकोपार्जन करने वाला किसान आज अपनी ही भूमि से वंचित हो गया।

पेट की भूख व कर्ज के दबाव ने अन्नदाता को एक मजदूर बनने पर विवश कर दिया। पंकज सुबीर लिखते हैं। ''अगर किसान खेती नहीं करेगा तो आप और हम खाएंगे क्या? और वैसे भी अब किसान धीरे–धीरे मजदूर

* *झाँसी, उ.प्र.*

होता जा रहा है इस देश में। उसकी जमीनें जा रही है। कुछ दिनों बाद इस देश में मल्टीनेशनल कंपनियाँ ही खेती करेंगी सारी।''[4]

एक किसान के मजदूर बनने का प्रमुख कारण है 'श्रम का उचित मूल्य'। मजदूर के श्रम की कीमत एक कृषक के श्रम से अधिक हो गयी। पूंजीवाद की दौड़ में मूल्य, भावनाएं पीछे छूट गयीं। फांस उपन्यास में संजीव लिखते हैं'' 1970 में मजदूरी भी 2 रुपये पुरुष, 1 रुपये स्त्री और आज मर्द को 200 से 250, वही औरत को भी ... स्कूल टीचर को मिलते थे 150 रुपये प्रतिमाह और आज मिलते हैं 16 हजार रूपये से तीस–चालीस हजार, पेंशन अलग से।''[5]

कृषि समाज की अपनी एक अनोखी संस्कृति रही है। उसमें बाजार आगमन के साथ ही किसान परिवार में समस्याएँ दिखनी शुरू हो गयीं। बच्चों का घर से पलायन उनके लिए एक बड़ी वेदना थी। घर का एक जीवंत परिदृश्य धीरे–धीरे निर्जीव होने लगा। हिन्दी उपन्यासों में यह दर्द भी साफ झलकता है। ''लेकिन यह भी चाहते थे कि ऐसा मौका आए जब सब एक साथ हो, एक–जगह हो –आपस में हंसे, गाएँ, लड़े, झगेंड, हा–हा–हू–हू करे, खाए–पिए घर का सन्नाटा टूटे। मगर कई साल हो रहे हैं और कोई कहीं हैं। कोई कहीं। और बेटे आगे बढ़ते हुए इतने आगे चले गए हैं कि वहाँ से पीछे देखें तो भी न बाप नजर आएगा, न माँ।''[6] 'रेहन पर रग्घू उपन्यास की यह वेदना आज हर किसान ग्रामीण परिवार, की है।

'जय जवान, जय किसान', 1963 के भारत–पाक मुद्दा में लाल बहादुर शास्त्री (तत्कालीन प्रधानमंत्री) द्वारा दिया गया नारा, किसानों की अहमियत को दर्शाता है। मातृभूमि के सेवक और उसके पुत्र के रूप में किसानों ने इस देश को सब कुछ दिया। परतु यही किसान भूमि अधिग्रहण, अवैध कब्जों से अपनी जमीन से वंचित कर दिया गये भूमि अधिग्रहण से किसानों के जीवन यापन पर संकट आता है तो वहीं इसका लाभ उद्योगपतियों को प्राप्त होता है। ढांचागत विकास के कारण, अधिकांश उपज भूमियों पर निर्माण कार्य प्रारम्भ हो गए है। फांस उपन्यास का पाल बाबा कहता है कि ''सड़कों के किनारे सारी खेती वाली जमीन बिक चुकी है। मकान बन रहे हैं। आने वाले दिनों में सिर्फ बिल्डिंगें होगी, चमचमाती सड़के होंगी और चमचमाती गाड़ियों।''[7] ऐसा नहीं है कि देश की प्रगति से किसी को आपत्ति हो। परंतु किसानों की अनुमति के बिना उनकी संपत्ति का अधिग्रहण, कम कीमत पर मुआवजा, उचित पुनर्वासा की व्यवस्था में एक प्रश्नचिन्ह खड़ा करती है।

किसान आज भी शोषक वर्ग के हाथों शोषित हो रहा है। औपनिवेशिक काल के शोषकों से इनका रूप (जमींदार, साहूकार, प्रभुत्व वर्ग) का स्थान कार्पोरेट ने ले लिया है। बड़े उद्योगपतियों ने सरकारी तंत्रों का प्रयोग कर लघु कास्तकारों की भूमि का अधिग्रहण कर लिया। संजीव ने फांस में इसे स्थान दिया वे लिखते है ''ये धरम वाले ये कारपोरेट वाले, ये बिल्डर्स और दूसरे पैसे वाले सेठ देश की सारी लाभ देने वाली जमीनें खरीद चुके हैं। आने वाले दिनों में खेती भी कारपोरेट घराने वाले करेंगे, किसान का नाम ही मिट जाएगा।''[8]

ध्यान देने वाली बात यह है कि जिस शासन और प्रशासन पर इनके हितो का ध्यान रखने की थी' वे ही इसके विपरीत इनके शोषण का कार्य कर रहे हैं। जब सन् 1991 में भारतीय बाजार विदशी कंपनियों के लिए खोल दिया गया तब इन्हीं कंपनियों को स्थापित करने के लिए सरकार ने किसानों की जमीनों का अधिग्रहण करना प्रारम्भ किया। किसानों को जबरदस्ती उनके घरो से निकाला गया। उन्हें विवश किया गया कि वे अपनी जमीन कॉरपोरेट के हाथों सौंप दे। मनोज सिन्हा लिखते हैं ''पश्चिम बंगाल में विशेष आर्थिक क्षेत्र बनाने के लिए सिंगूर में किसानों की जमीन बाजार मूल्य से कुछ अधिक उनके परिवार से एक व्यक्ति को स्थापित फर्म में नौकरी के आश्वासन के साथ जमीन खरीदने का दबाव डाला गया। इसे सभी भारतीय राज्यों में पूरा किया जा रहा है। जैसे उत्तर प्रदेश के एनसीआर नोएडा, दादरी, दानकोर, गुडगाँव, पानीपत–इन कृषि योग्य क्षेत्रों में एस्टेट अपार्टमेट उद्योग बड़ी तेजी से फैल रहा है।''[9]

सबसे हैरान करने वाली बात यह है कि समाज शोषितों वंचितों के साथ हो रहे अन्याय व शोषण की आवाज उठाने वाला बौद्धिक वर्ग व मीडिया जगत (चौथा स्तम्भ) मौन दिखाई दिखाई पडता है। नतीजतन किसान कृषक वर्ग आत्महत्या को मजबूर होता है कृषक वर्ग की आवाज उठाने वाले साहित्यकार संजीव लिखते है कि ''यदि हमे आज किसानों की समस्याओं को पहचानना है और उन सभी समस्याओं का समाधान करता है तो आवश्यकता इस बात 'की है हमें किसान और उसकी समस्या को साहित्यिक लेखन, रचनात्मक लेखन में स्थान देना होगा। इसके लिए जरूरत है कि एक मैथड राइटिंग की शुरुआत की जाए हम लेखक, विद्यानों साहित्यकारों और पत्रकारों

की एम टीम बनाए जो गाँव–गाँव जाकर किसानों को देखे, उसको जाने उसको की समस्या समझे और फिर अंत में वह पूरी टीम उन सभी समस्याओं पर लेखन करे। जब एक टीम मिलकर मैथड राइटिंग की शुरुआत करेगी तभी जाकर किसान और उसको समस्या को साहित्य और रचनात्मक लेखन में स्थान मिलेगा।''[10]

भारतीय कृषि में परम्परागत विधि का प्रयोग फसलों की उपज के लिए होता आया है। समय के साथ उन्नत तकनीक और विज्ञान का विकास हुआ। इसने कृषि के आधुनिकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। परंतु फसल के ऊपादन में लागत मूल्य की भारी वृद्धि हुई कारण संसाधनों का मेहगा होना। वहीं दूसरी तरफ किसानों की आय में खास वृद्धि नही हुई। सरकार द्वारा सरकारी बैंकों के माध्यम से आर्थिक सहयोग का प्रयास तो किया गया परन्तु उसके प्रयोग में खामियों ने किसानों के ऋण को और बड़ा दिया। संजीव लिखते हैं ''कुआ पहले खोदो ऋण बाद में देगी सरकार। कुंए के निर्माण के लिए सब कुछ बेच डालो घर–द्वार, चुल्हा–चुक्की, गाय–बैल औरतों के गहने और औरतो को भी... और आखिर तक उसी कुए में कूदकर खुद भी जान दे दो शिबू की तरह।''[11]

कृषि संसाधनों–रासायनिक उर्वरक 5 ट्रैक्टर, कीटनाशक बीज आदि में सरकार सब्सिडी के माध्यम से सहयोग करती है। परंतु यह सहयोग केवल राजनीतिक प्रयोग के लिए नहीं बल्कि समस्याओं के मूल को समाप्त करने के लिए होना चाहिए।

भारत एक कृषि प्रधान देश है। परंतु अगर भारतीय कृषि जगत को देखें तो सबसे वंचित और दुर्दशा की स्थिती में दिखाई पड़ता है। महँगे होते संसाधन, पलायन, ऋण का बोझ किसानों को आर्थिक के साथ–साथ मानसिक रूप से क्षीण कर रहा है। ऋण का समय से भुगतान में विफलता किसान के आत्महत्याओं का प्रमुख कारण है। स्थिति कितनी विकट है इसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि एक किसान के लिए ''मरना एक मुक्ति है और जीना एक बंधन''[12]

संदर्भ–सूची

1. सिंह, काशीनाथ, रेहन पर रग्घू, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2017, पृ. 144
2. सिंह, काशीनाथ, रेहन पर रग्घू, राजकमल प्रकाशन, संरकरण 2017, पृ. 149
3. सिंह, सूर्यनाथ, चलती चाफी, समसामयिक प्रकाशन, संस्करण 2016, पृ. 149
4. सुबीर पंकज, अकाल में उत्सव, शिवना प्रकाशन, सं. 2017, पृ. 170–71
5. संजीव, फांस, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2015, पृ. 127
6. सिंह, काशीनाथ, रेहन पर रग्घू, राजकमल प्रकाशन, सस्करण 2017, पृ. 133
7. संजीव, फांस, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2015, पृ. 36
8. संजीव, फांस, वाणी प्रकाशन 2015, पृ. 203
9. सिन्हा, मनोज (संपा), समकालीन भारत एक परिचय ओरियन्ट ब्लैक स्वान, संस्करण 2011, पृ. 156
10. कुमार, संजीव, (संपा.) सारस, सितम्बर 2017, पृ. 20–28

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Sanskrit : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 200-203

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

पराम्बानुग्रहवैभवम् महाकाव्य में भगवती देवी की कृपा

*रितेश कुमार तिवारी**

संसार में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ योनियों में एक है। उसे अपने अच्छे कर्म करने के लिए गुरुओं का सान्निध्य प्राप्त करना होता है जिससे वह कर्म मार्ग से उच्चतम स्थान को प्राप्त कर सके। इस लोक में भक्ति आराधना सरल नहीं होती देवी माँ की कृपा पाने के लिए मनुष्य को सर्वस्व सुख संपदा का त्याग करना पड़ता है, भक्ति भाव जैसा सरस प्रेम इस संसार में और कुछ भी नही है।

मानव शरीर पाने के बाद मनुष्य समस्त पुराण उपनिषद् आदि धर्मग्रथों के चिंतन कर के दैवी शक्ति प्राप्त करने के लिए कंदराओं, वन, दुर्गम पहाड़ों में प्रविष्ट होकर घनघोर तपस्या करता हैं तब कहीं जाकर दैवी शक्ति माँ कि कृपा से प्राप्त होती हैं।

मूक होई बाचाल पंगु चढ़ई गिरिवर गहन।
जासु कृपा सो दयाल द्रवउ सकल कलिमल दहन।।[1]

माँ की कृपा से समान्य या जड़ बुद्धि वाले मनुष्य भी परम ज्ञानी सर्वगुण संम्पन्न हो जाते है प्राणी (84) चौरासी लाख योनियों में भटकता रहता है जब ईश्वरीय कृपा प्राप्त होती है तब जाकर मानव शरीर को प्राप्त करता है,जिससे उसके अंदर समस्त गुण विद्यमान हो जाते हैं।

देवी माँ की कृपा दृष्टि से उसे काव्यजगत् में कवित्व का लाभ प्राप्त होता है, कृति वैभव इत्यादि क्षण भर में प्राप्त हो जाता है।

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।।[2]

पराम्बा भगवती नव रूपों में विराजमान हैं इन्हीं नव रूपों में से एक रूप भारतीय संस्कृति धर्म व आध्यात्म में बड़ा महत्वपुर्ण हैं। पराम्बानुग्रहवैभवम् महाकाव्य में जगज्जननी भवानी ने राजकुमार सुदर्शन के ऊपर अपनी महती कृपा की है।

जापर कृपा मातु कै होई।
सो जो करै वही सिद्ध होई।।[3]

महाराज ध्रुवसन्धि के हृदय में भी सुदर्शन के प्रति असीम वात्सल्य प्रेम था। सुदर्शन बहुत ही मंदबुद्धि वाला बालक था एक बार उसने महराज अगस्त्य मुनि के आश्रम में बटुक ब्राह्मण को संध्या उपासना करते देखा जिसमें वह देवी के बीज मंत्र का उच्चरण कर रहा था बालक सुदर्शन माता के बीज मंत्र का सही उच्चारण नहीं कर पा रहे थे ऊँ ऐं ह्रीं क्लीं के जगह ऊँ ऐं ह्रीं क्लीव का उच्चारण करने लगे। माँ सदैव अपने भक्तों के भाव से प्रसन्न होती हैं। ज्ञान से तो सदैव दुरी बनाए रहती है, ऐसे संतों की उक्ति है।

लघुता से प्रभुता मिले प्रभुता से प्रभु दुरी।।

माँ भगवती इतनी दयालु वा कृपालु हैं कि उन्होंने राजकुमार के अशुद्ध उच्चारण के भाव को न देखकर उसके अन्तर्भाव को समझ गयीं, और उस पर अपनी कृपा बरसाने लगीं।

तपस्विना केनचिदीरितं क्रुधा
कदापि कस्मैचिदपि प्रमादिने।

* *शोध छात्र, संस्कृत विभाग, डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या (उ.प्र.)*

सभाश्रृणोत क्लीबपदं सुदर्शनो
वकारहीनं च मकारसंयुतम्।।[4]

अंतः करण मलिन और अपवित्र रहने से परमात्मा की उपासना भी फलवती नहीं होती है। निष्पाप हृदय से भक्ति उपासना करने से ईश्वर प्रसन्न होते हैं। ऋग्वेद में ऋषि कहते है। 08/61/11

न पापायासो मनामहे नारायासो न जल्हवः।
यदिन्न्विन्द्रं वृष्णं सचा सुते सखायं कृणवामहै।।[5]

माँ जगदम्बा के भक्ति भाव अनन्य भक्त के द्वारा देख बालक सुदर्शन का मन भक्ति के प्रति उन्मुख हो गया, गलत उच्चारण होने पर भी माँ दुर्गा की कृपा हो गई।

माँ ने सुदर्शन के अन्तर्भाव की वेदना समझ गयीं और सारा जीवन आनन्द का आधार स्तम्भ हो गया।

बीजमन्त्र प्रभावेण स च बाल्ये तपोवने।
पराम्बादर्शनं लब्ध्वा परमानन्दमाप्तवान्।।[6]

जगज्जननी की कृपा दृष्टि से सुदर्शन को समस्त विद्याएँ अल्प समय में ही प्राप्त हो गई। सुदर्शन के इन्हीं गुणों को देखकर महर्षि भरद्वाज ने महारानी मनोरमा से कहा था कि पुत्रि!

आपका यह पुत्र एक दिन अवश्य ही समस्त भू–मंडल पर अपना सम्राज्य शासन स्थापित करेगा।

माँ की अनुकम्पा जब भक्तों के उपर अमृत बरसाने लगती है तो समस्त कार्य अनायास ही सिद्ध जाती है। ऐसी करूणामयी माता रानी को बारम्बार प्रणाम, जिनकी कृपा कब और कहाँ किस पर हो जाए साधारण जन के समझ के परे है।

सर्वमंगल मांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरी नारायणी नमोस्तुते।।[7]

अर्न्तभाव की कृपा दृष्टि जब बनती है, तो बनती ही चले जाती है। जो जिस भाव का होता है, उस पर वैसी ही कृपा बरसती है माँ भगवती के एक भक्त काशी नरेश सुबाहु की पुत्री शशिकला ने सुदर्शन को वर श्रेष्ठ के रूप में स्वंय वरण कर लिया। जिसके उपर माँ भगवती का कृपा हो उसके लिए तो सारे सुद्वार आपने आप ही खुल जाता है।

शशिकला अपने मन ही मन सुदर्शन को पति के रूप मे वरण कर लिय। वह पुजा में भी सुदर्शन के विरह में निमग्न रहती थी, माता दुर्गा ने स्वपन में दर्शन देकर कहा सुदर्शन ही तुम्हारा पति होगा। हृदय के भाव की गरिमा होती है। पुर्ण भाव से किया गया कार्य अवश्य ही सफल होता है।

न काष्ठे विद्यते देवे, न पाषाणे न मृण्मये।
भावे तु विद्यते देवस, तस्माद् भावो हि कारणम्।।[8]

माँ परम दयालु कृपालु व ममता के सागर है, भक्तों पर अनुग्रह करने की उनकी गति बड़ी ही विचित्र है।

जिस पर माँ की अनुग्रह कृपा हो जाए उसके सारे मनोरथ अपने आप ही पुर्ण हो जाती है राजकुमार सुदर्शन और राजकुमारी शशिकला पर माँ की विशेष कृपा दृष्टि है माँ की अनुग्रह धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष चारों पुरुषार्थों को प्रदान करने में सक्ष्म है।

जगत जननी माँ ऐसी दयालु स्वभाव के है कि माँ अवगुणों को देखकर भी भक्त के गुणों पर ध्यान देती है, माता में सभी प्रकार के भाव गुण सब विद्यमान हैं।

मैं ही बुद्धि हुँ श्री, धृति, कीर्ति, स्मृति, श्रद्धा, में धालज्जा कान्ति, क्षुधा, तृष्णा क्षमा, पिपासा, निद्रा, तन्द्रा, जरा, अजरा, शक्ति, अशक्ति, मज्जा, आदि वाणी के भेद और जो विभिन्न प्रकार की नाड़ीयाँ है– वह सब मैं ही हूँ।

अहं बुद्धिरहं श्रीश्चधृतिः कीर्तिः स्मृतिस्तथा।
श्रद्धा, मेधा, दया, लज्जा, क्षुधा, तृष्णा तथा क्षमा।।[9]

माता की कृपा से जब शशिकला की स्वंयवर का आयोजन हुआ तो राजा सुबाहु ने सभी राजा एवं राजकुमारों के साथ सुदर्शन को भी आमन्त्रित किया।

शशिकला को स्वंयवर में सभी राजा एवं राजकुमारों के परिचय से परचित उनके सखीयों के द्वारा कराया जा रहा था शशिकला परचिय प्राप्त कर के नाक को सिकोड़ते हुए आगे बढ़ जाती थी।

नासग्रमुत्कोच्यचचालबाला
भालस्थलालम्बिविलोल बाला।
भाग्यं बिना पुण्यवतोऽपि पुंसः
स्त्रियः श्रियश्चापि भवन्ति वामाः।।[10]

समस्त राजा एवं राजकुमारों के परिचय को प्राप्त कर राजकुमारी शशिकला ने स्वंयवर में राजकुमार सुदर्शन का वरण कर लिया, ईर्ष्या व द्वेष से जलकर अन्य राजाओं ने काशी को घेर लिया, महाराज सुबाहु अपनी पुत्री और जमाता को नगर की सीमा तक छोड़ने आए वही पर शत्रुओं के साथ युद्ध हुआ।

राजकुमार युद्ध करते हुए माता का स्मरण किया, माता प्रकट होकर शत्रुओं और ऊनके सेना को अपने कोपाग्नि नेत्र से भस्म कर दिया।

एक भरोसो, एक बल ,एक आस विस्वास।
एक राम घनस्यामहित, चातक तुलसी दास।।[11]

महाराज सुबाहु और राजा सुदर्शन ने माता की स्तुति किया। जगन्माता ने सुदर्शन को अयोध्या जाकर राज्य करने का आदेश दिया।

सुदर्शन अयोध्या आकर राज्य करने लगे और अम्बा मन्दिर की स्थापना किया। महाराज सुबाहु द्वारा स्थापित मन्दिर का भव्य उद्घाटन काशी में दुर्गा कुण्ड पर किया गया।

जगत जननी माता का नव रूप भक्तों के लिए सदैव कल्याणकारी है, महाकवि गोपीनाथ टण्डन ने भगवती के अनेक रूपों का नामोल्लेख शशिकला द्वारा कराया है।

भवानीति च दुर्गेति
चण्डिकेति शिवेति च।
जपन्त्या रसना तस्या
न तृषान्तमुपागमत्।।[12]

माता के सभी रूप हम सभी पर कृपा दृष्टि बनाए रखें, हम सभी कल्याणप्रद होवे, किसी को किसी प्रकार का कष्ट की अनुभुति न हो।

यःश्रृणोति नरो भक्तया देव्याश्चरितमुत्तमम् ।
स भुक्तवा विपुलान्भोगान्प्राप्नोति परमं पदम्।।[13]

जो मनुष्य देवी के उत्तम चरित्र का श्रवण करता है, वह अनेक सुखों का उपभोग करके परम पद को प्राप्त कर लेता है।

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।[14]
सर्व मंगल मांगल्ये शिवे सर्वाथसाधिके।
शरण्ये त्रयम्बके गौरि नरायणि नमोऽश्स्तु ते।।

हे भगवती आप कल्याण दायिनी शिवा, हो तुम सब प्रकार का मंगल प्रदान करने वाली हो, सब पुरुषार्थों को, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, क्रोद्ध को सिद्ध करने वाली हो।

आप शरणागत वत्सला व त्रिनेत्रों वाली गौरी हो। हे नारायणी तुम्हें नमस्कार है।

संदर्भ–सूची

1. श्री रामचरितमानस, बालकाण्ड (–85) पृ. 34
2. काव्यप्रकाशम्, आचार्य मम्मट, पृ. 10
3. विन्ध्येश्वरी चालीसा/दुर्गा चालीसा

4. पराम्बानुग्रहवैभवम् सर्ग–07 श्लोक 3
5. ऋग्वेद–08 / 61 / 11
6. पराम्बानुग्रहवैभवम् श्लोक–04 पृ. 4
7. दुर्गासप्तशती, पृ. 8 अथ सप्तश्लोकि दुर्गा श्लोक सं. 7
8. यथोचित पदरत्नमालिका, पृ. 25
9. श्रीमद् देवीभागवत श्लोक सं. 8, स्कन्ध–3, अध्याय–6
10. पराम्बानुग्रहवैभवम्
11. दोहावली, गीताप्रेस, गोरखपुर (कोड–107) पृ. 77
12. पराम्बानुग्रहवैभवम 09 / 169
13 दुर्गासप्तशती
14 दुर्गासप्तशती, पृ. 8, अथ सप्तश्लोकि दुर्गा श्लोक सं. 7

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Psychology : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 204-208

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

A Study of Gender Comparison on Subjective Well Being

*Shri Nandini** *Dr. Anand Shankar***

Abstract : *The concept of subjective well-being (SWB), which refers to an individual's self-perceived happiness or satisfaction with life, has gained significant attention in the fields of psychology, sociology, and education. For college students, who are often at a pivotal stage of identity formation and personal development, SWB is especially crucial. SWB encompasses both affective components (such as experiencing more positive than negative emotions) and cognitive components (such as life satisfaction). Among the various factors that shape SWB, cultural values are increasingly being recognized as central influences (Diener, Oishi, & Lucas, 2003). The study aims to find the difference between males and females using SUBI scale of Subjective Well Being.*

Introduction : The concept of subjective well-being (SWB), which refers to an individual's self-perceived happiness or satisfaction with life, has gained significant attention in the fields of psychology, sociology, and education. For college students, who are often at a pivotal stage of identity formation and personal development, SWB is especially crucial. SWB encompasses both affective components (such as experiencing more positive than negative emotions) and cognitive components (such as life satisfaction). Among the various factors that shape SWB, cultural values are increasingly being recognized as central influences (Diener, Oishi, & Lucas, 2003).

Types of Well-Being :

1.Subjective Well-Being (SWB): Subjective well-being is how people experience and evaluate their own lives, primarily in terms of life satisfaction and emotional states. Its components are positive effect, negative effect and life satisfaction

2. Psychological Well-Being (PWB): This has been developed by Ryff and it includes six dimensions namely autonomy, personal growth, environmental mastery, purpose in life, personal growth and positive relationship.

3. Social Well-Being (SoWB): This has been developed by Keyes and it includes dimension like Social contribution, social integration, social coherence, social actualisation and social acceptance. This is one's evaluation about one's own life on societal parameters.

4. Physical Well-Being; This mainly refers to ones physical health, energy levels, ability to do everyday chores without any constraints, dietary habits, sleep patterns and other overall lifestyle.

5. Emotional Well-Being: This refers to a balance between positive and negative emotions like a balance between joy and anxiety, a balance between contentment and sadness. This is often considered a subset of subjective well being.

* ***Research Scholar, Dept. of Psychology, Tilka Manjhi Bhagalpur University, Bhagalpur***

** ***Assistant Professor, Dept. of Psychology, S.M. College, TMBU***

6. Economic and Financial Well-Being: This refers to ones financial stability, financial security, ability to fulfil current and future responsibilities and obligations etc. It also includes financial independence.

In the context of Indian students, especially those from regions with rich and diverse cultural traditions like Bhagalpur, Bihar, cultural values may play a unique role in shaping perceptions of well-being. Cultural values are collective beliefs, principles, and norms that shape individuals' attitudes and behaviors in a society. In India, where collectivism, family orientation, and respect for hierarchy are deeply rooted in social values (Sinha & Tripathi, 1994), these cultural aspects can directly impact students' happiness and overall life satisfaction.

OBJECTIVE : To enquire if there is any difference between gender on Subjective Well Being.

HYPOTHESIS : Males and Females will differ significantly on Subjective well being.

SAMPLE : The *Criteria of Inclusion* regarding age for this test was youth falling between the age group of 16-25 years and using social media platforms like Facebook, Instagram etc. While the *Criteria of Exclusion*was youth who did not fall between the age group of 16-25 years or not using social media platforms. The study was conducted on around 750 samples collected from Bihar(tier 3 city) and Delhi(tier 1 city).

Questionnaires Used : The questionnaire used in this study was SUBI scale which is developed by Sell and Nagpal in 1992. The questionnaire contained 11 dimensions which are General well Being-positive affect, Expectation-Achievement congruence, Confidence in coping, Transcendence, Family group support,Social support, Primary group concern, Inadequate mental mastery, Perceived ill health, Deficiency in social contacts, General well Being-Negative affect.

The questionnaire had 40 items out of which 19 were positive items and 21 were negatively scored items. The score range of this questionnaire lied between 21-61.

Result and Discussion : Before analyzing the means of males and females, Levene's test of equality of variance was tested. The test gave non significant results (F =.396 ;p = .529). This means that males and females have same variability. Because males and females have same variability, student's *t*-test was used to test the difference between males and females for the scale of SWB. The mean for males was found to be 89.72 and that for females was found to be 87.87. The *t*-test for the same was found to be significant, meaning males and females differ on SWB (t = 2.35; p = .019).

Males and females were also compared on 11 dimensions of subjective well being. Before comparing males and females on different dimensions of SWB, dimension wise variability was checked with Levene's test and the scores of males and females on all the 11 dimensions were found to be equally variable, meaning the spread of scores for both males and females were same. After investigating dimension wise score of males and females, there were four dimensions where their scores were found to be significantly different form one another i.e. on 4 dimension males and females were found to be different. These four dimensions were Primary group concern, Inadequate mental mastery, Perceived ill heath and General Well Being (Negative affect). The mean on these four dimensions are shown below in the table.

For usage wise comparison i.e. with low, medium and high social media users, males and females had same level of Subjective Well Being. Among 'low' social media users the mean of males was found to be 88.29 and that for females was found to be 86.50. The t test for this comparison did not show significant difference (p =.235) between the two. Among 'medium' social media users the mean of males was found to be 90.20 and the same for females was found to be 88.36. The t test for this comparison did not show significant difference (p =.093) between the two. Among 'high' social media users the mean of males was found to be 90.23 and the for females was found to be 89.37. The *t* test for this comparison did not show significant difference (p =.619) between the two.

Table - 1 : ***Comparisons between Males and Females on Significant Dimensions of SWB***

SWB Factors		*M*	*SD*	*t*
1. Primary group concern	Males	7.31	3.25	4.1^{***}
	Females	8.38	3.26	
2. Inadequate mental mastery	Males	14.93	3.07	7.1^{***}
	Females	13.16	3.17	
3. Perceived ill health	Males	13.69	2.30	3.2^{***}
	Females	13.04	2.60	
4. General WB (Neg- Affect)	Males	6.92	1.27	2.9^{**}
	Females	6.62	1.33	

Note. ****p<0.05, significant (two tailed),*** *****p<0.01, significant (two tailed),*** ******p<0.001, significant (two tailed)***

Table - 2 : ***Comparisons Between Gender for Scores of SWB on Levels of Social Media Usage***

	Males		Females		*t*	*p*
	M	*SD*	*M*	*SD*		
Low user	88.29	10.39	86.50	10.01	1.19	.235
Medium user	90.20	9.21	88.36	9.90	1.69	.093
High user	90.23	9.91	89.37	10.09	.498	.619

Note. ****p<0.05, significant (two tailed),*** *****p<0.01, significant (two tailed),*** ******p<0.001, significant (two tailed)***

Interestingly, when the data for tier 3(Bihar) and tier 1(Delhi) city was separately analysed it was found that there was significant difference between males and females on scores of SWB for both tier 3 and tier 1 city. While the mean score of SWB of males for tier 1 city was found to be 94.36 and that of females was 90.30. The t-test showed significant difference between these two means (t = 3.3, p< .001). For tier 3 city, the mean for males was 86.77 and that for females was 84.58. Student*t*- test also showed significant difference between the two (t = 2.3 ;p< .05).

It was noticed here that in both the cities males were having better SWB than females. To understand it better the dimension of SWB were analysed to know on which dimensions males fared better than females. In doing so it was found that males fared better than females on dimension 8 and 9 of SUBI scale, which were Inadequate mental mastery and Perceived ill health.

Table - 3 : ***City Wise Comparison between Males and Females on Dimensions of SWB (Significant Results)***

		Males		Females		
		M	*SD*	*M*	*SD*	*t*
1. Inadequate Mental Mastery	Delhi	15.43	3.25	13.27	3.18	5.6^{***}
	Bihar	14.62	2.91	13.02	3.15	4.8^{***}
2. Perceived ill Health	Delhi	14.45	2.19	13.45	2.64	3.2^{***}
	Bihar	13.21	2.24	12.47	2.46	2.8^{*}

Note. $^{*}p<0.05$***, significant (two tailed),*** $^{**}p<0.01$***, significant (two tailed),*** $^{***}p<0.001$***, significant (two tailed)***

On both these dimensions the mean scores of males were found to be significantly higher than females in both the cities. Hence overall it can be said that males and females differ on subjective well being, hence the hypothesis that males and female have different SWB stands accepted.

REFERENCES

1. Adewunmi, B. (2013), The Rise of the Selfie, The Guardian. Retrieved from http:// www.theguardian.com/artanddesign/2013/riseandriseofselfie.

2. Baghel, S.S. & Singh, U.S. (2015), Social Media and Indian youth, Apple Books.

3. Baker, L.R. & Oswald, D.L. (2010), Shyness and Online Social Networking Services, *Journal of Social and Personal Relationships*, 27(7), 873-889.

4. Barker, V. (2009), *Cyber Phsychology & Behavior*, April 2009, 12(2) : 209-213. doi :10.1089/cpb. 2008, 0228.

5. Ellinson, N., Heino, R., & Gibbs, J. (2006), Managing Impressions Online : Self-presentations Processes in the Online Environment. Journal of Computer-Mediated Communication, 11, 415-441.

6. Figueira. A, Oliviera. L. (2015), Benchmarking Analysis of Social Media Strategies in the Higher Education Sector, *Procedia Computer Science 64, 779-786*

7. Gai, B. (2009), A World Through the Camera Phone Lens : A Case Study of Beijing Camera Phone Use, *Knowledge Technology and Policy*, 22(3),195-204.

8. Glass,G. & Hopkins, K. (1996), Statistical Methods in Education and Psychology, Needham Heights, MA : Allyn & Bacon.

9. Rubinstein, D., & Sluis, K. (2008), A Life More Photographic : Mapping the Networked Image. Photographies,1(1).9-28

10. Rutledge, P. (2014), Selfies Linked to Narcissism, Addition, and Mental Illness, Retrieved from http//www.ibtimes.co. uk/ linked-narcissism–addition-mental-illness–say scientists 1441480

11. Schacter, Daniel T., Gilbert, Daniel M., Wegner (2011), Psychology (2 ed.), New York, NY : Worth Publishers, p. 494

12. Seligman, M. E.P. (2004), Can Happiness be Taught?, *Daedaulus*, Spring 2004.

13. Shankar, A. (2020), *A Psycho-Social Study of Social Media Users : Explorations Into Self and Well Being of Indian Youth* [Doctoral Thesis, University of Delhi].

14. Oishi, Diener, Choi, Kim-Prieto & Choi (2007), The Dynamics of Daily Events well-being Across Cultures : When Less is More, Journal of Personality and Social Psychology, 93/4, American Psychological Association.

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Pol. Science : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 209-213

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

दलितों और हाशिए पर रहने वाले समुदायों के संरक्षक के रूप में कर्पूरी ठाकुर का नेतृत्व

*आफजल इकबाल**

सारांश : *यह शोध पत्र कर्पूरी ठाकुर की नेतृत्व क्षमताओं का व्यापक अध्ययन करता है, जिसमें उनके दलितों और हाशिए पर रहने वाले समुदायों के प्रति एक दृढ़ संरक्षक के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका का सावधानीपूर्वक विश्लेषण किया गया है। गहन विश्लेषण के माध्यम से, यह ठाकुर की अडिग संकल्प शक्ति और महत्वपूर्ण प्रणालीगत चुनौतियों का सामना करने में उनकी अडिग सहनशीलता को उजागर करता है, इस प्रकार कठिन समय में उनके नेतृत्व के गहन परिवर्तनकारी प्रभाव को प्रदर्शित करता है। ठाकुर के निर्णयों और रणनीतिक दृष्टिकोणों का निकटता से अध्ययन करके, यह शोध सामाजिक सुधार की जटिल गतिशीलता में मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करता है, जो न्याय और समानता के लिए चल रही संघर्ष को उसके सबसे गंभीर रूपों में दर्शाता है। ठाकुर की कारण के प्रति अडिग प्रतिबद्धता उनके दृढ़ संकल्प और स्थापित अन्यायों के खिलाफ उनके सिद्धांतों की स्थिति का प्रमाण है। उनके तरीकों की विस्तृत जांच के माध्यम से, यह अध्ययन ठाकुर के नेतृत्व की नींव के रूप में रणनीतिक कौशल और भविष्यदृष्टि को उजागर करता है, जो सामाजिक न्याय की निरंतर खोज में भविष्य की पहलों के लिए मार्गदर्शन प्रदान करता है।*

सांकेतिक शब्द : *कर्पूरी ठाकुर, आरक्षण, पहली पिछड़ी जातियों की आयोग, बिहार में सामाजिक सुधार, मुंगेरीलाल आयोग, कर्पूरी ठाकुर दलितों के लिए।*

परिचय : कर्पूरी ठाकुर आशा और सहनशीलता के प्रतीक के रूप में उभरे हैं, विशेष रूप से हाशिए पर रहने वाले वर्गों, विशेषकर दलितों के लिए, और उत्पीड़ित masses के लिए अडिग साहस का स्रोत बने हैं। उनके जीवनभर के प्रयासों ने, जो उन्होंने शोषितों के उत्थान के लिए किए, शासक वर्गों और जमींदारों के दिलों में भय उत्पन्न किया, जबकि साथ ही यह गरीबों में साहस और प्रेरणा का संचार करता रहा। बिहार के जमींदारी समाज की जटिलताओं के बीच, ठाकुर एक मजबूत समाजवादी नेता के रूप में उभरे, जो निरंतर वंचितों के अधिकारों और आजीविका के लिए संघर्ष करते रहे। उनकी चिंताएँ केवल भौतिक संसाधनों तक सीमित नहीं थीं; वे युवाओं की बुद्धिमत्ता और आकांक्षाओं को भी पोषित करने के प्रति समर्पित थे। ठाकुर की विरासत समय की सीमाओं को पार करती है, जो भविष्य की पीढ़ियों के लिए एक शाश्वत मार्गदर्शक प्रकाश के रूप में कार्य करती है। उनका बलिदान और शोषितों के लिए निरंतर संघर्श इतिहास में एक गहरा प्रमाण है कि करुणा और सामाजिक न्याय की परिवर्तनकारी शक्ति क्या होती है। राजनीतिक क्षेत्र में, उन्होंने निर्भीकता से उन लोगों की आवाज उठाई, जिनकी आवाज़ नहीं थी, यह सुनिश्चित करते हुए कि उनकी समस्याओं को न केवल स्वीकार किया जाए, बल्कि उन्हें तत्परता और ईमानदारी से हल भी किया जाए। कर्पूरी ठाकुर का जीवन सहनशीलता का प्रतीक है, एक ऐसा कथा जो इतिहास के पन्नों में गूंजता रहेगा, अगली पीढ़ियों को अन्याय के खिलाफ उठ खड़े होने और एक अधिक न्यायपूर्ण, समान समाज के लिए प्रयासरत रहने के लिए प्रेरित करेगा।

अध्ययन के उद्देश्य : यह शोध लेख कर्पूरी ठाकुर के नेतृत्व का गहन अध्ययन करने का उद्देश्य रखता है, जो दलितों और हाशिए पर रहने वाले समुदायों के अधिकारों के लिए उनकी वकालत को उजागर करता है। यह उनके वकालत के सूक्ष्म पहलुओं और इसके प्रभावों पर प्रकाश डालेगा। यह ठाकुर की दृढ़ संकल्पना का मूल्यांकन करेगा, जो प्रणालीगत बाधाओं को पार करने में उनकी सहनशीलता को उजागर करता है। इसके अतिरिक्त, यह ठाकुर की नेतृत्व शैली और रणनीतियों का विश्लेषण करेगा ताकि उनके कार्यों के पीछे के मार्गदर्शक सिद्धांतों को

* *शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा*

समझा जा सके। अध्ययन ठाकुर के नेतृत्व के सामाजिक न्याय पर परिवर्तनकारी प्रभाव का भी परीक्षण करेगा, विशेष रूप से हाशिए पर रहने वाले समूहों पर इसके सकारात्मक प्रभावों को। अंततः, भाषणों और लेखन जैसे प्राथमिक स्रोतों के सावधानीपूर्वक अध्ययन के माध्यम से, यह शोध ठाकुर की प्रेरणाओं और कार्यों को उजागर करने का प्रयास करेगा, जिससे उनकी वकालत और नेतृत्व के बारे में गहरी समझ प्राप्त हो सके।

अध्ययन पद्धति : इस अध्ययन में गुणात्मक पद्धति का उपयोग किया गया है, जिसमें विभिन्न शैक्षणिक स्रोतों, ऐतिहासिक कथाओं और अभिलेखीय रिकॉर्ड का सहारा लिया गया है ताकि करपूरी ठाकुर के नेतृत्व का समग्र विष्लेशण किया जा सके। उपलब्ध साहित्य की व्यवस्थित जांच करते हुए, यह षोध ठाकुर के नेतृत्व के दृष्टिकोण और उनकी रणनीतिक चालों में मौलिक विषयों और पुनरावृत्त पैटर्नों को उजागर करने का प्रयास करता है। इसके अतिरिक्त, ठाकुर के भाषणों, लिखित कार्यों और साक्षात्कारों जैसे प्राथमिक स्रोतों का गहन अध्ययन किया गया है ताकि उनके अंतर्निहित प्रेरणाओं और क्रियाओं की बेहतर समझ प्राप्त की जा सके।

कर्पूरी ठाकुर एक ऐसे नेता थे जिन्होंने दलितों और हाशिए पर रहने वाले समुदायों के प्रति गहरी सहानुभूति और करुणा का परिचय दिया। उन्होंने इन समुदायों की पीड़ा को समझने की अद्वितीय क्षमता प्रदर्शित की। जमीनी स्तर पर सक्रिय रहते हुए, उन्होंने गरीबों के दुखों को समझने का प्रयास किया और अपने राजनीतिक प्रभाव का उपयोग हाशिए पर रहने वालों के लिए वकालत करने में किया। उल्लेखनीय है कि उच्चस्तरीय राजनीतिक गतिविधियों में संलग्न रहने के बावजूद, ठाकुर ने हमेशा वंचितों को उठाने के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को बनाए रखा, जिसके लिए उन्हें व्यापक पहचान मिली। उनकी अद्वितीय नेतृत्व क्षमता ने उनके राजनीतिक विरोधियों के बीच भी मान्यता प्राप्त की, कई ने स्वीकार किया कि वे बिहार के सच्चे नेता के रूप में अकेले खड़े थे। ठाकुर की स्थायी विरासत केवल उनकी राजनीतिक क्षमता में नहीं, बल्कि दलितों और पिछड़े समुदायों के दुखों को कम करने के प्रति उनकी अडिग प्रतिबद्धता में भी निहित है, जो सहानुभूति और सामाजिक न्याय का एक स्थायी प्रतीक बनकर उभरी। बिहार के सामंती गढ़ में, कर्पूरी ठाकुर एक अग्रणी व्यक्तित्व के रूप में उभरे, जिन्होंने खेत मजदूरों, दलितों, पिछड़े समुदायों और हाशिए पर रहने वालों में अपने अधिकारों के लिए निर्भीकता से खड़े होने का साहस भरा। उनके नेतष्त्व ने एक महत्वपूर्ण बदलाव का संकेत दिया, जिससे ऐतिहासिक रूप से वंचित समूहों को अपने हक की मांग करने के लिए सशक्त बनाया गया। ठाकुर की स्थापित शक्ति संरचनाओं के खिलाफ विद्रोह ने जमीनी स्तर पर संगठित होने का एक नया युग शुरू किया, जिसने स्थिति को चुनौती दी और उत्पीड़ितों को अन्याय का सामना करने के लिए प्रेरित किया। सामंती वर्चस्व के संदर्भ में, उनके द्वारा वंचितों के अधिकारों के लिए की गई वकालत सामाजिक परिवर्तन के लिए एक स्पष्ट आह्वान के रूप में गूंज उठी। अपने साहसी पहलों के माध्यम से, ठाकुर ने दासता की जंजीरों को तोड़ते हुए बिहार के सामंती परिदृश्य में एक अधिक समान और समावेशी समाज की दिशा में मार्ग प्रशस्त किया।

कर्पूरी ठाकुर ने व्यक्तिगतता की सीमाओं को पार करते हुए एक आदर्श संस्था का रूप धारण किया, जिसका उद्देश्य शोषित और oppressed the masses को उठाना था, साथ ही देश में गरीबी को समाप्त करना और सामाजिक समानता को बढ़ावा देना था। उन्होंने वास्तविक नेतृत्व का प्रतीक बनते हुए समानता, स्वतंत्रता और भाईचारे के स्तंभों पर समाजवाद की नींव रखी। ठाकुर केवल एक नेता के रूप में नहीं उभरे, बल्कि उन्होंने पिछड़े समुदायों के लिए एक शक्तिशाली राजनीतिक स्तंभ के रूप में अपनी पहचान बनाई, अपने प्रभाव का उपयोग शोषण और भेदभाव के खिलाफ उनके संघर्ष में एक प्रभावी हथियार के रूप में किया। उनका व्यक्तित्व समाज में आवश्यक गहरे परिवर्तनों का प्रतीक बन गया, जो सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन की दिशा में अग्रसर होने के लिए आवश्यक थे।

ठाकुर के योगदान केवल शब्दों तक सीमित नहीं थे; उन्होंने किसानों और श्रमिकों को शामिल करते हुए एक बहुआयामी आंदोलन को उत्प्रेरित किया, जो देशभर में आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक समानता के लिए निरंतर प्रयासरत रहे। सामाजिक सुधार के क्षेत्र में, उनका प्रभाव अद्वितीय गहराई के साथ गूंजा, एक वर्ग संघर्ष को प्रज्ज्वलित किया जो पूरे देश में गूंजता रहा, स्थापित शक्ति संरचनाओं को चुनौती दी और हाशिए पर पड़े लोगों के लिए न्याय की मांग की। समानता और न्याय के सिद्धांतों के प्रति उनकी अडिग प्रतिबद्धता के माध्यम से, ठाकुर भारतीय राजनीति के इतिहास में एक विशाल व्यक्तित्व के रूप में उभरे, जिन्होंने राष्ट्र की सामूहिक चेतना पर एक अमिट छाप छोड़ी।

स्वतंत्र भारत में आरक्षण का इतिहास और पृष्ठभूमि : भारतीय समाज लंबे समय से वर्ण व्यवस्था के चारों ओर संरचित रहा है, जो जाति भेदभाव को बढ़ावा देती है, जहाँ कुछ जातियाँ दूसरों की तुलना में श्रेष्ठ मानी जाती हैं। यह श्रेणीबद्ध व्यवस्था जन्म के आधार पर समाज को विभाजित करती है, व्यक्तियों को पूर्वनिर्धारित

सामाजिक भूमिकाओं और विशेषाधिकारों में सीमित कर देती है। इस प्रणाली के शीर्ष पर उच्च जातियाँ हैं, जो सामाजिक–आर्थिक लाभों का आनंद लेती हैं और महत्वपूर्ण प्रभाव रखती हैं। इसके विपरीत, निम्न जातियों को प्रणालीगत उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है, संसाधनों तक सीमित पहुँच और उन्नति के अवसरों की कमी का सामना करना पड़ता है। यह गहरी जड़ें जमा चुकी जाति व्यवस्था सामाजिक गतिशीलता को आकार देती है और भारतीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में असमानता को बढ़ावा देती है। जाति व्यवस्था के दमनकारी प्रभाव के खिलाफ, बीआर आंबेडकर, डॉ. राम मनोहर लोहिया और कर्पूरी ठाकुर जैसे दृष्टा ने दलितों और पिछड़ी जातियों के उत्थान के लिए सरकारी सेवाओं में आरक्षण लागू करने के लिए निरंतर संघर्ष किया। डॉ. आंबेडकर ने अपने उत्साही समर्थन में ''अछूतिस्तान'' का विचार भी प्रस्तुत किया, ताकि अछूतों के लिए एक आश्रय सुनिश्चित किया जा सके। इतिहास के संदर्भ में, हम 12 नवंबर 1930 को ब्रिटिश वायसराय की अध्यक्षता में आयोजित ऐतिहासिक गोल मेज सम्मेलन को याद करते हैं, जहाँ 89 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। यहाँ विभिन्न दृष्टिकोण सामने आएरू जबकि मोहम्मद अली जिन्ना ने मुसलमानों के लिए सामुदायिक प्रतिनिधित्व का समर्थन किया, डॉ. बी.आर. आंबेडकर ने अछूतों के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्रों का जोरदार समर्थन किया। हालाँकि, हिंदू प्रतिनिधियों ने संयुक्त निर्वाचन क्षेत्रों का पक्ष लिया।

भारत की स्वतंत्रता के पश्चात, भारतीय संविधान ने पिछड़ी जातियों, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए विभिन्न सेवाओं में आरक्षण की व्यवस्था की। इन उपायों का उद्देश्य ऐतिहासिक अन्यायों को दूर करना और हाशिए पर स्थित समुदायों के लिए प्रतिनिधित्व और अवसर सुनिश्चित करना था। आरक्षण के माध्यम से, संविधान ने सामाजिक समावेश और उत्थान को बढ़ावा देने का प्रयास किया, जिससे एक अधिक समान और न्यायपूर्ण समाज की स्थापना हो सके। यह पहल उन समुदायों द्वारा सहन किए गए सदियों के भेदभाव और अधिकारहीनता को सुधारने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम थी। आरक्षण नीतियों का कार्यान्वयन भारत की सच्ची समानता और सामाजिक न्याय की प्राप्ति की यात्रा में एक निर्णायक क्षण के रूप में उभरा।

प्रथम पिछड़ी जातियों की आयोग

पृष्ठभूमि और इतिहास : भारतीय सरकार द्वारा 29 जनवरी 1953 को काका कालेकर की अध्यक्षता में अनुच्छेद 340 के तहत स्थापित, प्रथम पिछड़ी जातियों की आयोग ने हाशिए पर स्थित समुदायों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति की जांच शुरू की। 1955 में अपने महत्वपूर्ण रिपोर्ट में, आयोग ने इन समाज के वर्गों द्वारा सहन की गई व्यापक असमानताओं को सुधारने के लिए आरक्षण की जोरदार वकालत की। यह ऐतिहासिक क्षण भारत में सकारात्मक कार्रवाई पहलों की नींव रखता है, जिसका मुख्य उद्देश्य सामाजिक न्याय और समावेशिता को बढ़ावा देना है। आयोग ने पिछड़ी जातियों के लिए समान प्रतिनिधित्व और अवसर सुनिश्चित करने के लिए सकारात्मक कार्रवाई की तात्कालिकता को उजागर किया। सामाजिक न्याय के सिद्धांतों से प्रेरित होकर, आयोग ने शैक्षणिक संस्थानों और सरकारी नौकरियों में आरक्षण की वकालत की ताकि वंचितों को उठाया जा सके। रिपोर्ट ने पिछड़ी जातियों द्वारा सहन की गई ऐतिहासिक अन्यायों पर जोर दिया और उनके सामाजिक–आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिए सक्रिय उपायों की आवश्यकता को रेखांकित किया। अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन ने समाज में समावेशिता और विविधता को बढ़ावा देने के लिए आयोग के आरक्षण पर ध्यान केंद्रित करने का समर्थन किया। कुल मिलाकर, प्रथम पिछड़ी जातियों की आयोग की सिफारिशों ने सामाजिक समानता और सषक्तिकरण को बढ़ावा देने के लिए सकारात्मक कार्रवाई नीतियों की नींव रखी।

आयोग की सिफारिशें : पहली पिछड़ी जातियों की आयोग, जिसकी अध्यक्षता काका कलेलकर ने की, ने हाशिए पर मौजूद समुदायों के सामने आने वाली सामाजिक–आर्थिक विषमताओं को दूर करने के लिए आरक्षण के संबंध में कई सिफारिशें प्रस्तुत कीं, जिनके साथ डेटा प्रतिशत भी शामिल थे–

1. आरक्षण कोटा का आवंटन : आयोग ने शैक्षणिक संस्थानों और सरकारी नौकरियों में पिछड़ी जातियों के लिए सीटों का एक निश्चित प्रतिशत आवंटित करने की सिफारिश की। उदाहरण के लिए, इसने शैक्षणिक संस्थानों और सरकारी रोजगार में अन्य पिछड़ी जातियों (ओबीसी) के लिए 27% सीटें आरक्षित करने का प्रस्ताव रखा।

2. सार्वजनिक क्षेत्र में आरक्षण : इसने सार्वजनिक क्षेत्र में पिछड़ी जातियों के लिए नौकरी के अवसरों का एक निश्चित प्रतिशत आरक्षित करने की नीति लागू करने का सुझाव दिया। उदाहरण के लिए, आयोग ने अनुसूचित जातियों (एससी) के लिए 15 प्रतिशत और अनुसूचित जनजातियों (एसटी) के लिए 7.5 प्रतिशत सरकारी नौकरियों को आरक्षित करने का प्रस्ताव रखा।

3. विधायी निकायों में आरक्षण : आयोग ने विधायी निकायों में पिछड़ी जातियों के लिए राजनीतिक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए आरक्षण कोटा की सिफारिष की। इसने राज्य विधानसभाओं और संसद में एससी, एसटी और ओबीसी के लिए सीटों का एक निश्चित प्रतिशत आवंटित करने की सिफारिश की। उदाहरण के लिए, इसने ओबीसी के लिए विधायी निकायों में 10 प्रतिशत सीटें आरक्षित करने का प्रस्ताव रखा।

4. पदोन्नति में आरक्षण : इसने सरकारी सेवाओं में पदोन्नति के लिए आरक्षण लाभों का विस्तार करने का प्रस्ताव रखा ताकि पिछड़ी जातियों के लिए ऊर्ध्वगामी गतिशीलता की समस्या का समाधान किया जा सके। आयोग ने एससी, एसटी और ओबीसी के लिए पदोन्नति के अवसरों का एक निश्चित प्रतिशत आरक्षित करने की सिफारिश की, जैसे कि एससी के लिए 15 प्रतिशत और एसटी के लिए 7.5 प्रतिशत पदोन्नतियों को आरक्षित करना।

5. आवधिक समीक्षा और संशोधन : आयोग ने जनसांख्यिकीय परिवर्तनों और सामाजिक–आर्थिक संकेतकों के आधार पर आरक्षण नीतियों की आवधिक समीक्षा और संशोधन के महत्व पर जोर दिया। इसने आरक्षण नीतियों की प्रभावशीलता का निर्धारण करने के लिए नियमित सर्वेक्षण और आकलन करने की सिफारिश की, ताकि आरक्षण कोटा को समुचित रूप से समायोजित किया जा सके, जिससे पिछड़े वर्गों के लिए समान प्रतिनिधित्व और अवसर सुनिश्चित हो सकें।

आयोग की साहसिक सिफारिशों ने तीव्र बहस को जन्म दिया और पिछड़े वर्गों की समस्याओं को हल करने के लिए बाद में विधायी उपायों और आयोगों को प्रेरित किया।

बिहार में कर्पूरी ठाकुर के नेतृत्व में आरक्षण : 1977 में, कर्पूरी ठाकुर के नेतृत्व में जनता पार्टी सरकार के गठन ने नीति सुधार के एक महत्वपूर्ण युग की शुरुआत की। पार्टी के घोषणापत्र के अनुसार, ठाकुर ने सामाजिक समानता और समावेशिता को बढ़ावा देने के लिए आरक्षण नीतियों के कार्यान्वयन की अगुवाई की। घोशणापत्र ने विभिन्न सामाजिक–आर्थिक वर्गों के लिए विशिष्ट कोटा आवंटित करने का एक सूक्ष्म दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। विशेष रूप से, इसमें अत्यंत पिछड़ी जातियों के लिए 12 प्रतिशत आरक्षण और 10,000 रु. से कम वार्षिक आय वाले पिछड़ी जातियों के लिए 8 प्रतिशत आरक्षण का प्रस्ताव रखा गया। इसके अतिरिक्त, आर्थिक रूप से कमजोर ऊपरी जातियों के उम्मीदवारों के लिए 3 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया गया, जो पारंपरिक आरक्षण मानदंडों से एक महत्वपूर्ण बदलाव का प्रतीक था। इसके अलावा, घोषणापत्र ने लिंग समानता के महत्व को रेखांकित करते हुए सभी जातियों, धर्मों और वर्गों में महिलाओं के लिए 3 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया। इन सभी उपायों ने मिलकर 26 प्रतिशत का एक ऐतिहासिक कुल आरक्षण प्रावधान तैयार किया, जो ठाकुर की सामाजिक न्याय और सशक्तिकरण के प्रति प्रतिबद्धता को दर्शाता है। इस कार्यान्वयन को मुंगेरीलाल आयोग की रिपोर्ट के आधार पर किया गया। बिहार ईडब्ल्यूएस आरक्षण लागू करने वाला पहला राज्य बना।

दलितों और हाशिए पर रहने वाले समुदायों की भलाई का प्रश्न बहसों में : अपने विभिन्न विधानसभा पदों के कार्यकाल के दौरान, कर्पूरी ठाकुर ने लगातार हाशिए पर रहने वाले समुदायों, जिसमें दलित, पिछड़े वर्ग और शोषित शामिल हैं, के सामाजिक उत्थान के लिए समर्थन किया। उन्होंने विधायी सभा में प्रश्न पूछने और संवाद में सक्रिय रूप से भाग लेकर अपनी अडिग प्रतिबद्धता का प्रदर्शन किया। ठाकुर के लगातार प्रश्न और समर्थन ने समाज के इन वर्गों द्वारा सामना की जा रही गंभीर समस्याओं को संबोधित करने के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को उजागर किया। सामाजिक न्याय और सशक्तिकरण की उनकी निरंतर खोज ने बिहार के राजनीतिक परिदृश्य पर एक अमिट छाप छोड़ी। ठाकुर के कार्यों ने उत्पीड़ित और हाशिए पर रहने वाले लोगों के अधिकारों के लिए उनकी अडिग संकल्पना को स्पष्ट किया।

कानून सभा में, कर्पूरी ठाकुर ने अपने निर्वाचन क्षेत्र से संबंधित विभिन्न महत्वपूर्ण मुद्दों को उठाया। 19 अप्रैल, 1961 को, उन्होंने धुरलख गांव में पीने के पानी के कुओं की अत्यावश्यकता पर जोर दिया, जो समुदाय की भलाई के लिए एक बुनियादी आवश्यकता थी। इसके बाद, 15 सितंबर, 1961 को, ठाकुर ने वंचित छात्रों के लिए शिक्षा तक पहुँच सुनिश्चित करने के लिए छात्रवृत्ति निधियों के समय पर वितरण के संबंध में चिंता व्यक्त की। इसके अतिरिक्त, 22 सितंबर, 1961 को, उन्होंने खटबा टोली में एक कुएँ की स्थापना के लिए समर्थन किया, जो ग्रामीण विकास के लिए बुनियादी ढांचे के महत्व को रेखांकित करता है। इसके अलावा, 1 अप्रैल, 1978 को, ठाकुर ने एक हाशिए पर रहने वाले नाई के लिए न्याय की मांग की, जो कानून के तहत समान उपचार के महत्व को उजागर करता है। 17 जुलाई, 1981 को आवास निर्माण में देरी के संबंध में और 20 सितंबर, 1986 को हरिजनों के खिलाफ अत्याचारों के बारे में पूछताछ ने ठाकुर की सामाजिक–आर्थिक विषमताओं को दूर करने और सभी निर्वाचन क्षेत्रों के लिए सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने की अडिग प्रतिबद्धता को रेखांकित किया। विधायी ढांचे के भीतर उनकी

मेहनती वकालत के माध्यम से, ठाकुर ने हाशिए पर रहने वाले समुदायों के सामने आने वाली कठिनाइयों को कम करने और उनके अधिकारों और गरिमा को बनाए रखने का प्रयास किया।

आरक्षण के विरोधी : बिहार में मुंगेरिलाल आयोग की सिफारिशों के आधार पर आरक्षण नीतियों के कार्यान्वयन के बाद, समाज के एक वर्ग ने इन उपायों के खिलाफ आवाज उठाई। बिहार और अन्य स्थानों पर आरक्षण के आलोचकों ने इसके निरंतरता के खिलाफ विभिन्न चिंताओं और तर्कों को प्रस्तुत किया। उदाहरण के लिए, तमिलनाडु में आरक्षण के खिलाफ विरोध बढ़ा, विशेष रूप से कट्टर ब्राह्मण वर्ग के बीच, जिन्होंने शैक्षणिक संस्थानों, विशेषकर चिकित्सा और इंजीनियरिंग कॉलेजों में असंतुलन के खिलाफ प्रदर्शन किया। कॉलेजों में 68 प्रतिशत आरक्षण की दीर्घकालिक नीति ने तनाव को बढ़ावा दिया, जिसके परिणामस्वरूप राज्य में एक नए ब्राह्मण वर्ग का उदय हुआ। यह घटना आरक्षण नीतियों से जुड़ी जटिलताओं और चुनौतियों को उजागर करती है, जो समकालीन भारतीय समाज में समानता, प्रतिनिधित्व और सामाजिक न्याय के बारे में व्यापक बहसों को दर्शाती है। विरोधियों द्वारा एक नया नारा ''कर्पूरी तोहार राज बा, तीन खून माफ बा'' बनाया गया।

विक्रम कुंवर और रामजतन सिन्हा सिंह ने आरक्षण नीतियों के खिलाफ विपक्ष का नेतृत्व करते हुए प्रमुख व्यक्तित्व के रूप में उभरकर सामने आए। उन्होंने यह तर्क दिया कि मंडल आयोग की पहलों ने आगे और पिछड़े जातियों के बीच एक प्रकार का ''महाभारत'' का माहौल उत्पन्न कर दिया, जिससे गाँवों में सामुदायिक सद्भाव का क्षय हुआ। इसके विपरीत, कर्पूरी ठाकुर ने आरक्षण के कार्यान्वयन का दृढ़ता से समर्थन किया, यह कहते हुए कि यह संविधान के प्रावधानों के अनुरूप है, साथ ही डॉ. राम मनोहर लोहिया द्वारा समर्थित आरक्षण कार्यक्रमों और जनता पार्टी के घोषणापत्र में उल्लिखित नीतियों का भी उल्लेख किया। ठाकुर का दृष्टिकोण मौजूदा नीतियों और वैचारिक सिद्धांतों के तहत समान प्रतिनिधित्व और सामाजिक न्याय के प्रति प्रतिबद्धता को दर्शाता है। आगे और पिछड़े समुदायों के बीच संघर्ष की उत्पत्ति को केवल 1978 में बिहार में लागू आरक्षण नीतियों पर निर्भर नहीं किया जा सकता।

निष्कर्ष : कर्पूरी ठाकुर का नेतृत्व प्रणालीगत उत्पीड़न की गहरी चुनौतियों के बीच अडिग समर्पण और सहनशीलता का प्रतीक है। दलितों और हाशिए पर रहने वाले समूहों के अग्रदूत के रूप में, ठाकुर की अडिग दृढ़ता उनके निरंतर समर्थन और सक्रिय प्रयासों के माध्यम से गूंजती है। कठिनाइयों का सामना करने के बावजूद, उन्होंने पीड़ितों के अधिकारों की रक्षा के प्रति अपनी निष्ठा बनाए रखी, जो सामाजिक न्याय और समानता का सार है। ठाकुर की स्थायी विरासत पीढ़ियों में फैली हुई है, जो समाज के हाशिए पर रहने वालों के लिए एक प्रेरणादायक प्रकाशस्तंभ के रूप में कार्य करती है। उनकी अडिग आत्मा सहानुभूति, साहस और हाशिए पर रहने वालों की स्थिति को सुधारने के प्रति अडिग प्रतिबद्धता से भरे नेतृत्व की संभावनाओं को उजागर करती है। जब हम ठाकुर की महान यात्रा में गहराई से उतरते हैं, तो हमें उन व्यक्तियों की गूंजती हुई गूंज को स्वीकार करना चाहिए जो प्रणालीगत असमानताओं का सामना करने का साहस रखते हैं, और एक अधिक न्यायपूर्ण और समानता वाले विश्व की ओर मार्ग प्रशस्त करते हैं।

संदर्भ–सूची

1. अनय., (1985) आरक्षण गलत है, साप्ताहिक दिनमान, 5–11 मई, पृ. 35
2. आसिम, एस. पी., (1989), ''एकलौता आदमी'' कर्पूरी ठाकुर स्मृति अंक, पृ. 41
3. डिर्क्स, एन. बी. (2001), कास्ट्स ऑफ माइंड : उपनिवेशवाद और आधुनिक भारत का निर्माण। प्रिंसटन : प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. कर्पूरी ठाकुर का संसदीय जीवन (1967–88), भाग I और भाग II, पटना, बिहार विधान मंडल पुस्तकालय,
5. मौर्य बुद्ध, पी., (1986), ''कर्पूरी ठाकुर एक संस्था'', पटना, कर्पूरी ठाकुर अभिनंदन ग्रंथ, पृ. 131
6. राजक, वी. (2012), कर्पूरी ठाकुर का राजनीतिक दर्शन, पटना, जनकी प्रकाशन, पृ. 103
7. राम, जे. (1987), जगजीवन राम का भाषण, स्मारिका बाबूजी स्मृति अंक, पृ. 34
8. रॉय, जी. (1981), ''पहला गोलमेज सम्मेलन'' राष्ट्रीय आंदोलन और भारतीय संविधान, पृ. 95
9. सदन में जननायक कर्पूरी ठाकुर (प्रश्नोत्तर खंड), भाग I और भाग II, पटना, बिहार विधान मंडल सचिवालय पुस्तकालय
10. सिंह, वी. पी., (1989), साप्ताहिक दिनमान, पटना, पृ. 1

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 214-217

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

भारत में ब्रिटिश काल की शिक्षा प्रणाली के प्रभाव और शैक्षिक विद्रोह का विश्लेषण

*डॉ. अरविन्द कुमार**

सारांश–*ब्रिटिश शासन की व्यवस्थित शिक्षा नीति के कारण शिक्षित लोगों के बौद्धिक स्तर का व्यापक विकास हुआ। इस विकास ने भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन को एक आधार प्रदान किया। क्योंकि सशक्त नागरिक ही सशक्त राष्ट्र का नवनिर्माण कर सकते हैं। जिसने भारत को स्वाधीनता के उच्चासन पर विराजमान किया। शैक्षणिक संस्थाओं में पश्चिमी विचार और विज्ञान से जो भारतीय अवगत हुए उनमें वैज्ञानिक चेतना के साथ गौरवपूर्ण जीवन जीने की भावना का उदय हुआ। धार्मिक कट्टरता शिथिल हुई और देशी की आड़म्बर युक्त सीमाओं को लांघकर दुसरे देशों में शिक्षा ग्रहण करने जा सकें। ब्रिटिश शिक्षा के कारण ही जवाहर लाल नेहरू, मोहनदास करमचन्द्र गाँधी, सुभाष चन्द्र बोस, डॉ. भीमराव अम्बेडकर जैसे विश्व ख्याति प्राप्त महापुरुषों का उदय हुआ।*

मुख्य शब्द *: ब्रिटिशकालीन, शिक्षा, पद्धति, परिणाम, शैक्षिक, विद्रोह आदि।*

प्रस्तावना : ब्रिटिश भारतीय शिक्षा जगत के अध्ययन से ज्ञान होता है कि अंग्रेज शिक्षा प्रेमी थे। उनका ज्ञान से गहरा लगाव था। वे अनुसंधान, साहित्य सृजन और अध्ययन–अध्यापन के शौकीन थे। इसीलिए उन्होंने भारत की रीति, नीति, भाषा, कानून, साहित्य, संस्कृति और धार्मिक अध्ययन हेतु व्यवस्था बनाने में रुचि दिखाई। भारत में विजय पताका फहराने के साथ ही ब्रिटेन में भारतीय व्यवस्था को लेकर अनुसंधान भी चल रहा था। जिसके अगुआ लार्ड मैकाले थे। जिन्होंने इंग्लैण्ड में बोर्ड ऑफ कंट्रोल के कमिश्नर पद पर रहते हुए भारत के इतिहास भूगोल, धर्म, भाषा, कला, संस्कृति का गहरा अध्ययन किया था।

ब्रिटिश काल में भारतवर्ष के ज्ञान के उद्देश्यों में बहुत से परिवर्तन आये। अंग्रेज अपने शासन को व्यवस्थित करने के लिये शिक्षा का सहारा लिया। ब्रिटिश कालीन शिक्षा के लक्ष्य को संक्षेप में अन्य प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है–

1. भारतीय ज्ञान जगत में यूरोपीय साहित्य और विज्ञान का प्रसार करना–मैकाले तथा कुछ अंग्रेज अधिकारी–कार्मचारियों के अनुसार प्राचीन भारतीय शिक्षा अत्यंत अविकसित थी। और उसमें वैज्ञानिक ज्ञान, अनुसंधान तथा तकनीकि साहित्य का अभाव था। इसी कारण ब्रिटिश काल में अंग्रेजी शिक्षा का पूर्ण उद्देश्य भारत में यूरोपीय ज्ञान, साहित्य और विज्ञान का प्रसार करना था।

2. भारतीयों का बौद्धिक और नैतिक विकास करना–ब्रिटिशकालीन शिक्षा का मुख्य उद्देश्य भारतीयों का बौद्धिक तथा नैतिक विकास करना था। लार्ड मैकाले के द्वारा 1835 में जारी विवरण पत्र और चाल्स वुड के 1854 के घोषणा पत्र से स्पष्ट है कि अंग्रेजी शिक्षा द्वारा भारत में रहने वाले व्यक्तियों को बौद्धिक, नैतिक, खोजात्मक शिक्षा प्रदान करना अत्यधिक महत्वपूर्ण माना गया।

3. भारत नागरिकों को प्रशासनिक दृष्टि से शासन की सहायता के लिये प्रशिक्षित करना– मैकाले के अनुसार ब्रिटिश भाषा में शिक्षित भारतीय लाखों अशिक्षित व्यक्तियों के बीच संवाद का कार्य कर सकें। एक ऐसा वर्ग जो रुचि, नैतिकता और

बुद्धि में तो अंग्रेज हो परन्तु रूप–रंग में भारतीय हो। इस प्रकार मैकाले पाश्चात्य भारत पर अंग्रेजों के शासन को सुदृढ़ एक वर्ग तैयार करना था जो उनके तथा उनके द्वारा शासित करना चाहता था।

** स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा*

4. भारतीयों का आर्थिक विकास करना–19वीं शताब्दी में हुई औद्योगिक क्रांति से सम्पूर्ण विश्व की आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन हो गया था। औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप अंग्रेजों ने भारत में अनेक उद्योग धंधों की स्थापना की और भारत से कच्चे माल को भी इंग्लैण्ड ले जाने लगे। इससे भारत में आर्थिक विकास हुआ। लेकिन इंग्लैण्ड से आदान–प्रदान लिये अंगेजी भाषा के जानकार व्यक्तियों की जरूरत थी इसलिए ब्रिटिश कालीन शिक्षा अनिवार्य थी।

5. ब्रिटिश कालीन शैक्षिक पाठ्यक्रम–ब्रिटिश ज्ञान में अंग्रेजी साहित्य तथा विज्ञान, अनुसंधान को शीर्ष स्थान प्राप्त था। साथ ही इतिहास, भूगोल, गणित, सामाजिक विज्ञान आदि विषयों का ज्ञान अनिवार्य था। छन्नीकरण का सिद्धांत भारतीय सामाजिक की माँग थी जिसे ब्रिटिश शासकों ने स्वीकार किया।

6. अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव–भारत में लगभग दो सौ वर्षों तक अंग्रेजों का राज रहा। अंग्रेज व्यापारी के तौर पर भारत में प्रवेश हुये थे। किन्तु अपने साथ एक व्यवस्थित शिक्षा पद्धति भारत लाये थे। ब्रिटिश शिक्षा को अर्जित करके भारतीयों की सोच में व्यापक परिवर्तन हुआ। भारत में व्यवस्थित ज्ञान के आदान–प्रदान का प्रारम्भ ईसाई मिशनरियों ने किया था। मिशनरियों के शिक्षा प्रसार के कार्य में ईस्ट इंडिया ने सहयोग किया था। आधुनिक काल में विश्व विद्यालयीन, महाविद्यालयीन शिक्षा ब्रिटिश शिक्षा की महत्वपूर्ण देन है।

ब्रिटिश काल तक आते–आते प्राचीन स्वार्थ परायणता का समय अब बहुत कुछ परिवर्तित हो गया। सभ्य ब्रिटिश सरकार ने अधीनस्थ देशी रजवाड़ों के भावी नरेशों की शिक्षा–दीक्षा के लिये अजमेर आदि नगरों में चीफ्स कालेजों की स्थापना भी कर दी है। इन कॉलेजों से शिक्षा प्राप्त कर युवा नरेशों की कर्तव्य निष्ठा कहाँ तक बढ़ती है, इस विषय का उल्लेख करना बड़े साहस का काम है। हमारी समझ में देशी नरेशों की शिक्षा–दीक्षा के लिये जब तक देशी ढंग के विद्यालय की प्रतिष्ठा नहीं होती, तब तक भावी युवा नरेशों के चरित्र संगठन में पूर्णता आने की बहुत कम आशा है।

ब्रिटिशकालीन देशी शिक्षा पद्धति के परिणाम

1. अंग्रेजी भाषा की शिक्षा के फैलते ही पश्चिमी सभ्यता भी धीरे–धीरे भारतीय समाज को प्रभावित करने लगी। पश्चिमी प्रभाव से व्यक्तिवाद पर अधिक जोर देने से हमारे सामाजिक बंधन ढीले पड़ गये। इससे हमारी संयुक्त परिवार प्रणाली व जाति व्यवस्था प्रभावित हुई।

2. कुछ अंशों में पाश्चात्य विचारों का प्रभाव हमारे लिए लाभप्रद ही हुआ। इससे हमारी सामाजिक कुरीतियों और कुप्रथाओं के निवारण में सहायता मिली। अंधविश्वास और श्रद्धा का स्थान बुद्धि और तर्क ने ले लिया। जिससे भारतीयों में अनुसंधान की भावना प्रबल हुई। प्रत्येक वर्ग को शिक्षा का अवसर मिलने के कारण समाजिक गतिशीलता को गति मिली, यही गतिशीलता सामाजिक परिवर्तन की ओर उन्मुख है।

3. वैज्ञानिक अन्वेषण एवं अनुसंधान की भावना हममें पश्चिम के प्रभाव के कारण विकसित हुई। ''जब हम पश्चिम के सम्पर्क में आये तो यह अनुभव किया कि पश्चिम की अभूतपूर्व उन्नति का प्रमुख कारण विज्ञान एवं वैज्ञानिक अन्वेषण है।'' तब भारतीय ब्रिटिश शिक्षा की ओर उन्मुख हुए इसी का परिणाम सरस्वती शिशु मंदिर के रूप में हम सबके सामने आया। यह भारत की निजी क्षेत्र की सबसे बड़ी शैक्षणिक संस्था है। जिसमें आवश्यक ज्ञान के साथ सनातन संस्कृति को प्रसारित करने का कार्य किया जाता है।

4. अंग्रेजी शिक्षा ने वैज्ञानिक अन्वेषण एवं अनुसंधान की भावना विकसित की और वैज्ञानिक प्रयोग की प्रणाली भारतीयों को प्रदान की। ''इसके परिणामस्वरूप देशी शैक्षिक संस्थानों और विश्वविद्यालयों में वैज्ञानिक विषयों के शिक्षण और परीक्षण की समुचित व्यवस्था विकसित हुई।''

5. एस. के. विश्वास कहते हैं कि ''भारत देश की संस्कृति इतिहास लेखन विरुद्ध संस्कृति है। भारतवर्ष की संस्कृति वास्तव में निरक्षरता और इतिहास के प्रति अज्ञानता की संस्कृति है। ब्राह्मण शिक्षाविदों की संस्कृति, शिक्षा सकोचन की संस्कृति है। इस वजह से बींसवी शदी के पहले अर्थात् अंग्रेजों द्वारा प्रसार बाध्यतामूलक किये जाने के पूर्व ब्राह्मणवादी भारत में साक्षर व्यक्तियों की संस्था दो प्रतिशत से अधिक कभी नहीं हो सकी। विद्या, शिक्षा, पुस्तकादि रचना में भारतीय उदासीनता जग जाहिर है। विद्यानुशीलन यदि कुछ भारत में हुआ भी है। तो वह धर्माधारित है।

6. भीमराव अम्बेडकर कहते हैं कि अवसर की स्वतंत्रता न देना, ज्ञानार्जन की स्वतंत्रता न देना, हथियार के उपयोग का अधिकार न देना हारे हुये मनुष्य के साथ सबसे बड़ी निर्दयता है।

7. बिना शिक्षण के अधिकार के कोई भी राज्य कल्याणकारी राज्य नहीं बन सकता। इसीलिए स्वतंत्र भारतीय विधान में शिक्षा को समवर्ती सूची और राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में रखा गया है।

8. वास्तव में शिक्षा मानव की एक मूल आवश्यकता है। मनुष्य को मुनष्य बनने के लिए शिक्षा आवश्यक है। इसी शिक्षा के बल पर ही मुनष्य विकास के छोर पर पहुँच सकता है।

9. विश्व के विकसित देशों में शिक्षा की अनगिनत सुविधायें हैं, यही कारण है कि वहाँ के लोग बड़ी तीव्रगति से अपना विकास सुनिश्चित कर रहे हैं और जीवन के प्रत्येक क्षेत्रों में तीव्रता से आगे बढ़ रहे हैं।

10. उल्लेखनीय है कि देशवासियों की वर्ण, जाति, धार्मिक भावनाओं ने प्रायः जनसाधारण को शिक्षा के अधिकार से वंचित रखा और निर्धनता के कारण भी वे प्रायः शिक्षा ग्रहण नहीं कर सके।

शोधार्थी ने धर्म और मोक्ष के साधन को दो नहीं स्वीकार किया। लिखा है कि धर्म और मोक्ष के दो साधन नहीं। धर्म या मोक्ष का साधन है विरत्न। मोक्ष का साक्षात् सम्बंध चरित्र से है परन्तु सम्यक दर्शन तथा ज्ञान से रहित सम्यक चरित्र मोक्ष का साधन नहीं बन सकता। ये तीनों मिलकर ही मोक्ष का साधन बनते हैं। लेखक ने उक्त पुस्तक में विरत्न क्या है? इसको इस प्रकार लिखा है–

सम्यक् दर्शन–इसका अर्थ है सच्ची आस्था, हमें यथार्थ ज्ञान सच्ची आस्था के बिना नहीं प्राप्त हो सकता। अतः सम्यक् दर्शन ही सम्यक दृष्टि उत्पन्न करता है। जैन दर्शन में सम्यक दर्शन को कर्णधार कहा गया है। **सम्यक् ज्ञान**–सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् चरित्र में घनिष्ट सम्बंध है। सम्यक् ज्ञान ही सम्यक चरित्र का वर्धन या पोषण करता है। जिस प्रकार सम्यक ज्ञान का सम्बंध सम्यक चरित्र से है उसी प्रकार इसका सम्बंध सम्यक् दर्शन से भी है। मिथ्या दृष्टि समाप्त होने से ही सम्यक दर्शन तथा सम्यक ज्ञान दोनों की उत्पत्ति होती है।

मिथ्या ज्ञान और मिथ्या दृष्टि के कारण अंग्रेजों के काल में भी कुछ अंग्रेजी शिक्षण नीति का विरोध हुआ और अधिकतर उसको अपनाकर सुख भोग किया। जैसा कि यह सत्य सत–प्रतिशत सत्य है कि भारत में अनेकों धर्मों, जातियों, सम्प्रदायों आदि का निवास स्थान रहा है। यहाँ हर काल में ज्ञान को एक सीधे तरीके से न रखकर तर्क–वितर्क का मार्ग अपनाया गया। अंग्रेजों के जाने के बाद भी यहाँ के विभिन्न वर्ग एवं सम्प्रदाय ने अपने संकुचित स्वार्थ और लाभ के लिये धर्म के नाम पर कई शिक्षण संस्थानों को जनता के समक्ष आकर्षक शैली में प्रस्तुत किया और आज भी वो सिलसिला जारी है। व्यक्तिगत सामाजिक, आर्थिक लाभ के साथ–साथ राजनीतिक और धार्मिक समुचित एवं असमुचित दोनों प्रकार के लाभ लिये जा रहे हैं।

समय हमेशा से परिवर्तनशील रहा है। दुख और सुख मानव समाज में अपना जोर–शोर दिखाने लगा। जैन दार्शनिक श्री उमा स्वामी का कहना है– सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक चरित्र ही मोक्ष के साधन हैं, ये मोक्ष के साधन धर्म कहे गए है तथा इनके विपरीत मिथ्या दर्शन, मिथ्या ज्ञान और मिथ्या चरित्र ये संसार के मार्ग कहे गए हैं। मोक्ष मार्ग वही है जिससे मनुष्य दुख और उसके कारणों से छुटकारा पा सके यही धर्म है।

मिथ्या ज्ञान और मिथ्या दृष्टि के कारण अंग्रेजी शिक्षण का शिक्षित भारतीयों ने व्यापक विरोध किया। किंतु ब्रिटिश शिक्षा नीति के देश में लागू होते ही प्रथम वर्ण के लोगों ने ब्रिटिश शिक्षा को अंगीकार कर सुख भोग भी किया।

अंग्रेजी साहित्य और अंग्रेजी भाषा के ज्ञान के कारण ही वर्तमान में प्रदेशवासी (सेवा क्षेत्र) सर्विस सेक्टर में विश्व के कई देशों में अपना स्थान बनाने में सफल हो सके हैं। अमेरिका की कई संस्थाओं में भारतीय मूल के लोग अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। कार्नवालिस भारत में सिविल सेवा के जन्मदाता थे। इस सेवा में 1853 ई. से प्रतियोगितात्मक परीक्षा होने लगी। यह प्रारम्भ में इंग्लैण्ड में होती थी, लेकिन 1923 ई. से यह भारत में भी होने लगी। 1863 ई. में प्रथम भारतीय सत्येन्द्र नाथ टैगोर थे। भारत में पुलिस सेवा का जन्मदाता भी लार्ड कार्नवालिस को माना जाता है।

ब्रिटिश विद्वान अलेक्जैण्डर कनिंघम के करण सर्वप्रथम 1873 ई. में मध्य प्रदेश के सतना जिले में स्थित भरहुत स्तूप दुनिया के सामने आया। जिससे मध्य प्रदेश की अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचान बनी। ब्रिटिश शिक्षा व्यवस्था की स्थापना से पूर्व भारत में हिन्दी भाषा अस्त–व्यस्त रूप में थी। न ही कोई गद्य–पुस्तक, न व्याकरण और न ही अच्छा शब्दकोश था। डॉ. गिलक्रिस्ट प्रथम यूरोपियन विद्वान थे जिन्होंने ''ए ग्रामर ऑफ द हिन्दुस्तानी लैंग्वेज'' की रचना की। आज यही हिन्दी मध्य प्रदेश की राजभाषा है। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन के लिये जॉन अब्राहम ग्रियर्सन जाने जाते हैं। सर जेम्स प्रिन्सेप 53 विश्व के पहले विद्वान थे जिन्होंने 1837 ई. में अशोक कालीन ब्राह्मी

लिपि पढ़ने में सफलता प्राप्त की। उन्होंने स्पष्ट किया कि लेख की भाषा प्राकृत है, संस्कृत नहीं। इसी के कारण मौर्य कालीन मध्यप्रदेश की पुरातात्विक विरासत देश ओर दुनिया के सामने आयी। पुरातत्वविद् जॉन मार्शल ने पाँच हजार वर्ष पूर्व सिन्धु घाटी सभ्यता का 1921 में उत्खनन कर भारत की गौरवपूर्ण शहरी सभ्यता को दुनिया के सामने रखा। यह वैज्ञानिकता से सराबोर अंग्रेजी शिक्षा का ही कमाल था। जिन्होंने भारतीय कर्मकांड, आडम्बर को दरकिनार कर भारत के समस्त बौद्धिष्ट शैक्षिक स्थलों की खोज कर दुनिया के सामने रख। जिससे भारत जगत में विश्व गुरु के नाम से जाना गया है।

भारत देश के दूसरे राज्यों की भाँति मध्य प्रदेश में भी विभिन्न प्रकार की धार्मिक, सामाजिक, कुप्रथाओं का बोलबाला था। जिनमें गंगा प्रवाह, सती प्रथा, नरबलि, ठग प्रथा, दास प्रथा आदि प्रमुख थीं। इन अमानवीय मान्यताओं, परम्पराओं का अंत प्रदेश से अंग्रेजी शिक्षा को जानने व मानने से हो सका। लार्ड कार्नवालिस भारत में सिविल सेवा के जनक थे। सिविल सेवा के माध्यम से 1853 से भारत में प्रतियोगी परीक्षा प्रारम्भ हुई और यही व्यवस्था वर्तमान मध्य प्रदेश में चल रही है।

निष्कर्ष :

ब्रिटिश कालीन शैक्षणिक इतिहास से स्पष्ट हुआ कि भारत में अंग्रेजों के आगमन की इच्छा केवल व्यापारिक थी। किन्तु भारतीय जन–जीवन से अवगत होने के बाद उन्होंने भारतीय शासकों की स्वार्थ लोलुपता, सामाजिक असमानता, भारतीयों की अज्ञानता ने उन्हें महत्वकांक्षी बनाया और इसी महत्वकांक्षा के कारण अंग्रेज शासक बने और भारत गुलाम। परंतु अंग्रेज शिक्षा प्रेमी थे, उनका ज्ञान से गहरा लगाव था। वे अनुसंधान, साहित्य सृजन और अध्ययन–अध्यापन के शौकीन थे। इसीलिए उन्होंने भारत की रीति, नीति, भाशा, कानून, साहित्य, धर्म और संस्कृति के अध्ययन हेतु व्यवस्था बनाने में रूचि दिखाई। भारत में विजय पताका फहराने के साथ ही ब्रिटेन में भारतीय व्यवस्था को लेकर अनुसंधान भी चल रहा था। जिसके अगुआ लार्ड मैकाले थे। जिन्होंने इंग्लैण्ड में बोर्ड ऑफ कंट्रोल के कमिश्नर पद पर रहते हुए भारत के इतिहास, भूगोल, धर्म, भाषा, कला, संस्कृति का गहरा अध्ययन किया था। भारत में पश्चिमी शिक्षा विकसित होने के पूर्व भारतीय शासकों ने शिक्षा की जिम्मेदारी नहीं ली थी। जन–सामान्य की शिक्षा के लिये उन्होंने कोई खास व्यवस्था नहीं की थी। वे धार्मिक आधार पर शिक्षा प्रदान करने वाली संस्थाओं को ही सहायता देते थे। जो विद्यालय स्थापित किये जाते थे उनमें ज्यादातर भाषा और गणित की शिक्षा दी जाती थी। मस्जिदों और मुसलमानों द्वारा संचालित मदरसों में अरबी, फारसी का अध्यापन होता था। फारसी चूँकि उस समय की सरकारी कामकाज की और अदालत की भाषा थी। इसलिए मुसलमानों के साथ द्विज भी इसे सीखते थे। औपचारिक शिक्षा की उचित व्यवस्था न होने पर भी शिक्षा प्रदान करने के लिए घर व समाज में अनौपचारिक शिक्षा पद्धति प्रचलित थी। जिससे लोग अपने पेशे और अपनी संस्कृति से सम्बंधित शिक्षा ग्रहण करते थे।

सन्दर्भ–सूची

1. जौहरी एवं पाठक, भारतीय शिक्षा का इतिहास, विनोद पुस्तक मन्दिर अगरा, वर्ष, 2009
2. Swami Viveananda, Lecture from Colombo Toalmora, p. 127
3. Harijan, July 31, 1937
4. All India National Education Conference
5. Hindustani Talimi Sangh, Educational Reconstruction, p. 82
6. Zakir Husain Committee.
7. K.G. Saiyaidain, In Year Book o Education (Evans Bros.) 1940. p. 503

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Psychology : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 218-222

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

स्वयं सहायता समूह एवं आत्मधारणा : एक अध्ययन

*जुली कुमारी**

शोधसार : *राष्ट्र की प्रगति व्यक्ति की अपने प्रति धारणा के प्रकार (धनात्मक अथवा नकारात्मक) तथा परिसीमा पर निर्भर करती है। किसी भी समाज एवं राष्ट्र के चतुर्दिक विकास में महिलाओं की प्रगति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। महिलाओं को राष्ट्रीय मुख्य धारा से जोड़ने के लिए यह जरूरी है कि इस बात का मूल्यांकन किया जाय कि वह अपने प्रति किस तरह की धारणा रखती है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य ग्रामीण, निर्धन एवं सीमांत महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण के माध्यम से उसके आत्मधारणा में आये परिवर्तनों का अध्ययन करना है। प्रतिदर्श के रूप में बिहार राज्य के एक जिले से उद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्शन के सहारे 120 जीविका जैसी स्वयं सहायता समूहों से जुड़ी तथा 120 गैर–स्वयं सहायता ग्रामीण महिलाओं का चयन किया गया। व्यक्तिगत सूचना प्रपत्र एवं सिंह (1984) द्वारा हिन्दी में विकसित एवं प्रमाणीकृत आत्मधारणा मापनी का उपयोग महिलाओं की आत्मधारणा के मापन के लिए किया गया। प्राप्त परिणाम के विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि जीविका समूह तथा गैर–स्वयं सहायता महिला समूह व्यक्तिगत आत्मधारणा एवं सामाजिक आत्मधारणा के संदर्भ में सार्थक भिन्नता रखती हैं। आर्थिक सशक्तिकरण के कारण जीविका समूहों की ग्रामीण महिलाओं के व्यक्तिगत एवं सामाजिक आत्मधारणा आत्मधारणा मे उल्लेखनीय सुधार हुआ है।*

1. परिचय : आत्म–अवधारणा व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण संकेतक है। महिलाओं की आत्म–धारणा पर केंद्रित अध्ययन, विशेषकर विकासशील देशों में, महिलाओं के सशक्तिकरण और समग्र कल्याण को समझने के लिए महत्वपूर्ण हैं। महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण और उनकी आत्मधारणा (Self-Concept) के बीच का संबंध एक महत्वपूर्ण शोध का विषय रहा है। आत्मधारणा वह मानसिक प्रतिमा है जो व्यक्ति अपने बारे में रखता है, जिसमें आत्म–सम्मान, आत्म–विश्वास, और स्वयं की क्षमताओं की पहचान शामिल होती है। आर्थिक सशक्तिकरण से महिलाओं का आत्म–विश्वास और आत्म–सम्मान बढ़ता है। जब महिलाएँ आर्थिक रूप से स्वतंत्र होती हैं, तो वे अपने जीवन के निर्णयों में अधिक सक्रिय भूमिका निभाती हैं। एक अध्ययन में पाया गया कि वित्तीय स्वतंत्रता प्राप्त करने वाली महिलाएँ अपने परिवार और समुदाय में अधिक सम्मानित होती हैं (Kabeer, 1999)।

स्वयं–सहायता समूह महिलाओं की आत्म–धारणा को आर्थिक सशक्तिकरण के माध्यम से प्रभावित करते हैं। स्वयं–सहायता समूह में भाग लेने से महिलाओं को माइक्रोक्रेडिट तक पहुँच मिलती है, जिससे वे छोटे व्यवसाय शुरू या विस्तारित कर सकती हैं। यह आर्थिक गतिविधि न केवल वित्तीय स्वतंत्रता प्रदान करती है, बल्कि आत्म–सम्मान और आत्म–मूल्य को भी बढ़ाती है। Swain और Wallentin (2009) द्वारा किए गए एक अध्ययन में पाया गया कि भारत में SHGs में शामिल महिलाओं ने उच्च आत्म–विश्वास की सूचना दी और खुद को सक्षम और कुशल व्यक्ति के रूप में माना। स्वयं–सहायता समूह से प्राप्त आर्थिक स्थिरता महिलाओं को अधिक सुरक्षित और आत्मनिर्भर महसूस कराती है, जिससे उनकी आत्म–धारणा सकारात्मक होती है।

स्वयं–सहायता समूह महिलाओं की सामाजिक पहचान और सामुदायिक भागीदारी को बढ़ाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। नियमित बैठकों और सामूहिक गतिविधियों के माध्यम से, SHGs में महिलाएँ मजबूत सामाजिक नेटवर्क और समर्थन प्रणाली विकसित करती हैं। यह सामाजिक समरसता एकता और सामुदायिक पहचान की भावना को बढ़ावा देती है, जिससे उनकी आत्म–धारणा पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। Sanyal (2009) के एक अध्ययन के अनुसार, पश्चिम बंगाल, भारत में स्वयं–सहायता समूह में शामिल महिलाओं ने अपने समुदायों में बढ़ी

* *शोध प्रज्ञा, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर*

हुई सामाजिक मान्यता और सम्मान का अनुभव किया। यह बढ़ी हुई सामाजिक पहचान महिलाओं को मूल्यवान और मान्यता प्राप्त महसूस कराती है, जिससे उनका आत्म–सम्मान और आत्म–धारणा सकारात्मक होती है।

अनेक अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि जीविका पहल ने महिलाओं की आत्म–धारणा में महत्वपूर्ण वृद्धि की है। इसका प्रमुख कारण यह है कि महिलाएँ आर्थिक रूप से आत्म–निर्भर हो रही हैं और अपने परिवार और समुदाय में अपनी पहचान और भूमिका को पुनः परिभाषित कर रही हैं। जीविका समूहों में शामिल महिलाओं का आत्म–सम्मान और आत्म–विश्वास बढ़ा है। उन्हें अपने जीवन के निर्णयों में अधिक स्वतंत्रता और आत्म–निर्भरता का अनुभव होता है (Verma एवं Yadav, 2019)।

एक अध्ययन में, देखा गया कि जीविका से जुड़ी महिलाएँ अपने निर्णय लेने की क्षमता में अधिक सशक्त महसूस कर रही थीं और उन्होंने अपनी व्यक्तिगत और पारिवारिक भूमिकाओं को नए दृष्टिकोण से देखा (Kabeer, 2018)। इस पहल ने महिलाओं को न केवल आर्थिक स्वतंत्रता दी है, बल्कि उन्हें सामाजिक और मानसिक सशक्तिकरण का अनुभव भी कराया है। जीविका से जुड़े महिलाओं की सामाजिक पहचान में भी सुधार हुआ है। एक अन्य अध्ययन में पाया गया कि इन महिलाओं ने सामुदायिक भागीदारी में वृद्धि देखी है और वे विभिन्न सामाजिक और सामुदायिक गतिविधियों में सक्रिय रूप से शामिल हो रही हैं (Desai एवं Joshi, 2020)। यह अनुभव महिलाओं के आत्म–विश्वास और आत्म–धारणा को बढ़ाने में सहायक साबित हुआ है।

आर्थिक सशक्तिकरण महिलाओं की निर्णय लेने की क्षमता में भी सुधार करता है। जब महिलाएँ आर्थिक रूप से स्वतंत्र होती हैं, तो वे अपने और अपने परिवार के भविष्य के बारे में महत्वपूर्ण निर्णय ले सकती हैं। यह उन्हें एक मजबूत आत्म–परिकल्पना विकसित करने में मदद करता है (Sen, 2005)। एक अध्ययन में देखा गया कि आर्थिक सशक्तिकरण से महिलाओं में स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता की भावना बढ़ती है। वे स्वयं के लिए और अपने परिवार के लिए बेहतर भविष्य की योजना बना सकती हैं। इससे उनकी आत्म–परिकल्पना में सकारात्मक परिवर्तन होता है (Hashemi et al., 1996)। आर्थिक रूप से सशक्त महिलाएँ समाज में अधिक सम्मानित होती हैं। वे सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों में अधिक सक्रिय भागीदारी कर सकती हैं। इससे उनकी सामाजिक पहचान मजबूत होती है और उनकी आत्म–परिकल्पना में सुधार होता है (Malhotra और Schuler, 2005)।

Praveen एवं Chandwani (2018) ने महिलाओं की पहचान और आत्म–अवधारणा पर रोजगार की स्थिति के प्रभाव को देखने के लिए एक अध्ययन किया। अध्ययन के परिणामों से पता चला कि शिक्षक के रूप में काम करने वाली महिलाओं ने नारीवादी पहचान और आत्म–अवधारणा में स्व–रोजगार वाली महिलाओं की तुलना में अधिक अंक प्राप्त किए।

Samaroo et al. (2013) ने अध्ययन किया कि 36 प्रतिशत घरेलू पत्नियाँ कम आत्मसम्मान से पीड़ित थीं। जबकि केवल 4 प्रतिशत कामकाजी महिलाएँ इस श्रेणी में आती हैं। परिणाम से यह भी पता चला कि शिक्षित गृहणियाँ पीड़ित हैं कामकाजी महिलाओं की तुलना में कम आत्मसम्मान से।

आत्मधारणा व्यक्ति के जीवन के हर क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है तथा काफी हद तक उसके व्यवहार प्रारूप को निर्धारित करती है (Secord एवं Backman, 1974; Shibutani, 1961)। ग्रामीण महिलाओं की आत्मधारणा के अध्ययन के कम प्रयास किये गए हैं। जबकि महिलाओं को राष्ट्रीय मुख्य धारा से जोड़ने के लिए उनका अपने प्रति आत्मधारणा को समझना अपेक्षित प्रतीत होता है।

2. शोध उद्देश्य : स्वयं सहायता समूह सामाजिक परिवर्तन एवं महिला सशक्तिकरण के एक महत्वपूर्ण माध्यम के रूप में उभरकर सामने आ रहा है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य जीविका से जुड़ी ग्रामीण महिलाओं की आत्मधारणा का मापन करना एवं इसकी तुलना गैर–स्वयं सहायता समूह की ग्रामीण महिलाओं से करना।

3. परिकल्पनाएँ : प्रस्तुत शोध के उद्देश्यों एवं साहित्य समीक्षा के आधार पर निम्नलिखित परिकल्पनाओं का सत्यापन किया गया है –

• जीविका से जुड़ी ग्रामीण महिलाएँ तथा गैर–स्वयं सहायता समूह की ग्रामीण महिलाएँ अपने बीच व्यक्तिगत आत्मधारणा की परिसीमा के संदर्भ में एक–दूसरे से सार्थक भिन्नता प्रकट करेंगी।

• जीविका से जुड़ी ग्रामीण महिलाएँ तथा गैर–स्वयं सहायता समूह की ग्रामीण महिलाएँ अपने बीच सामाजिक आत्मधारणा की परिसीमा के संदर्भ में एक–दूसरे से सार्थक भिन्नता प्रकट करेंगी।

4. अध्ययन प्रविधि

(i) **प्रतिदर्श** : उद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्शन के सहारे बिहार राज्य के एक जिले से प्रयोगात्मक समूह के रूप में 120 वैसी ग्रामीण महिलाओं का चयन किया गया जो जीविका जैसी स्वयं सहायता समूहों से जुड़ी थी। इसके अतिरिक्त नियंत्रित समूह के रूप में 120 वैसी ग्रामीण महिलाओं का चयन किया गया जो किसी स्वयं सहायता समूहों से जुड़ी नहीं थी। ये दोनों ही समूह उम्र, क्षेत्र, शिक्षा आदि के संदर्भ में समतुल्य थे।

(ii) **प्रदत्त संग्रह के लिए प्रयुक्त मापनियाँ :** शोध उद्देश्य को पूरा करने के लिए निम्नलिखित मापनियों का उपयोग किया गया :

• **आत्म मूल्यांकन मापनी** : सिंह (1984) द्वारा हिन्दी में विकसित अर्थ विभेदक आत्ममूल्यांकन मापनी का उपयोग ग्रामीण महिलाओं के आत्मधारणा मापन के लिए किया गया। अर्थ विभेदक मापनी किसी उद्दीपक के प्रति व्यक्ति की मनोवृत्ति के तीन आधारभूत आयामों जैसे– मूल्यांकन, शक्ति तथा सक्रियता आदि उद्दीपक के गतिशीलन की परिसीमा का मापन प्रस्तुत करती है। इस मापनी में कुल 28 एकांश हैं जिसका उत्तर 7 बिन्दु मापनी पर देना होता है।

• **व्यक्तिगत सूचना प्रपत्र** : वर्त्तमान अध्ययन के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए हिन्दी में एक व्यक्तिगत सूचना प्रपत्र तैयार किया गया। इस प्रपत्र में कुछ प्रश्न थे, जिनका उद्देश्य प्रयोज्यों की उम्र, यौन, शिक्षा के स्तर, सामाजिक–आर्थिक स्थिति, आवास आदि के संबंध में जानकारी प्राप्त करना था।

5. परिणाम और विवेचन

व्यक्तिगत आत्मधारणा : जीविका तथा गैर– स्वयं सहायता समूह : महिलाओं खासकर ग्रामीण एवं निर्धन महिलाओं की व्यक्तिगत आत्मधारणा के अध्ययन के लिए पहली परिकल्पना बनायी गयी कि जीविका या स्वयं सहायता समूह से जुड़ी ग्रामीण महिलाएँ तथा गैर–स्वयं सहायता समूह की ग्रामीण महिलाएँ अपने बीच व्यक्तिगत आत्मधारणा की परिसीमा के संदर्भ में एक–दूसरे से सार्थक भिन्नता प्रकट करेंगी। इस परिकल्पना के सत्यापन के लिए सांख्यिकीय तुलना के आधार पर प्राप्त परिणाम को तालिका संख्या 1 में उपस्थित किया जा रहा है।

तालिका संख्या 1 : व्यक्तिगत आत्मधारणा के संदर्भ में जीविका तथा गैर–स्वयं सहायता महिला समूहों के बीच तुलना

समूह	संख्या (N)	मध्यमान ($\bar{X}$)	मानक विचलन (SD)	मानक त्रुटि (SE)	प्रतिशत (%)	टी–अनुपात (t-ratio)	एफ–अनुपात (F-ratio)
जीविका	120	130.48	11.52	1.05	66.57%	20.01**	13.84*
गैर– स्वयं सहायता समूह	120	103.56	8.80	0.08	52.84%		

नोट : *= *P<.05;* **= *P<.01*

तालिका संख्या 1 तथा रेखाचित्र संख्या 1 के सर्वेक्षण से स्पष्ट होता है कि गैर–स्वयं सहायता महिला समूह जीविका महिला समूहों की अपेक्षा व्यक्तिगत आत्मधारणा की निम्न मात्रा रखती हैं। जहाँ गैर–स्वयं सहायता महिला समूह व्यक्तिगत आत्मधारणा मापक पर औसत 103.568.81 प्राप्तांक प्राप्त करती हैं, वहीं जीविका महिला समूह इस मापक पर औसत उच्च प्राप्तांक 130.4811.80 प्राप्त करती हैं। इन दोनों समूहों के बीच का टी–अनुपात 20.01 प्राप्त हुआ है, जो सार्थक ($p<.01$, $df=238$) है। इस प्रकार प्राप्त परिणाम के विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि जीविका समूह तथा गैर–स्वयं सहायता महिला समूह व्यक्तिगत आत्मधारणा के संदर्भ में सार्थक भिन्नता रखती हैं। आर्थिक सशक्तिकरण के कारण जीविका समूहों की ग्रामीण महिलाओं के व्यक्तिगत आत्मधारणा में उल्लेखनीय सुधार हुआ है।

• **समाजिक आत्मधारणा : जीविका तथा गैर–स्वयं सहायता समूह** : ग्रामीण महिलाओं की आत्मधारणा के विस्तृत अध्ययन के लिए दूसरी परिकल्पना यह बनाई गई कि जीविका समूह तथा गैर–स्वयं सहायता महिला समूह अपने बीच समाजिक आत्मधारणा की परिसीमा के संदर्भ में एक–दूसरे से सार्थक भिन्नता प्रकट करेंगी। इस परिकल्पना के सत्यापन के लिए सांख्यिकीय तुलना के आधार पर प्राप्त परिणाम तालिका सख्या 2 में दर्शाया गया है।

तालिका संख्यां 2 : सामाजिक आत्मधारणा के संदर्भ में जीविका समूह तथा गैर– स्वयं सहायता महिला समूहों के बीच तुलना।

समूह	संख्या (N)	मध्यमान ($\bar{X}$)	मानक विचलन (SD)	मानक त्रुटि (SE)	प्रतिशत (%)	टी–अनुपात (t-ratio)	एफ–अनुपात (F-ratio)
जीविका	120	123.39	12.94	1.18	62.95%	14.53**	18.66**
गैर–स्वयं सहायता समूह	120	102.12	9.46	0.86	52.10%		

*नोट : * = P<.05; ** = P<.01*

रेखाचित्र संख्या : 1 व्यक्तिगत एवं सामाजिक आत्मधारणा पर जीविका तथा गैर–स्वयं सहायता समूह की महिलाओं की तुलनात्मक स्थिति का दंड आरेख।

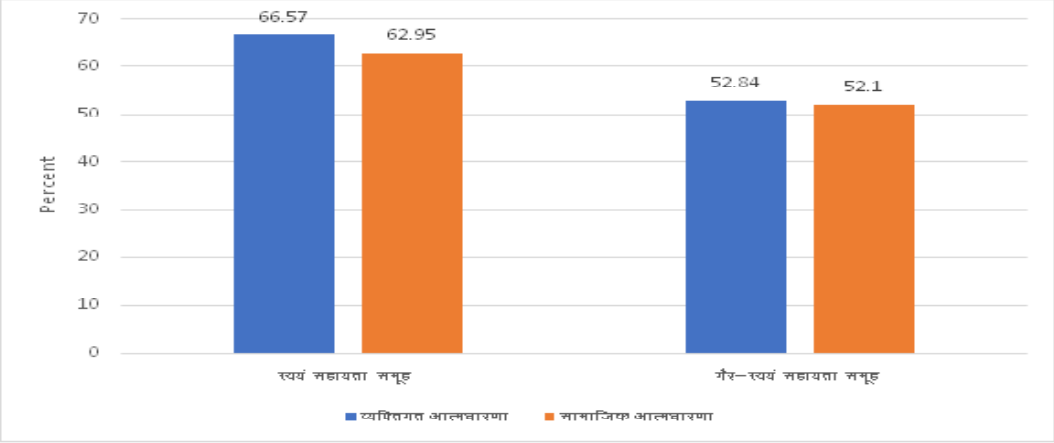

तालिका संख्या 2 तथा रेखाचित्र संख्या 1 में उपलब्ध परिणामों के विवेचन से स्पष्ट होता है कि गैर–स्वयं सहायता महिला समूह यहाँ भी जीविका समूहों की अपेक्षा निम्न प्राप्तांक प्राप्त करती हैं। गैर–स्वयं सहायता महिला समूह सामाजिक आत्मधारणा मापक पर 102.12±9.46 प्राप्तांक प्राप्त करती हैं जबकि जीविका समूह 123.39±12.94 प्राप्तांक प्राप्त करती हैं। पुनः जीविका समूह तथा गैर–स्वयं सहायता महिला समूह अपने बीच सामाजिक आत्मधारणा के संदर्भ में एक–दूसरे से सार्थक भिन्नता (t=14-53, df=238, p<.01) रखती है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि आर्थिक सशक्तिकरण के कारण ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक आत्मधारणा में उल्लेखनीय सुधार हुआ है।

6. निष्कर्ष : संक्षिप्ततः, व्यक्तिगत तथा सामाजिक आत्मधारणा के संदर्भ में स्वयं सहायता समूह तथा गैर–स्वयं सहायता समूह की ग्रामीण महिलाओं के बीच विषद तथा सूक्ष्मस्तरीय तुलना के आधार पर अधोलिखित निष्कर्ष प्रकट हुए :

1. गैर–स्वयं सहायता समूह स्वयं सहायता समूह की ग्रामीण महिलाओं की तुलना में व्यक्तिगत तथा सामाजिक दोनों ही आत्मधारणाओं के संदर्भ में अपने आपको निम्न अंकित करते थे। किन्तु, वे भी इन दोनों ही आयामों पर अपने को सामान्य रूप से अंकित करते थे।

2. गैर–स्वयं सहायता समूह स्वयं सहायता समूह की ग्रामीण महिलाओं की अपेक्षा सामाजिक संघर्ष से अधिक ग्रसित थे।

संदर्भ–सूची

1. Desai, R. M., & Joshi, S. (2020), Women's Empowerment Through Self-help Groups (SHGs) : Evidence from the Jeevika Project in Bihar, International Journal of Social Economics, Vol. 47(8), Pp 961-980.

2. Hashemi, S. M., Schuler, S. R., & Riley, A. P. (1996), Rural Credit Programs and Women's Empowerment in Bangladesh, World Development, 24(4), 635–653.

3. Kabeer, N. (1999), Resources, Agency, Achievements : Reflections on the Measurement of Women's Empowerment, Development and Change, Vol. 30(3), Pp 435-464.

4. Kabeer, N. (2018), Economic Pathways to Women's Empowerment and Active Citizenship : What Does the Evidence from Bangladesh Tell Us? The Journal of Development Studies, Vol. 54(5), Pp 782-804.

5. Malhotra, A., & Schuler, S. R. (2005), Women's Empowerment as a Variable in International Development, Measuring Empowerment : Cross-disciplinary Perspectives, 71-88.

6. Praveen, S. & Chandwani, S. (2018), Feminist Identity and Self-concept Among Working Women in Relation to their Type of Job, Research Guru. Vol. 12 (1), pp 908-912.

7. Samaroo, S., Copper, E. & Green, T. (2013), Pedandragogy : A Way Forward to Self-engaged Learning, New Horizons in Adult Education and Human Resource Development 25(3). DOI:10.1002/nha3.20032

8. Sanyal, P. (2009), From Credit to Collective Action : The Role of Microfinance in Promoting Women's Social Capital and Normative Influence, American Sociological Review, Vol. 74(4), pp 529-550.

9. Secord, P.F. & Backman, C. W. (1974), Social Psychology. McGraw Hill

10. Sen, A. (2005), Human Rights and Capabilities, Journal of Human Development, Vol. 6(2), pp 151-166.

11. Shibutani, T. (1961), Society and Personality. Englewood Cliffs, N. J.: Prentice-Hall

12. Singh, L. B. (1984), Self Concept and Self-disclosure in the Santal Undergraduate Students of Santal Pargana. Indian Journal of Behaviour, 8, 50-54.

13. Swain, R. B., & Wallentin, F. Y. (2009), Does Microfinance Empower Women? Evidence from Self-help Groups in India, International Review of Applied Economics, Vol. 23(5), Pp 541-556.

14. Verma, A., & Yadav, R. (2019), Self-Esteem and Confidence Among Rural Women in SHGs. Journal of Women's Studies, Vol. 10(2), pp. 55-70.

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 223-230

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का तुलनात्मक अध्ययन

*प्रो. (डॉ.) मान सिंह** *लाल बहादुर यादव***

सारांश–*उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का तुलनात्मक अध्ययन विषय पर यह शोध पत्र विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य की स्थिति, उस पर प्रभाव डालने वाले कारकों तथा विभिन्न सामाजिक–आर्थिक स्तर एवं शैक्षिक परिस्थितियों के संदर्भ में इसकी तुलना करने पर केंद्रित है। अध्ययन में विभिन्न विद्यालयों के छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य का मूल्यांकन किया गया, जिसमें शहरी और ग्रामीण पृष्ठभूमि, पारिवारिक परिवेश, शैक्षिक दबाव, सामाजिक संबंध, भावनात्मक संतुलन तथा आत्मविश्वास जैसे पहलुओं का विश्लेषण किया गया। शोध के निष्कर्षों से यह स्पष्ट हुआ कि मानसिक स्वास्थ्य पर पारिवारिक सहयोग, शिक्षक–छात्र संबंध, सामाजिक परिवेश एवं अध्ययन का दबाव महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं। अध्ययन के परिणाम मानसिक स्वास्थ्य सुधार हेतु प्रभावी नीतियों और रणनीतियों के निर्माण में सहायक सिद्ध हो सकते हैं, जिससे विद्यार्थियों के संपूर्ण विकास को सुनिश्चित किया जा सके।*

मुख्य शब्द–*उच्च प्राथमिक स्तर, विद्यार्थी, मानसिक स्वास्थ्य, तुलनात्मक अध्ययन, मध्यमान, मानक विचलन, क्रांतिक अनुपात इत्यादि।*

प्रस्तावना–आज के प्रतिस्पर्धात्मक युग में शिक्षा केवल बौद्धिक विकास तक सीमित नहीं रही, बल्कि यह समग्र व्यक्तित्व निर्माण और मानसिक स्वास्थ्य के प्रति भी अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गई है। विशेष रूप से उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थी, जो षारीरिक, मानसिक और सामाजिक रूप से तीव्र परिवर्तन के दौर से गुजर रहे होते हैं उनके मानसिक स्वास्थ्य पर विभिन्न आंतरिक एवं बाह्य कारकों का प्रभाव पड़ता है। यह शोध पत्र उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयास करेगा, जिसमें विभिन्न सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमियों, शहरी एवं ग्रामीण परिवेश, विद्यालयी वातावरण, पारिवारिक सहयोग और अन्य मनोवैज्ञानिक तत्वों की भूमिका को समझा जाएगा। अध्ययन का उद्देश्य मानसिक स्वास्थ्य से जुड़े प्रमुख तत्वों की पहचान करना, विद्यार्थियों में मानसिक तनाव के कारणों को विश्लेषित करना तथा उनके मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाने के लिए प्रभावी रणनीतियाँ सुझाना है। यह शोध शिक्षकों, अभिभावकों और नीति निर्माताओं के लिए एक मार्गदर्शिका के रूप में कार्य करेगा जिससे वे विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ करने में सहायक सिद्ध हो सकें।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व–उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का तुलनात्मक अध्ययन शिक्षा क्षेत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह न केवल छात्रों की शैक्षिक उपलब्धियों को प्रभावित करता है, बल्कि उनके समग्र विकास, सामाजिक कौशल और जीवन के प्रति दृष्टिकोण पर भी गहरा असर डालता है। इस अध्ययन के माध्यम से यह समझने की कोशिश की जाती है कि किस प्रकार विभिन्न मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ जैसे तनाव, चिंता, अवसाद और आत्मविश्वास की कमी छात्रों की शैक्षिक प्रगति को प्रभावित कर सकती हैं। प्राथमिक स्तर पर मानसिक स्वास्थ्य को लेकर जागरूकता बढ़ाने से न केवल छात्रों के समग्र विकास को प्रोत्साहन मिलता है, बल्कि यह उनके मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित समस्याओं का समय रहते निदान

** आचार्य, शिक्षक-शिक्षा संकाय, सतीश चन्द्र कॉलेज, बलिया, उ.प्र.*

*** शोध छात्र (शिक्षाशास्त्र), शिक्षक-शिक्षा संकाय, सतीश चन्द्र कॉलेज, बलिया, उ.प्र.*

करने में भी सहायक होता है अर्थात इस शोध का उद्देश्य विभिन्न मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं के प्रभाव का तुलनात्मक रूप से अध्ययन करना है, ताकि शिक्षकों, अभिभावकों और नीति निर्माताओं को छात्रों की मानसिक स्थिति को बेहतर ढंग से समझने और आवश्यक उपायों को अपनाने में मदद मिल सके। इससे यह भी समझने में मदद मिलती है कि विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संदर्भों में मानसिक स्वास्थ्य का प्रभाव कैसे भिन्न हो सकता है। इस प्रकार, मानसिक स्वास्थ्य का समग्र अध्ययन छात्रों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार, उनकी शिक्षा प्रणाली में सुधार और समाज में मानसिक स्वास्थ्य के प्रति बेहतर समझ बनाने के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

सम्बंधित साहित्य का पुनरावलोकन–सम्बन्धित साहित्य से तात्पर्य अनुसंधान की समस्या से सम्बन्धित उन सभी प्रकार की पुस्तकों, ज्ञान–कोषों, पत्र–पत्रिकाओं, प्रकाशित तथा अप्रकाशित शोध–प्रबन्धों एवं अभिलेखों आदि से है, जिनके अध्ययन से अनुसंधानकर्ता को अपनी समस्या के चयन, परिकल्पनाओं के निर्माण, अध्ययन की रूपरेखा तैयार करने एवं कार्य को आगे बढ़ाने में सहायता मिलती है।

किसी भी विषय के विकास में किसी विशेष शोध प्रारूप का स्थान बनाने के लिए शोधकर्ता को पूर्व सिद्धान्तों एवं शोधों से भली–भाँति अवगत होना चाहिए। इस जानकारी को निश्चित करने के लिए व्यवहारिक ज्ञान में प्रत्येक शोध प्रारूप की प्रारम्भिक अवस्था में इसके सैद्धान्तिक एवं शोधित साहित्य की समीक्षा करनी होती है।

सम्बंधित साहित्य–

चौधरी, नंदकिशोर (2013) ने "विद्यालय जाने वाले किशोरों के लिंग एवं पारिवारिक वातावरण का उनके मानसिक स्वास्थ्य के संदर्भ में अध्ययन" किया एवं निष्कर्ष स्वरूप पाया कि विद्यालय जा रहे किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य एवं पारिवारिक वातावरण में सार्थक संबंध था। छात्र और छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया एवं किशोर छात्र–छात्राओं के पारिवारिक वातावरण में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

नंदौलिया एच. के. (2013) ने "उच्च माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों के लिंग आदतों, विद्यालय के प्रकार एवं कर्मचारियों के मध्य मानसिक स्वास्थ्य" का अध्ययन किया। अध्ययन के उद्देश्य थे– उच्च माध्यमिक विद्यालय में कार्यरत शिक्षकों की आदतों, विभिन्न संकायों के प्रकार एवं एक दूसरे के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारकों के मध्य सम्बन्धों की जाँच करना। न्यादर्श के रूप में मेहसाना एवं पटना जिले में कार्यरत 720 शिक्षकों का चयन यादृच्छिक न्यादर्शन विधि से किया गया। उपकरण हेतु मानसिक स्वास्थ्य हेतु डी. जे. भट्ट (1992) द्वारा निर्मित मापनी का प्रयोग किया गया। प्रदत्तों का विश्लेषण (ANOVA) टेस्ट द्वारा किया गया। अध्ययन के निष्कर्ष में पाया कि शहरी एवं ग्रामीण महिला एवं पुरुष शिक्षकों के मध्य लिंग, निवास स्थान, विद्यालय के प्रकार एवं शिक्षक के विभिन्न संकायों के मध्य सार्थक अन्तर पाया गया।

कौर, जगबीर एवं अरोड़ा (2014), ने "पंजाब के लुधियाना एवं मोगा जिले के रहने वाले किशोरों की शैक्षिक उपलब्धि एवं मानसिक स्वास्थ्य के बीच संबंध पर अध्ययन" किया। सरकारी विद्यालयों से 300 किशोरों (150 ग्रामीण एवं 150 शहरी) को न्यादर्श में सम्मिलित किया गया। मानसिक स्वास्थ्य बैटरी (सिंह एवं गुप्ता 2005) एवं शैक्षिक उपलब्धि को मापने के लिए दसवीं बोर्ड की परीक्षा में गणित विषय के परिणाम को आधार बनाया गया। परिणामस्वरूप पाया गया कि मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के कुछ आयामों में उच्च सार्थक संबंध था।

पच्चयापन पी. एवं उषाल्या डी. (2014) ने "माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन" किया। अध्ययन के उद्देश्य ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र मे कार्यरत महिला एवं पुरुष शिक्षकों में भावात्मक स्थिरता, प्रबन्ध के प्रकार के मध्य सम्बन्धों की जाँच करना था। न्यादर्श हेतु 130 शिक्षकों का चयन यादृच्छिक न्यादर्शन विधि से किया गया। प्रदत्त सकंलन हेतु डॉ. जगदीश एवं श्रीवास्तव (1996) कृत मानसिक स्वास्थ्य मापनी का प्रयोग किया गया। अध्ययन के निष्कर्ष में पाया गया कि माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों का मानसिक स्वास्थ्य उनके समकक्षों की तुलना में अधिक पाया गया एवं महिला शिक्षकों का मानसिक स्वास्थ्य पुरुष शिक्षकों की तुलना में अधिक पाया गया।

राम बाबू डी. (2014) ने "आंध्र प्रदेश के तेलंगाना क्षेत्र में शिक्षक प्रशिक्षुओं में मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन" किया। अध्ययन के उद्देश्य शिक्षक प्रशिक्षुओं के मानसिक स्वास्थ्य का मूल्याकंन करना, लिंग, आयु, वैवाहिक स्तर, शिक्षण अनुभव तथा संस्था के प्रबन्धन के सम्बन्ध में शिक्षक प्रशिक्षुओं के मानसिक स्वास्थ्य को ज्ञात करना था। शोध विधि के रूप में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। न्यादर्श हेतु यादृच्छिक न्यादर्शन विधि द्वारा आंध्र प्रदेश के तेलंगाना क्षेत्र में स्थित विभिन्न शिक्षा कॉलेजों में से 500 शिक्षक प्रशिक्षुओं का चयन किया गया। उपकरण के

रूप में जगदीश एवं श्रीवास्तव द्वारा निर्मित मानसिक स्वास्थ्य अनुसूची का प्रयोग किया। अध्ययन के निष्कर्ष में पाया गया कि लिंग, आयु, वैवाहिक स्तर एवं शिक्षक अनुभव के अनुसार छात्राओं में मानसिक स्वास्थ्य का स्तर अपेक्षाकृत अधिक पाया गया।

शोध अध्ययन के उद्देश्य–इस शोध के उद्देश्य निम्नवत हैं–

1. उच्च प्राथमिक स्तर के षहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के विद्यालयों के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का तुलनात्मक अध्ययन करना।

2. उच्च प्राथमिक स्तर के शहरी क्षेत्र में निजी व सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का तुलनात्मक अध्ययन करना।

3. उच्च प्राथमिक स्तर के ग्रामीण क्षेत्र के निजी व सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का तुलनात्मक अध्ययन करना।

शोध अध्ययन की परिकल्पनाएँ–प्रस्तुत शोध की परिकल्पना अधोलिखित है–

1. उच्च प्राथमिक स्तर के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के विद्यालयों के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अंतर नहीं है।

2. उच्च प्राथमिक स्तर के शहरी क्षेत्र में निजी व सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अंतर नहीं है।

3. उच्च प्राथमिक स्तर के ग्रामीण क्षेत्र के निजी व सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की मानसिक स्वास्थ्य में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

शोध विधि–प्रस्तुत शोध में विवरणात्मक अनुसन्धान की सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या–प्रस्तुत शोध में उत्तर प्रदेश के भदोही जनपद के समस्त सरकारी व निजी उच्च प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत कक्षा 6, 7 व 8 के विद्यार्थियों को जनसँख्या के रूप में चुना गया है।

न्यादर्श–प्रस्तुत शोध में शोधकर्ता ने सम्भाव्य विधि के अंतर्गत आने वाले सरल यादृच्छिक न्यादर्शन (Simple Randaom Sampling) विधि का प्रयोग किया है। इसके अंतर्गत उत्तर प्रदेश के भदोही जनपद के शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित सरकारी व निजी उच्च प्राथमिक विद्यालयों में कक्षा 6, 7 व 8 में अध्ययनरत 800 विद्यार्थियों का चयन किया गया है।

शोध उपकरण–इस शोध कार्य में शोधकर्ता द्वारा विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का परीक्षण करने के लिए अरुण कुमार सिंह व अल्पना सेन गुप्ता द्वारा निर्मित एवं प्रमाणीकृत मानसिक स्वास्थ्य बैटरी का प्रयोग किया गया है।

शोध से प्राप्त परिणामों का सारणीबद्ध व उनकी व्याख्या निम्नवत है–

परिकल्पना 1–उच्च प्राथमिक स्तर के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के विद्यालयों के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका 1–उच्च प्राथमिक स्तर के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के विद्यालयों के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का विवरण

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	df	CR मान	टिप्पणी	
						.01 स्तर	.05 स्तर
शहरी	400	92.40	6.62	798	4.53	सार्थक अंतर है	सार्थक अंतर है
ग्रामीण	400	90.31	6.42				

तालिका संख्या 1 में उच्च प्राथमिक स्तर के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के विद्यालयों के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का विवरण प्रस्तुत किया गया है। तालिका के अनुसार प्रथम समूह उच्च प्राथमिक स्तर के षहरी क्षेत्र के

विद्यालयों के विद्यार्थियों का है जिसका मध्यमान 92.40 तथा मानक विचलन 6.62 है, जबकि दूसरा समूह ग्रामीण क्षेत्र के विद्यालयों के विद्यार्थियों का है जिसका मध्यमान 90.31 तथा मानक विचलन 6.42 है। इन समूहों के चरों के मध्यमानों की सार्थकता ज्ञात करने के लिए टी–अनुपात परीक्षण का प्रयोग किया गया जिसके आधार पर क्रांतिक अनुपात (CR) की गणना की गई जिसका मान 4.53 प्राप्त हुआ है जो 0.05 सार्थकता स्तर के मान 1.96 तथा 0.01 सार्थकता स्तर के मान 2.58 से अधिक है। अतः निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि उच्च प्राथमिक स्तर के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के विद्यालयों के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अन्तर होता है। इस प्रकार शोधकर्ता की शून्य परिकल्पना संख्या 1 अस्वीकार की जाती है तथा प्राप्त परिणाम को स्वीकार किया जाता है।

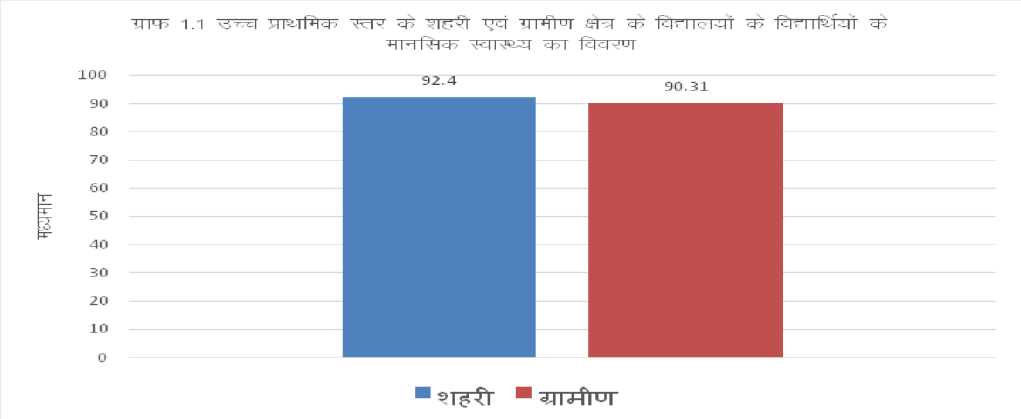

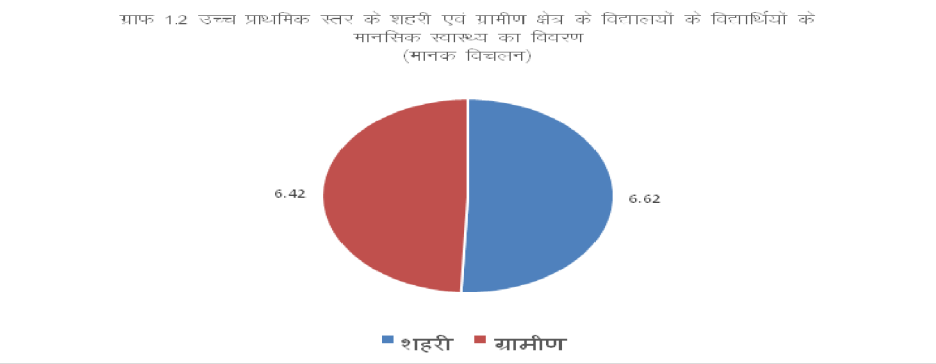

परिकल्पना 2–उच्च प्राथमिक स्तर के शहरी क्षेत्र के निजी व सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका 2–उच्च प्राथमिक स्तर के शहरी क्षेत्र के निजी व सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का विवरण–

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	df	CR मान	टिप्पणी	
						.01 स्तर	.05 स्तर
निजीविद्यालय	200	94.81	6.25	398	7.79	सार्थक अंतर है	सार्थक अंतर है
सरकारी विद्यालय	200	90	6.10				

तालिका संख्या 2 में उच्च प्राथमिक स्तर के शहरी क्षेत्र के निजी व सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का विवरण प्रस्तुत किया गया है। तालिका के अनुसार प्रथम समूह उच्च प्राथमिक स्तर के शहरी क्षेत्र के निजी विद्यालयों के विद्यार्थियों का है जिसका मध्यमान 94.81 तथा मानक विचलन 6.25 है, जबकि दूसरा समूह उच्च प्राथमिक स्तर के शहरी क्षेत्र के सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों का है जिसका मध्यमान 90 तथा मानक विचलन 6.10 है। इन समूहों के चरों के मध्यमानों की सार्थकता ज्ञात करने के लिए टी–अनुपात परीक्षण का प्रयोग किया गया जिसके आधार पर क्रांतिक अनुपात (CR) की गणना की गई जिसका मान 7.79 प्राप्त हुआ जो 0.05 सार्थकता स्तर के मान 1.96 तथा 0.01 सार्थकता स्तर के मान 2.58 से अधिक है। अतः निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि उच्च प्राथमिक स्तर के शहरी क्षेत्र के निजी व सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अंतर होता है। इस प्रकार शोधकर्ता की शून्य परिकल्पना संख्या 2 अस्वीकार की जाती है तथा प्राप्त परिणाम को स्वीकार किया जाता है।

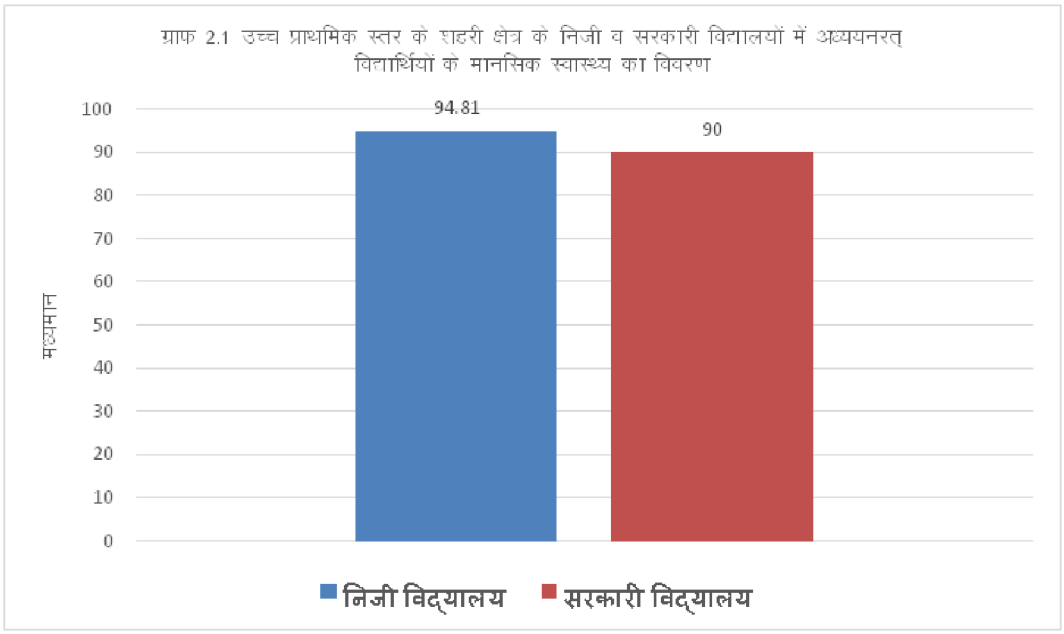

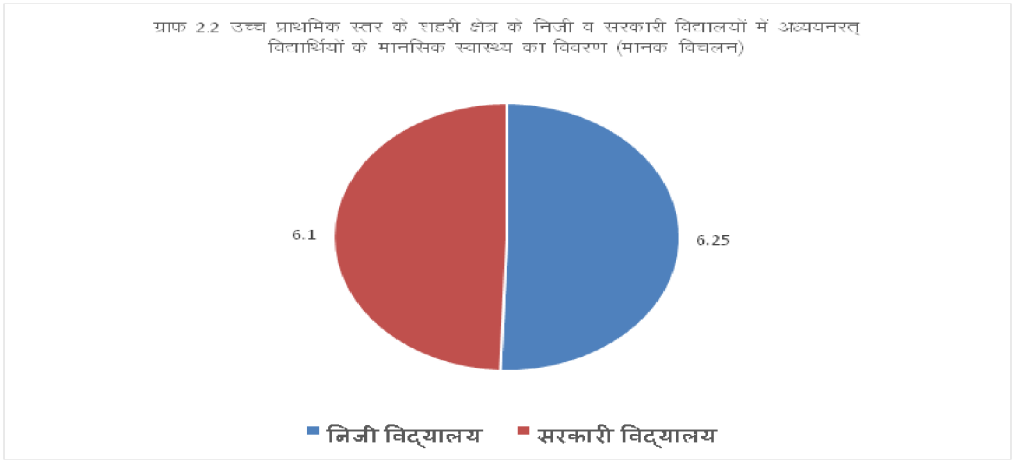

परिकल्पना 3–उच्च प्राथमिक स्तर के ग्रामीण क्षेत्र के निजी व सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका 3– उच्च प्राथमिक स्तर के ग्रामीण क्षेत्र के निजी व सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का विवरण

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	df	CR मान	टिप्पणी	
						.01 स्तर	.05 स्तर
निजीविद्यालय	200	91.93	5.93	398	5.19	सार्थक अंतर है	सार्थक अंतर है
सरकारी विद्यालय	200	88.70	6.46				

तालिका संख्या 3 में उच्च प्राथमिक स्तर के ग्रामीण क्षेत्र के निजी व सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का विवरण प्रस्तुत किया गया है। तालिका के अनुसार प्रथम समूह उच्च प्राथमिक स्तर के ग्रामीण क्षेत्र के निजी विद्यालयों के विद्यार्थियों का है जिसका मध्यमान 91.93 तथा मानक विचलन 5.93 है, जबकि दूसरा समूह उच्च प्राथमिक स्तर के ग्रामीण क्षेत्र के सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों का है जिसका मध्यमान 88.70 तथा मानक विचलन 6.46 है। इन समूहों के चरों के मध्यमानों की सार्थकता ज्ञात करने के लिए टी–अनुपात परीक्षण का प्रयोग किया गया जिसके आधार पर क्रांतिक अनुपात (CR) की गणना की गई जिसका मान 5.19 प्राप्त हुआ जो 0.05 सार्थकता स्तर के मान 1.96 तथा 0.01 सार्थकता स्तर के मान 2.58 से अधिक है। अतः निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि उच्च प्राथमिक स्तर के ग्रामीण क्षेत्र के निजी व सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अंतर होता है। इस प्रकार शोधकर्ता की शून्य परिकल्पना संख्या 3 अस्वीकार की जाती है तथा प्राप्त परिणाम को स्वीकार किया जाता है।

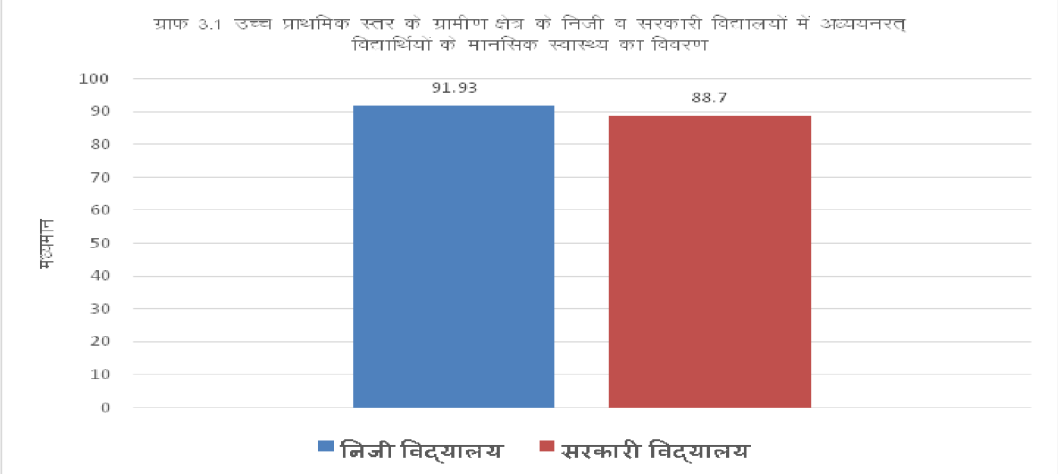

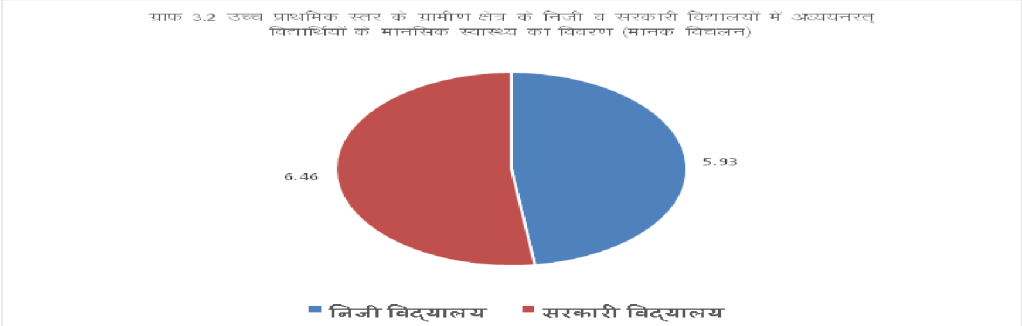

निष्कर्ष–शोध के निष्कर्ष से स्पष्ट होता है कि उच्च प्राथमिक स्तर के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के विद्यालयों के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अंतर पाया जाता है। शहरी क्षेत्र के विद्यार्थी आमतौर पर अधिक संसाधनों, शिक्षण सहायताओं एवं परामर्श सेवाओं तक पहुँच रखते हैं, जिससे उनके मानसिक स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। वहीं ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों को शिक्षा व मानसिक स्वास्थ्य से जुड़ी सुविधाओं की सीमित उपलब्धता, सामाजिक एवं आर्थिक चुनौतियों के कारण अधिक मानसिक दबाव का सामना करना पड़ता है। अध्ययन यह इंगित करता है कि शहरी और ग्रामीण विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में यह अंतर शिक्षा प्रणाली, पारिवारिक वातावरण, सामाजिक परिस्थितियों तथा मानसिक स्वास्थ्य संसाधनों की उपलब्धता से प्रभावित होता है। इस प्रकार, दोनों क्षेत्रों के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य को संतुलित बनाए रखने हेतु विशेष नीतियों एवं कार्यक्रमों की आवश्यकता है।

शोध के निष्कर्षों से स्पष्ट होता है कि शहरी क्षेत्र के निजी और सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अंतर पाया जाता है। निजी विद्यालयों के विद्यार्थियों में तनाव प्रबंधन, आत्मविश्वास और मानसिक स्थिरता अपेक्षाकृत बेहतर देखी गई, जिसका कारण बेहतर शिक्षण सुविधाएँ, सह–पाठ्यक्रमीय गतिविधियाँ तथा व्यक्तिगत ध्यान हो सकता है। दूसरी ओर सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों में आर्थिक व सामाजिक चुनौतियों, संसाधनों की कमी और प्रतिस्पर्धात्मक दबाव के कारण मानसिक तनाव अधिक पाया गया। अतः मानसिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ बनाने हेतु विद्यालयों में परामर्श सेवाओं, सहायक वातावरण और समग्र विकास को बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

अध्ययन के निष्कर्ष से यह स्पष्ट होता है कि उच्च प्राथमिक स्तर के ग्रामीण क्षेत्र के निजी और सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में कुछ महत्वपूर्ण अंतर देखे जा सकते हैं। शोध के आधार पर यह पाया गया कि निजी विद्यालयों के विद्यार्थियों को अपेक्षाकृत अधिक सुविधाएँ, प्रतियोगी वातावरण और शैक्षणिक संसाधन प्राप्त होते हैं, जिससे उनका मानसिक स्वास्थ्य अपेक्षाकृत अधिक संतुलित रहता है। वहीं सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों को कभी–कभी संसाधनों की कमी, पारिवारिक आर्थिक चुनौतियों और शैक्षणिक दबाव के कारण मानसिक तनाव का अधिक सामना करना पड़ता है। हालांकि, सामाजिक सहयोग, पारिवारिक वातावरण और व्यक्तिगत लचीलापन जैसे कारक दोनों प्रकार के विद्यालयों के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। निष्कर्षतः विद्यालयीय वातावरण और उपलब्ध संसाधनों का विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है, किंतु व्यक्तिगत व पारिवारिक कारकों की भूमिका भी उतनी ही महत्वपूर्ण होती है।

शोध की उपयोगिता–उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का तुलनात्मक अध्ययन सम्बन्धी शोध पत्र विद्यार्थियों, शिक्षकों, अभिभावकों और शिक्षा नीति–निर्माताओं के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। यह अध्ययन विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य की स्थिति, उसे प्रभावित करने वाले कारकों तथा विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक परिवेश में उसके प्रभाव का विश्लेषण प्रदान करता है। इससे शिक्षकों को विद्यार्थियों की मानसिक समस्याओं को समझने और उनके अनुरूप शिक्षण विधियों को अनुकूलित करने में सहायता मिलती है। साथ ही, यह शोध विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धियों, आत्मविश्वास और समग्र विकास को बढ़ाने के लिए प्रभावी रणनीतियाँ अपनाने में सहायक हो सकता है। इस प्रकार, यह अध्ययन शिक्षा प्रणाली में मानसिक स्वास्थ्य जागरूकता को बढ़ावा देने और विद्यार्थियों के संपूर्ण विकास में योगदान देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

सन्दर्भ–सूची

1. राय, पारस नाथ (2008), अनुसंधान परिचय, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।

2. जोशी, ए. (2015)ए विद्यालयी छात्रों में आत्म–सम्मान एवं मानसिक स्वास्थ्य का विश्लेषण, पंजाब विश्वविद्यालय प्रेस, चंडीगढ़।

3. चौधरी, डी. (2016), विद्यालयी छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य में शिक्षक की भूमिका, बिहार साइंस एकेडमी, पटना।

4. सिंह, अरूण कुमार (2017), मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल बनारसीदास, पटना।

5. तिवारी, एस. (2017), विद्यालयी शिक्षा एवं मानसिक स्वास्थ्य : तुलनात्मक अध्ययन, अवध पब्लिकेशन्स, लखनऊ।

6. गुप्ता, आर. (2018), बाल शिक्षा एवं मानसिक स्वास्थ्य : चुनौतियाँ और समाधान, ग्लोबल एजुकेशन पब्लिशिंग, मुंबई।

7. कश्यप, एस. (2018), विद्यालयी छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य पर सामाजिक परिवेश का प्रभाव, नई दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

8. वर्मा, पी., मिश्रा, डी. (2019), विद्यालयी छात्रों में तनाव एवं अवसाद के कारण एवं निवारण, राजस्थानी बुक डिपो, जयपुर।

9. शर्मा, आर. (2020), बाल मानसिकता एवं शिक्षा : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन, काशी हिंदू विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

10. पांडेय, एम. (2021), विद्यालयी छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य पर पारिवारिक परिवेश का प्रभाव, इंडियन साइकोलॉजिकल प्रेस, कोलकाता।

11. सिंह, के., यादव, बी. (2022), मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में किशोरों का मानसिक स्वास्थ्य, साइकोलॉजी बुक्स इंटरनेशनल, भोपाल।

12. अग्रवाल, पी. (2023), शिक्षा और मानसिक स्वास्थ्यरू एक अंतःविषय अध्ययन, नॉलेज पब्लिकेशन्स, दिल्ली।

Website-

1. https://shodhganga.inflibnet.ac.in/
2. https://shodhgangotri.inflibnet.ac.in/
3. http://www.eric.ed.gov.in/
4. http://www.educationindia.net
5. http://ies.ed.gov/ncer
6. http://ncert.nic.in
7. http://ernet.in

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Psychology : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 231-235

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

A Study of Subjective Well Being Among High and Low Income Groups

*Shri Nandini** *Dr. Anand Shankar* **

Abstract : Subjective Well-Being (SWB) refers to how individuals experience and evaluate their lives in terms of happiness, life satisfaction, and emotional fulfilment. Subjective well-being (SWB) is crucial for college students as it directly influences their academic success, mental health, social relationships, and overall quality of life. Subjective well-being encompasses an individual's self-perceived happiness, satisfaction with life, and the presence of positive emotions relative to negative emotions (Diener, 2000).The study aims to enquire if there is any influence of income on Subjective Well Being. The scale used for this study was Subjective Well Being Inventory (SUBI) which was developed under the guidance of WHO and was developed by Sell Nagpal(1992). The questionnaire had 11 dimensions. It had 40 items having both positive and negative items.

Introduction : Subjective Well-Being (SWB) refers to how individuals experience and evaluate their lives in terms of happiness, life satisfaction, and emotional fulfilment. Subjective well-being (SWB) is crucial for college students as it directly influences their academic success, mental health, social relationships, and overall quality of life. Subjective well-being encompasses an individual's self-perceived happiness, satisfaction with life, and the presence of positive emotions relative to negative emotions (Diener,1995). For college students, high levels of SWB can be a protective factor against academic and social stressors, improve resilience, and foster motivation, engagement, and social integration, which are key aspects for successful college adjustment (Kjeldstadli et al., 2006).Subjective well being is closely related to mental health which influences many spheres of one's life.

1. Mental Health and Academic Success : Studies have found that students with higher SWB experience fewer mental health issues such as depression and anxiety, which are common in college populations (Eisenberg et al., 2007). Students with positive SWB are generally more capable of handling the academic pressures and challenges that accompany college life, positively impacting their grades and retention rates (Howell, 2009).

2. Social Relationships and Campus Integration : Social well-being, a component of SWB, significantly contributes to students' feelings of belonging and acceptance within the campus community (Civitci & Civitci, 2009). Strong social connections improve SWB by providing emotional support, enhancing students confidence, and mitigating feelings of loneliness, which is essential given that social integration is a predictor of student retention and success (Tinto, 1993).

3. Physical Health and Coping Skills : College students with higher SWB tend to exhibit better physical health and coping skills. Research suggests that positive SWB can reduce stress levels, leading to better immune function and lower susceptibility to illnesses (Pressman & Cohen, 2005). Additionally,

* *Research Scholar, Dept of Psychology, Tilka Manjhi Bhagalpur University*

** *Assistant Professor, Dept. of Psychology, S.M. College, TMBU*

these students are often more proactive in managing stress, engaging in healthier behaviors, and maintaining balanced lifestyles, which are essential for enduring college demands (Steptoe et al., 2008).

4. Resilience and Motivation : SWB is linked to resilience, or the ability to bounce back from challenges and adversity. Higher SWB enhances students' motivation to pursue their goals, as they are more likely to view challenges as opportunities for growth rather than setbacks (Fredrickson, 2001). This can lead to better perseverance in the face of academic and personal difficulties, increasing overall success in the college environment.

OBJECTIVE : To enquire if there is any influence of income on Subjective Well Being.

HYPOTHESIS : There will be difference on Subjective Well Being between social media users coming from high income groups and low income groups.

SAMPLE : The sample size of this study was 748 which was collected from Bihar and Delhi on the criterias of inclusion and exclusion. The sample was selected on the basis of their social media usage and their age bracket. The age bracket selected for this study was 16 to 25 years.

Questionnaires Used : The scale used for this study was Subjective Well Being Inventory (SUBI) which was developed under the guidance of WHO and was developed by Sell Nagpal(1992). The questionnaire had 11 dimensions. It had 40 items having both positive and negative items which needs to be reverse scored before analyzing the data.

Positive items questions (to be reversed) : 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10, 11, 12, 13, 14, 15, 21, 22, 23, 28

Negative items questions : 16, 17, 18, 19, 20, 24, 25, 26, 27, 29, 30, 31, 32, 33, 34, 35, 36, 37, 38, 39, 40

Result : On test of SUBI scale, which is expected to be influenced by income, was tested by One way ANOVA as it had three layers of income. After testing, the results were found to be significant, showing difference between three layers of income on the total score of SWB.

ANOVA for these three layers of income (< Rs.20,000, Rs. 20000-Rs.40,000 and > Rs.40,000) gave significant results ($F(2,745) = 9.66$; $p < .001$). Meaning, as income group changes subjective well being changes.

Table 1 : ***ANOVA for different layers of income on the scale of SWB***

ANOVA for different layers of income on the scale of SWB					
Income	*n*	*M*	*SD*	*F*(2,745)	*p*
<20,000 Rs.	197	86.40	8.47		
20,000- 40,000	197	87.63	10.03	9.66***	<.001
<40,000 Rs.	354	90.05	10.41		

Note. ****p<0.05, significant (two tailed),* *****p<0.01, significant (two tailed),* ******p<0.001, significant (two tailed)***

Table 2 : ***Post hoc comparison of Income levels with SWB***					
	L vs M	L vs H	M vs H		
	$p(t)$	$p(t)$	$p(t)$	Post hoc summary	η2
SWB	.384(1.32)	<.001(4.46)***	.021(2.67)*	L=M ; L<H ; H>M	.03

Note. **L= Low income; M = Medium income ; H = High income; η = Eta square;** ****p<0.05, significant (two tailed), **p<0.01, significant (two tailed), ***p<0.001, significant (two tailed)***

The post hoc result revealed that there was no significant difference (t = 1.32; p = .384) in SWB as income shifts from low income level (Rs. 20,000) to medium income levels (20,000 - 40,000 Rs.). But there was significant change in Subjective well being (t = 2.67; p = .021) as income shifts from medium level of income (20,000 – 40,000 Rs.) to high level of income (>40,000 Rs.). Meaning, a substantial increase in income effects one's subjective well being.

Further, to enquire about which aspect of SWB is influenced more by income, ANOVA was applied on dimensions of SWB. The result of ANOVA showed that income was significantly affecting dimensions 7 (Primary Group Concern) and 9 (Perceived ill Health) of Subjective well being. For Primary group concern F(2,275) = 104.6; p< .001 and for Perceived ill health F(2,275) = 5.33; p< .001.

Table - 3 : ***ANOVA showing significant results for different layers of income on different dimensions of SWB***

	<20,000 Rs.		20,000 - 40,000		<40,000Rs.			
	M	*SD*	*M*	*SD*	*M*	*SD*	*F*(2,745)	*p*
Primary group Concern	5.95	2.34	7.40	3.30	9.58	2.96	104.6***	<.001
Perceived ill Health	12.7	2.30	13.3	2.50	13.5	2.64	5.33**	.005

Note. *p<0.05, significant (two tailed), **p<0.01, significant (two tailed), ***p<0.001, significant (two tailed)

The post hoc test (*Games-Howell test)* for the above dimensions showed significant increase for *primary group concern* when income increased from < 20,000 Rs to 20,000 – 40,000 Rs. (t = 5.01; p = .001) and when income changed from 20,000 – 40,000 Rs. To > 40,000 Rs. (t = 7.93; p = .001). While for *perceived ill health* the change was significant (t = 3.25; p = .003) only when income went from lower bracket (< 20,000 Rs.) to upper bracket (> 40,000 Rs.).

Further the *effect size* - which was found by dividing Sum of squares (between) by sum of squares (total) – revealed that effect of income on *Primary group concern* was .22 which is considered high and on *perceived ill health* was .01, which is low (Cohen ,1988 ; Kirk, 1996).

Table 4 : ***Post hoc comparison of Income levels on different dimensions of SWB on Games-Howell test***

	L vs M	L vs H	M vs H	Post hoc summary	η2
	p(*t*)	*p*(*t*)	*p*(*t*)		
7.Primary group Concern	.001(5.01)***	.001(14.7)***	.001(7.93)***	L=M ; L<H ; H>M	.22
9.Perceived ill Health	.144(2.05)	.003(3.25)**	.652(1.01)	L=M ; L<H ; H>M	.01

Note. **L= Low income; M = Medium income ; H = High income; η = Eta square;** ***p<0.05, significant (two tailed),** ****p<0.01, significant (two tailed),** *****p<0.001, significant (two tailed)***

Overall results revealed that there was change in Subjective wellbeing as income increases, hence the hypothesis stands accepted.

Income was found to be significantly affecting SWB ($F(2,745) = 9.66$; $p < .001$). The post hoc result revealed that there was no significant difference ($t = 1.32$; $p = .384$) in SWB as income shifts from low income level (Rs. 20,000) to medium income levels (20,000 - 40,000 Rs.) but there was significant change in Subjective well being ($t = 2.67$; $p = .021$) as income shifts from medium level of income (20,000 – 40,000 Rs.) to high level of income (>40,000 Rs.). Meaning, a substantial increase in income effects one's subjective well being. Income affected two dimensions of SWB effectively which were primary Group Concern ($F(2,275) = 104.6$; $p < .001$) with high effect size ($\eta 2 = .22$) and perceived ill health ($F(2,275) = 5.33$; $p < .001$).

REFERENCES

1. Cortina, J. M. (1993), What is Coefficient Alpha? An Examination of Theory and Applications, *Journal of Applied Psychology*, *78*(1), 98.

2. Diener & Diener (1995), Cros Cultural Correlates of Life Satisfaction and Self Esteem, *Journal of Personality and Social Psychology*, 68/4, American Psychological Association.

3. Lee, K.T., Noh, M.J., Koo, D.M. (2013), Lonely People are No Longer Lonely on Social Networking Sites : The Mediating role of Self Disclosure and Social Support, Cyberpsychology, Behaviour and Social Networking, 16(6),413-418.

4. Li, H., Vouga, E., Gudym, A., Luo, L., Barron, J. T., &Gusev, G. (2013), 3D Self-Portraits. ACM Transactions on Graphics (TOG), 32(6), 187.

5. Lin, K. & Lu, H. (2011), Why People use Social Networking Sites : An Empirical Study Integrateing Network Externalities and Motivation Theory, Computers in Human Behaviour, 27(3), 1152-1161.

6. Lin, K., & Lu, H. (2011), Why People use Social Networking Sites : An Empirical Study Integrating Network Externilities and Motivation Theory, *Computers in Human Behaviour*, 27(3), 1152-1161.'

7. Loschiavo, D. (2019). Big City Life (dis)satisfaction? The Effect of Living in Urban Areas on Subjective Well Being, TEmi Di Discussion (Economic Working Papers) 1221, Bank of Italy, *Economic Research and International Relations Area*.

8. Lutz, C. A. (1998), Unnatural Emotions : Everyday Sentiments on a Micronesian Atoll and their Challenge to Western Society, Chicago, University of Chicago press.

9. Mair, C. A. & Thivieege-Rikard, R.V. (2010), The Strength of Strong tiesfor Older Rural Adults : Regional Distinctions in the Relationship between Social Interaction and Subjective well Being, *The International Journal of Aging and Human Development*, 70(2), 119-143.

10. Marris, S. (2014), Selfies Blamed for Plastic Surgery Rise.

11. Mayfield, A. (2008), What is Social Media.

12. Mchugh, J. (2013), Selfies Just as Much for the Insecure as show- off, Bunbury Mail.

13. Mead, G. H. (1964), The Genesis of Self and Social Control, *International Journal of Ethics*, 35(3), 251-277.

14. Mead, G.H. (1934), Mind, Self and Society : From the Standpoint of a Social Behaviourist, Chicago : University of Chicago Press.

15. Shankar,A. (2020), *A Psycho-Social Study of Social Media Users : Explorations Into Self and Well Being of Indian Youth* [Doctoral Thesis, University of Delhi].

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 236-238

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

कुसुम कुमार के नाटकों में समापन

*निशा जैन** *डॉ. नीलकंठ कुमार***

शोध सारांश–*इस शोध पत्र का उद्देश्य महिला नाटककार डॉ. कुसुम कुमार के नाटकों में समापन का विश्लेषण करना है। कुसुम कुमार के लगभग सभी नाटकों का मुख्य स्वर शोषण ही है। सवाल यह है कि क्या लेखिका अपने नाटकों के द्वारा समाज में व्याप्त शोषण का हल ढूँढ पाने में में सफल हुई हैं या नहीं? इसी प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने के लिए हम इनके नाटकों के समापन की झलकियाँ देखेंगे।*

बीज शब्द–*महिला नाटककार, शोषण, विद्रोह, संघर्ष, राजनीति, सरकारी तंत्र।*

परिचय–कुसुम कुमार के नाटकों में उस शोषण को भी मुखर किया गया है जो सीधे–सीधे दिखाई नहीं देता अपितु पात्रों की मानसिकता पर आघात–सा करता है और यहीं से पाठक अथवा दर्शक भी सोचने को मजबूर हो जाते हैं।

समाज में शोषण के चेहरे भी अलग–अलग हैं। शोषण के रूप में सरकारी तंत्र की अकर्मण्यता या निष्क्रियता हो, महिलाश्रमों में रक्षक का भक्षक के रूप में लड़कियों का शोषण हो, राजनीति में अपनी इमेज बनाने हेतु दलितों से संबंध जोड़ने के प्रयास में मानसिक कुठाराघात हो अथवा विश्वविद्यालयों में शिक्षकों का अपनी पॉपुलैरिटी बनाने के लिए पेंतरेबाजी हो, सभी अलग–अलग पृष्ठभूमियों से लिए गए अलग–अलग विषय हैं, जो हमारे समाज में हर जगह व्याप्त हैं। इनमें पारिवारिक संबंध, शैक्षिक समस्याएँ, मानवीय संवेदना, जीवन की असफलता, व्यक्ति की नियति, दांपत्य विघटन, पुस्तकालयों की जर्जरता, कलाकारों का आत्मसंघर्ष, दलित चेतना, युवा पीढ़ी की बदलती मानसिकता, अनुशासनहीनता, और कामचोरी जैसे मुद्दों पर चर्चा की गई है। कुसुम कुमार के नाटकों में उस शोषण को भी मुखर किया गया है जो सीधे–सीधे दिखाई नहीं देता अपितु पात्रों की मानसिकता पर आघात–सा करता है और यहीं से पाठक अथवा दर्शक भी सोचने को मजबूर हो जाते हैं।

शोध का उद्देश्य–

कुसुम कुमार के नाटकों का अवलोकन

• नाटक में व्याप्त सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, पारिवारिक समस्याओं के हल को ढूँढ़ना

संबंधित साहित्य की समीक्षा–

कुसुम कुमार के नाटक

- रावणलीला
- पवन चतुर्वेदी की डायरी
- संस्कार को नमस्कार
- दिल्ली ऊँचा सुनती है
- सुनो शेफाली
- लश्कर चौक
- प्रश्न काल

आइए, इनके नाटकों में समापन की झलक देखते हैं, जिसमें समस्या/शोषण का कहीं कोई हल दिखाई नहीं देता।

* *शोधार्थी, हिन्दी विभाग, सिंघानिया विश्वविद्यालय, झुँझुँनू, राजस्थान*

** *सहायक आचार्य, भाषा शिक्षा विभाग, एनसीईआरटी*

रावण–लीला–

दर्शक–अधर्म रोको, भैया, अधर्म! अधर्म के नाश का कुछ तो उपाय करो!

(काशीराम रावण को संकेत करके अपना पंजा दिखाता है, जिसका अर्थ है पूरे पाँच सौ रुपए। रावण गर्दन झटककर अपना पंजा दो बार ऊँचा करता है जिसका अर्थ है हजार। काशीराम अब उछलकर संकेत में हजार की ही स्वीकृति दे देता है। रावण एकदम बड़े अस्वाभाविक ढंग से तलवार परे फेंक मंच पर चित्त पड़ जाता है। काशीराम की साँस में साँस आती है। राम अब रावण के मृत शरीर के पास आते हैं और कहते हैं– 'चल री प्रेतात्मा, हुआ तेरे जीवन का भी खात्मा।' दोनों ओर से पात्र मंच पर आने शुरू हो जाते हैं। एक साथ 'बोल सियावर रामचंद्र की जय' बोलते हैं। इसी क्षण रावण उठकर अपने दोनों हाथ फैलाए दर्शकों के सामने जाता है और कहता है–)

रावण रू हा–हा–हा! मैं हूँ रावण शूर, बहादुर, दिलेर, बलवान

(पर्दा गिरता है) (पृ.–90) समग्र नाटक–कुसुम कुमार, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण–2018

पवन चतुर्वेदी की डायरी–

पवन–बाबू जी...बाबू जी। आपका चश्मा मिला... लेकिन देर से... आसपास का कुछ दिखाई नहीं दे रहा... और दूर देखने की इच्छा ही मर गई... (कुछ पल की खामोशी के बाद अपनी डायरी पूरी करते हुए) सारा शहर एक देवता को जानता था... मुकम्मल तौर पर न सही... सिर्फ नाम से...कुछेक दरिंदों को भी जानता होगा यह शहर...बस, एक आदमी... नहीं–नहीं, आदमी की नस्ल को जानना इतना आसान भी नहीं... आदमी खाक छँटा है... सिर पर उँडेल लेता है... और कबूल करता है... मैं आदमी हूँ... मैं किसी और का चश्मा नहीं पहन सका... मैं किसी और का जूता नहीं पहन सका...मैं अपनी जीभ अपने ही दांतों तले काटता हूँ... मैं आदमी हूँ... मैं आदमी...दूध का जला... छाछ का भी... आग का भी...मैं आदमी...!(पृ.–165) समग्र नाटक–कुसुम कुमार, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण–2018

दिल्ली ऊँचा सुनती है–

डाकिया–(लिफाफे के ऊपर लिफाफा भेजने वाले का पता पढ़कर–) दिल्ली से... पे एंड अकाउंट्स ऑफिस से...

(कमला केवल आगे बढ़ती है। नितांत मूक।)

डाकिया : उन्हें बुलाइए–उनका नाम है... माधोसिंह कोठारी!

(कमला चुप खड़ी है।)

डाकिया : जल्दी बुलाइए उन्हें...

कमला : (धीमे और मृत स्वर में) वे नहीं रहे...

डाकिया : (आश्चर्य प्रकट करता है, फिर सामान्य होकर) कब गुजरे?

कमला : चार महीने हो गए।

डाकिया : रजिस्ट्री उनके नाम है...

(कमला एक–एक कदम रखती हुई भीतर जाती है।) (पृ.–293) समग्र नाटक–कुसुम कुमार, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण–2018

सुनो शेफाली–बकुल और किरन शेफाली के सामने खड़े हैं। किरन दुल्हन बनी बकुल का हाथ पकड़े है। बकुल शेफाली को देखकर निस्तेज चुपचाप खड़ा है।

शेफाली : (विस्फारित आँखों से काँपती हुई) किरन...बहन, तू?

(मनन कुछ परे चुपचाप हैरान खड़ा है। कीर्तन–ध्वनि और ऊँची। साथ–साथ अब शिवस्त्रोत पढ़े जाने का स्वर भी उभरता है। किरन शेफाली के पाँव छूती है। शेफाली की आँखें आक्रोश, पीड़ा और ग्लानि से बंद हैं। सिर्फ अपना दायां हाथ वह किरन की पीठ पर रख पाती है। शिवस्त्रोत पढ़े जाने और कीर्तन–ध्वनि का स्वर धीरे–धीरे मंद होता जाता है। उसी के साथ प्रकाश भी मंद होने लगता है। नेपथ्य से एक स्वर स्पष्ट उभरता है– 'कायरों के मरण अध्याय इसी प्रकार प्रतिदिन बंद होते हैं।' अंधेरा) (पृ.–367) समग्र नाटक–कुसुम कुमार, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण–2018

ओम् क्रांति–क्रांति–

प्रिंसिपल–अपराध जो था वो बता दिया, अब अपराध की सजा सुन लो– तुम्हें और थैलमा रॉबिन्सन को कॉलेज से रस्टिगेट किया जाता है।

अंततः मेज पर हाथ पीटकर– 'चुप हो जाइए...चुप हो जाइए... सब लड़कियाँ मिसिज दानी से क्षमा माँग लीजिए।'

सब लड़कियाँ : क्षमा? इस क्रूरता की मूर्ति से? ...क्षमा माँगें हम?

(शोर कुछ कम होता है। थैलमा डेस्क से उतरकर सामने खड़ी है, चुपचाप तभी–)

मिसिज दानी : ओम् शांति–शांति!

मीना : (चिल्लाकर) अब शांति स्थापित नहीं हो सकती गुरुदेव... अब तो होगी और होके रहेगी क्रांति, सिर्फ क्रांति!

सभी लड़कियाँ : अब कुछ होगा तो सिर्फ क्रांति! (पृ.–415) समग्र नाटक–कुसुम कुमार, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण–2018

लश्कर चौक–

करीम : करीम बेचारा है! न वो हमारा है, न तुम्हारा है...

सवारी पक्ष : वो हमारा है... हमारा रहेगा!

(तभी एक धमाका। पारा बेगम जो इन महिलाओं की भीड़ में थी, गोली लगने से गिर पड़ती है। गाय की राल–छाल वाले पीछे हट जाते हैं ताकि पहचाना जा सके, घायल महिला कौन है। विरोधी पक्ष वाले भी अपनी जगह स्थिर हैं। भवानी ताई पारा बेगम के मुँह से पर्दा हटाती हैं और ऊँचे घोषणा करती हैं– पारा बेगम! पारा बेगम हैं... तभी पारा के दो शब्द "ये काम मेरे अपनों का है। मेरे...भाइयों में से कोई एक...हाँ, उन्हीं में से..." मदीन पास आकर पारा का बाजू पकड़ लेता है और मौलवी उसके कंधे पर हाथ रखते हैं– "पारा बेगम की कुरबानी से धीमापुर का आसमान साफ हो जाए बरखुरदार! गनीमत है... गनीमत है... और फिर ये लश्कर चौक है... एकाध मौत भी न हो यहाँ... ऐसा देखा नहीं हमने...")

(तदुपरांत एक धमाका। फिर कुछ धमाकों का क्रम और सन्नाटा!) (पृ.– 493) समग्र नाटक–कुसुम कुमार, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण–2018

शोध का महत्त्व–शोध पत्र इस ओर संकेत करता है कि समाज के प्रत्येक क्षेत्र में फैली अनियमितताओं/समस्याओं पर समाज के लोगों की क्या प्रतिक्रिया होनी चाहिए। पाठकों/दर्शकों को यह संदेश देना कि मिलकर इन समस्याओं को कम किया जा सकता है। सभी नाटकों को पढ़ने के बाद एवं उनमें से कुछेक का मंचन देखने के बाद यह निष्कर्ष निकलता है कि उन्होंने अपने नाटकों में शोषण के हल के रूप में नाटकों का अंत नहीं किया है, अपितु समाज की स्थिति के आधार पर नाटकों के अंत में भी शोषण के परिणाम को दिखाते हुए यह शोषण का प्रश्न पाठकों पर छोड़ा है। हम यह भी देखते हैं कि ऐसी परिस्थितियों के चलते आज भी हम इसी प्रकार की दुविधाओं को अलग–अलग पृष्ठभूमियों में झेलते हैं। समाज से भी शोषण समाप्त या कम नहीं हुआ है। ऐसे में लेखिका समाज की सत्यता को अपने नाटकों के समापन में प्रदर्शित करती दिखाई देती हैं।

निष्कर्ष–नाटकों के इस प्रकार के समापन का अवलोकन कर हम कह सकते हैं कि लेखिका नाटकों के समापन को सकारात्मक बनाकर पाठक अथवा दर्शक वर्ग को प्रसन्नता की अनुभूति केवल ही नहीं देना चाहतीं, अपितु वे तो समाज के समक्ष इन परिस्थितियों के आधार पर यह प्रश्न छोड़ना चाहती हैं, जिसका हल पाठकों/दर्शकों के रूप में समाज के पास ही है।

संदर्भ–सूची

1. कुमार, कुसुम, समग्र नाटक, किताबघर प्रकाशन, प्रथम संस्करण–2018
2. रस्तोगी, गिरीश, नाटक तथा रंग परिकल्पना, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणासी, प्रथम संस्करण–1992
3. चातक, गोविंद, आधुनिक हिंदी नाटक भाषिक और संवादीय संरचना, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1989
4. तनेजा, जयदेव, समकालीन हिंदी नाटक और रंगमंच, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2002
5. तनेजा, जयदेव, हिंदी रंगकर्म दशा और दिशा, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1988
6. त्रिपाठी, सत्यवती, आधुनिक हिंदी नाटकों में प्रयोगधर्मिता, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1991

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 239-242

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

भारतीय समाज में दलित उत्थान एक विश्लेषण

*डॉ. संतोष पासवान**

सारांश : *स्वतंत्रता के बाद, सरकारी और गैर–सरकारी दोनों स्तरों पर दलित वर्गों के उत्थान के लिए कई योजनाओं पर भी चर्चा चली। साथ ही कई पहलुओं–सामाजिक मुक्ति, शैक्षणिक सुविधाएँ, सार्वजनिक सेवाओं में नौकरी, नशाबंदी, जाँच आयोग की स्थापना, सामाजिक तथा धार्मिक अयोग्यताओं की समाप्ति, आर्थिक न्याय, सांस्कृतिक कार्यक्रम, प्रशासनिक और वित्तीय उपायों को समेटने की कोशिश की गई थी। 1951 में भारतीय दलित वर्ग संघ के महासचिव और बिहार के सांसद चंद्रिका राम ने हरिजनों के लिए एक सामग्रिक योजना तैयार की थी। भारतीय समाज के विभिन्न समुदायों और हितों के समन्वय के साथ–साथ इस गांधीवादी वैचारिक राजनीति धारा ने कमजोर तथा दलित वर्गों के पक्ष में मजबूत दबाव बनाने का प्रयास किया। समाजवाद और उदारवादी पश्चिमी लोकतंत्र से प्रभावित जवाहरलाल नेहरू ने भारत की अपनी खोज के जरिए उसकी बहुलतावादी समन्वयकारी धारा से–अशोक एवं अकबर की परंपरा से खुद को जोड़ा। दलित वर्गों के उत्थान में गाँधीवादी विचारधारा, समाजवादी धारा, समाजिक न्याय की धारा, हिन्दुत्व की वैचारिक–रजनीतिक धारा, और कम्युनिस्ट विचार धाराओं का बहुत बड़ा योगदान रहा है।*

शब्द कुंजी : *दलित, विचारधाराएँ, समाजवाद, लोकतंत्र, नेतृत्व।*

भूमिका : 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्रता हासिल करने के साथ भारतीय समाज की पुनर्रचना के प्रयासों के एक विराट दौर का अंत हुआ। इस दौर में कई महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हासिल की गई, अनेक अविस्मरणीय संघर्ष हुए, कई प्रश्नों पर काफी जद्दोजहद के बाद सर्वानुमति बनीं और नेतृत्व की एक नई पीढ़ी सामने आई। तथापि औपनिवेशिक शासन ने इन प्रयासों और संघर्षों को आच्छादित कर रखा था । इस शासन के खात्मे के साथ वह कुहरा छँट गया। दरअसल भारतीय समाज की पुनर्रचना पर चिंतन–मंथन और उसके लिए कोशिशें काफी पहले शुरू हो चुकी थीं। इस पुनर्रचना के प्रश्न को केन्द्र कर कई वैचारिक–राजनीतिक धाराएँ जन्म ले चुकी थीं और तीस के दशक आते–आते उन्होंने लगभग स्पष्ट शक्ल हासिल कर ली थी।[1]

गाँधीवादी वैचारिक–राजनीतिक धारा कुछेक पश्चिमी विचारकों का प्रभाव स्वीकार करते हुए गांधी देशी विचार–परंपराओं से वेदांत / जैन / बौद्ध / सूफी–संत पंरपरा से घनिष्ठ रूप से जुड़े थे। भारतीय समाज के विभिन्न समुदायों और हितों के समन्वय के साथ–साथ इस गांधीवादी वैचारिक राजनीति धारा ने कमजोर तथा दलित वर्गों के पक्ष में मजबूत दबाव बनाने का प्रयास किया। कांग्रेस से जुड़े रहते हुए और उससे परे जाते हुए पूरे देश में आश्रमों की श्रृंखला के जरिए एक नए सामाजिक नेतृत्व की पूरी प्रणाली विकसित की। इस प्रणाली ने अनेक राजनीतिक और सामाजिक कार्यकर्त्ताओं को जन्म दिया। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में न मालूम कितने लोग इससे प्रभावित और प्रेरित हुए। इसने आंदोलन के नए–नए रूपों, अनेक रचनात्मक कार्यों, बोल–चाल, रहन–सहन, आदि सभी क्षेत्रों में सामाजिक–राजनीतिक नेतृत्व की एक नितांत अनूठी पीढ़ी तैयार की जो स्वतंत्रता आंदोलन की रीढ़ शक्ति बनी।

सन् '20' में 'यंग इंडिया' में लिखते हुए गांधीजी ने भारतीय समाज की पुनर्रचना के लिहाज से दो अहम प्रश्नों–दलित–प्रश्न और हिन्दू–मुस्लिम एकता के प्रश्नों का जिक्र किया। उनके अनुसार, इन प्रश्नों के समाधान के बिना स्वराज दुलर्भ होगा। हमारा स्वतंत्रता आंदोलन दूसरे प्रश्न के समाधान में विफल रहा–परिणाम हुआ भयानक दंगों और आबादी के सबसे बड़े स्थानांतरण के बीच मिली आजादी। इस विफलता का साया भारतीय

* *पूर्व शोधार्थी, इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना*

समाज पर आज तक छाया है।[2] पहले प्रश्न के समाधान की दिशा में स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान कुछ सफलता तो मिली, कुछ सर्वानुमति बनी, लेकिन उसका समाधान आज तक नहीं हुआ। दलित वर्गों की सत्ता में भागीदारी और उनके उत्थान के लिए उठाए गए अनेक सामाजिक–आर्थिक कदमों के पचास वर्ष बाद भी उनके साथ सामाजिक भेदभाव एवं अत्याचार की घटनाएँ इस बात की गवाह है।

नेहरूवादी समाजवादी धारा समाजवाद और उदारवादी पश्चिमी लोकतंत्र से प्रभावित जवाहरलाल नेहरू ने भारत की अपनी खोज के जरिए उसकी बहुलतावादी समन्वयकारी धारा से–अशोक एवं अकबर की परंपरा से खुद को जोड़ा। उदारवादी जनतंत्र, जनवादी समाजवाद और मिश्रित अर्थव्यवस्था के आधार पर भारतीय समाज की 'आधुनिक' पुनर्रचना के वे प्रतिनिधि पुरुष बने।

समाजिक न्याय की धारा यह धारा तीस का दशक आते–आते दो स्पष्ट धाराओं में बंट चुकी थी। एक धारा दलित प्रश्न के समाधान के आधार पर भारतीय समाज की पुनर्रचना की हिमायती थी। दलित वर्ग इस धारा के सामाजिक आधार थे और इसके सबसे सशक्त प्रवक्ता थे डॉ. बाबा साहब अंबेडकर। भारतीय विचार परंपरा में यह बौद्ध मत तथा संत–परंपरा की श्रृंखला में खुद को देखती थी। भारत के विभिन्न अंचलों में चले अनेक सामाजिक आंदोलनों (मालाबार में नारायण गुरू, महाराष्ट्र में ज्योतिबा फूले, महादेव गोविंद रानाडे, छात्रपति महाराज, मद्रास में पेरियन रामास्वामी नायकर, उत्तर भारत में जनेऊ आंदोलन से लेकर कई छोटे–बड़े आंदोलन, आदि) की पृष्ठभूमि में यह धारा तीस के दशक में एक सशक्त वैचारिक–राजनीतिक धारा बन चुकी थी। इस धारा से जुड़े कई नेता (जैसे बिहार में जगजीवन राम, मद्रास में कामराज नाडर आदि) तब महात्मा और कांग्रेस के नेतृत्व से भी जुड़े थे। भारतीय सवंधिान की प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ अंबेडकर थे और इसने दलित वर्गों को भारतीय संविधान के साथ भावनात्मक रूप से जोड़ने में बड़ी भूमिका निभाई।[3]

हिन्दुत्व की वैचारिक–राजनीतिक धारा यह धारा हिन्दुत्व के आधार पर भारतीय समाज की पुनर्रचना करना चाहती थी। हिन्दू एकजुटता को आधार बनाते हुए यह, जाहिर है, मुस्लिम तथा ईसाई समुदायों को अपना निशाना बनाती और उनके हिन्दूकरण पर जोर देती। तीस के दशक में ही विनायक दामोदर सावरकर इस धारा के प्रमुख विचारक और सिद्धांतकार के रूप में सामने आए। यह धारा भी उन दिनों यूरोप में प्रचलित उग्र राष्ट्रवादी विचार शाखाओं, खासकर नाजीवाद से काफी प्रभावित थी और यह उसके संगठन के रूप, कार्यशैली, पोशाक, 'रिलीजन' और 'राष्ट्र' की उनकी परिभाषा एवं समझ में अभिव्यक्त होता।

कम्युनिस्ट धारा यह धारा वर्ग आधार पर–मजदूर वर्ग के नेतृत्व में मजदूर–किसान संश्रय पर आधारित जनवादी क्रांति के जरिए भारतीय समाज की पुनर्रचना की हिमायती थी। यह धारा मार्क्सवाद–लेनिनवाद को अपनी मार्गदर्शक विचारधारा मानती थी और भारतीय समाज में चली आ रही अ–वैदिक संप्रदायों और संत–परंपरा के कुछ हिस्सों के साथ खुद को जोड़ती थी। बिहार में 20 अक्टूबर, 1939 को सुनील मुखर्जी के नेतृत्व में कम्युनिस्ट पार्टी की प्रांतीय शाखा का गठन हुआ था और उसके आरंभिक नेता किसान सभा आंदोलन में सक्रिय थे।

आजादी के समय दलितों की स्थिति जुलाई, 1949 में हरिजन उत्थान के लिए पंचवर्षीय योजना तैयार करने के उद्देश्य से बिहार सरकार ने एक हरिजन जाँच समिति का गठन किया था।[4] इस समिति के अध्यक्ष थे ए.वी. ठक्कर और इसके सदस्य थे–अर्थशास्त्र के पूर्व प्रोफेसर और पब्लिक इंस्ट्रक्शन के निदेशक गोरखनाथ सिन्हा, पुराने पटना विश्वविद्यालय के कुलपति सारंगधर सिंह, प्रो. बलदेव नारायण, बिहार हरिजन सेवक संघ के एन.एन. सिन्हा, महावीर दास और विधायकगण चंद्रिका राम, जमुना प्रसाद सिन्हा, भागवत प्रसाद और जयदेव प्रसाद। समिति ने नवंबर, 1952 में अपनी रिपोर्ट सौंपी थी।[5] समिति ने अपनी जाँच–पड़ताल के क्रम में पटना, मुजफ्फरपुर, आरा, बेतिया, भागलपुर, पुरुलिया, रांची, दरभंगा, छपरा और डाल्टेनगंज का दौरा किया। वे सुदूर गाँवों में गए। एक प्रश्नावली की 5000 प्रतियाँ वितरित कीं, हालाँकि मात्र 85 लोगों ने उनका जवाब देना मुनासिब समझा। समिति ने हरिजनों की वास्तविक जरूरतों और उनको पूरा करने के उपायों पर विचार करते हुए अपनी अनुशंसाओं को आर्थिक, शैक्षणिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक और राजनीतिक श्रेणियों में वर्गीकृत किया। समिति की रिपोर्ट के कुछ महत्वपूर्ण अंश इस प्रकार थे :

1. हरिजनों के आर्थिक दुर्दशा में कोई खास फर्क नहीं आया था। 1920 के बिहार एण्ड उड़ीसा कमियौती एग्रीमेंट एक्ट से उन्हें कोई राहत नहीं मिली थी। वे कर्ज में डूबे थे और सूद की दर सालाना 20 से 75 फीसदी तक थी। समिति ने कमियौती एक्ट के बारे में लोगों को जागरूक करने और बेगार तथा कमियौती को दंडनीय अपराध घोषित करने की सिफारिश की थी।

2. समिति ने पाया कि हरिजनों के पास प्रायः अपना घर नहीं था। गाँवों में वे अलग–अलग टोलों में रहते थे, जहाँ मामूली सुविधाएँ भी नहीं थीं। शहरों में भी वे काफी गंदी बस्तियों में बसे थे। साथ ही, दो सौ परिवारों को एक साझा कुटीर उद्योग के साथ सामुदायिक रूप से बसाने का भी प्रस्ताव था। नगरपालिका के भंगियों के लिए समिति ने समान काम के लिए पुरुष और महिलाओं को समान वेतन देने, स्थायी रोजगार की व्यवस्था करने, साप्ताहिक पगार देने और मान्यता प्राप्त एजेंसियों से नकद ऋण देने का सुझाव रखा था।

3. शिक्षा के क्षेत्र में स्थिति यह थी कि 1951 में मैट्रिक की परीक्षा देने वाले कुल 37,721 छात्रों में हरिजन की संख्या मात्र 392 थी। समिति ने मुफ्त ट्यूशन, आम और तकनीकी संस्थानों में भर्ती, स्कूल तथा कॉलेज लाइब्रेरी की सुविधा, पुस्तक अनुदान, छात्रवृत्ति तथा छात्रावासों के प्रबंध का सुझाव रखा था।

4. समिति ने क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट कमिटि की सिफारिशों का भी समर्थन किया था। हालाँकि रिपोर्ट प्रस्तुत करने तक यह एक्ट रद्द किया जा चुका था।

5. समिति ने पाया कि स्थानीय निकायों और अन्य प्रतिनिधि संस्थाओं में दलितों का प्रतिनिधित्व नाम मात्र ही था। यही हाल सरकारी नौकरियों में भी था।

समिति की नजर में राजनीतिक इच्छा–शक्ति की कमी के कारण इस सिलसिले में नीतियों का कार्यान्वयन नहीं हो पाया था। सिर्फ विधानसभा और संसद में उनका प्रतिनिधित्व (पूना समझौते के कारण) ठीक–ठाक था। (भारतीय संविधान के तहत बिहार विधान सभा में उनके लिए 1952 में 46 सीटें आरक्षित थीं। इन 46 हरिजन विधायकों में कांग्रेस के 38, सोशलिस्ट पार्टी के 3, झारखंड पार्टी के 2, और अन्य 3 विधायक थे।)

बिहार हरिजन बिल, 1949 1920 और 1930 के दशक में चले अस्पृश्यता–निवारण आंदोलन की स्वाभाविक परिणति के रूप में आजाद भारत की बिहार विधान सभा में फरवरी, 1949 में जगलाल चौधरी ने बिहार हरिजन (रिमूवल ऑफ सिविल डिजेबिलिटीज) बिल, 1949 पेश किया।[6] इस बिल के तहत अस्पृश्यता को दंडनीय अपराध घोषित करते हुए, उसके लिए छः महीने की सजा और पाँच सौ रुपए के जुर्माने का प्रावधान था। बिल पर काफी जोरदार बहस हुई जिसमें राम बसावन राम, प्रभुनाथ सिंह, लतीफुर्रहमान, ललित मोहन सिंह, कालिका प्रसाद सिंह, चेतू राम, यमुना राम, शक्ति कुमार, राम गुलाम चौधरी, जीतू राम, लंबोदर मुखर्जी आदि विधायकों ने हिस्सा लिया। इसी चर्चा के बहाने बिहार में हरिजनों की स्थिति और सवर्ण समाज के रवैये पर अच्छी–खासी बहस भी हो गई। प्रस्ताव पेश करते हुए जगलाल चौधरी ने इस बहस का आगाज किया, 'इस बिल का मकसद है कि हरिजनों के खिलाफ कुछ चलन... जैसे कुओं से पानी न निकालने देना, मंदिरों में न जाने देना, औरों के सामने सवारी पर न बैठने देना, या सवारी वालों द्वारा उन्हें सवारी पर बैठाने से इनकार कर देना, होटलों में भोजन न करने देना, स्कूलों में और लड़कों के साथ न बैठने देना, इत्यादि... दूर किया जाए...।

जगजीवन राम : ''मैं वर्ग संघर्ष नहीं चाहता। पर जिनके पास लक्ष्मी है, उनसे मैं यह कहना अवश्य चाहता हूँ कि बर्दाश्त करने की एक सीमा होती है और उन्हें यह न भूलना चाहिए कि बाँध टूट जाने पर जल की धार इतनी तीव्र हो जाती है कि वह प्रलय भी मचा सकती है... स्वागताध्यक्ष ने अपने भाषण में बतलाया है कि हमारे पास आँसुओं के सिवा है ही क्या? पर मैं तो असमंजस में पड़ जाता हूँ कि क्या आपकी आँखों में आँसुओं का स्रोत भी अभी है? आँसुओं की जगह तो आग के शोले होने चाहिए थे। जो लोग पिछड़ा वर्ग सम्मेलन में जातीयता की गंध पाते हैं, उनसे मैं नम्रतापूर्वक कहता हूँ कि इसमें जातीयता नहीं–वरन यह तो जातीयता की प्रतिक्रिया है... मैं तो वर्ण–व्यवस्था और जाति–व्यवस्था मिटाने के लिए संघर्ष की घोषणा करता हूँ–विद्रोह करने को कहता हूँ। मैं सबों को इसके नाश के लिए प्रोत्साहन देता हूँ।

वीरचंद पटेल : पिछड़ा वर्ग का आंदोलन भारत का सबसे बड़ा आंदोलन है– उससे भी बड़ा जो अंग्रेजों के समय में उसकी दासता से मुक्ति के लिए राष्ट्रपिता बापू के नेतृत्व में चलाया गया था... जगजीवन बाबू की वाणी में हिन्दुस्तान की भावी क्रांति बोल रही थी... (वीरचंद पटेल तब बिहार सरकार के उपमंत्री थे)।

रामरूप प्रसाद राय : 'कांग्रेसी किसी जाति या समुदाय की बपौती नहीं... हिन्दुस्तान की आजादी में दलित और पिछड़े वर्ग ने भी अहम बलिदान किया है... अभी मैंने कल जो सुल्तानगंज थाने में भागलपुर कमिश्नरी के शहीदों की लिस्ट टंगी देखी है, उसमें 65 में से 48 पिछड़े वर्ग के थे। पिछड़ा वर्ग राष्ट्र की रीढ़ है, समाज की रीढ़ है, यह कांग्रेस की भी रीढ़ है...।

दलित उत्थान की योजना 1951 में भारतीय दलित वर्ग संघ के महासचिव और बिहार के सांसद चंद्रिका राम ने हरिजनों के लिए एक सामग्रिक योजना तैयार की थी जिसमें करीब–करीब सभी पहलुओं–सामाजिक मुक्ति,

शैक्षणिक सुविधाएँ, सार्वजनिक सेवाओं में नौकरी, नशाबंदी, जाँच आयोग की स्थापना, सामाजिक तथा धार्मिक अयोग्यताओं की समाप्ति, आर्थिक न्याय, सांस्कृतिक कार्यक्रम, प्राासनिक और वित्तीय उपायों को समेटने की कोशिश की गई थी। इस योजना में संविधान के प्रावधानों, राज्य द्वारा पारित कानूनों तथा विभिन्न समितियों तथा आयोगों के सुझावों को भी ध्यान में रखा गया था।

दलित उत्थान : जनजागरण अभियान पचास के दशक के दौरान बिहार राज्य दलित वर्ग संघ ने दलित–प्रश्न को केन्द्र कर समाज में जनजागरण अभियान चला रखा था। प्रखंड से लेकर राज्य–स्तरीय सम्मेलन तो हो ही रहे थे, साथ ही विभिन्न अंचलों/प्रखंडों में सामाजिक मेलों का आयोजन किया जाता था। अस्पृश्यता–निवारण के लिए अनेक कार्यक्रम भी चलाए जा रहे थे। आजादी के पहले के ऐसे कार्यक्रमों की तुलना में फर्क यह हुआ था कि अब विधायकों एवं मंत्रियों की उपस्थिति के कारण ये सरकारी समारोहों में बदलते जा रहे थे। यहाँ दलित वर्ग संघ की इन गतिविधियों का संक्षिप्त ब्यौरा प्रस्तुत किया जा सकता है।[7] हाल में जो जमीन के सुधार का कानून लाया गया है, उससे हरिजनों के बीच एक इंच जमीन भी बँटनेवाली नहीं है, क्योंकि इस कानून के बन जाने पर भी जमीन वालों को यह मौका दिया जाएगा कि अपनी जीमन का जैसा चाहे बँटवारा कर लें। इस तरह से जमीन के मामले में हम जहाँ थे, करीब वहीं हैं।

सरकारी नौकरियों में आरक्षण के बावजूद एक बड़ी समस्या रिक्तियों को भरे जाने की थी। 1995 के एक अध्ययन में बताया गया कि राज्य सरकार ने तमाम विभागों और श्रेणियों में जिन 3,94,173 पदों पर बहाली की, उनमें दलितों का प्रतिनिधित्व मात्र 6.19 प्रतिशत था, जबकि प्रावधान 14 प्रतिशत का था। यानी आरक्षित पदों में से आधे से भी कम पदों पर दलित अभ्यार्थियों की बहाली की गई थी। इस मामले में सरकार द्वारा प्रदत्त सूचनाएँ प्रायः आधी–अधूरी होती हैं। बहरहाल, दलितों की सामाजिक–आर्थिक दशा में सुधार पूरे भारतीय समाज की समस्या है, इसीलिए निजी क्षेत्र को भी इस कार्य में शामिल करने, उसके द्वारा दलितों की शिक्षा तथा प्रशिक्षण का काम हाथ में लेने, और अपनी भर्ती में दलितों को आबादी के अनुरूप समुचित प्रतिनिधित्व देने की मांग समय–समय पर उठती रही है– नब्बे के दशक में यह मांग अधिक जोरदार ढंग से उभरकर सामने आई।

संदर्भ–सूची

1. 'बिहार में सामाजिक परिवर्तन के कुछ आयाम', नई दिल्ली, 2001
2. इलया पेरूमल समिति की रिपोर्ट, कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, 1969
3. दि इंडियन नेशन; 2 दिसम्बर, 1952
4. विधान सभा वाद विवाद; 3 फरवरी, 1947, पृ. 205
5. फाइल नं० 6/1944 (कांफिडेंशियल), राज्य अभिलेखागार, पटना।
6. राम, चन्द्रिका; 'ए प्लान फॉर हरिजन्स एण्ड अदर बैकवर्ड क्लासेस', नई दिल्ली, 1951
7. दि इंडियन नेशन; 4 दिसम्बर, 1952
8. 'पिछड़ा वर्ग' (पिछड़ा वर्ग संघ का प्रमुख पत्र); वर्ष 5, अंक 3–4, 18 मई, 1953
7. दि सर्चलाइट; 11 और 12 दिसम्बर, 1954; 'प्रदीप'; 13 दिसम्बर, 1954

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Music : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 243-246

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

महाकवि विद्यापति एवं उनके लोकगीत

*डॉ. दीपक कुमार राय**

महाकवि विद्यापति का जन्म वर्तमान मधुबनी जनपद के बिस्पी नामक गाँव में एक सभ्रान्त मैथिल ब्राह्मण गणिपति ठाकुर (इनके पिता का नाम) के घर हुआ था। बाद में यशस्वी राजा शिवसिंह ने यह गाँव विद्यापति को दानस्वरूप दे दिया था। इस दानपत्र की प्रतिलिपि आज भी विद्यापति के वंशजों के पास है जो आजकल सौराठ नामक गाँव में रहते हैं उपलब्ध दस्तावेजों एवं पंजी– प्रबन्ध की सूचनाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि महाकवि अभिनव जयदेव विद्यापति का जन्म ऐसे यशस्वी मैथिल ब्राह्मण परिवार में हुआ था, जिस पर विद्या की देवी सरस्वती के साथ लक्ष्मी की भी असीम कृपा थी। इस विख्यात वंश में एक–से–एक विद्वान, शास्त्रज्ञ, धर्मशास्त्री एवं राजनीतिज्ञ हुए। महाकवि के वृहप्रपितामह देवादिव्य कर्णाटवंशीय राजाओं के सन्धि, विग्रहिक थे तथा देवादिव्य के सात पुत्रों में से धीरेश्वर, गणेश्वर, वीरेश्वर आदि महराज हरिसिंहदेव की मंत्री परिषद् में थे। इनके पितामह जयदत्त ठाकुर एवं पिता गणपति ठाकुर राजपण्डित थे। इस तरह पाण्डित्य एवं शास्त्रज्ञान कवि विद्यापति को सहज उत्तराधिकार में मिला था। अनेक शास्त्रीय विषयों पर कालजयी रचना का निर्माण करके विद्यापति ने अपने पूर्वजों की परम्परा को ही आगे बढ़ाया।

ऐसे किसी भी लिखित प्रमाण का अभाव है जिससे यह पता लगाया जा सके कि महाकवि कोकिल विद्यापति ठाकुर का जन्म कब हुआ था। यद्यपि महाकवि के एक पद से स्पष्ट होता है कि लक्ष्मण–संवत् 293, शाके 1324 अर्थात् मन् 1402 ई. में देवसिंह की मृत्यु हुई और राजा शिवसिंह मिथिला नरेश बने। मिथिला में प्रचलित किंवदन्तियों के अनुसार उस समय राजा शिवसिंह की आयु 50 वर्ष की थी और कवि विद्यापति उनसे दो वर्ष बड़े, यानी 52 वर्ष के थे। इस प्रकार 1402–52, 1350 ई. में विद्यापति की जन्मतिथि मानी जा सकती है। लक्ष्मण–संवत् की प्रवर्तन तिथि के सम्बन्ध में विवाद है। कुछ लोगों ने सन् 1109 ई. से, तो कुछ ने 1119 ई. से। इसका प्रारंभ माना है। स्व. नगेन्द्रनाथ गुप्त ने। लक्ष्मण–संवत् 293 को 1412 ई. मानकर विद्यापति। की जन्मतिथि 1360 ई. में मानी है। ग्रियर्सन और महामहोपाध्याय उमेश मिश्र की भी यही मान्यता है। परन्तु श्रीब्रजनन्दन सहाय 'ब्रजवल्लभ' श्रीराम वृक्ष बेनीपुरी, डॉ. सुभद्र झा आदि सन् 1350 ई. को उनका जन्मतिथि का वर्ष मानते हैं। डॉ. शिवप्रसाद के अनुसार– "विद्यापति का जन्म सन् 1374 ई. के आस–पास संभव मालूम होता है।'[2] अपने ग्रन्थ विद्यापति की भूमिका में एक ओर डॉ. विमान विहारी मजुमदार लिखते है कि "यह निश्चिततापूर्वक नहीं जाना जाता है कि विद्यापति का जन्म कब हुआ था और वे कितने दिन जीते रहे''[3] और दूसरी ओर अनुमान से सन् 1380 ई. के आस–पास उनकी जन्मतिथि मानते हैं ।

विद्यापति भारतीय साहित्य की ''श्रृंगार–परम्परा'' के साथ–साथ 'भक्ति–परम्परा' के भी प्रमुख स्तंभों में से एक और मैथिली के सर्वोपरि कवि के रूप में जाने जाते हैं। इनके काव्यों में मध्यकालीन मैथिली भाषा के स्वरूप का दर्शन किया जा सकता है। इन्हें वैष्णव शैव और शक्ति–भक्ति के सेतु के रूप में भी स्वीकार किया गया हैं। मिथिला के लोगों को 'देसिल बयना सबजन मिट्ठा' का सूत्र देकर इन्होंने उत्तरी–बिहार में लोकभाषा की जनचेतना को जीवित करने का महान प्रयास किया है।

मिथिलांचल के लोक व्यवहार में प्रयोग किये जाने वाले गीतों में आज भी विद्यापति की श्रृंगार और भक्ति रस में रची रचनाएँ जीवित हैं। पदावली और कीर्ति लता इन की अमर रचनाएँ हैं। मैथिल कवि कोकिल, रसासिद्ध कवि विद्यापति, तुलसी, सूर, कबीर, मीरा सभी से पहले के कवि हैं। अमीर खुसरो यद्यपि इनसे पहले हुए थे। इनका

* *विश्वविद्यालय संगीत विभाग, तिलका माँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर*

संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश एवं मातृ भाषा मैथिली पर समान अधिकार था। विद्यापति की रचनाएँ संस्कृत, अवहट्ट, एवं मैथिली तीनों में मिलती हैं।

देसिल वयना अर्थात मैथिली में लिखे चंद पदावली कवि को अमरत्व प्रदान करने के लिए काफी है। मैथिली साहित्य में मध्यकाल के तोरणद्वार पर जिसका नाम स्वर्णक्षर में अंकित है, चौदहवीं शताब्दी के संघर्षपूर्ण वातावरण में उत्पन्न अपने युग का प्रतिनिधि मैथिली साहित्य–सागर का वाल्मीकि–कवि कोकिल विद्यापति ठाकुर। बहुमुखी प्रतिमा–सम्पन्न इस महाकवि के व्यक्तित्व में एक साथ चिन्तक, शास्त्रकार तथा साहित्य रसिक का अद्‌भुत समन्वय था। संस्कृत में रचित इनकी पुरुष परीक्षा, भू–परिक्रमा, लिखनावली, शैवसर्वश्वसार प्रमाणभूत पुराण–संग्रह, गंगा वाक्यावली, विभागसार, दानवाक्यावली, दुर्गाभक्तितरंगिणी, गयापतालक एवं वर्षकृत्य आदि ग्रन्थ जहाँ एक ओर इनके गहन पाण्डित्य के साथ युगद्रष्टा एवं युगस्रष्टा स्वरूप का साक्षी है तो दूसरी तरफ कीर्तिलता, एवं प्रकीर्तिपताका महाकवि के अवहट्ट भाषा पर सम्यक ज्ञान के सूचक होने के साथ–साथ ऐतिहासिक साहित्यिक एवं भाषा सम्बन्धी महत्व रखनेवाला आधुनिक भारतीय आर्य भाषा का अनुपम ग्रन्थ है। परन्तु विद्यापति के अक्षम कीर्ति का आधार, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, मैथिली पदावली जिसमें राधा एवं कृष्ण का प्रेम प्रसंग सर्वप्रथम उत्तरभारत में गेय पद के रूप में प्रकाशित है। इनकी पदावली मिथिला के कवियों का आदर्श तो है ही, नेपाल का शासक, सामंत, कवि एवं नाटककार भी आदर्श बन उनसे मैथिली में रचना करने वाले लगे बाद में बंगाल, असम तथा उड़ीसा के वैष्णवभक्तों में भी नवीन प्रेरण एवं नव भावधारा अपने मन में संचालित कर विद्यापति के अंदाज में ही पदावलियों का रचना करते रहे और विद्यापति के पदावलियों को मौखिक परम्परा से एक से दूसरे लोगों में प्रवाहित करते रहे। कवि कोकिल की कोमलकान्त पदावली संक्षिप्तता भावाभिव्यक्तिगत स्वाभाविकता, संगीतात्मकता तथा भाषा की सुकुमारता एवं सरलता का अद्‌भुत निर्देशन प्रस्तुत करती है वर्ण्य विषय की दृष्टि से पदावली अगर एक तरफ से इनको रससिद्ध, शिष्ट एवं मर्यादित श्रृंगारी कवि के रूप में प्रेमोपासक, सौन्दर्य पारखी तथा पाठक के हृदय को आनन्द विभोर कर देने वाला माधुर्य का स्रष्टा, सिद्धहस्त कलाकार सिद्ध करती है तो दूसरी ओर इन्हें भक्त कवि के रूप में शास्त्रीय मार्ग एवं लोकमार्ग दोनों में सामंजस्य उपस्थित करने वाला धर्म एवं इष्टदेव के प्रति कवि का समन्वयात्मक दृष्टिकोण का परिचय देने वाला एक विशिष्ट भक्त हृदय का चित्र उपस्थित करती है साथ ही साथ लोकाचार से सम्बद्ध व्यावहारिक पद प्रणेता के रूप में इनका मिथिला की सांस्कृतिक जीवन का कुशल अध्येता प्रमाणित करती है। इतना ही नहीं, यह पदावली इनके जीवन्त व्यक्तित्व का भोगा हुआ अनुभूति का साक्षी बन समाज की तात्कालीन कुरीति, आर्थिक वैषम्य, लौकिक अन्धविश्वास, भूत–प्रेत, जादू–टोना, आदि का उद्‌घाटक भी है। इसके अलावे इस पदावली की भाषा–सौष्ठव', सुललित पदविन्यास, हृदयग्राही रसात्मकता, प्रभावशाली अलंकार, योजना, सुकुमार भाव व्यंजना एवं सुमधुर संगीत आदि विशेषता इसको एक उत्तमोत्तम काव्यकृति के रूप में भी प्रतिष्ठित किया है। हालांकि यह भी एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि महाकवि विद्यापति अपनी अमर पदावली के रचना के लिए अपने पूर्ववर्ती संस्कृत कवियों खासकर भारवि, कालिदास, जयदेव, हर्ष अमरुक, गोवर्द्धनाचार्य आदि से कम ऋणी नहीं हैं। क्योंकि जिस विषयों को मौलिकता इसमें निहित है कि इन्होंने उन रचनाओं की विषय उपमा अलंकार परिवेश आदि का अन्धानुकरण न कर उसमें अपने दीर्घ जीवन का महत्वपूर्ण एवं मार्मिक नानाविध अनुभव एवं आस्था को अनुस्यूत कर अप्रतिम माधुर्य एवं असीम प्राणवत्ता से युक्त मातृभाषा में यो प्रस्तुत किया कि वह मानव के हृदय में प्रवेश कर जाता है। यही कारण है कि महाकवि की काव्य प्रतिमा की गुञ्ज मात्र मिथिलांचल तक नहीं अपितु समस्त पूर्वांचल में, पूर्वांचल में भी क्यों समस्त भारतवर्ष में, समस्त भारतवर्ष में ही क्यों अखिल विश्व में व्याप्त है। राजमहल से लेकर पर्णकुटी तक में गुंजायमान विद्यापति का कोमलकान्त पदावली वस्तुतः भारतीय साहित्य की अनुपम वैभव है।

विद्यापति के प्रसंग में स्वर्गीय डॉ. शैलेन्द्र मोहन झा की उक्ति वस्तुतः शतप्रतिशत यथार्थ है। वे लिखते है : 'नेपालक पार्वत्य नीड़ रटओ अथवा कामरूपक वनवीचिका, बंगालक शस्य श्यामला भूमि रहओ अथवा उतकलक नारिकेर निकुंज, विद्यापतिक स्वर सर्वत्र समान रूप सँ गुंजित होइत रहैत छनि। हिनक ई अमर पदावली जहिनी ललनाक लज्जावृत कंठ सँ, तहिना संगीतज्ञक साधित स्वरसँ, राजनर्तकीक हाव–भाव विलासमय दृष्टि निक्षेपसँ, भक्त मछलीक कीर्तन नर्तन सँ वैष्णवीक एकताराक झंकारसँ निःसृत होइत युग–युगसँ श्रोतांगणकें रस तृप्त करैत रहल अछि एवं करत। मिथिला मैथिलक जातीय एवं सांस्कृतिक गारिमाक मान–बिन्दु एवं साहित्यिक जागरणक प्रतीक चिन्हक रूप में आराध्य एवं आराधित महाकवि विद्यापतिक रचना मध्यकालीन मैथिली साहित्यक अनुपम निधि आछि तहिना मध्यकाल में रचित समस्त मैथिली साहित्य सेहो हिनके प्रभावक एकान्त प्रतिफल अछि।"

गीति–काव्य के उपर्युक्त विवेचन और उससे उपलब्ध तत्वों को दृष्टि में रखकर विद्यापति के गीतों का विश्लेषण करने पर उसकी बहुत–सी विशेषताओं और त्रुटियों का पता चलता है। विद्यापति के गीतों की सबसे बड़ी विशेषता है संगीतात्मकता। संगीत गीतों में दो प्रकार से संलक्ष्य हो सकता है। एक तो यह है कि वे गीत विभिन्न वाद्यों के साथ किसी प्रणाली में गाये जा सकते हों, दूसरा यह कि संगीत की मूलभूत विशेषता यानी लय और उसकी आत्मा की गीतों में अवस्थिति। स्पष्टतः यों कहा जा सकता है कि बहुत से गीत शास्त्रीय संगीत में गाये जाकर या कवि द्वारा निश्चित राग–रागिनी में आबद्ध होकर संगीत का विषय बनते हैं। किन्तु बहुत से गीत ऐसे है, जिन्हें असंगीतज्ञ मनुष्य भी अपने मन में दुहराकर उनकी लयमयता से, उनके भीतर निहित संगीतात्मक तत्त्व से आनन्द प्राप्त करता है। विद्यापति स्वयं एक बहुत बड़े संगीतज्ञ थे, मैं गायक नहीं कहती, क्योंकि इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता वैसे अपने बहुत से पदों के अन्त में वे सर्वत्र 'विद्यापति कवि गाओल' ही लिखते हैं। गीत की जानकरी का पता दो प्रकार से चलता है। एक तो कवि ने अपने गीतों के लिये राग रागिनियों का निर्णय कर दिया है– डॉ. सुभग झा द्वारा सम्पादित विद्यापति–गीत–संग्रह में जितने भी पद दिये हुए हैं, वे सभी राग–बद्ध हैं। इस संग्रह के आरमिक 56 गीत मालव राग में, 57 से 130 तक के गीत छनछरी राग में, 131 से 135 तक आसावरी राग में, 136 से 146 तक मालारी राग में 14वाँ सामरी राग में, 148 से 154 तक अहिरानी राग में, 155 से 157 तक केदार राग में, 158 से 262 तक कानड़ा राग में, 263 से 184 तक कोलर राग में, 186 से 202 तक सारंगी राग में, 203 से 207 तक गुंजरी राग में, तथा आगे भी कई पद बसंत विस, नाटराग, ललित, वरली आदि रागों में दिये हुए हैं। ये राग कवि द्वारा निर्धारित हो सकते हैं, किसी दूसरे संगीतज्ञ द्वारा भी ये रागबद्ध किये गए, ऐसा भी हो सकता है।

विद्यापति के कुछ गीत–

गीत

मोरा अँगनवाँ चनन केरि गछिया।
ताहि चढ़ कुररय काग रे।।
सोने चोंच बाँधि देब तोयँव वायस।
जयों पिया आवत आज रे।।

गीत

चानन भेल विसम सर रे
भूसन भेल भारी।
सपनहुँ नहिं हरि आएल रे
गोकुल गिरधारी।।
एकसर ठाड़ कदम–तर रे
पथ हेरधि मुररी।
हरि बिनु देह दगध भेल रे
झामरु भेल सारी।।
जाह जाह तोहें मधुपुर जाहे।
चन्द्रवदनि नहिं जोउति रे
बध लागत काहे।।
भनहिं विद्यापति तन मन दे
सुन गुनमति नारी।
आज आओत हरि गोकुल रे
पथ चलु झटझारी।।

चानन=चन्दनय विसम= दुसह, भूसन= भूषणय एकसर=अकेलेय झामरु=मलिनय झटझारी = शीघ्र।

गीत

जय–जय भैरवि असुर भयाओनि
पशुपति भामिनि माया
सह यशुमति वर देअओ गोसाउनी
अनुगति गत तुअ पापा।
बासर रैनि सवासन शोभित
चरण चन्द्रमणि चूड़ा
कतओक दैत्य मारि मुख में ललि
कतओ उगलि केलि कूड़ा
सामर वरन नयन अनुरंजित
जलद योग फूलू कोका
कट–कट–विकटे ओट पुट पांडडि
लिधुर फेन उठ फोंका।
जय–जय... ।

दूसरे भाग में गंगा, शिव, दुर्गा, विष्णु आदि के स्तुतिपरक गीतों में विद्यापति का भक्ति भाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। तीसरे प्रकार के पदों में विद्यापति ने अपने आश्रयदाताओं की वीरता का गुणगान किया है।

विद्यापति के पदों की सबसे बड़ी विशेषता उसकी संगीतात्मकता ही है। सर्वविदित है कि विद्वानों से लेकर हलवाहों तक की मंडली में विद्यापति के पदों की लोकप्रियता का कारण इसकी सहज संगीतात्मकता, सरल सम्प्रेषणीयता और उसमें लोकचित्त की भावनाओं की अनुगूंज ही है। गीतिमयता इनके गीतिकाव्यों का प्राण तत्व है। कहने की आवश्यकता नहीं कि मैथिली में रचे गए इनके सारे के सारे पद गीति ही हैं।

संदर्भ–सूची

1. लोचन कवि, रागतरंगिनी
2. डॉ. शिवप्रसाद सिंह, विद्यापति
3. उमानाथ झा, विद्यापति गीत–शती

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 247-251

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

मोहन राकेश की कहानियों में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध

*अशोक क्रांति**

सारांश : *हिंदी में नई कहानी आंदोलन कई तरह के नए बदलावों का भी वाहक रहा। प्रेमचंद के दौर का यथार्थवाद नई कहानी तक आते–आते 'अनुभूति की प्रामाणिकता' में परिणत हो गया था। यह भी यथार्थवाद का ही एक रूप था। अंतर सिर्फ इतना था कि पहले भोक्ता और स्रष्टा अलग–अलग थे, वह भोक्ता ही स्रष्टा थे। यानी कहानी का परिवेश कहानीकार का भी परिवेश था। वह जो लिख रहा था, उसे वह अपने जीवन में महसूस भी कर रहा था। नई कहानी अपने मध्यवर्गीय जीवन के यथार्थ के लिए जानी जाती है। प्रेमचंद के समय में या आजादी से पहले मध्यवर्गीय परिवारों की चालक शक्ति सिर्फ पुरुषों के हाथ में थी, आजादी के बाद मध्यवर्ग में स्त्रियों की भागीदारी भी बढ़ी। अब वह सिर्फ मूकदर्षक नहीं थी बल्कि अपने भाग्य की नियंता भी बनने की कोशिश करने लगी थीं। यही कारण है कि नई कहानी के दौर में स्त्री कहानीकारों की एक जमात तैयार हुई। इन्होंने औरत की निगाह से कहानियाँ लिखीं। ये कहानियाँ सिर्फ स्त्री जीवन से ही संबंधित नहीं थी बल्कि इनका विषय व्यापक था। पुरुष कहानीकारों ने भी स्त्री जीवन, दाम्पत्य जीवन, प्रेम, विवाह इत्यादि को केंद्र में रखकर कहानियाँ लिखीं। ये कहानियाँ 'आदमी की निगाह में औरत' की कहानियाँ थीं। परंतु जिस आदमी की निगाह से यह लिखा जा रहा था, वह सर्वशक्तिमान पुरुष नहीं था। स्त्री अब उसकी संपत्ति नहीं थी। स्त्रियों के पढ़ने–लिखने और बाहरी दुनिया में कदम रखने से जो सामाजिक उथल–पुथल मचा खासकर शहरी मध्यवर्गीय समाज में उसे नई कहानी के कहानीकारों ने दर्ज किया। मोहन राकेश भी इसी तरह के कहानीकार हैं, जिन्होंने प्रेम, विवाह, दोस्ती इत्यादि में आए बदलावों को स्त्री के नजरिये से अभिव्यक्त करने की कोशिश की है। इस आलेख में मोहन राकेश की कहानियों में स्त्री–पुरुष संबंध पर विचार किया जाएगा और यह परखने की कोशिश होगी कि मोहन राकेश की कहानियों में अभिव्यक्त स्त्री पुरुषवादी सोच से ग्रसित तो नहीं है। अगर नहीं तो स्त्री के मन को समझने में उन्हें कितनी सफलता मिली है।*

बीज शब्द : *स्त्री विमर्श, मोहन राकेश, नई कहानी, स्त्रीवाद, स्त्री–पुरुष संबंध*

प्रस्तावना : नई कहानी का दौर कहानियों के विषय में वैविध्य लेकर आया। इस विविधता के मूल में सामाजिक परिवर्तन था। जिस समय नई कहानी का विकास हो रहा था, वह दौर तुरंत आजाद हुए भारत का दौर था। पूरा देश एक साथ कई तरह के सामाजिक परिवर्तनों से गुजर रहा था। भारत को सिर्फ ब्रिटिश साम्राज्य से ही आजादी नहीं मिली बल्कि यह आजादी लोगों के भीतर व्यक्तिगत आजादी की भावना को लेकर भी आया। स्त्रियों की स्वाधीनता संबंधी प्रश्न ब्रिटिश काल में ही महत्त्वपूर्ण हो गए थे लेकिन आजादी के बाद स्त्रियों के ऊपर सामंती जकड़नों में कमी आयी। खासकर शहरी मध्यवर्गीय स्त्रियों के सामने शिक्षा और रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई। अब वे पुरुषों के साथ दफ्तरों में काम करने लगीं, कॉलेजों में एक साथ पढ़ने लगीं। इस कारण स्त्री और पुरुष एक–दूसरे के लिए अजनबी नहीं रहे। एक–दूसरे से परिचय और प्रेम हुआ। स्त्रियाँ भी अब कमाने लगीं। अब वे घर के दायरे तक सीमित नहीं थीं। सार्वजनिक जीवन में महिलाओं के आने से परिवार के ढाँचे में बदलाव आया। सीमित मात्रा में ही सही परंतु अब महिलाओं के सामने रोजगार से लेकर विवाह तक के मामले में चयन का अवसर था। अब उनकी इच्छाएँ–आकांक्षाएँ भी मायने रखने लगी थीं। नौकरियों में उनकी भागीदारी बढ़ी और महिलाओं के एक हिस्से को आर्थिक स्वतंत्रता मिली। शिक्षा के कारण आर्थिक रूप से परतंत्र महिलाएँ भी अपने अस्तित्व की महत्ता को समझने लगी थीं। अब पुरुष उनके भाग्य का नियंता नहीं रह गया। स्वतंत्र स्त्री ने समाज और परिवार को अपनी निगाह से परखने का कार्य किया। इस कारण समाज में व्यापक बदलाव आया। स्त्री प्रेम

* *शोध छात्र, हिन्दी विभाग, पटना विश्वविद्यालय*

करने, विवाह करने और विवाह से मुक्त होने का निर्णय लेने लगी। पारंपरिक पारिवारिक ढाँचा इससे चरमरा गया। समाज पर इसका सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभाव पड़ा। एक तरफ 'देवी', 'सर्वत्यागी' और परंपरागत स्त्रीत्व के आवरण से अपने को मुक्त कर आधुनिक स्त्री ने अपने–आपकोसामान्य मनुष्य के रूप में पेश किया तो बिखरते परिवारों में बच्चे और बुजुर्ग असुरक्षित हुए। स्त्रियों को अब बराबरी का भाव चाहिए था। साथ ही आधुनिक स्त्रियों के एक वर्ग के लिए अर्थ सबसे महत्त्वपूर्ण हो गया। कमजोर, बेरोजगार, लिजलिजे पुरुष के साथ अब वह जीवन नहीं बिता सकती थी। मोहन राकेश ने अपनी कहानियों में स्त्री–पुरुष संबंधों के इन सारे आयामों को समटने की कोशिश की है।

नई कहानी का दौर स्त्री–पुरुष संबंधों के बदलाव का दौर था। एक तरफ जहाँ कई स्त्रियाँ विवाह, प्रेम इत्यादि के पारंपरिक ढाँचे से बाहर निकल रही थीं, वहीं दूसरी तरफ स्त्रियों का एक तबका ऐसा भी था जो पुरुष के बिना अपने अस्तित्व की कल्पना भी नहीं कर सकती थीं। मोहन राकेश की कहानियों में दोनों तरह की स्त्रियों का चित्रण हुआ है। मोहन राकेश अपनी कहानियों में एक विशेष तथ्य की शिनाख्त करते हैं कि महानगरीय जीवन में सिर्फ पुरुष ही अकेलेपन या अजनबीपन के शिकार नहीं हैं बल्कि पढ़ी–लिखी आत्मनिर्भर महिलाओं से लेकर घरेलू महिला भी अजबनीपन की शिकार हैं। अकेलेपन और अजनबीपन के बारे में 'मेरी प्रिय कहानियाँ' की भूमिका में मोहन राकेश ने लिखा है–"नये दौर को मेरी अधिक कहानियाँ उसके परिवेश को अंकित करने का प्रयत्न है और समाज व्यक्ति को यन्त्रणाओं का आईना है। संबंधों की यन्त्रणा कोअपने अकेलेपन में झेलते लोगों की कहानियाँ है जिनमें हर इकाई के माध्यम से यह अकेलापन समाज से कटकर व्यक्ति का अकेलापन नहीं, समाज के बीच होने का अकेलापन है और उसकी परिणति भी किसी तरह के सिनिसिज्म में नहीं, फैलने की निष्ठा में है। व्यक्ति और समाज को परस्पर विरोधी एक–दूसरे से भिन्न और आपस में कटी हुई इकाइयाँ न मानकर यहां उन्हें एक ऐसी अभिन्नता में देखने का प्रयत्न है, जहां व्यक्ति समाज की विडम्बनाओं का और समाज व्यक्ति की यंत्रणाओं का आईना है।"[1]

मोहन राकेश की कहानियों से यह स्पष्ट है कि इन नए प्रकार के संबंधों की यंत्रणा सबसे अधिक स्त्रियों को झेलनी पड़ी। खासकर पढ़ी–लिखी आत्मनिर्भर स्त्रियाँ किसी पुरुष पर निर्भर नहीं रहना चाहती हैं। मोहन राकेश इस तथ्य को पकड़ते हैं कि स्त्रियों की आत्मनिर्भरता ने समाज में बदलाव तो किया है लेकिन आत्मनिर्भर स्त्रियों के भीतर इस कारण अहं भी पैदा हुआ है। इस अहं भाव के कारण वे किसी भी पुरुष के साथ रहना पसंद नहीं करती हैं। उनकी अपेक्षाएँ काफी बड़ी हैं। स्त्रियों को अब तक पुरुष अपने 'पैर की जूती' समझते आया था, आत्मनिर्भर स्त्रियाँ इस कारण किसी पुरुष पर भरोसा नहीं कर पाती थीं। मोहन राकेश की कहानी 'मिस पाल' की मिस पाल ऐसी ही पात्र हैं। उन्हें हमेशा यह लगता है कि दफ्तर में कोई उन्हें पसंद नहीं करता और न ही वे किसी से बात करना पसंद करती हैं। उनका व्यवहार काफी रूखा है। अपने आस–पास के लोगों के प्रति अविश्वास ने मिस पाल को अकेलेपन की ओर ढकेल दिया है। वह शहर से दूर एक पहाड़ी कस्बे में जाती हैं कि वे वहाँ अपने पसंद का काम कर पाएँगी लेकिन वहाँ भी वह कुछ नहीं कर रही हैं। वास्तव में मिस पाल के भीतर एक प्रकार का व्यर्थताबोध भरा हुआ है, जिसमें हीनता और अहं का मिश्रण है। जब इस कहानी का पात्र रणजीत वर्षों बाद मिस पाल से मिलता है तो मिस पाल कहती हैं–"मेरे लिए उन लोगों का अस्तित्व कभी था ही नहीं। मैं उनसे किसी को अपने पैर के अँगूठे के बराबर भी नहीं समझती थी।"[2]

'सीमाएँ' भी इसी तरह की कहानी है। इस कहानी में उमा नाम की एक युवती की कहानी है जो पारंपरिक पैमाने के अनुसार असुंदर है। उमा का पारिवारिक जीवन सुखद है, फिर भी उसकी असुंदरता इस सुख पर भारी पड़ती है। उसकी तथाकथित असुंदरता ने उसे अकेलेपन में ढकेल दिया है। मिस पाल की तरह उमा के भीतर भी एक रिक्तता का एहसास भरा हुआ है, जिसने उसे सामाजिक जीवन के प्रति उदासीन बना दिया है।

इन दोनों कहानियों से साफ है कि एक तरफ पढ़–लिखकर और नौकरी करके स्त्रियाँ आत्मनिर्भर और सशक्त हो रही थीं तो दूसरी तरफ समाज के कुछ पुराने पैमाने जैसे– सुंदर–असुंदर इत्यादि के कारण उनके भीतर हीनता का भी बोध भी व्याप्त है। कुल मिलाकर इन स्त्रियों के अकेलेपन का कारण समाज ही है जो किसी अकेली और आत्मनिर्भर स्त्री के प्रति दुर्भावना रखता है। उनके निर्णय का सम्मान नहीं करता है या फिर उन्हें अपने परंपरागत मूल्यों के आधार पर आँकता है।

महानगरीय जीवन में संयुक्त परिवार के विघटन के कारण भी स्त्री–पुरुष संबंधों में तनाव उत्पन्न हुआ। जहाँ पति–पत्नी दोनों नौकरी कर रहे हैं, वहाँ उनके पास एक–दूसरे के लिए और बच्चों के लिए वक्त नहीं है। जहाँ

सिर्फ पति नौकरी कर रहा है, वहाँ पत्नी दिनभर घर में अकेलेपन का शिकार हो रही है। पति के पास पत्नी को समझने के लिए वक्त नहीं और पत्नी पति की बाहरी दुनिया से बिलकुल अपरिचित है। 'खाली' कहानी की तोषी, 'फौलाद का आकाश' की मीरा जैसे पात्र इसी तरह के अकेलेपन के शिकार हैं।

फिर भी स्त्रियों का एक वर्ग ऐसा भी था जो आधुनिक, पढ़ी–लिखी और आत्मनिर्भर होने के बावजूद पुराने सामंती मूल्यों को छोड़ पाने में अपने को असमर्थ पा रही हैं, जैसे–'आखिरी समान' कहानी की बेला भंडारी, 'फौलाद का आकाश' की मीरा और 'सुहागिनें' की मनोरमा।'सुहागिनें' की मनोरमा पति और परिवार से दूर रहकर नौकरी करती है, उसे ऐसा करना पसंद नहीं है लेकिन पति के परिवार को चलाने के लिए वह ऐसा करने को मजबूर है। उसे बच्चा चाहिए लेकिन पति इसके लिए तैयार नहीं है। सुशील की इच्छाओं और मजबूरियों के सामने उसने अपनी इच्छाओं का दमन कर लिया है। कभी–कभी उसे अपनी नौकरानी काशी की स्थिति बेहतर लगती है जो बाल–बच्चेदार है। हालाँकि ठीक–ठाक नौकरी करने वाली मनोरमा और गरीब काशी दोनों अलग–अलग तरीके से अपने–अपने पतियों द्वारा मानसिक और आर्थिक रूप से शोषित हैं। काशी के साथ अजुध्या मारपीट करके यह शोषण कर रहा है, वहीं मनोरमा का पति सुशील भावनात्मक रूप से। एक जगह शोषण प्रत्यक्ष नजर आ रहा है तो दूसरी ओर यह शोषण बहुत ही महीन तरीके से अप्रत्यक्ष रूप से हो रहा है। मिसेज भंडारी, मीरा और मनोरमा अपने–अपने तरीके पतिव्रत–धर्म का पालन कर रही हैं और शोषण का शिकार हो रही हैं। उनके लिए अंततः पति इच्छा–अनिच्छा ही सर्वोपरि है।

वहीं दूसरी ओर ऐसी स्वतंत्र और आत्मनिर्भर स्त्रियाँ भी थीं जो अपना निर्णय स्वयं लेने में सक्षम थीं। शिक्षित, स्वावलंबी, नौकरीपेशा स्त्रियाँ पति पर निर्भर नहीं रही। इस कारण परंपरागत दाम्पत्य संबंधों में बदलाव आया। पति जहाँ अपनी पत्नी से पहले की तरह व्यवहार की आशा रखता था, वहीं पत्नी को पति का हस्तक्षेप अब पसंद नहीं था। अब वह भी निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र थी। अब पत्नी पति की हर बात को मानने के लिए मजबूर नहीं थी। सामाजिक संरचना में आए इस बदलाव के कारण दाम्पत्य संबंधों में भी परिवर्तन हुआ। पहले वैवाहिक संबंधों को तोड़ना आसान नहीं था लेकिन आधुनिक नारी ने समझौता करने से इनकार कर दिया। 'एक और जिन्दगी' कहानी के पति–पत्नी प्रकाश और बीना की सोच बिलकुल भिन्न है। दोनों आपस में समन्वय नहीं बना पाते हैं। बीना प्रकाश के समान ही शिक्षित है और उससे अधिक कमाती है। दूसरी ओर प्रकाश बीना पर इच्छाएँ लादना चाहता है। दोनों एक–दूसरे के सामने झुकने से मना कर देते हैं और इसका परिणाम तलाक में होता है। पुरुष को पढ़ी–लिखी कमाऊ स्त्री के प्रति आकर्षण तो होता है लेकिन जब वह आधुनिक नारी अपने अनुसार कुछ करना चाहती है तो वह पुरुष को असह्य हो जाता है। प्रकाश के साथ भी कुछ ऐसी ही स्थिति है। प्रकाश की मान्यता है–"बीना में अहंकार था, वह उसके बराबर पढ़ी–लिखी थी, उससे ज्यादा कमाती थी। उसे अपनी स्वतंत्रता का बहुत मान था और वह उस पर भारी पड़ती थी।"[3]

बीना के बारे में प्रकाश की उपर्युक्त मान्यता सिर्फ प्रकाश की नहीं है बल्कि प्रकाश जैसे उन सारे पुरुषों की मान्यता है जो वे किसी भी आत्मनिर्भर स्त्री के बारे में रखते हैं। परंपरा और आधुनिकता के इस द्वन्द्व ने दाम्पत्य जीवन को पहले की तरह अटूट नहीं रहने दिया। किसी भी तरह के मतभेद की स्थिति में अब पति–पत्नी अलगाव या तलाक का ही रास्ता चुनना श्रेयस्कर समझते थे, जो एक वक्त संभव नहीं था। पहले पुरुषों को ही यह सुविधा प्राप्त थी कि वह विचारों के न मिलने या किसी भी कारण से अपनी पत्नी को छोड़ सकता था लेकिन स्वातंत्र्योत्तर समाज में अब स्त्रियाँ भी ऐसा निर्णय लेने से पीछे नहीं हटती थीं। 'गुंझल' कहानी की कुंतल इसी तरह स्वतंत्र प्रवृत्ति की आधुनिक नारी है। उसका पति चंदन बेरोजगार है। इस कारण वह कुंतल की अपेक्षाओं को पूरा करने में असमर्थ है। यह विवाह कुंतल को उसके व्यक्तित्व के लिए बाधक लगता है। चंदन द्वारा यह कहने पर किसी तीसरे व्यक्ति यानी कुंतल के पिता के सामने इस समस्या को रखने पर शायद इसका समाधान निकाला जा सकता है तो कुंतल साफ–साफ मना कर देती है। यानी कुंतल चंदन से अलग होने का निर्णय ले चुकी है। यह कहानी बदलते हुए मूल्यों की कहानी है, जहाँ संबंध–विच्छेद नितांत निजी मामला है।

ऐसा नहीं है कि सारी स्त्रियाँ इस तरह के निर्णय ले रही हों। समाज में स्त्रियों का एक बड़ा हिस्सा अब भी ऐसा था जो आत्मनिर्भर होते हुए भी पति से अलग होने का साहस नहीं दिखा पा रही थीं। चाहे वह मध्यवर्गीय स्त्रियाँ हों या निम्न मध्यवर्गीय वे पति द्वारा हर तरह की ज्यादती के बावजूद उनके साथ ही रहना पसंद करती हैं। जहाँ पढ़ी–लिखी स्त्रियों का यह हाल है, वहाँ सर्वहारा या गरीब वर्ग की स्त्री तो पति को ही सब–कुछ मानती हैं। 'उसकी रोटी' कहानी में अनपढ़ और गरीब स्त्रियों की पीड़ा का वर्णन है। इसी तरह से सुच्चा सिंह द्वारा दुत्कारे

जाने के बावजूद बालो उसे रोटी खिलाना अपना परमधर्म मानती है। इसका कारण यह है कि समाज में उसी स्त्री को सामाजिक सुरक्षा मिल पाती है, जिसके ऊपर उसके पति का हाथ हो। बालो को सुच्चा सिंह के होने से सुरक्षित होने की भावना मिलती है।

यह तत्कालीन समाज का विरोधाभास है। मोहन राकेष की कहानियों में दोनों तरह की स्त्रियाँ हैं। स्त्रियों का एक वर्ग अपनी स्वतंत्रता को महत्त्व दे रहा है तो दूसरा वर्ग अपनी भावनाओं को दबा रहा है। मोहन राकेश की निगाह सामाजिक परिवर्तन पर भी है और वे यह भी देख रहे हैं कि स्त्रियों का एक वर्ग आज भी भावनात्मक और शारीरिक रूप से शोषित हो रहा है।

आधुनिक युग ने व्यक्ति स्वातंर्त्य को जन्म दिया। पति–पत्नी के बीच मानसिक मतभेद होने पर वे एक–दूसरे से कैसे दूर हो जा रहे हैं, इसका वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं। एक–दूसरे से मानसिक अलगाव का परिणाम या तो विवाह–विच्छेद होता है या फिर विवाहेतर संबंध में इसकी परिणिति होती है। पति–पत्नी अपने कामकाज के सिलसिले में एक–दूसरे को वक्त नहीं दे पाते हैं। प्रायः उनका समय अपने किसी सहकर्मी पुरुष या स्त्री के साथ व्यतीत होता है। इस स्थिति में उनका एक–दूसरे करीब आना एक स्वाभाविक बात है। इस तरह के संबंधों के मूल में वासना और एकाकीपन होते हैं।

आधुनिकता की आँधी में पुराने मूल्य टूटने लगे। 'पति–परमेश्वर है' और 'विवाह सात जन्मों का बंधन है' जैसे विचारों में स्वतंत्र और आत्मनिर्भर नारी का अब विश्वास नहीं था। विवाह–बंधन से मुक्त रहकर पुरुषों के साथ शारीरिक संबंध रखना अब कई आधुनिक नारियों के लिए बुरा न था। पुर्नविवाह, घूमने–फिरने की स्वतंत्रता और प्यार करने का अधिकार इन नारियों को प्राप्त था। वस्तुतः विवाह संबंधी परंपरागत बंधनों एवं मान्यताओं के शिथिल होने के कारण यौन–शुचिता का आग्रह बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं रहा। विवाह–संबंधों में पति–पत्नी के आपसी विश्वास की कमी और मूल्यों का ह्रास एक आम आधुनिक समस्या है। इस के बदलते वैवाहिक मूल्यों का यथार्थ और सजीव चित्रण मोहन राकेश ने अपनी कहानियों में किया है।

'क्वार्टर' कहानी के शंकर और राधा के बीच तनाव और अलगाव की स्थिति का एक कारण शंकर का दूसरी स्त्रियों के प्रति कामुक दृष्टि है। वह अपनी एक सहकर्मी रवि शर्मा की पत्नी के प्रति आकर्षित है और संभवतः मिसेज शर्मा भी शंकर के प्रति आकर्षित हैं। मजे की बात यह है कि उसके सहकर्मी को भी यह बात ज्ञात है। तभी तो मजाक में वह कहता है–"हमारे लिए अच्छी कॉफी तभी बनती है जब आपको पीनी होती है।"[4] शंकर अपनी सहपाठी सरोज के प्रति भी आकर्षित है। सरोज अपने पति के साथ विदेश में रहती थी। वह हाल ही में बंबई लौटी है। विदेश में रहने के कारण वह अपने–आपको सबके सामने एक आधुनिक नारी के रूप में प्रस्तुत करती है। सबके सामने वह निःसंकोच सिगरेट पीती है। शंकर और अन्य पुरुषों के साथ पार्टी करने और घुमने–फिरने में उसे किसी तरह की झिझक नहीं है। शंकर और सरोज एक–दूसरे के प्रति आकर्षित भी हैं। शंकर के इस व्यवहार के कारण राधा मायके जाना चाहती है। विवाहोपरान्त इस तरह के संबंध पति या पत्नी के ऊपर किस तरह का मानसिक दबाव डाल सकता है, यह इस कहानी में स्पष्ट है।

'सेफ्टी पिन' कहानी में भी मध्यवर्गीय विवाहित स्त्रियों और पुरुषों में पनप रहे मूल्य विघटन को दिखाया गया है। मिस्टर और मिसेज सक्सेना ने रात्रिभोज (डिनर) के लिए मिस्टर और मिसेज सिंह, रमेश सन्ना और उसकी पत्नी शानो, चंदर और कथानायक को आमंत्रित किया है। इन सभी पात्रों का चरित्र इन्हीं चंद घंटों में इनकी बातचीत और क्रियाकलापों से खुलता है। यह एक उच्च मध्यवर्गीय लोगों की पार्टी है, जिसमें अच्छी आर्थिक स्थिति न होते हुए भी संभवतः अपनी बौद्धिकता या बुद्धिजीवी समाज में पैठ के कारण कथानायक भी आमंत्रित है। रमेश सन्ना की पत्नी शानो कथानायक के प्रति आकर्षित है। वह कथानायक को मौका देखकर अपने पति की गैरमौजूदगी में अपने घर पर आने का निमंत्रण देती है–"किसी भी दिन जब तुम्हें फुरसत हो। रमेश नौ बजे जाता है। मैं सारा दिन घर पर ही रहती हूँ।"[5]

शानो का यह वाक्य विवाहेतर संबंधों के पनपे के पीछे की वजह को भी उजागर कर रहा है। मध्यवर्गीय घरेलू स्त्री एकल परिवार में एकाकीपन महसूस कर रही है। पति से उसे वह संवेदनशीलता और प्रेम नहीं मिल रहा है, जिसकी उसे अपेक्षा है। पति के साथ भी मजबूरियाँ हैं कि उसे अपने दफ्तरी जीवन से सुकून के वह पल नहीं मिल पा रहा है, जहाँ वह अपने अलावा किसी और के बारे में सोच सके। ऐसी स्थिति में स्त्री और पुरुष दोनों अपने एकाकीपन को मिटाने के लिए इस तरह का रास्ता चुनते हैं। इसी कहानी के पात्र मिसेज सिंह और मिसेज सक्सेना का भी यही हाल है। दोनों चंदर के प्रति आकर्षित हैं। मिसेज सिंह को अपने पति की बातें बोरिंग लगती

हैं। उसने मेजर सिंह से इसलिए शादी की है क्योंकि मेजर सिंह धनी हैं। वैसे मेजर सिंह मिसेज सिंह से उम्र में काफी बड़े हैं। यही कारण है मिसेज सिंह को मेजर सिंह की बातें आकर्षक नहीं लगती हैं। ऐसा नहीं है कि इन सभी विवाहित स्त्रियों के पति अपनी पत्नियों के हरकत से अनजान हैं लेकिन वे जानबूझकर अनजान बने रहते हैं। वैवाहिक संबंधों का यह रूप उच्च मध्यवर्गीय जीवन का सच बन चुका था और कोई इसे बदल नहीं सकता था। मेजर सिंह की पत्नी की यह दूसरी शादी थी तो मेजर की यह तीसरी शादी थी। वह इस पार्टी के मेजबान मिस्टर सक्सेना की प्रेमिका भी रह चुकी थी और इसके अतिरिक्त कई पुरुष उसके बॉयफ्रेंड रह चुके थे। रोज बनते–बिगड़ते प्रेम–संबंधों के बीच नैतिकता की खोज बेमानी हो चुकी है।

इस तरह की स्वछंदतावादी प्रवृत्ति ने प्रेम के परंपरागत प्रतिमानों में बदलाव लाया। एक स्त्री का एक ही पुरुष के प्रति या किसी पुरुष का किसी एक ही स्त्री के प्रति जीवनभर एकनिष्ठ रहना पुराने जमाने की बात थी। परंपरागत मर्यादा, चरित्र इत्यादि अब मायने नहीं रखते थे। चाहे वह स्त्री हो या पुरुष व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा आधुनिक मनुष्य के लिए प्रधान हो गया था। सच्चा प्रेम अब सिर्फ किताबों में ही रह गया था। मोहन राकेश ने इसी सच्चे प्रेम की खोज में भटक रहे व्यक्ति की कहानी 'दोराहा', 'धुँधलादीप' और 'लक्ष्यहीन' नामक कहानियों में की है। इन तीनों कहानियों का मूल पात्र केसरी है और इन तीनों कहानियों की कथा एक–दूसरे से सूत्रबद्ध है। केसरी अपनी संवेदना में एक सच्चा प्रेमी है लेकिन विडंबना यह है कि उसकी ईमानदारी और निष्ठा हमेशा बेकार हो जाती है। केसरी पहले श्यामा, फिर राधा और अंततः मंजुला के प्रति आकर्षित होता है और इनसे प्रति अलग–अलग समय में उसके हृदय में प्रेम जागृत होता है। 'दोराहा' कहानी में केसरी को श्यामा से प्रेम होता है। वह श्यामा के जीवन का प्रथम पुरुष नहीं है। श्यामा केसरी के सामने इसे स्वीकार भी करती है कि कभी वह शील नामक युवक से प्रेम करती थी परंतु वह बिना कुछ बताए श्यामा को छोड़ कहीं चला जाता है। केसरी इसके बावजूद श्यामा से प्रेम करता है लेकिन श्यामा के मन में शील के प्रति प्रेम बना रहता है। यही कारण है कि जब शील श्यामा को शंघाई बुलाता है तो वह केसरी को बिना बताए शील के पास जाने को तैयार हो जाती है। केसरी इस घटना से अपने–आपको भावनात्मक रूप से ठगा हुआ महसूस करता है।

मोहन राकेश की कहानियों से स्पष्ट है कि जिसे हमने कभी सच्चा प्रेम समझ रखा था, वह अब अपरिवर्तनीय भाव नहीं है। देशकाल एवं परिस्थिति के अनुसार प्रेम की परिभाषा बदल गई है। आधुनिक मनुष्य किसी एक के पीछे जीवन नष्ट करने वाला या वाली नहीं है। प्रेम की यह पवित्रता मध्यवर्गीय जीवन से प्रायः गायब है। वहाँ प्रेम का स्थान स्वार्थ और अहं ने ले लिया है।

निष्कर्ष : मोहन राकेश ने स्त्री–पुरुष संबंधों को आधुनिकता बनाम परंपरा के द्वन्द्व के आईने में देखने की कोशिश की है। स्त्रियों की स्वतंत्रता का मोहन राकेश समर्थन करते तो हैं लेकिन इस स्वतंत्रता ने स्त्री को कितना अकेला कर दिया है, इसकी भी शिनाख्त करते हैं। उन्होंने यह दिखाया है कि उपभोक्तावाद और अर्थ के बढ़ते महत्त्व ने भी स्त्री–पुरुष संबंधों को प्रभावित किया है। प्रेम करने के लिए सिर्फ सच्चाई और ईमानदारी काफी नहीं हैं। मध्यवर्गीय जीवन पूरी तरह अर्थ से संचालित हो रहा है और स्त्री–पुरुष संबंधों के निर्धारण में भी उसकी अहम भूमिका हो गई है। मोहन राकेश मूलतः मध्यवर्गीय और निम्न मध्यवर्गीय स्त्री–पुरुष संबंधों की पड़ताल करते हैं। प्रेम, विवाह, परिवार के बदलते मानकों को वे स्त्री–पुरुष संबंधों के संदर्भ में देखते हैं और अपने समय के परिवेश को सफलतापूर्वक अभिव्यक्त करते हैं।

संदर्भ–सूची

1. राकेश, मोहन, मेरी प्रिय कहानियाँ (भूमिका), राजपाल एंड सन्स, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1971
2. राकेश, मोहन, मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, राजपाल एंड सन्स, नयी दिल्ली, संस्करण : 2019, पृ. 16
3. वही, पृ. 281
4. वही, पृ. 128
5. वही, पृ. 206

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 252-256

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

विदेशियों के वृत्तांतों में मुगलकालीन भारत के मेले और त्यौहार

*श्याम सागर**

सारांश–*प्रस्तुत शोधपत्र में मुगलकाल में भारत आए विदेशियों द्वारा दिए गए विवरणों में समकालीन भारत के मेले एवं त्योहारों का व्याख्यान किया गया है। जैसे इस समय वर्ष भर में मनाए जाने वाले प्रमुख त्यौहार एवं मेले कौन–कौन से थे, मुगल दरबार में त्यौहार किस प्रकार मनाए जाते थे, मेलों का आयोजन वर्ष में कब और किस प्रकार किया जाता था आदि। जब हम विदेशी वृत्तांतों का अध्ययन करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि इस समय हिंदू तथा मुस्लिम दोनों धर्म के त्यौहार मनाए जाते थे। जहां एक ओर हिंदू त्यौहार संख्या में अधिक होने के कारण बहुत धूमधाम से मनाए जाते थे वहीं दूसरी ओर मुस्लिम त्यौहार संख्या में कम होने के बावजूद बहुत ही उत्साह के साथ मनाए जाते थे। कुछ त्योहारों तथा मेलो में स्वयं मुगल बादशाह शामिल होते थे।*

मुख्य शब्द–*नवरोज, होली, रक्षाबंधन, दीपावली, मोहर्रम, ईद उल फितर, तुलादान मीना बाजार*

प्राचीन काल से ही भारत अपने धार्मिक त्योहार तथा मेलों के लिए संपूर्ण विश्व में प्रसिद्ध रहा है। यही कारण है कि मुगल काल में भारत आने वाले विदेशियों ने भी अपने यात्रा वृत्तांतों में त्योहारों एवं मेलो को विशेष स्थान दिया है। अधिकांश यूरोपीय यात्री, जिनके लिए यह त्यौहार पूर्णतया नए प्रकार के थे, ने अत्यंत जिज्ञासु भाव एवं उत्साह पूर्ण तरीके से त्योहार का विस्तृत विवेचन किया है। साथ ही, वह इन त्योहारों एवं इसमें प्राप्त अनुभवों को अपने पूर्व ज्ञान के आधार पर विश्लेषित करने का प्रयास करते हैं क्योंकि विदेशी यात्री प्रायः भारत में प्रचलित दोनों प्रमुख धर्म से निरपेक्ष भाव रखते थे फलतः उन्होंने दोनों धर्म के त्योहारों का वर्णन बिना अतिशयोक्ति के करते हैं तथा उनके वर्णन में भारतीय इतिहासकारों के समान धार्मिक पूर्वाग्रह से ग्रस्त वर्णन प्रायःकम ही प्राप्त होते हैं।

विदेशी यात्रियों की पहुंच यद्यपि सामान्य जनता तक थी तथापि अपने वृतांतों में इन्होंने दरबार तथा बादशाह के द्वारा मनाए जाने वाले उत्सवों एवं त्यौहारों को अधिक तरजीह दिया है। हालांकि, इस क्रम में सामान्य जनता के वर्णन को पूर्णतया नजरअंदाज भी नहीं किया गया है।

मुगल काल के दौरान उनके दरबार में मनाया जाने वाला एक प्रमुख त्यौहार नवरोज था य जो वस्तुतः फारसी लोगों का नववर्ष का दिन होता है। इस त्यौहार को भारत में वसंत ऋतु के आगमन के प्रतीक रूप में देखा जाता था।[1] ईरान में नवरोज का उत्सव केवल 12 दिनों तक मनाया जाता था जबकि मुगलों ने इसके भारतीय स्वरूप में इसे 19 दिनों का उत्सव बना दिया। इस त्यौहार के पहले एवं अंतिम दिन को सबसे ज्यादा शुभ मानते हुए इस दिन बहुत सारा पैसा एवं वस्तुएं उपहार स्वरूप दी जाती थी।

उत्सव की भव्य तैयारियां शाही शहरों में महीनों पहले से दिखाई देने लगती थी। शहर के बाजारों ,बरामदों तथा दर्शकों के हाल को साटन, मलमल तथा सोने के कपड़ों जैसी मूल्यवान चीजों से सजाया जाता था।[2] आम लोग अपने घरों को सफेद चूने से पोतते तथा पेड़ों की हरी पत्तियां एवं शाखाओं से सजाते थे। इस अवसर पर पड़ोसी राज्यों तथा अन्य क्षेत्रों से भी बड़ी संख्या में लोग नवीन वस्त्र धारण कर इस उत्सव के आयोजन में शामिल होने आते थे।[3] त्योहार के पूरे समयावधि में जनता के मनोरंजन के लिए राज्य द्वारा अनेक सुविधाएं प्रदान की जाती थी। त्योहार के समय शासन द्वारा जुए पर लगा प्रतिबंध हटा लिया जाता था[4] तथा इस दौरान सप्ताह में एक बार बादशाह जनता के समक्ष उपस्थित होता था।

स्वयं बादशाह अपने शाही अंदाज में इस उत्सव को मनाते थे। इस अवसर पर संपूर्ण साम्राज्य तथा विशेषता फारस से गायक एवं संगीतकारों को दरबार में अपनी प्रतिभा प्रदर्शन एवं मनोरंजन हेतु बुलाया जाता था।[5]

* *शोध छात्र, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज*

इस त्यौहार के उत्सव के अवसर पर धन एवं वैभव के होने वाले अभूतपूर्व एवं भव्य प्रदर्शन का वर्णन लगभग सभी विदेशी लेखक अपने व्याख्यानों में करते हैं। मैनरिक ने इस त्यौहार के समय आगरा किले की सजावट के बारे में बताते हुए कहा है कि, ''पहले प्रांगण चमकदार घुड़सवार सेना की एक बड़ी टुकड़ी द्वारा सुसज्जित था, जिसमें रंगीन कढ़ाई के रेशमी वस्त्र पहने 4000 घोड़े शामिल थे जबकि घुड़सवारों ने चमकीले रेशमी वस्त्र पहने, उनके पीछे 600 शाही हाथी थे, जिनके सिर पर छोटे सुनहरे मीनार थे ..... अगले हाल में गैलरी के चार स्तंभों के आधार चांदी के खोखले कटोरों (पेडेस्टल)से सजाए गए थे, जिनमें अलग–अलग प्रकार की खुशबू देने वाले दीप जलाई गई थी।''[6]

नवरोज के उत्सव का मुख्य समारोह प्रायः दीवाने आम में आयोजित किया जाता था। जिसे गुजरात व फारसी स्वर्ण कपड़ों, यूरोपीय पर्दों तथा कुस्तुनतुनिया एवं चीन के ब्रोकेड से सजाया जाता था। बादशाह का तंबू सबसे भव्य एवं आलीशान बनाया जाता था जो कि लगभग दो एकड़ में विस्तृत होता था।[7] पूरे तंबू के फर्श पर सर्वोत्तम किस्म के रेशमी कालीन बिछाए जाते थे। बर्नियर बताता है कि इस तंबू के खंभे एक नाव के मस्तूल जितने लंबे व मोटे होते थे जिन्हें चांदी से मढ़ा जाता था। तंबू में रखा प्रसिद्ध मयूर सिंहासन (शाहजहां से पहले एक स्वर्ण सिंहासन) उसे अत्यंत सुशोभित करता था।[8]

मुगल अमीरों के तंबू भी शाही तंबू के चतुर्दिक ही बनाए जाते थे।जो किसी भी दृष्टि से वैभव एवं भव्यता में एक दूसरे से कम नहीं थे। अमीरों के तंबू देखकर हॉकिंस कहता है कि, ''हर आदमी के कमरे या जगह की सजावट एवं सजावट में दिखने वाली दौलत एवं संपदा अद्भुत है।''[9] इस अवसर पर प्रत्येक अमीर बादशाह को रात्रि भोज के लिए आमंत्रित करता था तथा बादशाह के समक्ष हीरे, मोती, जवाहरात तथा अन्य दुर्लभ वस्तुओं एवं आभूषणों का नजराना पेश करता था। एक बार आसिफ खान ने जहांगीर को लगभग 10 लाख रुपए की कीमत के जवाहरात, आभूषण, स्वर्ण, मोती, रेशमी कपड़े तथा चार घोड़े और एक ऊंट का नजराना पेश किया था।[10] उत्सव के पहले और अंतिम दिन बादशाह अपने दरबार में सिंहासन पर बैठता, जहां सभी दरबारी एकत्रित होकर उसे उपहार देते थे। बादशाह इस समय जागीरे, मनसब, पदोन्नति, उपाधियां आदि मुक्त हस्त से वितरित करता था।[11]

संपूर्ण मुगल साम्राज्य में सबसे धूमधाम से मनाया जाने वाला समारोह सत्तारूढ़ बादशाह का जन्मदिन समारोह हुआ करता था। बादशाह अकबर सौर तथा चंद्र दोनों पंचांगों की तिथियों के अनुसार अपना जन्मदिन समारोह आयोजित करता था।[12] बादशाह के जन्मदिन समारोह का आयोजन पांच दिनों तक चलता था।इस दौरान राजधानी में आतिशबाजियां की जाती थी, बादशाह को उपहार प्रदान किए जाते थे। इस विशिष्ट अवसर के लिए विशेष प्रकार के नृत्य आयोजित किए जाते थे।[13] शाही महल और दरबार को नौरोज त्यौहार के समान ही सजाया जाता था। बादशाह का दरबार में स्वागत शानदार एवं चमकदार वस्त्रों से सुशोभित अश्व सेवा एवं गजदल से किया जाता था। इसके उपरांत बादशाह अपनी माता का आशीर्वाद प्राप्त कर अमीरों द्वारा ले गए उपहार स्वीकार करता था।[14] इसके बाद हिंदू शासकों की भांति बादशाह तुलादान करता था। मुगल शासन में इस प्रथा का प्रारंभ बादशाह हुमायूं करता है।[15] इस प्रथा का कतिपय परिवर्तनों के साथ शाहजहां के समय तक पालन किया गय। बादशाह औरंगजेब ने अपने 51वें जन्मदिन के अवसर पर इस हिंदू प्रथा को पूर्णतया त्याग दिया। हालांकि अपने बेटे की बीमारी ठीक होने पर धन एवं संपत्ति के गरीबों में वितरित किए जाने की विशिष्ट प्रतिबंध के साथ उसने इस प्रथा को पुनः स्वीकार कर लिया तथा वर्ष में एक बार तुलादान के लिए सहमत हो गया। बादशाह को उनके सौर जन्म दिवस पर विभिन्न वस्तुओं के साथ 12 बार तथा चंद्र जन्म दिवस पर चांदी, टिन, वस्त्र, शीशा, फल, सरसों के तेल एवं सब्जियों से तौला जाता था। प्रत्येक वर्ष बादशाह का वजन अत्यंत सावधानीपूर्वक नोट किया जाता था तथा वजन बढ़ने पर राजा के जयकारे लगाए जाते थे।[16] इस अवसर पर बादशाह कुछ लोगों को उपाधियां तथा मनसब भी प्रदान करता था।

तुलादान के समय जिन वस्तुओं से बादशाह को तोलते थे। उसे गरीबों, ब्राह्मणों, याचकों तथा योग्य व्यक्तियों में वितरित कर दिया जाता था। समारोह के उपरांत बादशाह दरबारियों द्वारा लाए गए उपहार को स्वीकार करता थाय थेवनोट इन उपहारों की कीमत लाखों में बताता है।[17] इस अवसर पर अमीरों एवं रईसो की पत्नियॉ भी रानी एवं राजकुमारी को उपहार देकर उनसे बदले में महंगी साड़ियां एवं गहने प्राप्त करती थी।[18]

हुमायूं ने अपने जन्मदिन के साथ–साथ अपने राज्याभिषेक के वर्षगांठ का उत्सव मनाने की प्रथा भी प्रारंभ की। यह उत्सव पूरे एक सप्ताह तक मनाया जाता था।[19] इस उत्सव में सैनिक तथा अधिकारी भी भाग लेते थे। इस अवसर पर तीरंदाजी प्रतियोगिता का आयोजन किया गया तथा गरीबों में बड़ी संख्या में अनुदान बांटा जाता था।

सर्वप्रथम मुगल बादशाह हुमायूं ने ही मीना बाजार की शुरुआत की थी। इस प्रकार का पहला आयोजन पारंपरिक दावत के उपरांत राजा के महल के पास रखे नाम पर आयोजित किया गया था। अकबर ने इस प्रथा को संशोधित करते हुए ''खुश रोज'' के रूप में मनाया था।[20]

संभवतः इन विशेष बाजारों के आयोजन के लिए किसी निश्चित अंतराल का निर्धारण नहीं दिया गया था। बर्नियर बताता है कि शाहजहां ऐसे बाजारों आयोजन सदैव नवरोज समूह के बाद करवाता था।[21]

इन विशेष बाजारों में दुकानों को रईसों की पत्नियों या बेटियों द्वारा व्यवस्थित किया जाता था। इस बाजार में राजपूत महिलाओं के साथ–साथ मुख्यतः उमरा वर्ग की सबसे सुंदर एवं आकर्षक पत्नियां व्यापारियों के रूप में शामिल होती थीं।[22] इस बाजार में मुख्यतः महंगे आभूषणों, रेशम तथा अन्य कपड़ों के साथ–साथ सुनार आदि की दुकानें लगी होती थी। बादशाह एक सामान्य आदमी के भेष में बाजार में आते तथा महिला व्यापारियों से मजाकिया भावों में अक्सर वस्तुओं के मूल्य पर बातचीत करते थे।[23] अंततः राजा महिलाओं की बातों से प्रसन्न होकर उनकी मांगी गई कीमत से दुगुनी कीमत देता था। महिला बाजार के बाद पुरुष व्यापारी विश्व भर से अपना माल लाकर अपना बाजार आयोजित किया करते थे।[24]

हिंदू धर्म में बसंत ऋतु के आगमन के प्रतीक के रूप में माघ माह के शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि को बसंत पंचमी का त्यौहार मनाया जाता थाय मुगल बादशाहों ने इस त्यौहार को अपने दरबार में भी मनाना प्रारंभ किया। इस दिन पूरे देश में हिंदू कला, विद्या एवं बुद्धि की देवी सरस्वती की आराधना करते थे।[25]

मुगलकालीन भारत की यात्रा करने वाले लगभग सभी विदेशी यात्रियों ने मुगल दरबार में मनाए जाने वाले हिंदू त्योहारों में होली का विशेष रूप से उल्लेख किया है। यह त्योहार फाल्गुन मास की पूर्णिमा तिथि को मनाया जाता है। इस त्यौहार में लोग एक दूसरे पर नंगी तथा लाल पानी फेंकते हैं, साथ ही गायन और नर्तन भी किया जाता था।[26] इस अवसर पर लोग गहरी लाल रंग के कपड़े पहनते थे तथा कई लोग दर्शन करने मंदिर जाते थे।[27]

हिंदुओं के रक्षाबंधन के त्यौहार को कुछ मुगल बादशाहों के द्वारा भी मनाया जाता था। जहांगीर इस त्यौहार को ''निघादस्त'' कहता था।[28] इस त्यौहार के समय मुगल दरबार में शाही पुरोहित बादशाह या अपने संरक्षक को राखी बांधते हुए उनके दीर्घायु की कामना करता था। बादशाह अकबर ने स्वयं राखी बंधवाते हुए इस त्यौहार को एक राष्ट्रीय त्योहार के रूप में स्थापित किया।[29] इस कारण दरबार के लोगों के मध्य यह धारणा बन गई कि रक्षाबंधन के दिन वह रत्न जड़ित राखी सम्राट की कलाई पर बांधे।

हिंदुओं के अन्य प्रमुख त्योहार दीपावली को भी मुगल दरबार में धूमधाम से मनाया जाता था। इस दिन शुभता एवं वैभव के देव माने जाने वाले गणेश तथा लक्ष्मी का पूजन किया जाता था।[30] दिवाली के अवसर पर सामान्य दिनों के विपरीत जुआ खेलने को अत्यंत शुभ माना जाता था।[31] बादशाह अकबर इस त्यौहार के उत्सव भी पहलुओं की ओर अधिक आकर्षित थे जबकि जहांगीर को इस अवसर पर जुआ खेलने अधिक पसंद था।[32] दिवाली के त्यौहार के दो दिन बाद गोवर्धन पूजा का पर्व मनाया जाता था। यह दिन को मुख्यतः गायों को समर्पित माना जाता था। स्वयं बादशाह अकबर भी कभी–कभी इस त्यौहार में शामिल होता था।

मुस्लिम धर्म के शिया पंथ के अनुयायी मुहर्रम माह को इमाम हुसैन की शहादत का माह होने के कारण सबसे दुखद महीने के रूप में मनाते हैं।[33] यद्यपि मुगल शासक इस्लाम के सुन्नी पंथ से संबंधित थे तथापि उन्होंने इस त्यौहार के पालन पर किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं लगाया। औरंगजेब ने अपने पूर्ववर्ती शासकों के विपरीत मोहर्रम जुलूसों को प्रतिबंधित करने का फरमान जारी किया था। हालांकि, ताजिया जुलूस तथा मोहर्रम सभाओं के साथ–साथ दान वितरण संपूर्ण देश में यथावत जारी रहे।

मुगल दरबार में पैगंबर मोहम्मद के जन्म का पर्व ईद ए मिलाद भी पूरी धूमधाम से मनाया जाता था। इस दिन राजधानी में समस्त प्रमुख सैयदों एवं विद्वानों की बैठक आयोजित कर पैगंबर मोहम्मद के जीवन की प्रमुख घटनाओं पर उपदेशात्मक व्याख्यान दिए जाते थे। इस अवसर पर बादशाह द्वारा गरीबों तथा जरूरतमंदों को दान वितरित किया जाता था। कहां जाता है कि एक बार शाहजहां स्वयं अपने सिंहासन से उतरकर कालीन पर बैठ गया था। एक अन्य अवसर पर शाहजहां ने 12000 रुपए दान में दिए थे।[34]

मुसलमान में पैगंबर के स्वर्गारोहण की तिथि अर्थात शब–ए– मेराज माह की 14 तारीख को शब–ए–बारात नामक त्यौहार मनाया जाता है। मुगलों के शासनकाल में मुसलमान इस त्यौहार पर हिंदुओं की दीपावली की भांति अपने घरों एवं दुकानों को रोशन कर आतिशबाजी करते थे।[35] जहांगीर तथा शाहजहां के लिए यह त्यौहार विशेष

महत्व रखता था तथा वह इसे नियमित रूप से धूमधाम से मनाते थे। 1639 में इस त्यौहार के समय शाहजहां लाहौर में थे, तब अली मर्दन खान को इस त्यौहार की संपूर्ण व्यवस्था का दायित्व सौंपा गया था। इस त्यौहार के ठीक एक रात पहले 13 वे शब्बान को मुस्लिम अपने मृतक रिश्तेदारों के नाम दही, मिठाई, खिचड़ी आदि व्यंजन बनाकर कुछ व्यंजनों पर फातिहा पढ़ते थे।[36] रावी नदी तट पर अली मर्दन ने शाही एवं निजी तंबुओं को अत्यंत खूबसूरती एवं रंगीन रोशनी से सजाया था। इस अवसर पर शाहजहां ने लगभग 10000 रुपए का सोना गरीबों में तौल कर (अज–जर–ए–वतन से) वितरित कर दिए थे।

मुसलमान के एक और बड़े त्यौहार ईद उल फितर, जिसे ईद उल सागर तथा छोटी दावत के रूप में भी जाना जाता है, का मुगल दरबार में विशेष रूप से स्वागत किया जाता था। यह त्योहार पूरे तीन दिनों तक मनाया जाता था।

मुगल काल में ईद के चांद के दिखाई देने की उद्घोषणा तोपों की गर्जना तथा तुर्रही बजाकर की जाती थी। ईद के दिन प्रातः काल राजकुमार ,अमीर ,रईस तथा अन्य उच्च पदाधिकारी सर्वप्रथम दर्शन हॉल में सामूहिक रूप से बादशाह को शुभकामनाएँ देते तथा दोपहर की नमाज शाही ईदगाह में बादशाह के साथ ही पढ़ते हैं। इस त्यौहार में मित्रों और रिश्तेदारों ने स्वादिष्ट व्यंजनों का आदान–प्रदान करते थे तथा एक दूसरे को शुभकामनाएँ देते थे।[37] अपने शासन के पहले वर्ष जब जहांगीर शाही ईदगाह में अपनी नमाज अदा करने गया तब उसने दान के लिए एक बड़ी राशि अलग रखी थी जिसे बाद में गरीबों एवं जरूरतमंदों में वितरित कर दिया गया था।

मुगल काल में ईद उल जुहा या बकरीद/बकर ईद का त्योहार केवल औपचारिकता के रूप में मनाया जाता था। वस्तुतः यह एक बलिदान के पर्व के रूप में मनाया जाता था।मुगल काल में इस त्यौहार में बादशाह स्वयं शामिल होते थे। जहांगीर ने इस त्यौहार के अवसर पर तीन बकरों की बलि दी थी। कभी–कभी मुगल सम्राट की उपस्थिति में ऊँट की बलि भी दी जाती थी।

जब हम विदेशी यात्रियों के वृतांतों के प्रकाश में मुगलकालीन मेलो एवं त्योहारों का अध्ययन करते हैं तो हमारे समक्ष नवीन तथ्य प्रस्तुत होते हैं। जैसे कि मुगलों के रूप में मुस्लिम शासन के अंतर्गत हिंदू जनता अपने त्यौहार किस प्रकार मनाते थे, साथ ही मुगल शासक अपने दरबार में हिंदू त्योहारों को किस प्रकार मनाते थे। विदेशी यात्रियों की पहुंच मुगल दरबार से लेकर आम जनता तक थी। इसी कारण वह प्रत्येक त्यौहार को मनाने के तरीके तथा आम जनता एवं दरबार में मनाए जाने वाले त्योहार के तरीकों के मध्य आए विभेदों का भी स्पष्ट अंकन करते हैं। मुगलकालीन भारत संपूर्ण विश्व में अपने वैभव एवं धन संपदा के लिए प्रसिद्ध था। विदेशी यात्रियों के वृतांतों में त्योहारों के आयोजन के समय मुगल दरबारों की भव्यता का विस्तृत विवेचन किया गया है। इन्होंने न केवल हिंदू अपित यू मुस्लिम त्योहार का भी वर्णन किया है। विदेशी धार्मिक पृष्ठभूमि होने के कारण उन्होंने त्योहारों एवं मेलों के आर्थिक परिप्रेक्ष्य में महत्व तथा योगदान का वर्णन किया है जो मुगलकालीन सामाजिक आर्थिक इतिहास के अध्ययन की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है।

सन्दर्भ–सूची

1. जॉनमर्डोक, हिन्दु एंड मुहमडन फेस्टिवल्स, क्रिस्चियन लिटरेचर सोसाइटी फॉर इंडिया, 1904, पृ. 110
2. जीन डे थेवनाट, द ट्रेवल्स ऑफ मॉन्सियूर दे थेवनाटइनटू द लेवेंट, 1633–1667, लेवेल आर्चीबॉल्ड, 1687
3. फादर मॉन्सेरेट, दि कमेंट्री ऑफ फादर मोंसरेट, एस.जे. ऑन हिज जर्नी टू द कोर्ट ऑफ अकबर इन 1580, 1582
4. जीन डे थेवनाट, द ट्रेवल्स ऑफ मॉन्सियूर दे थेवनाट इन टू द लेवेंट, 1633–1667, लेवेल आर्चीबॉल्ड, 1687
5. विलियम फोस्टर, ईस्ट इंडिया फैक्ट्री रिकॉर्ड (1646–1650), क्लेरेंडन प्रेस, ऑक्सफोर्ड, लंदन, 1914, पृ. 299
6. फ्रे सेबस्टियन मैनरिक, ट्रेवल्स ऑफ फ्रे सेबस्टियन मैनरिक 1629–1643, भाग 2, हक्लुएट सोसायटी, लंदन, 1927, पृष्ठ 195–200
7. विलियम फोस्टर, अर्ली ट्रेवल्स इन इंडिया : 1583–1619, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन 1921, पृ. 119
8. फ्रे सेबस्टियन मैनरिक, ट्रेवल्स ऑफ फ्रे सेबस्टियन मैनरिक 1629–1643, भाग 2, सर सी. एचपोर्ड अनुवादित, हक्लुएट सोसायटी, लंदन, 1927, पृ. 200–204
9. विलियम फोस्टर, अर्ली ट्रेवल्स इन इंडिया : 1583–1619, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन 1921, पृ. 119
10. गुप्ते, बी.ए., आर. बी., हिन्दु हॉलीडेज, कलकत्ता, 1919

11. जीन डे थेवनाट, द ट्रेवल्स ऑफ मॉन्सियूर दे थेवनाट इन टू द लेवेंट, 1633–1667, लेवेल आर्चीबॉल्ड, 1687, v/; k, XXVII, पृ. 50

12. अबुल फजल, आइन–ए–अकबरी, भाग 1, पृ. 266–67

13. जीन डे थेवनाट, द ट्रेवल्स ऑफ मॉन्सियूर दे थेवनाट इन टू द लेवेंट, 1633–1667, लेवेल आर्चीबॉल्ड, 1687, अध्याय XXVI, पृ. 47

14. फ्रे सेबस्टियन मैनरिक, ट्रेवल्स ऑफ फ्रे सेबस्टियन मैनरिक 1629–1643, भाग 2, सर सी. एचपोर्ड लार्ड द्वारा अनुवादित, हक्लुएट सोसायटी, लंदन, 1927, पृ. 200–204

15. एम.एस. कमिसारेट, मैनडेल्सलोश्स ट्रेवल्स इन वेस्टर्न इंडिया, हम्फ्री मिलफोर्ड ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, लंदन, 1931, पृ. 42

16. बर्नियर, फ्रांसिस्को, ट्रैवल्स इन द मुगल एंपायर 1656–1668, ए. डी., अनुवादक आर्काइव कांस्टेबल और विंसेंट ए. स्मिथ, फर्स्ट पब्लिश्ड, 1934, लो प्राइस पब्लिकेशंस, दिल्ली, 1989, पृ. 270

17. विलियम फोस्टर, अर्ली ट्रेवल्स इन इंडिया : 1583–1619, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन 1921, पृ. 119

18. मनुची, निकालो, स्टोरियो दो मोगोर 1653–1708, अंग्रेजी अनुवादक, विलियम इरविन, लंदन, 1907, लो प्राइस पब्लिकेशन, देल्ही, दु., 1990, वॉल. 2, पृ. 345

19. जॉन ओविंगटन, ए वोयेज टू सूरत इन द ईयर 1689, असियन एजुकेशनल सर्विसेज, नई दिल्ली, 1994 पृ. 178–179

20. अबुल फजल, आइन–ए–अकबरी, भाग 1, 1873, पृ. 277

21. बर्नियर, फ्रांसिस्को, ट्रैवल्स इन द मुगल एंपायर 1656–1668, ए. डी., अनुवादक आर्काइव कांस्टेबल और विंसेंट ए. स्मिथ, फर्स्ट पब्लिश्ड, 1934, लो प्राइस पब्लिकेशंस, दिल्ली, 1989, पृ. 273

22. उपरोक्त, पृ. 273

23. थेवनाट जीन डे, द ट्रेवल्स ऑफ मॉन्सियूर दे थेवनाट इन टू द लेवेंट, 1633–1667, लेवेल आर्चीबॉल्ड, 1687, अध्याय XXVIII, पृ. 50

24. फजल अबुल, आइन–ए–अकबरी, भाग 1, 1873, पृ. 277

25. मर्डोक जॉन, हिन्दु एंड मुहमडन फेस्टिवल्स, क्रिस्चियन लिटरेचर सोसाइटी फॉर इंडिया, 1904, पृ. 77

26. जॉन ह्यूगेन वॉन लिंसचोटेन, द वोयेज ऑफ जॉन ह्यूगेन वॉन लिंसचोटेन टू ईस्ट इंडीज : 1598, हकल्यूट सोसायटी, 1885, लंदन

27. फ्रायर जॉन, ए न्यू अकाउंट ऑफ ईस्ट इंडिया एंड पार्शिया इन 8 लेटर्स, हक्लुएट सोसाइटी, लंदन, 1672

28. बदायूंनी, मुल्ला अब्दुल कादिर, मुन्तखब–उत–तवरिख, कलकत्ता प्रेस, कलकत्ता, 1865, भाग 2, पृ. 361

29. उपरोक्त, पृ. 261–262

30. फ्रायर जॉन, ट्रेवल्स इन इंडिया इन सेवंटींथ सेंचुरी, ट्रबनर एंड कंपनी, लंदन, 1873, पृ. 309

31. फजल, अबुल, आइन–ए–अकबरी, भाग 1, पृ. 321

32. गुप्ते, बी.ए., आर.बी., हिन्दु हॉलीडेज, कलकत्ता, 1919, भाग 1, पृ. 185–86

33. शशटरी, ए.एम.ए., आउटलिन ऑफ इस्लामिक कल्चर, भाग 1, एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता, 1938, पृ. 717

34. जॉन्सविलियम, अमल–ए–सलीह ऑर शाहजहांनामा ऑफ मुहम्मद सलील कॉम्बो, एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता, 1914, पृ. 617

35. क्रूक विलियम, कानून ए इस्लाम, पृ. 204

36. थेवनाट जीन डे, द ट्रेवल्स ऑफ मॉन्सियूर दे थेवनाट इनटू द लेवेंट, 1633–1667, लेवेल आर्चीबॉल्ड, 1687, पृ. 31

37. पेलसर्ट, फ्रांसिस्को, द रिमोस्ट्रेट, अनुवादक, मोरलैंड एंड गेईल, जहांगीर्स इंडिया, कैंब्रिज, 1925, लो प्राइस पब्लिकेशन, न्यू देल्ही, पृ. 7305 : 20 PM

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Psychology : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 257-261

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Fashion and Its Psychological Impact on Youth : A Review Study

*Laliteshwar Kumar** *Dr. Lakshmi Pandey***

Abstract : *Fashion is a powerful social and psychological phenomenon that influences individual identity, self-esteem, and social interactions. The objective of this review study is to explore the psychological impact of fashion on youth, focusing on its influence on self-esteem, body image, social identity, and consumer behaviour. Secondary data from fashion industry reports, psychological studies, and consumer behaviour surveys were analyzed to identify key trends and psychological effects. Studies revealed that fashion serves as a medium of self-expression, allowing individuals to communicate their personality, status, and group affiliation. However, it can also lead to anxiety, body dissatisfaction, and low self-esteem, particularly when unrealistic beauty standards are promoted through media and social networks. The phenomenon of "enclothed cognition" suggests that clothing choices impact an individual's cognitive processes, emotions, and confidence levels. Gender differences are evident in fashion psychology; women are more likely to experience body image concerns due to societal beauty ideals, while men face pressures related to masculinity and status representation. Additionally, rural-urban disparities influence fashion accessibility, with urban youth exhibiting greater exposure to global trends and increased body consciousness. Rural youth, though less exposed, are not entirely immune to fashion-related pressures. Given the psychological and social implications of fashion, there is a need for awareness programs promoting positive body image, mindful consumption, and sustainable fashion choices.*

Keywords : *Fashion psychology, self-esteem, body image, gender differences, rural-urban disparity, consumer behaviour, enclothed cognition.*

Introduction : In recent years there has been tremendous increasement in researches on fashion consciousness in India. Fashion refers to the prevailing styles of clothing, accessories, and personal appearance that are widely accepted within a particular society at a given time. It is a dynamicand evolving social phenomenon influenced by cultural, economic, and technological factors(Kaiser, 1997). Fashion is not just about clothing but also includes hairstyles, footwear, and lifestyle choices that reflect individual identity and societal trends. Fashion extends beyond clothing and encompasses lifestyle choices, attitudes, and artistic movements.

According to **Kawamura (2005)**, fashion is not just about clothing but a "symbolic system" that conveys meanings related to identity, status, and group belonging. It reflects societal values and individual personalities, making it an essential aspect of cultural and social life.

Key Aspects of Fashion : 1.Self-Expression: Fashion allows individuals to communicate their personality, beliefs, and emotions.

* ***Assistant Professor (Sr. Scale), Dept. of Psychology, Koshi College, Khagaria, Munger Univ., Munger***

** ***Associate Professor, Univ. Dept. of Psychology, TM Bhagalpur University, Bhagalpur (Bihar)***

2. Social Influence : Trends are often dictated by celebrities, designers, and influencers, impacting consumer choices.

3. Cultural Significance : Fashion reflects the traditions, customs, and heritage of different societies.

4. Economic Impact : The fashion industry is a major global economic sector, encompassing design, manufacturing, marketing, and retail.

5. Psychological Effects : Clothing choices can affect mood, confidence, and behaviour, a concept known as **enclothed cognition** (Adam & Galinsky, 2012).

Objectives : The objective of this review study is to examine the psychological impact of fashion on youth, focusing on its influence on self-esteem, body image, social identity, and consumer behaviour. Additionally, the study aims to explore gender and rural-urban differences in fashion psychology to provide a comprehensive understanding of its psychological effects.

Methodology : This review study employs a qualitative research approach by analyzing existing literature on the psychological impact of fashion. Secondary data from fashion industry reports, psychological studies, and consumer behaviour surveys were analyzed to identify key trends and psychological effects. The inclusion criteria focused on studies published in the last four decades that examine the relationship between fashion, self-esteem, body image, gender differences, and rural-urban disparities. Thematic analysis was used to categorize findings into major themes, including self-expression, body dissatisfaction, social identity, and consumerism.To ensure a comprehensive perspective, both Indian and international studies were included.

Review of Studies : Fashion plays a pivotal role in the lives of young individuals, serving as a medium for self-expression, identity formation, and social interaction. The psychological implications of fashion on youth are multifaceted, encompassing aspects such as self-esteem, body image, social acceptance, and mental health. This review synthesizes existing literature to elucidate following impacts:

1. Self-Expression and Identity Formation : Adolescents and young adults often use fashion as a means of self-expression and identity construction. It helps them communicate their personality, affiliations, and individuality to the external world (Davis, 1992). The choice of clothing can reflect personal beliefs, subcultures, or social class (Crane, 2000).

Fashion enables youth to convey their personalities, values, and affiliations. Through clothing choices, young individuals articulate their identities and navigate social contexts. A study highlighted that fashion serves as a language through which teenagers find a sense of belonging, aiding in the formation of friendships and social networks (Hu, 2024).

2. Peer Pressure and Social Acceptance : The desire to fit into peer groups significantly influences youth fashion choices. Social identity theory suggests that individuals conform to group norms to gain social acceptance (Tajfel & Turner, 1986). Young people often feel pressured to follow fashion trends to avoid social exclusion (Lennon et al., 2017).

3. Body Image and Self-Esteem : Fashion trends, particularly those promoted by social media and the fashion industry, can shape perceptions of body image. Unrealistic beauty standards may lead to dissatisfaction with one's body and contribute to low self-esteem and mental health issues such as anxiety and eating disorders (Groesz et al., 2002). On the other hand, wearing fashionable clothing that aligns with one's personal taste can enhance self-esteem and boost confidence (Kwon & Parham, 1994).

The portrayal of idealized body types in fashion media often leads to social comparison, affecting body image among youth. Exposure to thin-ideal images has been linked to body dissatisfaction, low

self-esteem, and the development of eating disorders. Research indicates that media exposure contributes to internalization of unrealistic beauty standards, exacerbating negative body image (Martin et al., 1997).

4. Consumerism and Psychological Well-Being : The commercialization of fashion fosters consumerism, which can impact youth psychologically. The compulsive desire to buy the latest fashion items can lead to financial stress and materialistic attitudes (Dittmar, 2008). However, sustainable fashion choices have been linked to a greater sense of well-being and ethical consciousness among youth (Jägel et al., 2012).

Social media platforms amplify fashion trends, often promoting overconsumption. The constant exposure to curated images of idealized lifestyles can lead to compulsive buying behaviours, financial strain, and mental health issues such as anxiety and depression. Studies have shown that social comparison on social media contributes to feelings of inadequacy and low self-worth among youth (Mercado, 2024).

5. Enclothed Cognition and Behaviour : The concept of "enclothed cognition" suggests that clothing influences the wearer's psychological processes. Wearing certain attire can affect mood, confidence, and behavior. For instance, donning professional clothing has been associated with increased self-confidence and improved performance (Feria, 2022).

6. Cultural and Gender Influences : Cultural norms and gender expectations significantly shape fashion choices and their psychological impacts. Youth in diverse cultural settings adopt fashion styles that either conform to or challenge traditional norms (Barnard, 2014). The emergence of gender-fluid fashion has influenced how young people perceive and express gender identity (Paoletti, 2012).In various societies, clothing is a marker of social status and identity, influencing self-perception and social interactions. Gender-specific fashion trends can reinforce traditional roles, affecting self-esteem and societal expectations (Edwards, 2016).

Fashion significantly influences youth, affecting their self-esteem, body image, and social interactions. However, these impacts are not uniform; they vary based on gender and the rural-urban divide. This discussion explores these differences, supported by relevant studies.

- Research indicates that media portrayals of idealized body types disproportionately affect young women, leading to body dissatisfaction and lowered self-esteem. A study found that exposure to thin-ideal images in advertising contributes to negative body image among female adolescents, increasing the risk of eating disorders (Posavac et al., 1998). Conversely, while males are also influenced by media representations, the emphasis is often on muscularity, leading to different body image concerns (Leit et al., 2002).
- Clothing choices impact self-perception differently across genders. Women often experience pressure to conform to fashion trends that emphasize thinness, affecting their self-esteem and body image (Martin & Gentry, 1997). Men, on the other hand, may focus on attire that enhances perceptions of masculinity and social status, influencing their self-confidence and social interactions (Frith & Gleeson, 2004).
- Gender differences in mental health responses to fashion-related pressures are notable. Females are more susceptible to internalizing disorders, such as depression and anxiety, stemming from body image dissatisfaction (Stice et al., 1994). Males may experience distress related to achieving an idealized muscular physique, potentially leading to disorders like muscle dysmorphia (Olivardia et al., 2000).

7. Rural-Urban Differences in Fashion Choices :

- Urban youth typically have greater access to fashion media and retail outlets, increasing exposure to contemporary fashion trends. This exposure can heighten body image concerns and the desire to

conform to idealized standards (Hutchinson, 1999). In contrast, rural youth may have limited access, potentially resulting in less pressure to adhere to prevailing fashion norms.

• Studies suggest that urban female adolescents exhibit higher levels of body dissatisfaction compared to their rural counterparts. Hutchinson (1999) found that urban girls were more preoccupied with weight and expressed greater unhappiness with their body image than rural girls. This disparity may be attributed to the pervasive presence of fashion media in urban settings, promoting unattainable beauty standards.

• The urban environment, with its competitive social atmosphere, can exacerbate feelings of inadequacy among youth striving to meet fashion and body ideals. This may lead to increased stress and mental health issues (Hutchinson, 1999). Rural youth, while not immune to such pressures, might experience them to a lesser extent due to differing cultural values and reduced media influence.

Conclusion : From the aforementioned review of literature fashion exerts a profound psychological impact on youth, influencing self-expression, body image, behaviour, and mental health. While it offers a means for identity exploration and social connection, it also poses challenges related to unrealistic beauty standards and consumerism. The psychological impact of fashion on youth is multifaceted, with significant variations across gender and rural-urban contexts. Understanding these differences is crucial for developing targeted interventions that promote positive body image and mental health among diverse youth populations. A nuanced understanding of these dynamics is essential for fostering a healthier relationship between youth and fashion.

References

1. Adam, H., & Galinsky, A. D. (2012), Enclothed cognition, Journal of Experimental Social Psychology, 48(4), 918-925. https://doi.org/10.1016/j.jesp.2012.02.008

2. Barnard, M. (2014), Fashion as Communication, Routledge.

3. Crane, D. (2000), Fashion and its Social Agendas : Class, Gender, and Identity in Clothing, University of Chicago Press.

4. Davis, F. (1992), Fashion, Culture, and Identity, University of Chicago Press.

5. Dittmar, H. (2008), Consumer Culture, Identity, and Well-being : The Search for the "Good Life" and the "Body Perfect", Psychology Press.

6. Edwards, Vanessa Van (2016-06-01), "Fashion Psychology : What Your Choice in Clothes Say About You". Science of People.

7. Feria, E. (2022), The Psychological Benefits of Fashion. The Tartan.

8. Frith, H., & Gleeson, K. (2004), Clothing and Embodiment : Men Managing Body Image and Appearance, Psychology of Men & Masculinity, 5(1), 40–48. https://doi.org/10.1037/1524-9220.5.1.40

9. Groesz, L. M., Levine, M. P., & Murnen, S. K. (2002), The Effect of Experimental Presentation of Thin Media Images on Body Satisfaction : A Meta-analytic Review, International Journal of Eating Disorders, 31(1), 1-16.

10. Hu, K. (2024), The Psychology of Dressing : How Your Clothes Affect Your Mood and Behaviour. The Teen Magazine.

11. Hutchinson, D. M. (1999), Rural and Urban Differences between Adolescent Females on Selected Variables Associated with Body Image, McKendree University. Retrieved from https://www.mckendree.edu/academics/scholars/issue2/hutchinson.htm

12. Jägel, T., Keeling, K., Reppel, A., & Gruber, T. (2012), Individual Values and Motivational Complexities in Ethical Clothing Consumption : A Means-end Approach, Journal of Marketing Management, 28(3-4), 373-396.

13. Kaiser, S. B. (1997), The Social Psychology of Clothing : Symbolic Appearances in Context, Fairchild Books.

14. Kawamura, Y. (2005), Fashion-ology : An Introduction to Fashion Studies, Bloomsbury.

15. Kwon, Y. H., & Parham, E. S. (1994), Effects of State of Obesity, Perceived Weight Status, and Self-esteem on Clothing Practices, Clothing and Textiles Research Journal, 12(4), 16-21.

16. Leit, R. A., Pope, H. G., & Gray, J. J. (2002), Cultural Expectations of Muscularity in Men : The Evolution of Playgirl Centerfolds, International Journal of Eating Disorders, 29(1), 90–93. https://doi.org/10.1002/1098-108X(200101)29:1<90::AID-EAT15>3.0.CO;2-#

17. Lennon, S. J., Johnson, K. K. P., & Rudd, N. A. (2017), Social Psychology of Dress, Bloomsbury Publishing.

18. Martin, M. C., & Gentry, J. W. (1997), Stuck in the Model Trap : The Effects of Beautiful Models in ads on Female Pre-adolescents and Adolescents, Journal of Advertising, 26(2), 19–33. https://doi.org/10.1080/00913367.1997.10673520

19. Mercado, A. (2024), Why Overconsumption Can Actually Harm Your Mental Health. Teen Vogue.

20. Olivardia, R., Pope, H. G., Borowiecki, J. J., & Cohane, G. H. (2000), Biceps and Body Image : The Relationship between Muscularity and Self-esteem, Depression, and Eating Disorder Symptoms. Psychology of Men & Masculinity, 1(2), 112–120. https://doi.org/10.1037/1524-9220.1.2.112

21. Paoletti, J. B. (2012), Pink and Blue : Telling the Boys from the Girls in America, Indiana University Press.

22. Posavac, H. D., Posavac, S. S., & Posavac, E. J. (1998), Exposure to Media Images of Female Attractiveness and Concern with Body Weight Among Young Women, Sex Roles, 38(3-4), 187–201. https://doi.org/10.1023/A:1018729015490

23. Stice, E., Schupak-Neuberg, E., Shaw, H. E., & Stein, R. I. (1994), Relation of Media Exposure to Eating Disorder Symptomatology : An Examination of Mediating Mechanisms, Journal of Abnormal Psychology, 103(4), 836–840. https://doi.org/10.1037/0021-843X.103.4.836

24. Tajfel, H., & Turner, J. C. (1986), The Social Identity Theory of Intergroup Behavior, In S. Worchel & W. G. Austin (Eds.), Psychology of Intergroup Relations (pp. 7-24), Nelson-Hall.

25. Wikipedia Contributors (2023, October 1), Effects of Advertising on Teen Body Image, In Wikipedia, The Free Encyclopedia.

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Pol. Science : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 262-267

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

महात्मा गांधी के शैक्षिक विचार : एक समग्र विश्लेषण

डॉ. उत्कर्ष उपाध्याय अतुल कुमार द्विवेदी***

सारांश–*महात्मा गांधी न केवल भारत की स्वतंत्रता के महान सेनानी थे, बल्कि एक दूरदर्शी शिक्षाशास्त्री भी थे। उनका शैक्षिक दृष्टिकोण पारंपरिक पद्धतियों से भिन्न था, जिसमें उन्होंने नैतिकता, आत्मनिर्भरता और श्रम पर आधारित शिक्षा को केंद्र में रखा। गांधी जी की "नई तालीम" योजना का उद्देश्य एक ऐसी शिक्षा प्रणाली विकसित करना था, जो विद्यार्थियों को न केवल ज्ञान दे, बल्कि उन्हें जीवन के लिए व्यावहारिक रूप से सक्षम भी बनाए। उन्होंने मातृभाषा में शिक्षा, हस्तकला, और ग्राम्य जीवन के मूल्यों को शिक्षा का आधार बनाया। यह शोध पत्र गांधी जी के शैक्षिक विचारों का विश्लेषण करता है, उनकी प्रासंगिकता का मूल्यांकन करता है और यह बताने का प्रयास करता है कि आज की शिक्षा प्रणाली में उनके विचार कितने आवश्यक और उपयोगी हो सकते हैं।*

मुख्य शब्द–*नई तालीम, बुनियादी शिक्षा, नैतिक शिक्षा, आत्मनिर्भरता, ग्राम शिक्षा, मातृभाषा में शिक्षा, सत्य और अहिंसा, सर्वांगीण विकास, शिक्षा दर्शन, गांधीवादी शिक्षा, व्यावहारिक शिक्षा, शिक्षा और राष्ट्र निर्माण, वैकल्पिक शिक्षा प्रणाली।*

भूमिका–महात्मा गांधी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अग्रणी नेता ही नहीं, बल्कि एक प्रखर विचारक और शिक्षाशास्त्री भी थे। उन्होंने शिक्षा को केवल ज्ञानार्जन का माध्यम नहीं माना, बल्कि आत्मविकास, समाजसेवा और नैतिक मूल्यों के विकास का उपकरण समझा। गांधी जी का मानना था कि शिक्षा का उद्देश्य केवल पुस्तकीय ज्ञान देना नहीं है, बल्कि मनुष्य को जीवन जीने की कला सिखाना भी है। उनकी दृष्टि में शिक्षा का संबंध व्यक्ति के समग्र विकास से था जिसमें शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक और आत्मिक सभी पहलुओं का समावेश हो।

गांधी जी स्वयं पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली से जुड़े थे, लेकिन उन्होंने अनुभव किया कि औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली भारतीय परिस्थितियों, संस्कृति और आवश्यकताओं के अनुकूल नहीं थी। अंग्रेज़ी माध्यम से दी जा रही शिक्षा भारतीय जनमानस से कट चुकी थी और यह केवल नौकरी प्राप्त करने का साधन बन चुकी थी। इसलिए उन्होंने एक वैकल्पिक शैक्षिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया जिसे उन्होंने 'नई तालीम' या 'बुनियादी शिक्षा' का नाम दिया।

'नई तालीम' का मूल उद्देश्य था– शिक्षा को उत्पादक कार्य से जोड़ना और विद्यार्थियों को आत्मनिर्भर बनाना। गांधी जी ने श्रम और हस्तकला को शिक्षा का अभिन्न अंग माना। उनका कहना था कि शिक्षा केवल अमीरों का विशेषाधिकार नहीं होनी चाहिए, बल्कि वह प्रत्येक व्यक्ति तक पहुँचे–विशेषतः ग्रामीण और पिछड़े वर्गों तक। इस प्रकार उन्होंने शिक्षा को लोकतांत्रिक और समावेशी स्वरूप देने का प्रयास किया।

गांधी जी ने बालकों को मातृभाषा में शिक्षा देने की वकालत की, जिससे वे अपने परिवेश और संस्कृति से जुड़े रहें। साथ ही, उन्होंने नैतिक मूल्यों जैसे– सत्य, अहिंसा, करुणा और सेवा को शिक्षा का मूल आधार माना। उनके अनुसार यदि शिक्षा में नैतिकता नहीं है, तो वह व्यक्ति को केवल स्वार्थी और भौतिकतावादी बना देती है।

आज के बदलते सामाजिक और शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में गांधी जी के विचार और भी अधिक प्रासंगिक प्रतीत होते हैं। जब शिक्षा प्रणाली रोजगार उन्मुख होते हुए भी नैतिकता से दूर हो रही है, तब गांधी जी की षैक्षिक दृष्टि हमें पुनः सोचने के लिए प्रेरित करती है– क्या हमारी शिक्षा वास्तव में जीवनोपयोगी है? क्या वह समाज और राष्ट्र के निर्माण में सहायक है?

यह शोध पत्र गांधी जी के शैक्षिक विचारों का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसमें उनके द्वारा प्रतिपादित नई तालीम के सिद्धांत, उसके व्यावहारिक पक्ष, प्रभाव, सीमाएँ और आधुनिक परिप्रेक्ष्य में उसकी प्रासंगिकता का

* *सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, प्रो. रोजेंद्र सिंह (रज्जू भय्या) विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ.प्र.*

** *शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, प्रो. रोजेंद्र सिंह (रज्जू भय्या) विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ.प्र.*

अध्ययन किया गया है। यह अध्ययन न केवल एक ऐतिहासिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है, बल्कि वर्तमान शिक्षा व्यवस्था को मूल्य आधारित और समाजोपयोगी बनाने की दिशा में एक सकारात्मक संकेत भी देता है।

शोध का उद्देश्य–प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य महात्मा गांधी के शैक्षिक दृष्टिकोण का विश्लेषण करना, 'नई तालीम' की अवधारणा को समझना, गांधी जी की शिक्षा नीति की सामाजिक प्रासंगिकता का मूल्यांकन करना, आधुनिक शिक्षा प्रणाली में गांधीवादी दृश्टिकोण की भूमिका का अध्ययन करना, गांधीवादी शिक्षा के व्यावहारिक पक्ष और उसकी सीमाओं का मूल्यांकन करना, राष्ट्रीय शिक्षा नीति और गांधीवादी विचारों के बीच संबंध स्थापित करना।

शोध पद्धति–इस शोध पत्र में गुणात्मक (Qualitative) और वर्णनात्मक (Descriptive) पद्धति का उपयोग किया गया है। जानकारी संग्रह के लिए प्राथमिक स्रोतों (जैसे– महात्मा गांधी के लेख, भाशण, पत्र) और द्वितीयक स्रोतों (जैसे– पुस्तकें, शोध पत्र, शैक्षिक नीति दस्तावेज) का अध्ययन किया गया है। संग्रहीत सामग्री का विशयानुसार वर्गीकरण कर उसका विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

महात्मा गांधी का जीवन और शिक्षा से संबंध–महात्मा गांधी का जीवन उनके शैक्षिक विचारों का वास्तविक प्रतिबिंब था। उन्होंने जो कुछ भी शिक्षा के संदर्भ में कहा या लिखा, वह उनके अपने अनुभवों पर आधारित था। उनका बचपन, युवावस्था, विदेशों में अध्ययन, और स्वतंत्रता आंदोलन में सहभागिता– सभी ने उनके शिक्षा दृष्टिकोण को आकार दिया।

गांधी जी का जन्म 2 अक्टूबर, 1869 को पोरबंदर (गुजरात) में हुआ। उनकी प्रारंभिक शिक्षा राजकोट में हुई, जो कि पारंपरिक भारतीय शिक्षा प्रणाली से अधिक ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली पर आधारित थी। बचपन में वे औपचारिक शिक्षा में बहुत सामान्य छात्र थे– न तो अत्यधिक मेधावी और न ही अत्यधिक पिछड़े। उनके अनुसार, उस समय की शिक्षा प्रणाली रटने और परीक्षाओं पर केंद्रित थी, जो बालकों के समग्र विकास में सहायक नहीं थी।

1888 में गांधी जी इंग्लैंड गए जहाँ उन्होंने कानून की पढ़ाई की। वहाँ के अनुभवों ने उन्हें पाश्चात्य शिक्षा के स्वरूप से अवगत कराया। हालांकि, उन्होंने यह अनुभव भी किया कि वहाँ की शिक्षा प्रणाली भौतिकवाद को बढ़ावा देती है और नैतिक मूल्यों से वंचित होती जा रही है। इसके बाद दक्षिण अफ्रीका में उनका प्रवास (1893–1914) उनके जीवन और विचारों में एक निर्णायक मोड़ लेकर आया। वहाँ उन्होंने जातिवाद, अन्याय और सामाजिक भेदभाव का सामना किया, जिससे उनमें सामाजिक चेतना जाग्रत हुई और उन्होंने शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का साधन मानना शुरू किया।

भारत लौटने के बाद गांधी जी ने देखा कि यहाँ की शिक्षा प्रणाली भी औपनिवेशिक प्रभाव में है– जो न तो भारतीय संस्कृति को महत्व देती है और न ही युवाओं को आत्मनिर्भर बनाती है। इसी कारण उन्होंने 'नई तालीम' या बुनियादी शिक्षा की रूपरेखा प्रस्तुत की, जिसका आधार था– "शिक्षा जीवन के साथ और श्रम के साथ जुड़ी होनी चाहिए।"

गांधी जी का मानना था कि शिक्षा केवल स्कूलों तक सीमित न हो, बल्कि वह समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिए हो। उनका जीवन स्वयं एक शिक्षणशाला था– वे जो कहते थे, वही करते थे। वे सत्य, अहिंसा, स्वावलंबन और सादगी को न केवल जीवन में अपनाते थे, बल्कि शिक्षा के माध्यम से समाज में भी स्थापित करना चाहते थे।

उन्होंने शिक्षा को सामाजिक समानता, ग्रामोदय और नैतिक उत्थान का आधार बनाया। उनका विश्वास था कि जब तक शिक्षा में श्रम, नैतिकता और आत्मनिर्भरता का समावेश नहीं होगा, तब तक वह केवल डिग्री प्रदान करने वाली प्रक्रिया बनी रहेगी, जीवन को बदलने वाली नहीं।

इस प्रकार गांधी जी का जीवन और शिक्षा एक–दूसरे के पूरक रहे। उन्होंने शिक्षा को केवल बौद्धिक विकास का माध्यम नहीं माना, बल्कि उसे सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास का साधन माना।

गांधी जी के शैक्षिक विचारों की आधारभूमि–महात्मा गांधी के शैक्षिक विचारों की नींव उनके जीवन अनुभवों, सांस्कृतिक मूल्यों, तथा भारतीय समाज की समस्याओं की गहरी समझ पर आधारित थी। उन्होंने जो शिक्षा दर्शन विकसित किया, वह न तो केवल पाश्चात्य विचारों की नकल था और न ही परंपरागत भारतीय शिक्षा की जड़ता से जुड़ा हुआ। बल्कि, यह एक ऐसी विचारधारा थी जो भारतीय समाज की आवष्यकताओं, ग्रामीण जीवन की सच्चाइयों और मानवीय मूल्यों को केंद्र में रखकर गढ़ी गई थी।

1. नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षा पर बल–गांधी जी का मानना था कि शिक्षा का प्रथम उद्देश्य व्यक्ति के चरित्र का निर्माण होना चाहिए। वे शिक्षा को केवल बौद्धिक ज्ञान का माध्यम नहीं मानते थे, बल्कि उसे आत्मा

के विकास और नैतिक उत्थान का साधन समझते थे। उनका विचार था कि यदि शिक्षा से सत्य, अहिंसा, प्रेम, करुणा और सेवा की भावना न जागे, तो वह अधूरी है।

2. श्रम और उत्पादक कार्य का महत्व–गांधी जी के शैक्षिक विचारों की एक विशेषता यह थी कि उन्होंने श्रम को शिक्षा का अनिवार्य अंग माना। उन्होंने कहा कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो विद्यार्थियों को न केवल ज्ञान दे, बल्कि जीवनयापन के लिए आवश्यक कौशल भी प्रदान करें। इसलिए उन्होंने बुनियादी शिक्षा में कताई, बुनाई, हस्तकला, खेती आदि को शामिल करने का आग्रह किया। उनका उद्देश्य था कि बच्चे अपनी मेहनत से कुछ उत्पादित करें और उसमें आत्मगौरव महसूस करें।

3. आत्मनिर्भरता और व्यावहारिकता–गांधी जी की शिक्षा प्रणाली आत्मनिर्भरता की भावना को प्रोत्साहित करती थी। उनका मानना था कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे विद्यार्थी न केवल आत्मनिर्भर बनें, बल्कि समाज के लिए भी उपयोगी सिद्ध हों। उन्होंने यह भी कहा कि शिक्षण में केवल सिद्धांत नहीं, बल्कि व्यवहार और जीवनोपयोगिता का समावेश होना चाहिए।

4. मातृभाषा में शिक्षा–गांधी जी ने अंग्रेज़ी माध्यम की शिक्षा का विरोध किया और मातृभाषा में शिक्षा का समर्थन किया। उनका मानना था कि बालक जब अपनी भाषा में पढ़ता है, तो वह विषय को अच्छी तरह समझता है और अपनी संस्कृति से जुड़ा रहता है। विदेशी भाषा में शिक्षा, व्यक्ति को उसकी जड़ों से दूर कर देती है।

5. ग्रामीण जीवन और भारतीय संस्कृति का सम्मान–गांधी जी ने भारत की आत्मा को गाँवों में बसता माना। उनका विचार था कि जब तक शिक्षा गाँवों में नहीं पहुँचेगी और ग्रामीण जीवन की आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं होगी, तब तक भारत का वास्तविक विकास संभव नहीं है। उन्होंने शिक्षा को स्थानीय संदर्भों से जोड़ने की बात कही– जिससे वह केवल शहरी अभिजात वर्ग की चीज़ न बने।

बुनियादी शिक्षा (नई तालीम) का सिद्धांत–महात्मा गांधी की शिक्षा पद्धति का मुख्य आधार "नई तालीम" थी, जिसे उन्होंने 1937 में भारतीय शिक्षा के सुधार के रूप में प्रस्तुत किया। नई तालीम केवल एक शैक्षिक पद्धति नहीं, बल्कि एक दृष्टिकोण था, जो शिक्षा को जीवन से जोड़ने की कोशिश करता था। गांधी जी ने इसे "बुनियादी शिक्षा" भी कहा, जिसका उद्देश्य शिक्षा को व्यावहारिक, सामाजिक और नैतिक रूप से सषक्त बनाना था।

1. श्रम और उत्पादक कार्य का समावेश–गांधी जी ने शिक्षा को केवल मानसिक ज्ञान तक सीमित रखने के बजाय उसे शारीरिक श्रम से जोड़ने का सुझाव दिया। उन्होंने कहा कि यदि बच्चे केवल किताबों से शिक्षा प्राप्त करेंगे, तो वे जीवन के वास्तविक संघर्शों से अनभिज्ञ रहेंगे। इसलिए, नई तालीम में बच्चे को खेती, बुनाई, कारीगरी, और अन्य शारीरिक श्रम सिखाने का महत्व था। इस पद्धति का उद्देश्य था कि बच्चे श्रम का सम्मान करें और उसे आत्मनिर्भरता का माध्यम मानें। गांधी जी का मानना था कि हर बच्चा किसी न किसी उत्पादक कार्य में लगे, जिससे उसे समाज के प्रति जिम्मेदारी का एहसास हो और वह अपने जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम हो। उनके अनुसार, ऐसा करने से बच्चों में आत्मसम्मान, मेहनत और सच्चे ज्ञान की समझ विकसित होती है।

2. मातृभाषा में शिक्षा–गांधी जी ने शिक्षा के लिए मातृभाषा के प्रयोग की जोरदार वकालत की। उनका मानना था कि शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान अर्जन नहीं है, बल्कि बच्चों की सोच और समझ को भी विस्तारित करना है। जब बच्चे अपनी मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करते हैं, तो वे अपने आस–पास की दुनिया को आसानी से समझ सकते हैं। उन्होंने कहा, "जो भाषा तुम्हारे दिल के पास है, वही सबसे उपयुक्त माध्यम है शिक्षा के लिए।" गांधी जी के अनुसार, यदि बच्चे अंग्रेजी या अन्य विदेशी भाषाओं में शिक्षा प्राप्त करेंगे, तो वे अपनी संस्कृति और समाज से कट जाएंगे। उनका यह विचार भारतीय समाज की जड़ों से जुड़ने की ओर अग्रसर था।

3. नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षा–गांधी जी के लिए शिक्षा का उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास नहीं था, बल्कि नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से भी बच्चों को सशक्त बनाना था। उनके अनुसार, यदि शिक्षा से सत्य, अहिंसा, करुणा और समर्पण जैसे मूल्य नहीं आते, तो वह केवल एक अधूरी प्रक्रिया होगी। नई तालीम में बच्चों को यह सिखाया जाता था कि वे न केवल अपने व्यक्तिगत जीवन में सच्चाई और अहिंसा का पालन करें, बल्कि समाज के भले के लिए भी काम करें।

4. शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य–गांधी जी का यह भी मानना था कि शिक्षा का उद्देश्य केवल एक व्यक्ति का सुधार नहीं होना चाहिए, बल्कि उसका उद्देश्य समाज के हर वर्ग को शिक्षा के समान अवसर देना था। नई

तालीम के अंतर्गत, खासकर ग्रामीण इलाकों और गरीब वर्गों के बच्चों को प्राथमिकता दी जाती थी, ताकि शिक्षा के माध्यम से समाज में समानता, समरसता और सामाजिक न्याय को बढ़ावा मिले।

5. आत्मनिर्भरता का आदर्श–गांधी जी के अनुसार, शिक्षा का मुख्य उद्देश्य आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देना था। उन्होंने बच्चों को अपने जीवन के लिए जरूरी कौशल सिखाने की बात की, ताकि वे दूसरों पर निर्भर न हों। उन्होंने यह कहा कि केवल सरकारी या शहरी नौकरियों के लिए शिक्षा प्राप्त करना उचित नहीं है, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन के लिए आवश्यक शारीरिक और मानसिक कौशल प्राप्त करना चाहिए।

गांधी जी की नई तालीम न केवल शैक्षिक दृष्टिकोण में सुधार लाने का एक प्रयास था, बल्कि यह भारतीय समाज की वास्तविक आवश्यकताओं के अनुरूप एक वैकल्पिक शिक्षा प्रणाली थी। इस पद्धति के माध्यम से वे बच्चों को न केवल ज्ञान, बल्कि जीवन की वास्तविक समझ और सामाजिक जिम्मेदारी देना चाहते थे।

गांधी जी के शैक्षिक दृष्टिकोण के प्रमुख तत्व–महात्मा गांधी का शैक्षिक दृष्टिकोण विशिष्ट और समग्र था, जो भारतीय समाज की सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक ज़रूरतों से गहरे रूप से जुड़ा हुआ था। उनका मानना था कि शिक्षा केवल किताबों तक सीमित नहीं होनी चाहिए, बल्कि यह जीवन की विभिन्न आयामों से जुड़ी होनी चाहिए। गांधी जी के शैक्षिक दृष्टिकोण के प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं :

गांधी जी के शैक्षिक विचारों का सबसे महत्वपूर्ण तत्व था सत्य और अहिंसा। उन्होंने शिक्षा को जीवन में सत्य की खोज और अहिंसा का पालन करने का माध्यम माना। उनका मानना था कि शिक्षा में यदि यह दोनों मूलभूत मूल्य न हों, तो वह शिक्षा अधूरी रहती है। सत्य के प्रति प्रतिबद्धता और अहिंसा के आदर्श से व्यक्ति न केवल समाज में, बल्कि स्वयं के जीवन में भी नैतिकता और शांति का अनुभव करता है। गांधी जी के अनुसार, बच्चों को अपनी शिक्षा में यह सिखाना चाहिए कि वे दूसरों से प्यार करें, समझें और शांतिपूर्वक जीवन जीने का प्रयास करें।

गांधी जी ने शिक्षा के माध्यम से आत्मनिर्भरता की ओर कदम बढ़ाने की बात की। उनका विचार था कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो विद्यार्थियों को केवल मानसिक रूप से सशक्त न बनाए, बल्कि शारीरिक श्रम के माध्यम से भी उन्हें आत्मनिर्भर बनाए। उन्होंने बुनियादी शिक्षा में कामकाजी कौशल, जैसे– कताई, बुनाई, कृषि और अन्य शारीरिक कार्यों को शामिल करने का सुझाव दिया। उनका मानना था कि श्रम से ही सच्ची आत्मनिर्भरता और आत्मसम्मान उत्पन्न होता है।

गांधी जी का दृढ़ विश्वास था कि शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होना चाहिए। उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा पद्धति का विरोध किया क्योंकि इसे भारतीय समाज की जरूरतों से अलग माना। उनका विचार था कि मातृभाषा में शिक्षा देने से बच्चों की समझ बेहतर होती है और वे अपनी संस्कृति, परंपराओं और समाज से जुड़े रहते हैं। गांधी जी के अनुसार, जब बच्चों को उनकी मातृभाषा में शिक्षा दी जाती है, तो वे अधिक आत्मविश्वास से अपने विचार और भावनाओं को व्यक्त कर सकते हैं।

गांधी जी का मानना था कि शिक्षा केवल व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं होनी चाहिए, बल्कि इसका उद्देश्य समाज के विकास में योगदान करना होना चाहिए। उन्होंने शिक्षा को सामाजिक परिवर्तनों का उपकरण माना। उनका विचार था कि जब एक व्यक्ति शिक्षित होता है, तो वह समाज में न्याय, समानता, और शांति की दिशा में काम करता है। विशेष रूप से, उन्होंने ग्रामीण भारत के लिए शिक्षा को आवश्यक बताया, ताकि गाँवों में रहने वाले लोग आत्मनिर्भर बनें और समाज के मुख्यधारा में शामिल हो सकें।

गांधी जी का शिक्षा दृष्टिकोण बच्चों के समग्र विकास पर आधारित था। उनका विश्वास था कि शिक्षा में केवल बौद्धिक ज्ञान का ही समावेश नहीं होना चाहिए, बल्कि शारीरिक, मानसिक, और भावनात्मक विकास भी महत्वपूर्ण है। उन्होंने शिक्षा को बच्चों के सर्वांगीण विकास का माध्यम माना, ताकि वे न केवल अपने जीवन में बल्कि समाज में भी उपयोगी नागरिक बन सकें। गांधी जी ने यह भी कहा कि बच्चों को अपनी शिक्षा में खेलने, सीखने और अनुभव करने का पूरा अवसर मिलना चाहिए।

गांधी जी का यह भी मानना था कि शिक्षा का उद्देश्य सभी को समान अवसर प्रदान करना होना चाहिए। उन्होंने हमेशा यह कहा कि शिक्षा का लोकतांत्रिक रूप होना चाहिए, ताकि सभी वर्गों, खासकर निर्धन और पिछड़े वर्गों के बच्चों को शिक्षा प्राप्त हो सके। उन्होंने शिक्षा को समाज के हर वर्ग के लिए समान रूप से उपलब्ध कराने की बात की, ताकि कोई भी वर्ग अन्यथा न हो।

गांधी जी के शैक्षिक विचार समाज और राष्ट्र के लिए एक स्थायी दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार,

शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान देना नहीं, बल्कि एक सशक्त और समर्पित नागरिक का निर्माण करना था। उनके शैक्षिक विचार आज भी प्रासंगिक हैं और वे हमें शिक्षा को एक व्यापक और समग्र दृष्टिकोण से देखने की प्रेरणा देते हैं।

गांधी जी के शैक्षिक विचारों की आलोचना और उसकी प्रासंगिकता–महात्मा गांधी के शैक्षिक विचारों ने भारतीय समाज को एक नई दिशा दी और शिक्षा को जीवन से जोड़ने का प्रयास किया। हालांकि, उनके शैक्षिक दृष्टिकोण की कुछ आलोचनाएँ भी की गईं, जो आज के परिप्रेक्ष्य में भी प्रासंगिक हैं। इन आलोचनाओं के बावजूद गांधी जी की शिक्षा पद्धति की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है, और यह हमें आज के शिक्षा तंत्र के भीतर सुधार की दिशा दिखाती है।

आलोचना–गांधी जी ने बुनियादी शिक्षा में श्रम और उत्पादक कार्य को प्रमुख स्थान दिया। उन्होंने यह कहा कि बच्चों को केवल किताबों से नहीं, बल्कि कामकाजी जीवन से भी शिक्षा मिलनी चाहिए। हालांकि, यह दृष्टिकोण ग्रामीण क्षेत्रों के लिए उपयुक्त हो सकता था, लेकिन शहरी और औद्योगिक समाज में इसे लागू करना कठिन था। आलोचकों का कहना था कि गांधी जी का श्रम आधारित शिक्षा मॉडल बच्चों को तकनीकी और वैज्ञानिक विकास में पीछे छोड़ सकता है, क्योंकि यह केवल शारीरिक श्रम पर जोर देता था और इसके जरिए बौद्धिक शिक्षा की आवश्यकताओं को पूरा नहीं किया जा सकता था।

गांधी जी ने पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली का विरोध किया और इसे भारतीय संदर्भ में अनुपयुक्त माना। उन्होंने इसे भारत की सांस्कृतिक धारा से कटे हुए एक भौतिकवादी दृष्टिकोण के रूप में देखा। हालांकि, यह उनका विश्वास था कि भारतीय समाज के लिए एक वैकल्पिक शिक्षा प्रणाली आवश्यक थी, परंतु कई आलोचकों ने यह तर्क दिया कि पाश्चात्य शिक्षा में वैज्ञानिक दृष्टिकोण, आधुनिक तकनीकी विकास और वैश्विक सोच को समाहित किया गया था, जो भारतीय समाज के लिए महत्वपूर्ण था। उनके विचारों के अनुसार, केवल भारतीय संस्कृतियों और परंपराओं पर आधारित शिक्षा पद्धति से भारत को समग्र रूप से विश्व मंच पर प्रतिस्पर्धी बनाना मुश्किल था।

गांधी जी ने मातृभाषा में शिक्षा देने की आवश्यकता पर जोर दिया, यह मानते हुए कि यह बच्चों के मानसिक और सांस्कृतिक विकास के लिए बेहतर है। हालांकि, मातृभाषा में शिक्षा को प्राथमिकता देने का उनका दृष्टिकोण सही था, लेकिन यह दृष्टिकोण राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धा के मामले में कुछ कमजोर साबित हो सकता था। अंग्रेज़ी को एक वैश्विक भाषा मानते हुए, कुछ आलोचक इस बात से सहमत नहीं थे कि शिक्षा का माध्यम केवल मातृभाषा ही हो। उनका मानना था कि बच्चों को अंग्रेज़ी और अन्य विदेशी भाषाओं में शिक्षा देने से उन्हें वैश्विक सोच और प्रतिस्पर्धा में मदद मिलती है।

गांधी जी की शिक्षा पद्धति मुख्य रूप से ग्रामोदय और ग्रामीण क्षेत्रों के संदर्भ में थी। उनका मानना था कि ग्रामीण जीवन में शिक्षा को सबसे पहले लागू किया जाना चाहिए, और इससे समाज में समानता और आत्मनिर्भरता का विस्तार होगा। हालांकि, इस दृष्टिकोण का शहरी समाज में ज्यादा प्रभाव नहीं पड़ा। शहरी जीवन की उच्च शिक्षा, तकनीकी कौषल और जटिल कार्यों के लिए गांधी जी की शिक्षा पद्धति की सीमाएँ स्पष्ट थीं। आलोचकों का कहना था कि इस प्रकार की शिक्षा शहरी समाज की बढ़ती आवश्यकताओं और विकास के लिए पर्याप्त नहीं हो सकती।

प्रासंगिकता–इन आलोचनाओं के बावजूद गांधी जी के शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता आज भी महत्वपूर्ण है, खासकर उनके द्वारा दिए गए नैतिक और सामाजिक शिक्षा के सिद्धांत। आज के समाज में जहाँ बहुत अधिक भौतिकवादी दृष्टिकोण प्रबल है, गांधी जी के विचार हमें नैतिक मूल्यों, समानता, और समाज के लिए जिम्मेदारी की याद दिलाते हैं। उनके सिद्धांत, जैसे कि शिक्षा में श्रम का समावेश, आज भी कई विकासशील देशों और ग्रामीण क्षेत्रों में प्रासंगिक हैं।

आज के राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) में भी गांधी जी के विचारों का प्रभाव देखा जा सकता है, विशेष रूप से बुनियादी शिक्षा, मातृभाषा में शिक्षा और शिक्षा का जीवन से संबंध बनाने की दिशा में। उनके सिद्धांतों ने यह भी सिद्ध किया कि शिक्षा केवल ज्ञान का संचय नहीं, बल्कि यह जीवन के वास्तविक अनुभवों से जुड़ी होनी चाहिए।

निष्कर्ष–महात्मा गांधी के शैक्षिक विचार भारतीय शिक्षा प्रणाली के लिए एक मील का पत्थर साबित हुए हैं। उन्होंने शिक्षा को जीवन, श्रम, नैतिकता, और समाज के भले से जोड़कर एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। गांधी जी का यह विश्वास था कि शिक्षा का उद्देश्य केवल बौद्धिक ज्ञान का अर्जन नहीं होना चाहिए, बल्कि यह बच्चों के समग्र विकास, उनके आत्मनिर्भरता, और समाज के प्रति जिम्मेदारी को बढ़ावा देने का माध्यम होना चाहिए।

गांधी जी के शैक्षिक विचारों में बुनियादी शिक्षा का महत्व, श्रम का सम्मान, मातृभाषा में शिक्षा, और नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का समावेश था। हालांकि, इन विचारों की आलोचना भी की गई, खासकर पाश्चात्य शिक्षा

का विरोध करने, श्रम आधारित शिक्षा को प्रमुख बनाने और शहरी समाज के लिए उनकी पद्धतियों की सीमाओं के संदर्भ में। फिर भी, गांधी जी के शैक्षिक दृष्टिकोण की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है, क्योंकि उनके विचार हमें एक ऐसी शिक्षा प्रणाली की दिशा में मार्गदर्शन करते हैं जो न केवल ज्ञान प्रदान करती है, बल्कि समाज और व्यक्ति के समग्र विकास को भी प्रोत्साहित करती है।

आज के समय में, विशेष रूप से राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) के संदर्भ में, गांधी जी के विचारों का पुनः मूल्यांकन और पुनः उपयोग किया जा रहा है। उनके सिद्धांतों को आधुनिक शिक्षा तंत्र में लागू करना, हमें एक सशक्त, नैतिक, और समावेशी समाज की ओर अग्रसर कर सकता है। गांधी जी की शिक्षा प्रणाली का मूल उद्देश्य था– "सत्य की खोज, अहिंसा का पालन और आत्मनिर्भरता"। उनके इन विचारों से प्रेरणा लेकर, हम अपनी शिक्षा प्रणाली को और अधिक समाज केंद्रित, समावेशी और नैतिक बना सकते हैं।

संदर्भ–सूची

1. गांधी, महात्मा (1921), हिंद स्वराज (2nd Edition), साबरमती आश्रम, अहमदाबाद
2. गांधी, महात्मा (1937), नई तालीम (Translation by S.R. Bhatt), शिक्षा समिति, बड़ौदा
3. मेहता, कंवल (1990), महात्मा गांधी और शिक्षा, हिंदी साहित्य समिति, दिल्ली
4. नायक, दिलीप (2005), गांधीजी का शैक्षिक दृष्टिकोण, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, दिल्ली
5. सुनील, आर. (2018), गांधी जी और शिक्षा : दृष्टिकोण और प्रभाव, शिक्षा प्रकाशन, मुंबई
6. भारत सरकार (2020), राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020), मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार
7. दीक्षित, महेंद्र (1997), गांधी के शैक्षिक विचारों का अध्ययन, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 268-272

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

देवदासी प्रथा : भारत में धार्मिक वेश्यावृत्ति की ऐतिहासिकता का विश्लेषण

*डॉ. सुरेन्द्र सिंह**

किसी भी सभ्यता, संस्कृति, या सामाजिक व्यवस्था का मुख्य कर्णधार पुरोहित वर्ग रहा है। भारतवर्ष में यह प्रवृत्ति कुछ ज्यादा ही प्रभावी सिद्ध हुई। वर्णव्यवस्था को विकृत कर उसे कर्म के स्थान पर जन्म–आधारित करना हो या उपनयनन संस्कार से नारी और निम्नवर्ण को शिक्षा से वचित करना हो या फिर शुद्धता के नाम पर अस्पृश्यता जैसी अमानवीय प्रथा को समाज में थोपना हो आदि–आदि। इन सभी असामाजिक एवं अमानवीय प्रथाओं को समाज के श्रेष्ठजनों ने धार्मिक स्वरूप प्रदान कर हमेशा ही अपने स्वार्थों को प्राथमिकता दी। इसी सोच और मानसिकता के साथ अहंकारी पुरुष समाज ने अपनी शारीरिक प्यास बुझाने और अय्यासी के लिए स्वयं को देवता और स्त्री को देवदासी रूपी धार्मिक जामा पहनाकर मंदिर में सुशोभित किया और पीढ़ी–दर–पीढ़ी विलासिता पूर्ण जीवन को भोगा।

धार्मिक वेश्यावृत्ति की ऐतिहासिकता पर नजर दौड़ाएँ तो स्पष्टतः यौनक्रिया का मुद्दा सभी प्राचीन समाजों में धार्मिक चिंता का विषय रहा है। धार्मिक वेश्यावृत्ति इसका एक ठोस नमूना है। भारत में तो यह अस्तित्वपरक हकीकत के रूप में हिंदुओं के सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन को बड़े पैमाने पर प्रभावित करती हुई बनी व अस्तित्व में रही। लेकिन अकादमिक जगत् में इसके प्रति उदासीनता का आलम रहा। जो थोड़े बहुत अध्ययन हुए हैं, उनकी व्याख्याएँ एकांगी और असंगत हैं। नतीजतन, इन्होंने धार्मिक वेश्यावृत्ति की नकारात्मक व असामान्य छवि की रचना की। इसकी जड़ें उन्नीसवीं सदी के अन्तिम और बीसवीं सदी के आरंभिक दौर में सुधार आंदोलनों की वैचारिक प्रभुता में हैं।[1] वस्तुतः धार्मिक वेश्यावृत्ति को समग्रतावादी नजरिए से देखने की जरूरत है। इसके लिए इसे व्यापक खाँचे में रखकर विचार करना होगा यानी जाति–आधारित सामंती अर्थ–व्यवस्था से आबद्ध धार्मिक संस्थान से जुड़े मुद्दों का खयाल रखते हुए विचार करने पर हमें धार्मिक वेश्यावृत्ति की बेहतर समझ मिल सकती है। धार्मिक वेश्यावृत्ति की उत्पत्ति और इस प्रथा की उत्पत्ति के सूत्र अनायों के धार्मिक आचार–व्यवहार में पाए जा सकते हैं, जहाँ स्त्रियाँ दैवी शक्ति से संपन्न मानी जाती थीं। देश के उत्तरी भाग से आर्यों की दक्षिण की ओर बाढ़ ने यहाँ मौजूद अनायों की धार्मिक मान्यताओं पर गहरा प्रभाव डाला। इसने दक्षिण भारत की संस्कृति का कायांतरण कर दिया, जिसमें जाति व पितृसत्ता से जुड़ी धारणाएँ हावी थीं। पाँचवीं और छठी सदी के बीच बड़ी परंपरा (ब्राह्मण–परंपरा) की सांस्कृतिक रीति में निर्णायक बदलाव आए। इसने प्राक् या आदिम संस्कृतियों के कई महत्त्वपूर्ण विश्वासों को समाविष्ट व आत्मसात किया। बाद में ये आदिम संस्कृतियाँ अछूत के रूप में तिरस्कृत व अलग–थलग कर दी गयीं।[2] आर्य धारणाओं के दक्षिण में फैलने का प्रतीक है।[3] आदिम संस्कृतियों के आर्य–संस्कृति में समा जाने ने दक्षिण भारतके हिंदूकरण और दायरे में एक नई ताकत के उदय का मार्ग प्रशस्त किया। पाँचवीं सदी के आस–पास हिंदूधर्म को स्वैण तत्त्वों का आदर एवं लोकप्रिय परंपरा का आत्मसात हुआ। रोमिला थापर ने इसके बाद की दो सदियों के दौरान तांत्रिक मतों में प्रजनन से जड़ी संबंधित एक नए एवं अनूठे पंथ के उभरने का जिक्र किया है, जिसका हिंदूपूजा–पद्धति एवं हिंदू–विचारधारा पर गहरा प्रभाव पड़ा। इस क्रम में देव पत्नियाँ प्रदान की गयीं और उनकी दुर्गा एवं काली की भाँति पूजा भी होने लगी।[4] आयों के धार्मिक ग्रंथों में अनार्यों के रीति–रिवाज के प्रति घृणा अवहेलना के कतिपय जिक्र मिलते हैं, जबकि भारतीय संस्कृति में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है।[5] अनार्यों में प्रचलित लिंग–पूजन के संदर्भ में कहा गया है, इन शत्रुओं पर इंद्र विजय प्राप्त करें। जो शिश्न को अपना मानते हों उन्हें हमारे धार्मिक व पवित्र आयोजनों में नहीं आने दिया जाए।[6] अथर्ववेद में व्रत्य का प्रयोग अवैदिक प्रजनन पंथ के पुरोहित के लिए हुआ है। एक स्त्री एवं एक वादक के साथ गाड़ी में सवार हो वह

* *एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, मथुरा प्रसाद महाविद्यालय, कोंच, जालौन*

जगह–जगह जाकर अनुष्ठान आयोजित करता था। उसके इस आयोजन में वादक गाता–बजाता[7] और स्त्री, जिसे पुमश्चली कहते थे, वेश्यावृत्ति करती थी। शायद पुमश्चली धार्मिक सेवा–भाव के तहत ऐसा किया करती थी और इसलिए धार्मिक वेश्यावृत्ति की पृष्ठभूमि तैयार करने वाली प्रक्रियाओं की समझ बनाने में यहाँ से मदद मिल सकती है।[8]

बड़ी और छोटी परंपराओं के बीच के मिश्रण की कई सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ पाई जा सकती हैं। इस मिश्रण के नतीजे के रूप में हम 'स्थानीय परंपरा' का विकास एवं ब्राह्मणवादी परंपरा का विसरण, जिसे एम.एन. श्रीनिवास ने संस्कृतिकरण का नाम दिया, होते पाते हैं। इस क्रम में धार्मिकता और अनिष्ट संबंधी धारणाएँ हिंदूधर्म का हिस्सा बनीं। सबसे महत्त्वपूर्ण था, अनियंत्रित या उन्मुक्त ऐंद्रिक स्त्रीत्व का पुरुष–नियंत्रित, धार्मिक तौर पर हाशियाकृत और नैतिक तौर पर अस्पष्ट देवियों में कायांतरण।[9] वैदिक देवियाँ, जिनकी उत्पत्ति के सूत्र अछूतों यानी छोटी परंपरा में पाए जा सकते हैं, ब्राह्मणवादी पितृसत्तात्मक मूल्यों के अनुरूप ढाली गयीं। दुर्गा, भूदेवी, चामुंडेश्वरी और महाकाली ऐसी देवियों की श्रेणी में रखी जा सकती हैं। ये देवियाँ कामुक (ऐंद्रिक) और अति उग्र होने की वजह से खतरनाक मानी गयीं।[10] दैवी स्त्रीत्व और उग्रता, शारीरिक और यौनिक आक्रामकता का द्विभाजन पुरुष और स्त्री के हिंदू प्रतिमानों के प्रतिकूल था। इससे निपटने के लिए उन्होंने उनके पतियों के अधीन करने के साथ–साथ तांत्रिक मिथकों और कर्मकांडों का सहारा लिया, जिसमें पुरुष सत्ता और स्त्री–शक्ति के बीच के तनाव की मुक्ति की गुंजाइश थी।[11] उर्वरता की धार्मिक धारणा और स्वी के साथ धार्मिक शक्ति के जुड़े होने की जोरदार अभिव्यक्ति हम छठी शताब्दी के आसपास तांत्रिक मतों में होते पाते हैं। तांत्रिक धारणा में स्त्री शक्ति (उत्पादन–क्षमता) का प्रतिरूप मानी गयी है। यही कारण है कि तांत्रिक आचार–व्यवहार में मैथुन (स्त्री के साथ यौन समागम) का स्थान केंद्रीय है। तांत्रिक ग्रंथ मोक्ष प्राप्त करने के लिए उचित यौन–क्रियाओं के विस्तृत विवरण से भरे पड़े हैं। ये आचार–व्यवहार ग्यारहवीं सदी के आसपास काफी लोकप्रिय हुए। इस अवधि के दौरान कुछ तांत्रिक आचार वैदिक आचार–व्यवहार का हिस्सा हो गए थे, जबकि ब्राह्मणवादी ग्रंथों में ये अभी भी त्याज्य या अवरेण्य ही थे। वहीं, यौनिक कर्मकांड वैदिक धार्मिक आचार–व्यवहार के लिए बाहरी चीज नहीं थे। लेकिन स्त्रियों की कर्मकांडीय भूमिका पैट्रियार्क या शासक के वर्चस्व की सुरक्षा का ही हेतु थी। इस सबका परिणाम यह हुआ कि तंत्र धार्मिक मामलों के अधिकृत आधार या स्रोत हो गए। पौराणिक आचार–व्यवहार पर भी उनका प्रभाव पड़ा। स्मृति संहिताओं[12] में केंद्रीय तांत्रिक तत्व बरकरार रहे। गैविन फ्लड ने बताया है, श्देश के दक्षिणी भाग में तांत्रिक मत चर्च रहे और वहाँ के सामाजिक ताने–बाने में रच–बस गए। इनका प्रयोग मंदिर के ग्रंथ के रूप में होता है। तमिलनाडु और केरल में तो इन्हें खासी श्रद्धा प्राप्त है, कारण यहाँ नंबूदिरी ब्राह्मण तांत्रिक होते हैं।[13]

इस परिघटना पर हिंदू विचारधारा की प्रतिक्रिया तांत्रिक आचार–व्यवहार के दक्षिणी और वामाचारी दो समूहों में बैटने में स्पष्ट हुई। दक्षिणी यानी दायें हाथ के पुजारी पौराणिक रीति से पूजा करते हैं, जबकि वामाचारी गुह्य (Esoteric) धार्मिक पंच है। वाम का अर्थ होता है काम यानी सेक्स और आचार का अर्थ होता है आध्यात्मिक सिद्धि की विधि यानी कर्मकांडीय रस्म। इस तरह, वामाचार से स्त्री और यौन से संबंधित कर्मकांडीय आचार–व्यवहार का बोध होता है और इसके अनुयायी बाएँ हाथ के पुजारी हैं। जॉन वुडरॉफ ने पंचतत्त्व (पाँच मूल द्रव्य) का जिक्र किया है, जिनके माध्यम से मनुष्य जीवन का आनंद पाता है, उसकी रक्षा करता है और उसे पुनरुत्पादित करता है। वे इस प्रकार हैं। **1.** मादक पेय या मदिरा, जो मनुष्य के लिए औषधि है कारण यह दुःखों का अंत कर खुशियाँ लाता है। **2.** जानवरों का मांस, जो पोषक खाद्य है और तन व मन दोनों को मजबूत करता है। **3.** मछली, जो स्वादिष्ट है और पुनरुत्पादक क्षमता बढ़ाती है। **4.** भुना अनाज, जो आसानी से उपलब्ध है, भूमि से उत्पन्न होता है और तीनों लोकों में जीवन का स्रोत है। **5.** शक्ति के साथ अश्लील मिलन, जो सभी जीवों के आनंद का स्रोत, सृजन का कारण और निरंतरता की जड़ है।[14] ये कर्मकांडीय धारणाएँ पंच मकार में अभिव्यक्ति हुई हैं, जो हैं–मद्य, मत्स्य, मांस, मुद्रा और मैथुन।

तांत्रिक विचारधारा का धार्मिक संप्रदायों, खासकर शैव मत और वैष्णव–मत पर बड़ा प्रभाव पड़ा। शैव मत में विद्यमान शिव शक्ति की धारणा इस तांत्रिक मत पर आधारित थी कि पुरुष की शक्ति जिस ऊर्जा के माध्यम से आकार लेती है, उसका चरित्र स्वैण है। यह विश्वास शैवमत को शक्तिवाद के नजदीक लाया, जिसकी परिणति शिव–शक्ति की धारणा में हुई। इसे वीर शैववाद की बढ़ती लोकप्रियता ने गति प्रदान की।[15] बारहवीं सदी के आसपास वीर शैववाद ने एक रैडिकल दृष्टिकोण से अपना आध्यात्मिक बंधन स्थापित करते हुए अपने आपको ऑर्थोडॉक्स धार्मिक पंथों से भिन्न व अलग घोषित किया। जैन पीटर शूटे कहते हैं कि इस आंदोलन ने अछूतों

को कर्मकांडीय भूमिकाओं के साथ अपने दायरे में समाविष्ट किया।[16] वे आध्यात्मिक समुदाय में एक नयी अस्मिता चलावड़ी के साथ स्वीकृत किए गए, हालाँकि उन्हें सभी लिंगायत कर्मकांडों का हक नहीं था। वीर शैववाद पर तांत्रिक मत का प्रभाव 'धार्मिक भिक्षुकों' की एक भिन्न कोटि के अस्तित्व में भी स्पष्ट है जिन्हें 'भिंडा जंगमा, वीटा जंगमा या सुखी जंगमा' नामों से जाना जाता था।[17] ये जंगमा तंत्र संप्रदाय के अनुयायी थे और वेश्याओं के घरों में रहते थे। ऐसी मान्यता है कि कल्याण की कुछ गुफाएँ भी वेश्याओं और उनके जंगमा का आवास–स्थल रही थीं।[18]

मंदिर में स्त्री के अर्पण का चलन हम सभी प्राचीन समाजों में पाते हैं। यूनान, बेबिलोनिया, मिस्र, सीरिया और पश्चिम अफ्रीका में मंदिरों में स्त्रियाँ कई तरह के कार्य किया करती थीं। इन स्त्रियों के बीच विद्यमान पदानुक्रमता से तो यही इंगित होता है कि अर्पण की रीति ने संस्था का रूप ले लिया था।[19] भारत में धार्मिक वेश्यावृत्ति की जड़ें बड़ी परंपरा के धार्मिक रीति–रिवाजों पर तांत्रिक मत्त के प्रभाव में पाई जा सकती हैं। यहाँ विभिन्न जातियों के बीच शक्ति की धारणा का भिन्न–भिन्न रूपों में विद्यमान होना ध्यातव्य है। यह मिथकों में साफ जाहिर है। बड़ी परंपरा में शक्ति दो स्तरों में व्यक्त हुई है। एक तो घरेलू दायरे से बाहर की स्त्रियों में और दूसरा घरेलू दायरे की स्त्रियों में। शक्ति के इन दोनों ही रूपों में गुणात्मक भिन्नता है। घरेलू दायरे की स्त्री पर शक्ति प्राप्त करने और उसे नियंत्रित करने के लिए कर्मकांडों से गुजरने की महती भूमिका है।[20] शक्तिधारिणी होने की वजह से स्त्रियाँ भय का कारण हैं। पुरुष के नियंत्रण और पतिव्रता का धर्म निबाह कर हिंदू स्त्री अपनी खतरनाक शक्तियों पर नियंत्रण कर उसे परिवार के हित की दिशा में लगाती है। अपने जीवन यात्रा के विभिन्न पड़ावों मसलन, वयः संधि, मासिक स्राव, विधवा, पर स्त्रियों को अलग–अलग कर्मकांडों या रस्मों का पालन करना पड़ता है। वयः संधि के अवसर पर तय की गई रस्मों का उद्देश्य स्त्री में उदित हो रही यौनता का नियंत्रण और इस क्रम में उसकी शक्ति का नियंत्रण कर उसे परिवार खासकर पुरुष सदस्यों की सुख–समृद्धि के लिए निर्देशित करना है।[21] पिता, भाई, पति ये सभी स्त्री पर नियंत्रण की जिम्मेदारी रखते हैं ताकि वह अपनी शक्ति का सर्जनात्मक उपयोग करे। उसमें निहित खतरनाक या अनिष्टकारी क्षमता विनाश ला सकती है यदि वह नाराज हो जाए, ऐसी मान्यता है।[22]

घरेलू दायरे की बाहर की रवी में सहयोग की भावना ज्यादा है, जिसका उपयोग वह समूचे समाज के उन्नति के लिए करती है। उल्लेखनीय है कि मंदिरों में विद्यमान स्त्रीचक्र मंदिर की पूजा–पद्यति में तांत्रिकता और तांत्रिक कर्मकांडों के हावी हो जाने के द्योतक हैं।[23] बड़ी परंपरा में ऐसी धार्मिक स्त्रियाँ मंदिर–व्यवस्था का अंग थीं। उन्हें तांत्रिकता या यौनता से जोड़कर देखा जाना उनके सुख, भोग और सानी जैसे नामों में स्पष्ट जाहिर होता है। आरंभिक मध्यकाल की अवधि में वे इन्हीं नामों से जानी जाती थीं, जिसका अर्थ था वेश्या। ऐसी स्त्रियाँ निम्नजाति की होती थीं। अधिकांश तांत्रिक कर्मकांड अछूतों और निम्न जातियों से जुड़े थे। मसलन शवसाधना जैसे तांत्रिक कर्मकांड को लिए चंडाल (अछूत) उपयुक्त माने जाते थे।[24] तांत्रिक–मत के वामचारी संप्रदाय में नर्तकी, भक्तिन, वेश्या, धोबिन, चांडालिन और शूद्र स्त्री के कर्मकांड के उपयुक्त माना गया है। इसी तरह निम्न जातियों के सभी स्त्रियाँ स्वभावतः कर्मकांड के लिए उपयुक्त मानी गई हैं।[25] दरअसल, धारणा यह है सकि स्त्री जितनी ही ज्यादा नीच और भ्रष्ट होगी, वह कर्मकांड के लिए उतनी ही अधिक उपयुक्त होगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि देवताओं को अर्पित स्त्रियाँ अधिकतर शूद्रों और अछूतों से होती थीं।

एक संगठित और जटिल संस्था के रूप में धार्मिक वेश्यावृत्ति की व्याप्ति मुख्यतः दक्षिण भारत, उसमें भी खासकर तेलुगु और कन्नड़ भाषी क्षेत्रों में पाते हैं। यहाँ आदर्श पारंपरिक हिंदूस्त्री के विकल्प के तौर पर मंदिर–स्त्री का अस्तित्व था। जोगिमाड़ा के गुफा–अभिलेख में आये देवदासी शब्द के आधार पर कुछ लोगों ने देवदासी संस्था के तीसरी सदी ईसापूर्व में विद्यमान होने का दावा किया है। जबकि कुछ अन्य लोग इसे महज एक नाम मानते हैं न कि किसी खास धार्मिक अस्मिता का द्योतक। पर्याप्त स्रोत के अभाव की वजह से इस बारे में निश्चित तौर पर कुछ भी नहीं कहा जा सकता। धार्मिक स्त्रियों के आरंभिक संदर्भ प्राचीनकाल के उत्तर–अवधि में मिलते हैं। यहाँ सात किस्म की दासियों का जिक्र हुआ है, जो प्रकार हैं–

दत्ता–जो बतौर चढ़ावा के रूप में खुद को मंदिर के हवाले करती हैं।

विक्रित–जो खुद को मंदिर के लिए बेचती हैं।

भृत्य–जो अपने परिवार की समृद्धि के लिए मंदिर–सेविका बनती है।

भक्त–जो श्रद्धा या भक्ति भाव से मंदिर व्यवस्था में शामिल होती हैं।

हत–जिसे बहला–फुसलाकर मंदिर में अर्पित किया गया हो।

अलंकार–जो अपने पेशे में पारंगत हो और राजा और अभिजनों द्वारा मंदिर में भेंट की गई हो।

रुद्र–गणिका या गोपिका, जिसे नाचने और गाने के लिए नियुक्त किया गया हो और इसके लिए मंदिर से नियमित मजदूरी मिलती हो।

वैसे तो, रुद्र–गणिका या गोपिका की पहचान देवदासी के आद्यरूप के रूप में हुई है। लेकिन ये सातों कोटियाँ उन विभिन्न तरीकों को उद्घाटित करती हैं, जिनके माध्यम से स्त्रियाँ मंदिर–व्यवस्था के दायरे और नियंत्रण में लाई जाती थीं। कन्नड़ भाषी क्षेत्रों में इस प्रथा का सबसे प्राचीन संदर्भ बीजापुर जिले में आठवी सदी का है। मंदिर निर्माण के कार्य में तेजी के साथ ही इसके संदर्भ में भी हम वृद्धि पाते हैं, जो दसवीं सदी में अपनी ऊँचाई पर पहुँचा।[26] कर्नाटक के अभिलेख आधारित सर्वेक्षण बताते हैं कि यूँ तो इस प्रथा की व्याप्ति समूचे क्षेत्र में थी, लेकिन धरवाड़, बीजापुर, बेलगाम, बेल्लाड़ी, मैसूर, दक्षिण केनड़ा, बैंगलोर, टमका और चित्रदुर्गा में इसकी बुनियाद ज्यादा मजबूत थी। ए.के. प्रसाद के अनुसार धरवाड़ जिले के अभिलेख नौ तालुका–नवलगुंड, हवेरी, हायरकेरूर, रेनवेनर श्रीहट्टी, हुबली, दम्बल, बांकपुर और रॉन में बिखरे हुए थे। इसी तरह, कोलार जिले के मुलबागल, मोलुर और वॉवरिंगयेटय हसन जिले के बेलूर और बेल्लरी जिले के हैडगल्ली से प्राप्त अभिलेख इस प्रथा के चलन की पुष्टि करते हैं। तेलुगुभाषी क्षेत्रों में यह प्रथा कृष्णा, गुंडर और नेल्लौर जिलों में प्रचलित थी। इस क्षेत्र में सबसे आरंभिक संदर्भ नेल्लौर जिले में सातवीं सदी का है। गोदावरी जिले में भीमवरम, द्राक्षरामम और पलाकोलुय विशाखापत्तनम में सिम्हाचलम और दत्तादा तथा गंजम जिले में श्रीकरमम इस प्रथा से जुड़े अन्य महत्त्वपूर्ण क्षेत्र थे। जिन क्षेत्रों में यह प्रथा ज्यादा लोकप्रिय हुई, वे राजनीतिक ताकत के भी केंद्र बने।[27] इसकी एक वजह इन क्षेत्रों की ज्यादा उर्वरता भी थी। छठी और सातवीं सदी के दौरान पूरे क्षेत्र में अनेक छोटे–छोटे रजवाड़े उभरे। कर्नाटक में चालुक्य, कदंब, राष्ट्रकूट, होयसाल, आन्ध्र मेंचालुक्य, राष्ट्रकूट, इश्वाक और केकतिया और इनके साथ–साथ अनेक स्थानीय सामंतों या चीफों का मौजूद होना इस अवधि की राजनीतिक अस्थिरता का प्रतीक है। इस दौरान मंदिर राजनीतिक गतिविधियों के केंद्र में थे और इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। बड़ी मात्रा में भू–दानों और स्थानीय चीफों की वर्चस्वता की वजह से मजबूत केंद्रीकृत सत्ता–व्यवस्था का विकास नहीं हो पाया।

आधुनिककाल में देवदासी प्रथा को जोरदार विरोध किया गया और आजादी मिलते ही भारत सरकार ने हिंदूमंदिरों में सखी प्रतिबंध लगाने संबंधी अधिनियम पारित कर दिया। शुरुआत में तो यह मत व्यक्त किया कि चूँकि यह प्रथा खुद सिकुड़ हो रही है, अतः अधिनियम की जरूरत नहीं है। साथ ही, अधिनियम में जिस देवदासियों को वेश्या माना गया था, नाटेसन ने उसका भी विरोध किया। बहुमत अधिनियम के पक्ष में रहा और 1947 में यह मद्रास देवदासी (जिन डेडीकेशन) एक्ट के नाम से 31वें अधिनियम के रूप में पारित हो गयी। इस प्रकार सती प्रथा की तरह देवदासी प्रथा का अंत हुआ, भारत से एक ओर सामाजिक कुरीतियों की विदाई।

संदर्भ–सूची

1. प्रियदर्शिनी विजयश्री, अनुवाद विजयकुमार झा, देवदासी या धार्मिक वेश्या? एक पुनर्विचार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 25

2. राधाकृष्ण चौधरी, व्रतयास इन एनसिएंट इंडिया, वाराणसी, 1964, दी चौखंभा संस्कृत स्टडीज, खंड 38 पृ. 64–65

3. ए. एल. बाशम, दी वंडर दैट बाज इंडिया, लंदन, 1953, पृ. 154

4. रोमिला थापर, ए हिस्ट्री ऑफ इंडिया ए इंग्लैंड–पेंगुइन प्रकाशन, 1966, पृ. 160–61

5. एडगर मूर, दि हिंदू पैथन, नयी दिल्ली, 1960, पृ. 299

6. डेविड किंग्सले, 1987, परिचय, डेविड शुलमैन, 1980, परिचय, स्टैनले राइस 1936, पृ. 212–14, सुधाकर चट्टोपाध्याय, 1960, पृ. 11

7. एडगर मूर, वही, पृ. 299

8. मोतीचंद्र, 1963, पृ. 2

9. ए.एल. बाशम, वही, पृ. 243

10. उद्दत, मोतीचंद्र, 1973, 2

11. एड. एशमान, 1978, 83
12. लीन गेटबुड, देवी एंड स्पाउस गॉडेस : वीमेन्स सेक्सुअलिटी एंड मैरिज इन इंडिया, दिल्ली, 1985, परिचय
13. वेंडी डॉनिगर ओश्फ्लेटी, सेक्सुअल मेटाफोर्स एंड एनिमल सिम्बॉन्स इन एडियन मायथोलॉजी, दिल्ली, 1981, 77–78
14. वही,
15. आर.सी. हाजरा, स्टडीज इन द पुराणिक रिकाड्स ऑन हिंदू राइट्स एंड कस्टम, ढाका, 1944, पृ. 260–264
16. गैविन फ्लड, एन इंट्रोडक्शन टु हिंदूइज्म, न्यूयॉर्क, 1966, पृ. 161–162
17. महानिर्वाण तंत्र, 4, 29. 31, 5.141 जॉन बुड्रोफे 1956 पृ. 77 द्वारा उद्धृत
18. आर. एन. नंदी, ऑरिजिन्स ऑफ बीर शैव मूवमेंट, नयी दिल्ली, 2000, पृ. 468–69
19. जैन, पीटर, 1919, पृ. 129
20. ए.एन. भट्टाचार्य, दी मदर गॉडेस पास्ट एंड प्रेजेण्ट, कलकत्ता, 1982, पृ. 184
21. वही, पृ. 184–86
22. एम.एन. पेंजर, दी ओसियन ऑफ स्टोरी, दिल्ली, 1976, प्रथम खंड, पृ. 270
23. सस्किया करसेनबुम स्टोरी, 1978, पृ. 6
24. ए. एन. भट्टाचार्य, वही, 1982, पृ. 137
25. वही, पृ. 136
26. आ.एन. लंगी, 19–73, 4
27. ए.के. नदी, वही, पृ. 65–69

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

English : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 273-278

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Digital Innovation and Artificial Intelligence: A Tipping Point in Research and Development

*Dr. Jayanti Rani**

Abstract : *God created humans as the most remarkable beings, endowed with the mental ability to express thoughts—from ancient depictions on cave walls to the advanced realms of digitalization and artificial intelligence (AI) in the modern world. In the past, our understanding of the outside world was limited. However, today, digital innovation has profoundly impacted our lives, influencing us every hour of the day. Digital innovation has revolutionized the way we connect, enabling instant communication with anyone around the globe via the internet. This transformation has played a significant role in enhancing governance in India, exemplified by the introduction of Aadhaar, a 12-digit unique identification number. Aadhaar serves as a key tool for linking citizens to various government schemes, banking systems, and providing a reliable means of identification. In the banking sector, digital transactions have become the standard, offering a safe, transparent, and convenient way to conduct business. The Unified Payments Interface (UPI) has further simplified financial transactions, making everyday life easier for individuals and businesses alike. Digitalization has also improved the efficiency and accuracy of verifying eligibility for government schemes, ensuring that benefits reach those who truly need them. The widespread availability of the internet, reaching both urban and rural areas, has democratized access to information, education, and rights, bridging gaps in knowledge and opportunity. Digitalization has truly touched every segment of society, making life more accessible and streamlined.*

Key Words : *Digital innovation, artificial intelligence, revolution, communication, human being*

Artificial Intelligence (AI) is a powerful tool that mimics human actions, proving indispensable in today's world. In the medical field, AI has been integrated through robotic surgeries, which perform operations with exceptional precision. In the industrial and manufacturing sectors, AI-driven robots have been deployed to monitor and operate machinery 24/7, enhancing both quality and productivity. AI has also made significant advancements in research, where robots are used to test samples and analyze results. Moreover, AI has seamlessly integrated into our daily lives, assisting with tasks such as conversations, driving cars, scheduling appointments with doctors, and even reserving tables at restaurants. AI's capabilities extend to creating virtual voices, faces, stories, and envisioning future possibilities. However, it is crucial to use this powerful tool wisely, as misuse could lead to serious consequences and potentially destabilize entire systems.The rapid evolution of digital technologies and artificial intelligence (AI) has profoundly influenced research and development (R&D) across various sectors. This literature review examines how these advancements are reshaping the landscape of R&D, enhancing productivity, and fostering innovation. It explores the transformative effects of digital tools and AI technologies, their implications for research methodologies, and their role in accelerating

* ***Assistant Professor, Department of English, R.P.M. College, Patliputra University, Patna***

discovery and development processes. The review highlights key trends, challenges, and future directions in leveraging digital innovation and AI in R&D.

1. Introduction : The convergence of digital innovation and artificial intelligence (AI) marks one of the most pivotal advancements in contemporary research and development (R&D). As digital technologies and AI systems continue to advance, their integration into R&D processes has led to transformative shifts, empowering researchers to solve complex problems with greater efficiency and precision. This review seeks to provide a comprehensive analysis of how these technologies are influencing R&D, while also highlighting the opportunities they present and the challenges that accompany their adoption.

2. Digital Innovation in Research and Development

Advanced Data Analytics : Digital innovation has revolutionized the way researchers collect, analyse, and interpret data. The advent of big data analytics and cloud computing has enabled the handling of large datasets, allowing for more comprehensive and nuanced analyses. Tools such as data visualization software, statistical analysis packages, and interactive dashboards have enhanced the ability of researchers to uncover insights and make data-driven decisions.

The co evolution between digital technologies, innovation, and skills also requires, and is driven by, a reorganization of productive and innovation processes, both within and between firms. We observe this in all economic sectors, from agriculture to services. Based on evidence on past technologies and the innovation literature, we suggest that we might require a new set of stylized facts to better map the main future trajectories of digital technologies, their adoption, use, and recombination in organizations, to improve our understanding of their impact on productivity employment and inequality.

Digital technologies permeate and restructure all facets of economic and social activities. In some ways that they are implemented, they disrupt existing activities, while in others they have a more incremental impact and complement existing activities. In some cases, they substitute for existing technologies and tasks, but in others they are complementary. At times, they result in the creation of new activities, services, innovation, and business opportunities. Digitalization is powerful because it not only allows automation but also tracks and stores information and data about tasks and activities, thereby creating a record that can be analysed and that provides opportunities to improve processes, work organization.

Widely discussed digital technologies include the internet of things, blockchains, additive manufacturing, big data, artificial intelligence (AI), and cloud computing, and augmented and virtual reality. Some of them, such as cloud computing, are already realized, others may never become significant, and new combinations certainly will emerge.

For instance, the COVID-19 pandemic forced many in-person events to go online within a very short time. The use of digitalization that previously had a limited impact, such as telemedicine, was massively increased in a matter of weeks.

Although the adoption of telemedicine implies a “simple” shift from in-person to video consultation, for many regular doctors’ visits, the advantages (and potential drawbacks) became obvious immediately, and the earlier routines might not be restored. Changes that might have taken years to be adopted were accelerated by this event.

Particularly, there is a remarkable interconnectedness between social actors and digital technologies involved in digital innovations

Enhanced Collaboration and Communication : Digital platforms and communication tools have transformed collaboration in R&D. Tools like virtual labs, collaborative software, and online research networks facilitate real-time communication and cooperation among researchers across

geographic boundaries. This has led to more efficient sharing of knowledge, resources, and expertise, fostering interdisciplinary research and accelerating project timelines.

Automation and Robotics : The automation of routine tasks and the deployment of robotics have significantly improved the efficiency and precision of R&D activities. Automated laboratories, robotic sample handling, and automated data collection systems reduce human error and increase throughput. This has been particularly beneficial in fields such as pharmaceuticals and materials science, where precision and scalability are critical.

3. Artificial Intelligence in Research and Development : The rise of artificial intelligence (AI) and its expanding influence across various sectors necessitates a thorough evaluation of its impact on the achievement of the Sustainable Development Goals (SDGs). Through a consensus-based expert elicitation process, we find that AI has the potential to advance 134 targets across all the SDGs, yet it also poses risks that could hinder 59 targets. Despite this, current research priorities often neglect critical areas. The rapid advancement of AI must be accompanied by robust regulatory frameworks to ensure that AI-driven technologies contribute to sustainable development. Without proper oversight, there is a risk of significant gaps in transparency, safety, and ethical standards.

The emergence of artificial intelligence (AI) is increasingly influencing a wide array of sectors. AI is anticipated to impact global productivity, equality and inclusion, environmental outcomes, and several other areas, both in the short and long term. While the potential impacts of AI include both positive and negative effects on sustainable development, there is currently no comprehensive study that systematically assesses the extent to which AI might influence all aspects of sustainable development—specifically, the 17 Sustainable Development Goals (SDGs) and 169 targets outlined in the 2030 Agenda for Sustainable Development. This represents a significant research gap, as AI's influence could potentially affect the achievement of all SDGs.

In this study, we explore the implications of AI's role in either enabling or inhibiting the fulfillment of the 17 goals and 169 targets set forth in the 2030 Agenda. The relationships between AI and the SDGs were characterized using a consensus-based expert elicitation process, informed by previous studies mapping interlinkages among the SDGs. Although there is no universally accepted definition of AI, for the purposes of this study, we define AI as any software technology exhibiting at least one of the following capabilities: perception (e.g., face recognition), decision-making (e.g., medical diagnostic systems), prediction (e.g., weather forecasting), automatic knowledge extraction and pattern recognition from data (e.g., detection of fake news on social media), interactive communication (e.g., social robots or chatbots), and logical reasoning (e.g., theory development from premises). This definition encompasses a broad range of AI subfields, including machine learning.

AI and Environmental Outcomes: AI is poised to support the transition to low-carbon energy systems with high integration of renewable energy and enhanced energy efficiency—critical components in addressing climate change.

AI and Economic Outcomes: The technological advancements driven by AI may positively contribute to achieving several SDGs related to the economy. However, automation facilitated by AI also has the potential to shift corporate income from workers to company owners, as evidenced by historical comparisons. For instance, although the combined revenues of *Detroit's "Big 3" automakers (GM, Ford, and Chrysler) in 1990 were nearly equivalent to those of Silicon Valley's "Big 3" (Google, Apple, and Facebook) in 2014,* the latter employed nine times fewer people and were valued 30 times higher on the stock market. As AI applications continue to advance—from autonomous vehicles and AI-powered healthcare solutions to smart electrical grids—the importance of investing in AI safety research grows. Ensuring the robustness and security of these systems is crucial to prevent malfunctions

or cyberattacks. A vital area of research understands potential catastrophes that could arise from systemic faults in AI technology, which is essential for the safe integration of AI into society.

Towards sustainable AI : The significant wealth potential generated by AI-powered technology may disproportionately benefit those who are already well-off and highly educated, while job displacement could adversely affect less advantaged populations. On a global scale, the increasing economic prominence of AI risks exacerbating inequalities due to the uneven distribution of educational and computing resources. Additionally, existing biases in the data used to train AI algorithms could be amplified, leading to greater discrimination and social inequities. A related concern is the use of AI to generate computational propaganda—whether commercial or political—based on big data, a practice often referred to as "big nudging." This propaganda, disseminated through social media by autonomous AI agents, aims to manipulate public opinion and exacerbate political polarization. Although current scientific evidence challenges the notion of technological determinism in the spread of fake news, the long-term impacts of AI on this front remain largely unexplored due to a lack of robust research methodologies. Given these challenges, a paradigm shift is necessary to foster greater cooperation and to curtail the potential for AI to control or influence citizen behaviour.

Machine Learning and Predictive Analytics : Machine learning (ML) algorithms and predictive analytics have become essential components of contemporary research and development (R&D). ML models excel at analysing complex datasets to discern patterns, generate predictions, and optimize experimental designs. In the realm of drug discovery, for example, AI-driven predictive models play a pivotal role in forecasting the efficacy and safety of potential compounds. This capability significantly accelerates the drug development process and reduces the costs traditionally associated with trial-and-error methods.

Natural Language Processing and Knowledge Extraction : Natural Language Processing (NLP) facilitates the extraction of valuable insights from extensive volumes of unstructured text data, including scientific literature, patents, and clinical reports. AI-powered NLP tools are capable of summarizing research findings, identifying emerging trends, and streamlining literature reviews. By enhancing the efficiency of knowledge acquisition, these tools support evidence-based decision-making and accelerate the research process..

AI in Design and Simulation : AI technologies are increasingly utilized in the design and simulation phases of research and development (R&D). In disciplines such as engineering and materials science, AI-driven simulation tools are capable of modelling intricate systems and predicting performance under diverse conditions. These advancements enhance the exploration of novel design possibilities, optimize solutions, and significantly reduce the necessity for physical prototypes.

4. Implications for Research Methodologies

Accelerated Discovery : The integration of digital and AI technologies has significantly accelerated the pace of scientific discovery. By automating routine tasks, enhancing data analysis, and optimizing research workflows, these technologies empower researchers to explore new hypotheses and validate findings with greater efficiency. This acceleration has the potential to shorten development cycles and expedite the introduction of innovations to the market.

Improved Accuracy and Precision : Digital tools and AI algorithms enhance accuracy and precision in research by employing advanced analytical techniques that minimize the likelihood of errors and yield more detailed and reliable results. For instance, AI-powered image analysis in medical research can detect subtle patterns that may be overlooked by human observers, thereby improving diagnostic capabilities and research outcomes.

Ethical and Privacy Considerations : The use of digital and AI technologies in R&D raises important ethical and privacy concerns. Issues related to data security, informed consent, and algorithmic

bias must be addressed to ensure that research practices remain ethical and equitable. The development of robust ethical frameworks and regulatory guidelines is essential to mitigate potential risks.

5. Challenges and Future Directions

Integration and Standardization : The application of digital and AI technologies in research and development (R&D) introduces significant ethical and privacy concerns. Key issues include data security, informed consent, and algorithmic bias, all of which must be addressed to maintain ethical and equitable research practices. Developing robust ethical frameworks and regulatory guidelines is crucial to mitigating these potential risks and ensuring responsible use of these technologies.

Skill Development and Training : The rapid pace of technological advancement necessitates continuous skill development and training for researchers. Organizations must invest in upskilling their workforce to effectively utilize digital and AI tools and stay abreast of emerging technologies.

Future Innovations : Looking forward, the ongoing evolution of digital and AI technologies is poised to drive further advancements in research and development (R&D). Emerging fields such as quantum computing, advanced neural networks, and decentralized AI systems have the potential to transform research methodologies and expand the frontiers of knowledge.

Conclusion : The application of digital and AI technologies in research and development (R&D) introduces significant ethical and privacy concerns. Key issues include data security, informed consent, and algorithmic bias, all of which must be addressed to maintain ethical and equitable research practices. Developing robust ethical frameworks and regulatory guidelines is crucial to mitigating these potential risks and ensuring responsible use of these technologies**.**

The great discrepancies in the literature in estimating the potential impact of automation and some digital technologies on employment suggest that predicting the skills needed for future employment is filled with uncertainty. Digitalization is often more about the displacement and deep transformation of activities and their organization than about a simple one-to-one replacement of jobs.

A critical challenge in adopting digital and AI technologies in research and development (R&D) is achieving seamless integration with existing systems and workflows. To facilitate interoperability and effective data sharing across various platforms and research domains, the standardization of tools and protocols is essential.

Digital innovation and artificial intelligence (AI) have profoundly transformed research and development (R&D), driving efficiencies, enhancing capabilities, and accelerating discovery. Despite the challenges that persist, the continued integration of these technologies presents substantial opportunities for advancing scientific knowledge and fostering innovation. By addressing the associated challenges and embracing emerging developments, researchers and organizations can fully leverage the potential of digital and AI technologies to propel R&D across diverse fields.

References

Articles*:*

1. "Artificial Intelligence and Innovation Management : A Review, Framework, and Research Agenda" by Bengtsson, L., Bogers, M., & Chesbrough, H. (2021), *Technovation*.
2. "The Role of Artificial Intelligence in Innovation : A Review and Research Agenda" by Haefner, N., Wincent, J., Parida, V., & Gassmann, O. (2021), *Technological Forecasting and Social Change*.
3. "Digital Innovation and Organizational Change : The Role of Digital Transformation in Shaping New R & D Capabilities" by Parida, V., Sjödin, D., Lenka, S., & Wincent, J. (2019), *Journal of Business Research*.
4. "Artificial Intelligence in Science : Progress, Promises and Challenges" by Marcus, G., & Davis, E. (2019), *Daedalus*.

5. "Artificial Intelligence in Innovation : How to Compete in the Age of AI" by Seamans, R. (2019), *Strategic Management Journal*.

6. "The Impact of Artificial Intelligence on Innovation" by Agrawal, A., Gans, J., & Goldfarb, A. (2018), *Innovation Policy and the Economy, Volume 19*.

7. "Digital Transformation : AI and the Future of Innovation" by Shankar, V. (2018), *Journal of the Academy of Marketing Science*.

Books

1. "Human + Machine: Reimagining Work in the Age of AI" by Paul R. Daugherty and H. James Wilson (2018)

2. "The Fourth Industrial Revolution" by Klaus Schwab (2016)

3. "AI for Everyone : A Guide for Leaders in Business and R&D" by Andrew Ng (2021)

4. "Machine Learning Yearning" by Andrew Ng (2018)

5. "Prediction Machines : The Simple Economics of Artificial Intelligence" by Ajay Agrawal, Joshua Gans, and Avi Goldfarb (2018)

6. "Competing in the Age of AI : Strategy and Leadership When Algorithms and Networks Run the World" by Marco Iansiti and Karim R. Lakhani (2020)

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

English : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 279-281

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Feminine Awareness in the Select Novels of Shobha De

*Dr. Madhav Prasad Tripathi**

Abstract : *As a novelist, Shobha De is an eager observer of modern society. She has depicted her characters in the manner that reflect people in the present day society. She has successfully sketched the images of new women who inhabit in the aristocratic world of Indian high society. These are not of the weak and submissive women fearing their domination by their husbands. Her women are dynamic, strong and high confident. They do not live at the mercy of family and society. They lead new ways to coming generation of our women. De has taken great interest in dealing with great issues to bring about their understanding and awareness in our male dominated society. She has done a commendable service to women by her writings.*

Introduction : Indian woman over the ages has been an image of tolerance, sacrifice and purity. She has always occupied a place secondary to man. Man rules over her as her master despite the fact that have been so many reforms in the modern world through education and learning. The importance of focusing women's issues clearly seen in the works of Indian women novelists who have created different types of images. Shobha De has great sympathy towards Indian women. She has very closely observed women's psyche and their problems. De belongs to the modern feminist school of thought. She raises the women characters in her novels to be at per with male characters. They have an equal amount of freedom in all walks of life. As De says:-

"I did write with a great deal of empathy towards women. Without waving the feminist flag, I feel very strongly about the women's situation."

De shapes such in all her novels including Socialite Evenings (1989), Starry Nights (1990), Sisters (1992), Strange Obsessions (1992), Sultry Days (1994), Snapshots And Second Thoughts (1996), created such female characters who defy- traditions and society and comes to have a new identity. De is such author who presents the voices and scenes of female characters. By the means of her novels, Shobha De has attempted to ruin patriarchal hegemony. She has ruined the illusions presented by society and bestowed voice to the dreams of women in all her novels.

Feminine Sensibility : Viewing through the historical records, we see that women have been denied their dreams since time unremembered. The women who had courage to dream were deprived and disillusioned by patriarchal society. The feminist movement proclaimed the belief that men and women are same so there should be same rights, powers and opportunities as men have learned and educated, women began to raise their voices. Sarah Grimke discovers perpetual sin that the men commit against women : "Man has subjugated woman to his will, used her to promote his selfish qualification, to minister her sexual pleasure, to be instrumental in promoting his comfort; but never has he desire to elevate her to that rank she was created to fill. He has done all he could do debase her and enslave her and enslave her mind." (Sarah Grimke, letters on the Equality of the Success and the conditions of women, 1970)

* *Assitt. Prof. Department of English Literature, Kripalu Mahila Mahavidyalay, Kunda, Pratapgarh, U.P.)*

Shobha De strikes the latest trend in her feminist stance that is, to reject outright the male hegemony. In De's novels the female characters take all decisions and appears to be masters of their own lives. The female characters are not soft and weak creature who are frequently under the power of men and the society. They are independent, confident and assertive.

Her female characters are not plaything but a tough competitor and equal partners in any enterprise they live on the fast track. They are no longer husband worshippers, nor the marriage pious relationship.

In Socialites Evenings, the women characters are non conformist. Anjali and Karma are such women who have left their conventional Indian middle class homes in the quest of freedom. Karma defies the conservative set up of society. Karma in Socialite Evenings, defines to… the traditional manner and culture. She protests about the meaningless marital relationship in her husband: — our marriage was over the day our awful honeymoon started. We have got nothing going——— I really don't know why you choose to marry me. (Shobha, Socialite Evenings, 293)

De has drawn the real image of new women who challenge age- old practice of subjugations of women in nearly all spheres of life. Her women are such characters who protest and strong enough to say a big "No" to every unfair meted out to them. They are a set of well equipped women- filthy rich, well educated, talented and ambitious. Her women are powerful. They don't hesitate to challenge socially sectioned male headship on the basic issues of life.

In her novels, De is all out to improve traditional image of the Indian women as feeble, subservient person living at the pity of her partner. She creates her female characters as aggressive blusters of the male ego and male hierarchy. As De observes : "The women in my books are definitely not doormats. They are not willing to kick around." (Ajay Singh, The Trouble with Men)

De has created strong determined and have no hassles in behaving in any manner they like. There is vivid image of modern women in De's novel Second Thoughts. Maya who goes to Bombay after her arranged marriage to foreign return boy Ranjan. She has keen desire to adopt life style of Mumbai but her husband proved to be a cold Indian male.

Disappointed with her husband, Maya feels trapped in unfeeling marriage. In her dejection, she enters into an odd relationship with her college going neighbor Nikhil. She indulges into extra marital relationship fearlessly. Ranjan praises his female colleagues who are more fashionable women. De has created such female characters who are praised by Ranjan. He says about women at party. "These are very respectable people, highly qualified. My colleagues you understand." (Shobha De, Second Thoughts, 338)

Bombay is extremely fashionable city that is why De's women are tempted and fascinated to the city. For her women, Bombay is such city where all their dreams and ambitions are completely fulfilled. Amrita in Strange Obsessions, reaches Bombay from Delhi to become a super model. It was her sharp dream and ambition. "It had to be Bombay. She wanted big time. And she wanted it bad." (Shobha De, Strange Obsessions, 05)

Thus, in Starry Nights, Aasha Rani makes a journey from Madras to Bombay in order to become great film star and obtain great amount of wealth and fame : "Everybody in the great out there wanted to join the movies. Become film-stars. Those who made it were somehow privileged." (Shobha De, Starry Nights, 230)

De has centralized the condition of women prominently in urban India. Dreams of marriage in De's women are only deception. Karuna gives voice to the dream of marriage that almost all women have in present day society. "I still dreamed, as I know some of my friends did, of the perfect marriage….. a marriage full of laughter and conversation. One in which the two of us were perfectly in tune. Speaking the same language, thinking the same thoughts, enjoying the same things." (Shobha De, Socialite Evenings,68)

In Snapshots, Aparna has divorced her husband and denied to marry twice. Her women characters divorce their partners and seek extra marital relationships with chain of lovers and lead independent lives. Rashmi becomes mother before her marriage. These female characters in Snapshots have different marital status. According to the modern Indian women, marriage is meant to enjoy fully if their married life is deprived of sexual gratification. They gratify through extra marital relationship. Reema gives voice this idea. Most of women are like me married early to men they did not know. Did not like. They are bored with their husbands… there are times when one of the women is attracted to… someone else… we advice her sensibly. Our motto is : say no to divorce. Never break up the home. Have your fun quietly somewhere. But don't leave the family." (Shobha De, Snapshots, 214)

De has presented her women bold, unyielding, revolting against the traditional set up. Liberated and making their own judgment in their efforts to settle their own recognition in the contemporary society. Her women pave the path for all Indian women in the present day society.

Select Bibliography

1. Dhawan, R.K. and Dodiya Jaydipsinh, "The Fiction of Shobha De : An Introduction", The Fiction of Shobha De, ed. Jaydipsinh Dodiya, p.14.

2. Grimke, Sarah, "Letters on the Equality of the Sexes and Condition of Women", New York, 1970.

3. De, Shobha, Socialite Evenings, Penguin Books India Pvt. Ltd., New Delhi, 1989.

4. Singh, Ajay, Trouble with Men, Asiaweek. n.d.

5.De, Shobha, Second Thoughts Penguin Books India Pvt. Ltd., New Delhi, 1996.

6. De, Shobha, Strange Obsessions, Penguin Books India Pvt. Ltd., New Delhi, 1992.

7. De, Shobha, Starry Nights, Penguin Books India Pvt. Ltd., New Delhi, 1990.

8. De, Shobha, Snapshots, Penguin Books India Pvt. Ltd., New Delhi, 1995

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 282-286

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

गाँधीवादी आर्थिक-दर्शन के उपकरण

*मनोज कुमार राघव**

गाँधी दर्शन का सार 'सादा जीवन, उच्च विचार' की उक्ति में अनुभूत होता है। गाँधी–दर्शन का विचार आते ही कुछ शब्द और छवियाँ स्वतः मन–मस्तिष्क में उभरती हैं, यथा–सत्य, अहिंसा, चरखा, खादी, स्वाधीनता आंदोलन आदि। गांधी जी को सत्य, अहिंसा, चरखा, खादी से अलग करके देखना प्रायः असंभव प्रतीत होता है। इसीलिए गाँधी–दर्शन के आर्थिक–पक्ष में सत्य, अहिंसा, चरखा व खादी का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

गांधी–दर्शन के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक सहित शेष सभी आयामों की पृष्ठभूमि में सत्य, अहिंसा एवं नैतिकता प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से विद्यमान है। गांधी–दर्शन की हर बात येन–केन–प्रकारेण इन्हीं तीन संप्रत्ययों पर आकर अपना आधार ग्रहण करती प्रतीत होती है। असहयोग आंदोलन के अवसर पर स्व. मिस हॉब्हाउस द्वारा कहा गया ये कथन गांधी जी की सत्यनिष्ठा को पर्याप्त रूप से रेखांकित करता है कि ''सत्य के लिए किसी दिन आपको फाँसी पर चढ़ना पड़े, तो मुझे आश्चर्य न होगा।''[1]

गांधी जी सत्य में साक्षात् परमेश्वर की प्रतीति करते थे और इस प्रतीति का सर्वोत्तम माध्यम अहिंसा को मानते थे। गांधी जी के अतिरिक्त दक्षिण अफ्रीका के नेल्सन मंडेला, अमेरिका के मार्टिन लूथर किंग जूनियर, जेम्स बेवल और सीजर चौवेज, रूस के टॉल्सटाय, जर्मनी के पेट्राकेली, ब्रिटेन के विलियम लॉयड गैरिसन, तिब्बत के दलाई लामा आदि व्यक्तियों के जीवन–दर्शन पर अहिंसा की स्पष्ट छाप दृष्टिगत होती है। गाँधी जी का मानना था कि, ''अहिंसा कायर का कवच नहीं है, यह बहादुरी का उच्च गुण है। जो व्यक्ति हिंसा की राह पर चलते हैं, वे विनाश की राह पर चलते हैं और जो अहिंसा के पथ पर चलते हैं, वे परम सत्य के पथ पर चलते हैं तथा दूसरों को भी सत्य से परिचित करवाते हैं।''[2] गांधी जी के विचारानुसार अहिंसा नकारात्मक अथवा अक्रिय धारणा न होकर एक परिवर्तनशील अवधारणा है, मानसिक तथ्य है। उन्होंने मानसिक अहिंसा के बिना शारीरिक अहिंसा को विनाशकारी माना।

गांधी जी भौतिक रूप से समृद्ध एवं वैयक्तिक सुख से परिपूर्ण; किंतु नैतिकता, प्रेम, अहिंसा और सत्य से रहित अथवा न्यूनता वाली सभ्यता को विनाशकारी मानते थे। सत्य, अहिंसा और नैतिकता उन्हें किसी भी दृष्टि से त्याज्य प्रतीत नहीं होती थी। वे आत्मिक शांति के लिए भी नैतिकता को अपरिहार्य मानते थे। उनके अनुसार–''नैतिकता स्वयंसिद्ध है; क्योंकि उसका विरोधी आचरण यदि सार्वभौमिक स्तर पर स्वीकार कर लिया जाए तो पूरी मानवजाति और दुनिया नष्ट हो जायेगी।... नैतिकता का अर्थ ऐसे व्यक्तिगत आचरण से है जिसको सार्वभौम मान लिए जाने पर समाज का विकास होता रहे।''[3] स्वयंसिद्ध है कि गांधी–दर्शन का आर्थिक–पक्ष भी सत्य, अहिंसा व नैतिकता से कोरा तो हो ही नहीं सकता।

गांधीवादी आर्थिक–दर्शन की पृष्ठभूमि में टॉमस हॉब्स के स्वार्थवाद व इमैनुअल कांट के परार्थवाद के समन्वय से पुष्ट रस्किन की सर्वार्थवाद की अवधारणा विद्यमान है। इस सर्वार्थवादी अवधारणा को गांधी जी ने जॉन रस्किन की 'अन टू दिस लास्ट' पुस्तक में अनुभूत किया था। यह पुस्तक गांधी जी को उनके मित्र पोलाक ने जोहांसबर्ग से नेटाल तक की ट्रेन यात्रा के दौरान पढ़ने के लिए दी थी।

सर्वार्थवादी अवधारणा से प्रभावित होने के बाद भी गांधी जी द्वारा प्रवर्तित सर्वोदय उनकी निष्ठापूर्ण प्रतिबद्धता और नवीन प्रयोगपरकता के कारण तत्कालीन भारतीय परिस्थितियों में एवं भारतीय अर्थव्यवस्था हेतु उपयुक्त प्रतीत होता है। सर्वोदय का शाब्दिक अर्थ 'सबका उदय अथवा विकास' है, किंतु इसका दायरा इसके शाब्दिक अर्थ से

* *सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, तिजारा, अलवर*

भी विस्तृत प्रतीत होता है। ''गांधी जी द्वारा परिकल्पित सर्वोदय अभियान का अर्थ है भारत के आत्मा की खोज और उसकी प्रतिष्ठा का आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्र में उसकी पूर्णता का दर्शन करना।''[4]

सर्वोदय को गांधी जी ने 'सबके हित में हमारा हित', एक अभिभाषक (वकील) तथा एक नाई–दोनों के काम का मूल्य एक; 'सादा, श्रमपूर्ण और कृषक जीवन ही सच्चा जीवन है' आदि तीन सूत्रों के रुप में निष्कर्षतः प्रस्तुत किया है। डॉ.के.के.पाठक के विचारानुसार– ''गांधी द्वारा रस्किन की अवधारणा से निर्गमित ये तीन सूत्र क्रमशः समग्रता, समानता तथा श्रमपरकता के सिद्धांत की सरल भाषा में निष्पत्ति है। सर्वहित का सिद्धांत अर्थात् सर्वार्थवाद सर्वोदय का आदर्श है, कार्य समानता का सिद्धांत उसका आधार है तथा श्रमपरकता का सिद्धांत उसका मार्ग है।''[5] निस्संदेह सर्वोदय गांधीवादी आर्थिक दर्शन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपकरण है।

गांधीवादी आर्थिक–दर्शन पर भी श्रीमद्भगवद्गीता के दर्शन, बुद्ध के आत्मत्यागोन्मुख जीवन, रामकष्ण–विवेकानंद की आध्यात्मिकता, टॉलस्टाय की अर्थशास्त्रीय नैतिकता एवं रस्किन के 'अन टू दिस लास्ट' ग्रंथ का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। नीतिशास्त्रीय मूल्यों पर आधारित गांधी जी का आर्थिक–दर्शन आचारिक–पक्ष की ओर अधिक झुकाव के कारण मार्शल और मार्क्स के आर्थिक–दर्शन से मिलता–जुलता लगने पर भी भिन्न प्रतीत होता है। गांधी जी के विचारानुसार, ''अर्थशास्त्र जो व्यक्ति और राष्ट्र दोनों के नैतिक कल्याण को हानि पहुँचाते हैं, अनैतिक और पापमय हैं।''[6] इन्हीं विचारों के चलते गांधी जी ने पदार्थवाद को पैशाचिक देवता की संज्ञा दी थी तथा आधुनिक सभ्यता को मनोवैज्ञानिक रोग माना था। सादगी, सम्पत्ति का विवेकयुक्त नियमन और पूर्ण सामाजिक न्याय की संकल्पना की विरोधी तथा असमानता व संचय की प्रवृत्ति को बढ़ावा देने वाली आधुनिक सभ्यता की गांधी जी ने सदैव आलोचना की।

फलतः जब नैतिकता, आध्यात्मिकता, समानता और मनुष्य के दिव्यत्व में विश्वास रखने वाले गांधी जी अपने आर्थिक–दर्शन के उपकरण विकसित करते हैं तो उनके आर्थिक–सिद्धांतों में भी अनायास इन्हीं सब का प्रभाव स्वतः समाहित हो जाता है। न्यासिता और विरासत का सिद्धांत इस बात का प्रमाण है। न्यासिता को धर्म–संघर्ष को समाप्त करने एवं सभी सामाजिक श्रेणियों में सहयोग की भावना को विकसित करने का उपयुक्त साधन मानते हुए गांधी जी का विचार था कि, ''यदि भरसक प्रयास के उपरांत भी, वास्तविक अर्थ में पूँजीपति गरीबों के संरक्षक बन सामने नहीं आते तो वह भूख से मर जाएँगे। ऐसी दशा में क्या किया जाए। इस पहेली का समाधान मैं अहिंसात्मक असहयोग द्वारा चाहता हूँ। यदि वह न्यासी बन जाए तो मुझे प्रसन्नता होगी।''[7]

गांधी जी के इस न्यासिता एवं विरासत के सिद्धांत की आलोचना करने वालों की दृष्टि में यह सिद्धांत भी व्यावहारिक नहीं था। तत्कालीन भारत की विषम परिस्थितियों, विदेशी मॉडल के अंधानुकरणवश गांधीवादी मॉडल को अनुपयुक्त ठहराने की की प्रवृत्ति एवं स्वदेशी–विचारधारा के प्रति अवचेतन में गहरे पैठी हीनभावना के कारण न्यासिता व विरासत के सिद्धांत को अपनाना तो दूर; उसे सिरे से ही ख़ारिज कर दिया गया, जबकि ये पाश्चात्य अवधारणा से उत्पन्न बाज़ारवाद का सर्वाधिक उपयुक्त भारतीय समाधान था। बकौल आनंद कुमार–''... उन्होंने पूँजीपतियों को स्वामी के बजाय संरक्षक और न्यासी बनने की सलाह दी थी। जनसाधारण को श्रम और उत्पादक कार्यों से जोड़ने का यज्ञ चलाया था। चरखा गांधी का उपकरण था, जिससे मशीन माया का सच समझना था और बाज़ार को श्रमजीवी की जरूरतों को पूरा करने की व्यवस्था में बदलना था। खादी व ग्रामोद्योग का राष्ट्रव्यापी ताना–बाना गाँधी की तरफ से बाज़ारवाद का समाधान था।''[8] आश्रम, अभियान, सत्य, अहिंसा, चरखा, खादी आदि गांधी जी से जुड़े शब्दों के सामने गांधीवादी मॉडल के आलोचकों को अर्थव्यवस्था, बाज़ारवाद, दास कैपिटल, मार्क्सवाद आदि शब्द अधिक प्रासंगिक जान पड़े और संभवतः इसीलिए गांधी जी के आर्थिक–दर्शन को आलोचकों द्वारा बिना व्यवहार में लाए सिरे से ही ख़ारिज करने योग्य समझ लिया गया।

गांधीवादी आर्थिक–दर्शन की झलक उनके सम्पत्ति एवं राज्य संबंधी विचारों में भी प्रतिबिंबित होती है। गांधी जी के विचारों का जनतांत्रिक राज्य; समाजवादी राज्य था, जो उनके सत्य, नैतिकता और आध्यात्मिक मूल्यों की नींव पर खड़ा था। वे सम्पत्ति को धारण करने का भावार्थ भविष्य के लिए पूर्व योजना बनाने से लेते थे और मानते थे कि जो व्यक्ति सत्यशोधक है और विश्वजनीन प्रेम में आस्था रखता है वह कभी भी आने वाले कल की सोचकर संचय की प्रवृत्ति नहीं अपनाएगा।

गांधी जी के अनुसार संचय की प्रवृत्ति त्याग कर ही भविष्य के आदर्श समाजवादी जनतांत्रिक राज्य का निर्माण संभव है। कबीर के शब्दों में–

''कबीरा यह घर प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारे मुँह धरै, सो पैठे घर माहिं।।''

गांधी के समाजवादी राज्य की संकल्पना में आर्थिक समानता एक अनिवार्य तत्त्व है, जिसके अंतर्गत प्रत्येक नागरिक को पर्याप्त भोजन, निवास के उपयुक्त मकान और पहनने के लिए पर्याप्त खादी उपलब्ध होनी चाहिए। खादी के उत्पादन के स्रोत के रूप में अथवा हिंदुस्तान की तात्कालीन परिस्थितिगत आर्थिक परिदृश्य की आवश्यकता के अनुरूप गांधी जी की दृष्टि में चरखा अत्यंत महत्त्वपूर्ण उपादान एवं आर्थिक स्वाधीनता का प्रतीक था। गांधी जी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि ''मुझे याद नहीं पड़ता कि सन् 1908 तक मैंने चरखा या करघा कहीं देखा हो फिर भी मैंने 'हिन्द स्वराज' में यह माना था कि चरखे के जरिये हिंदुस्तान की कंगालियत मिट सकती है।''[9]

यद्यपि चरखे और करघे के माध्यम से भारत की गरीबी मिटाने के गांधी जी के विचार की कालांतर में आलोचना भी हुई। प्रख्यात आलोचक रामविलास शर्मा ने लिखा है कि ''चरखा चलाकर; करघे पर कपड़ा बुनकर भारत अपनी गरीबी मिटा सकता है, यह मंत्र उन्होंने सिद्ध करना चाहा। परंतु भारत दिन–पर–दिन गरीब होता जा रहा था। यहाँ मुख्य समस्या अन्न की थी।... गरीब आदमी अपनी आय का 80 प्रतिशत से अधिक भाग खाने के ऊपर और केवल 12 प्रतिशत भाग ही कपड़े के ऊपर ख़र्च करता है। इसलिए चरखा चलाने से, खद्दर पहनने से अन्न की समस्या हल न की जा सकती थी।''[10] वस्तुतः उस समय चरखे के माध्यम से वृहद स्तर पर सूत उत्पादित कर मुनाफा कमाकर देश में खपाना प्रायः असंभव था। स्वदेशी आंदोलन के समय गांधी जी के निकटतम सहयोगी उमर सोबानी जब उनकी मुलाकात एक परिचित मिल–मालिक से करवाते हैं तो वह भी सूत के उत्पादन हेतु नयी मिलें खोलने का सुझाव देता है। उस समय ओशो ने भी गांधी जी के चरखे–करघे पर ही आश्रित रहने एवं स्वदेशी का यही अर्थ ग्रहण करने की यह कहकर आलोचना की थी कि,''मुझे ऐसा प्रतीत हुआ दीख पड़ता है कि यदि हम गांधी के इस तकली–चर्खा के जीवन–दर्शन में डूबे रहे, उसी में अपनी शक्ति और समय नष्ट करते रहे तो यह देश औद्योगिक क्रांति में से नहीं गुजर सकेगा।''[11] निस्संदेह रामविलास शर्मा एवं ओशो शत–प्रतिशत गलत प्रतीत नहीं होते, लेकिन गांधी जी भी शत–प्रतिशत ग़लत प्रतीत नहीं होते। वस्तुतः गांधी मूलतः नैतिकता से ओतप्रोत व्यक्ति थे, जो कि तत्कालीन परिस्थितिवश राजनीतिक परिदृश्य में महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावी नायक के रूप में उभर आए थे। किंतु इसका अर्थ ये कदापि व्युत्पन्न नहीं करना चाहिए कि उनका राजनीतिक व अर्थशास्त्रीय चिंतन शून्य था। बकौल आनंद कुमार– ''बहुत से लोग समझते हैं कि उन्हें अर्थशास्त्र की समझ नहीं थी, क्योंकि उन्होंने कैपिटल के चार खंड नहीं लिखे थे, पर वे तो पक्के बनिया थे। वे कई तरह की धाराओं को देख व समझ रहे थे। हिंद स्वराज में उन्होंने तीन खंड लिखे हैं– एक में ब्रिटिश औद्योगिक पूँजीवाद और इग्लैंड की हालत की बात करते हैं (खंड 5)। 8वाँ खंड है हिंदुस्तान की दशा, जिसका सिरा सीधा जाकर मिलता है आर. सी. दत्त और दादा भाई नौरोजी से, जब गांधी जी रेल और उससे जुड़ी आर्थिक व्यवस्था की टीका करते हैं तब दादाभाई नौरोजी की पृष्ठभूमि रहती है। इसमें रेलवे और उसकी तकनीक का इतना सवाल नहीं है जितना रेलवे के हेतु का है।''[12]

रामविलास शर्मा द्वारा 'चरखा चलाकर करघे पर कपड़ा बुनकर भारत अपनी गरीबी मिटा सकता है' लिखकर तथा ओशो द्वारा' गांधी के तकली–चर्खा दर्शन में डूबे रहने' की बात कहकर आलोचना करने के संदर्भ में राजीव रंजन गिरि का यह कथन एक अलग आयाम प्रदान करता है कि ''...सकर्मक प्रयासों के कारण चरखा राष्ट्रीय आंदोलन का अनिवार्य उपादान बना। इसके माध्यम से स्वदेशी आंदोलन मज़बूत हुआ और गहरा भी। गांधी जी ने चरखे के जरिये अंग्रेजी साम्राज्यवाद को चुनौती दी। चरखे से हाथों को काम मिला। इसके सूत से लोगों को मिला पेट के लिए भोजन और तन ढँकने के लिए कपड़ा। इस हुनर ने लोगों को स्वावलंबी बनाया। आत्मसम्मान की भावना पल्लवित हुई। आम लोग स्वाधीनता की आर्थिकी समझने लगे।''[13] इस कथन से स्पष्ट है कि गांधी जी के अर्थशास्त्रीय चिंतन की तार्किकता और व्यावहारिकता पर प्रश्नचिह्न लगाने वाले नामचीन आलोचकों ने भी उनकी सैद्धांतिक आलोचना ही की थी। ऐसे नामचीन सैद्धांतिक आलोचकों ने भी गांधीवादी आर्थिक दर्शन के उपकरणों को अभी भी व्यावहारिकता की कसौटी पर कसकर नहीं देखा था। कालांतर में वैश्विक परिदृश्य में ऐसे अनेक उदाहरणों ने अंतरराष्ट्रीय अर्थशास्त्रियों का ध्यान आकर्षित किया जो गांधी जी के आर्थिक दर्शन की व्यावहारिक उपादेयता के ज्वलंत प्रमाण हैं तथा आधुनिक विश्व में सर्वाधिक चर्चित 'समावेशी विकास' के साधन होने के कारण यथाशीघ्र अपनाए जाने योग्य हैं। 1909 में गांधी जी द्वारा लिखी गई 'हिंद स्वराज' में विकास का स्वरूप संबंधी विवेचना से प्रेरित होकर अनेक अर्थशास्त्रियों ने अर्थव्यवस्था संबंधी नवाचार किए तथा लक्ष्य साधने में सफल रहे। बहुचर्चित लेखक आनंद कुमार के अनुसार–''तीन क्षेत्र ऐसे हैं जिनमें हिन्द स्वराज रोशनी दिखाता है। एक है इस शताब्दी का विकास का लक्ष्य और मैं कहता हूँ कि जो 19 रचनात्मक कार्यक्रम गांधी जी ने दिये,

वे इस शताब्दी के विकास के लक्ष्य के टिकाऊ होने की दशा में किसी भी बड़े अर्थशास्त्री की दवा से ज्यादा मुफीद हैं। उनमें से दो–एक ही चीज पकड़ी बाँग्लादेश के मोहम्मद युनूस ने और उन्हें नोबेल इनाम मिल गया। गरीब के दान की नहीं, पूँजी की व्यवस्था करो और फिर देखो, क्या नतीजा निकलता है। मोहम्मद युनूस का बाँग्ला ग्रामीण बैंक गांधी के रचनात्मक कार्यक्रमों में छिपी संभावनाओं का एक छोटा–सा उदाहरण है।''[14] यह कथन सिद्ध करता है कि गांधी जी के स्वयं के देश में ही उनके आर्थिक सिद्धांतों को पूर्वाग्रहवश उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया। यही कारण रहा कि विश्व में अनेक देशों में भी गांधीवादी आर्थिक दर्शन को उतनी महत्ता नहीं मिली, जितनी कि मिलनी चाहिए थी। भारत सहित विश्व के अनेक देश अर्थव्यवस्था का मार्क्सवादी या पूँजीवादी मॉडल अपनाकर, विकास बनाम विनाश के चक्रव्यूह में उलझकर अपने प्राकृतिक संसाधनों एवं घरेलू कुटीर उद्योगों से हाथ धो बैठे, किंतु किसी को भी अर्थव्यवस्था के माध्यम से स्वयंप्रभुता व संप्रभुता बनाये रखते हुए समावेशी विकास की राह पर चलने के लिए गांधीवादी आर्थिक दर्शन की सुध नहीं आयी। डेमोक्रेसी : रियल एंड डिसेप्टिव के संकलनकर्ता आर.के. प्रभु की मान्यता है कि– ''हिन्द स्वराज ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण गांधीवाद के साथ एक बहुत बड़ा अन्याय यह हुआ कि उसके अनुसार राजनीतिक, आर्थिक व्यवस्था चलाने का प्रयास न के बराबर हुआ। भारत ही नहीं बल्कि दुनिया की किसी भी राजसत्ता ने गांधीवादी मॉडल को अपनाने की कोशिश नहीं की। पूँजीवादी मॉडल को अपनाया गया और उसमें भयंकर खामियाँ पायी गयीं। इसी तरह मार्क्सवादी मॉडल को अपनाया गया और वह असफल हो गया। गांधीवादी मॉडल को तो अपनाया ही नहीं गया, इसलिए इसकी अप्रासंगिकता की बात करना बहुत बेमानी है।'' आर्थिक विकास हेतु गांधीवादी मॉडल को नहीं अपनाने के पीछे संभवतः भारतीय अर्थवेत्ताओं की यह धारणा रही होगी कि तत्कालीन आधुनिक–काल में नैतिकता, अहिंसा और सत्य के केंद्रीय विचार से परिचालित किसी भी मॉडल के सफल होने की संभावना न्यूनतम से अधिक नहीं हो सकती। बिना विचारे या अनुप्रयुक्ति के प्रयास के यह सहज रूप से मान लिया गया कि अनैतिकता, हिंसा और असत्य से चलायमान वैश्विक अर्थव्यवस्थाओं में गांधी जी के आर्थिक–दर्शन के उपकरणों का व्यावहारिक रूप से उपादेय होना संभव ही नहीं है। तत्कालीन अर्थशास्त्रीय चिंतकों में भी मानो यह संदेह व्याप्त हो गया था कि –

''नव समाज साधे नित इष्ट
वेद–वाक्य बन चुके क्लिष्ट
अमर्ष हो गया है अमर्त्य
कब तक जूझ सकेगा लेकर
हाथ में रथ का टूटा पहिया
षड़यंत्रों के चक्रव्यूह में
खाकर तीखे तीर हृदय पर
अभिमन्यु–सा बालक सत्य?''

किंतु कुछ परवर्ती आलोचकों ने सिद्ध किया कि अर्थव्यवस्था का गांधीवादी मॉडल न केवल भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल था, बल्कि विकसित व अन्य विकासशील देशों में भी अनुप्रयुक्त किए जाने पर सफल होने में समर्थ था। संभवतः भारत और भारत के अर्थशास्त्रीय चिंतकों ने गांधी जी को एक राजनीतिक व नैतिक व्यक्तित्व के रूप में ही स्वीकारा इसीलिए प्रखर चिंतक आनंद कुमार रेखांकित करते हैं कि, ''...भारत में गांधी की तलाश करने पर वह कुछ आश्रमों और अभियानों में ही मिलेंगे, लेकिन अगर आप दुनिया की तरफ निगाहें दौड़ायें तो दक्षिण अफ्रीका के रंग–विरोधी आन्दोलन से लेकर यूरोप के पर्यावरण आन्दोलन और ब्राजील के निर्धनता निवारण प्रयासों से लेकर भारत की ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना और महिला सशक्तिकरण योजना, सब में गांधी की गूँज सुनाई पड़ती है।''[15]

स्पष्ट है कि अनुप्रयुक्ति के बिना ही गांधीवादी आर्थिक–दर्शन के उपकरणों को ख़ारिज़ कर दिया गया था। गांधी और उनका आर्थिक दर्शन तब भी उपादेय था और आज भी है। लघु उत्पादकों को मुख्य भूमिका में रखते हुए देश में उपलब्ध संसाधनों को आत्मनिर्भर, लोकतांत्रिक एवं विकेंद्रित शासन–व्यवस्था के माध्यम से पूर्ण रोज़गार और आर्थिक–सामाजिक न्याय के साथ विकास की भावना से आवश्यकतानुसार जन–जन को सुलभ करवाने का विकल्प गांधी–दर्शन में उपलब्ध है, जिसे हम उनके आर्थिक–दर्शन के उपकरणों के माध्यम से अपनाकर समतामूलक समाज के निर्माण की दिशा में क़दम उठा सकते हैं।

संदर्भ–सूची

1. एम. के. गांधी, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 2005, पृ. 322
2. रमेशचंद्र : अहिंसा के शाश्वत सूत्र, हिन्दी बुनियाद (अक्टूबर से नवम्बर, 2022, अंक : 15), राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ. 20
3. रामलखन मीणा, फिर–फिर पढ़ें 'हिंद स्वराज' को, हिंदी बुनियाद (जून से नवम्बर, 2019, अंक : 04) राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ. 37
4. पी.के.त्यागी, भारतीय राजनीतिक विचारक, विश्वभारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2013, पृ. 427
5. के. के. पाठक : सर्वोदय यानी सबका उदय, हिंदी बुनियाद (जून से नवम्बर, 2019, अंक : 04), राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ. 16
6. पी. के. त्यागी, भारतीय राजनीतिक विचारक, विश्वभारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2013, पृ. 415
7. वही, पृ. 417
8. आंनद कुमार, गांधी–लोहिया–जयप्रकाश और हमारा समय, नयी किताब, नवीन शाहदरा, दिल्ली, पृ. 34–35
9. एम. के. गांधी, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 2005, पृ. 442
10. रामविलास शर्मा, गांधी, आंबेडकर, लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याएँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ. 307
11. ओशो : अस्वीकृति में उठा हाथ, डायमंड पाकेट बुक्स, नई दिल्ली, 2002, पृ. 173
12. आंनद कुमार, गांधी–लोहिया–जयप्रकाश और हमारा समय, नयी किताब, नवीन शाहदरा, दिल्ली, पृ. 25
13. राजीव रंजन गिरि, गाँधी : वाद से परे, मधुमती (4 अप्रैल,2019), सचिव, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, पृ. 34–35
14. आंनद कुमार, गांधी–लोहिया–जयप्रकाश और हमारा समय, नयी किताब, नवीन शाहदरा, दिल्ली, पृ. 27
15. वही, पृ. 48

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 287-290

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

डॉ. भीमराव अम्बेडकर का आर्थिक चिंतन

*डॉ. अरुण कुमार सिंह**

सारांश—*डॉ. भीमराव अंबेडकर का आर्थिक चिंतन भारतीय समाज की आर्थिक और सामाजिक संरचना को गहराई से प्रभावित करने वाला था। वे सिर्फ संविधान निर्माता या सामाजिक सुधारक ही नहीं थे, बल्कि एक दूरदर्शी आर्थिक विचारक भी थे। उनका विश्वास था कि केवल राजनीतिक स्वतंत्रता पर्याप्त नहीं, बल्कि आर्थिक समानता और सामाजिक न्याय भी उतने ही आवश्यक हैं। उन्होंने कृषि सुधार, औद्योगीकरण, श्रमिक कल्याण, मुद्रा नीति और राज्य की आर्थिक भूमिका जैसे विषयों पर गहन विचार किया। उन्होंने भूमि के राष्ट्रीयकरण और सहकारी कृषि की वकालत की, जिससे ग्रामीणों को न्याय मिल सके और आर्थिक असमानता समाप्त हो। औद्योगीकरण को उन्होंने देश की समृद्धि का आधार माना और कहा कि राज्य को उद्योगों पर नियंत्रण रखना चाहिए ताकि आय का समान वितरण हो सके। श्रमिकों के अधिकारों के लिए उन्होंने न्यूनतम वेतन, सामाजिक सुरक्षा, आठ घंटे कार्य दिवस जैसी योजनाएँ लागू कराईं। संविधान में 'समान कार्य के लिए समान वेतन' का सिद्धांत सम्मिलित करना उनका ऐतिहासिक योगदान था। डॉ. अंबेडकर ने स्पष्ट किया कि आर्थिक विकास तभी सार्थक है जब समाज के सभी वर्गों को बराबरी का अवसर मिले, विशेषकर महिलाओं और वंचित समुदायों को। उन्होंने जल, ऊर्जा और सार्वजनिक व्यय से जुड़ी योजनाओं में पारदर्शिता और जवाबदेही पर बल दिया। उनका आर्थिक चिंतन आज भी भारत की नीतियों को सामाजिक न्याय और समानता की दिशा में प्रेरित करता है और यह सिद्ध करता है कि सच्चा लोकतंत्र तभी संभव है जब आर्थिक अवसर समान रूप से वितरित हों।*

मुख्य शब्द—*श्रमिक कल्याण, आर्थिक संसाधन, व्यापारिक लाभ, सामाजिक आय, लोकतंत्र, समान वेतन, सामाजिक न्याय आदि।*

प्रस्तावना—भारत के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक इतिहास में डॉ. भीमराव अंबेडकर का योगदान अत्यंत व्यापक और गहन है। यद्यपि उन्हें प्रायः एक महान विधिवेत्ता, संविधान निर्माता और सामाजिक सुधारक के रूप में स्मरण किया जाता है, किंतु उनका आर्थिक चिंतन भी उतना ही महत्त्वपूर्ण और यथार्थवादी है। डॉ. अंबेडकर का विश्वास था कि सामाजिक न्याय की स्थापना केवल विधायी सुधारों से नहीं, बल्कि आर्थिक असमानताओं को दूर किए बिना संभव नहीं है। उन्होंने अपने विचारों और कार्यों के माध्यम से यह स्पष्ट किया कि जब तक समाज के अंतिम व्यक्ति को आर्थिक रूप से सशक्त नहीं किया जाता, तब तक लोकतंत्र और स्वतंत्रता केवल एक मिथ्या स्वप्न बनकर रह जाएंगे। डॉ. अंबेडकर का आर्थिक दृष्टिकोण व्यापक था, जिसमें उन्होंने कृषि, भूमि सुधार, औद्योगीकरण, श्रमिक कल्याण, मुद्रा नीति और राज्य की आर्थिक भूमिका जैसे विषयों पर ठोस और क्रांतिकारी विचार प्रस्तुत किए। उनके आर्थिक विचार न केवल उनकी बौद्धिक दृष्टि को दर्शाते हैं, बल्कि यह भी प्रमाणित करते हैं कि वे एक समावेशी, न्यायपूर्ण और आत्मनिर्भर भारत के निर्माण के लिए कितने प्रतिबद्ध थे। वर्तमान समय में जब आर्थिक विषमता, बेरोजगारी और सामाजिक असमानता जैसे प्रश्न पुनः गंभीर रूप में हमारे सामने उपस्थित हैं, तब अंबेडकर का आर्थिक चिंतन और भी अधिक प्रासंगिक हो जाता है।

1. सामाजिक न्याय की अवधारणा और डॉ. अम्बेडकर का आर्थिक दृष्टिकोण—डॉ. भीमराव अंबेडकर का आर्थिक चिंतन भारतीय समाज की संरचना और विकास की दिशा को नया आयाम देने वाला था। वे केवल एक सामाजिक सुधारक या संविधान निर्माता नहीं थे, बल्कि एक गहरे आर्थिक दृष्टिकोण वाले विचारक भी थे। उनका मत था कि किसी भी समाज की वास्तविक प्रगति केवल राजनीतिक स्वतंत्रता से नहीं, बल्कि आर्थिक समानता और सामाजिक न्याय से सुनिश्चित की जा सकती है। वे पूंजीवाद और सामंतवाद के विरोधी

* *एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज, आजमगढ़, उ.प्र.*

थे और समाजवादी नीतियों के समर्थक थे, किंतु वे एक अति–नियंत्रित राज्य व्यवस्था के भी पक्षधर नहीं थे। उनका विचार था कि अर्थव्यवस्था ऐसी हो, जो व्यक्ति की स्वतंत्रता को बाधित किए बिना समाज के प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर प्रदान करे। डॉ. अंबेडकर का आर्थिक चिंतन मुख्य रूप से कृषि, औद्योगीकरण, श्रमिक कल्याण, मुद्रा नीति और राज्य की आर्थिक भूमिका पर केंद्रित था। वे भारतीय अर्थव्यवस्था की मूलभूत समस्याओं को गहराई से समझते थे और उनका मानना था कि जब तक देश में आर्थिक असमानता बनी रहेगी, तब तक वास्तविक लोकतंत्र की स्थापना संभव नहीं है। उन्होंने आर्थिक सुधारों को सामाजिक न्याय के साधन के रूप में देखा और यह स्पष्ट किया कि ''आर्थिक संसाधनों पर कुछ मुट्ठीभर लोगों का अधिकार लोकतांत्रिक मूल्यों के विरुद्ध है। वे इस विचार को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं, राजनीतिक लोकतंत्र तब तक अधूरा है, जब तक वह सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र के साथ जुड़ा न हो।''[1] यहां साफ तौर पर डॉ. अम्बेडकर आर्थिक आजादी की बात कर रहे हैं, जो सभी व्यक्तियों को इसलिए भी मिलनी चाहिए कि वह भारत में रहता है, यहाँ के संसाधनों में जीता है और अपना कार्य करता है।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर का आर्थिक चिंतन भारतीय सामाजिक और आर्थिक संरचना की जड़ों तक पहुँचता है। उन्होंने कृषि और भूमि सुधार को आर्थिक परिवर्तन का मूल आधार माना, क्योंकि भारत की परंपरागत अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि पर आधारित थी, लेकिन इसकी संरचना अत्यंत विषम और शोषणकारी थी। अधिकांश उपजाऊ भूमि कुछ प्रभावशाली जमींदारों के हाथों में सीमित थी, जबकि कृषक वर्ग, विशेषतः दलित और पिछड़े वर्ग, भूमिहीन थे और बिना अधिकार के श्रम करने को बाध्य थे।[2] डॉ. अम्बेडकर मानते थे कि किसानों की दयनीय स्थिति के तीन मुख्य कारण हैं : (1) छोटी और बिखरी जोत, (2) कृषि की असंगठित प्रणाली और (3) सरकारी नीतियों में किसानों की उपेक्षा। उन्होंने भूमि के राष्ट्रीयकरण का प्रस्ताव रखा, जिससे राज्य भूमि का नियंत्रण लेकर उसका न्यायसंगत वितरण कर सके और कृषकों को उनके श्रम का समुचित लाभ मिल सके।[3] इसके साथ ही उन्होंने सहकारी कृषि की अवधारणा को भी महत्वपूर्ण बताया, जिसके अंतर्गत छोटे किसानों की भूमि को एकत्र कर सामूहिक रूप से आधुनिक कृषि तकनीकों के साथ खेती की जा सके। उनकी दृष्टि में ''सहकारी कृषि न केवल कृषि उत्पादन को बढ़ाने का साधन थी, बल्कि यह ग्रामीण सामाजिक संरचना में समानता लाने और आर्थिक स्वतंत्रता दिलाने का भी एक सशक्त माध्यम था।''[4] अम्बेडकर ने कृषि क्षेत्र में श्रमिकों के अधिकारों, उत्पादकता में सुधार, और राज्य द्वारा नियमन की भूमिका पर बल देते हुए भारतीय कृषि व्यवस्था को समावेशी और न्यायपूर्ण रूप देने का मार्ग प्रशस्त किया। प्रसिद्ध समाजशास्त्री एम.एन. श्रीनिवास लिखते हैं कि ''अंबेडकर का कृषि सुधार का दृष्टिकोण भारतीय किसानों की आर्थिक स्वतंत्रता और सामाजिक उत्थान का एक सशक्त माध्यम था।''[5] यही नहीं इनके अतिरिक्त आज सम्पूर्ण देश भी इस बात पर सहमति देता है कि जब तक किसान–मजदूर सुखी नहीं रहेगा तब तक देश धन–धान्य नहीं हो सकता।

2. औद्योगीकरण, मुद्रा नीति और राज्य की आर्थिक भूमिका–डॉ. अंबेडकर ने आर्थिक विकास में दूसरा महत्वपूर्ण सवाल उन्होंने औद्योगीकरण को बताया। उनका मानना था कि केवल कृषि पर आधारित अर्थव्यवस्था से राष्ट्र की समृद्धि संभव नहीं है। वे औद्योगीकरण को आर्थिक विकास के लिए अनिवार्य मानते थे। उनका मत था कि भारत को पश्चिमी देशों की तरह एक औद्योगिक राष्ट्र बनना चाहिए, ताकि कृषि पर बढ़ती जनसंख्या का दबाव कम हो और लोगों को रोजगार के नए अवसर मिलें। उन्होंने बड़े उद्योगों के विकास की वकालत की और कहा कि राज्य को उद्योगों पर नियंत्रण रखना चाहिए, जिससे आय का समान वितरण संभव हो। वे पूंजीवादी व्यवस्था के विरोधी थे, क्योंकि इसमें आर्थिक संसाधन केवल कुछ लोगों के हाथों में केंद्रित हो जाते हैं। उनके अनुसार, ''यदि राज्य उद्योगों का स्वामी होगा, तो इससे आर्थिक समानता स्थापित करने में सहायता मिलेगी।''[6] डॉ. अंबेडकर ने भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनकी पी–एच.डी. शोध ''द प्रॉब्लम ऑफ द रुपी'' में मुद्रा नीति, मौद्रिक स्थिरता और आर्थिक नियोजन के महत्त्व पर विस्तार से चर्चा की गई थी, जिससे प्रभावित होकर ब्रिटिश सरकार ने 1935 में रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया (RBI) की स्थापना की।

डॉ. अंबेडकर ने आर्थिक विकास को केवल उद्योगों तक सीमित नहीं रखा, बल्कि वे श्रमिक वर्ग की स्थिति को सुधारने के लिए भी प्रतिबद्ध थे। उन्होंने श्रमिकों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए कई महत्त्वपूर्ण कदम उठाए। वे इस विचार के पक्षधर थे कि श्रमिकों को न्यूनतम वेतन, सामाजिक सुरक्षा, बीमा और अन्य सुविधाएँ मिलनी चाहिए। उनके प्रयासों से भारतीय श्रम कानूनों में कई महत्त्वपूर्ण सुधार किए गए। उन्होंने आठ घंटे के कार्यदिवस, साप्ताहिक अवकाश, मातृत्व लाभ, मजदूरों के लिए बीमा और भविष्य निधि जैसी सुविधाओं की वकालत की। प्रसिद्ध समाजशास्त्री आंद्रे बेटाइल लिखते हैं कि ''अंबेडकर भारतीय श्रमिकों के अधिकारों के लिए संघर्ष करने वाले सबसे प्रभावशाली नेता थे, जिन्होंने श्रमिक नीति को सामाजिक न्याय से जोड़ा।''[7]

3. श्रम के आधार पर समान वेतन और सार्वजनिक संसाधनों का न्यायिक उपयोग–राज्य की आर्थिक भूमिका को स्पष्ट करते हुए भारत की भविष्योन्मुखी चर्चा में डॉ. अम्बेडकर ने राज्य को महत्व दिया। वे आर्थिक नीतियों में राज्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका के पक्षधर थे। वे मानते थे कि सरकार को केवल कानून बनाने तक सीमित नहीं रहना चाहिए, बल्कि उसे आर्थिक क्षेत्र में सक्रिय रूप से हस्तक्षेप भी करना चाहिए। उनका विचार था कि राज्य को बुनियादी उद्योगों और सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों का संचालन करना चाहिए, जिससे आर्थिक संसाधनों का न्यायसंगत वितरण सुनिश्चित हो सके। उनका यह विचार आज भी प्रासंगिक है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री अर्मत्य सेन लिखते हैं कि ''डॉ. अंबेडकर का आर्थिक दृष्टिकोण भारत की अर्थव्यवस्था को सामाजिक समानता के आधार पर विकसित करने का प्रयास था, जो आज भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है।''[8] इस प्रकार डॉ. अंबेडकर का आर्थिक चिंतन आधुनिक भारत की आधारशिला रखने में अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहा है। उन्होंने आर्थिक विकास को केवल पूँजी संचय और उत्पादन से नहीं जोड़ा, बल्कि इसे सामाजिक न्याय और समानता से जोड़ा। उनके आर्थिक विचारों ने भारतीय संविधान में आर्थिक और सामाजिक अधिकारों के समावेष को प्रेरित किया।

डॉ. अम्बेडकर सबसे पहले श्रम आधारित व्यवस्था पर कंट्रोल करना चाहते थे क्योंकि तत्कालीन दौर में मजदूरों की हालत सबसे गंभीर थी। उनकी ड्यूटी पर आने का समय तो था, किन्तु जाने का कभी निश्चित नहीं था। 12 घंटे से अधिक समय तक उनसे काम लिया जाता था। बदले में पूर्ण वेतन भी नहीं मिलता था। इसलिए कई अर्थशास्त्रियों और समाजशास्त्रियों ने इस बात पर बल दिया कि समान कार्य के लिए समान वेतन मिलना चाहिए। इस क्रम में डॉ. अम्बेडकर प्रमुख व्यक्ति थे, जिन्होंने वायसराय आधिकारिक सभा में श्रम मंत्री के रूप में औद्योगिक विशेषज्ञों के रूप में भारत में 'समान कार्य के लिए समान वेतन' कानून लाया। भारतीय संविधान का मसौदा तैयार करते समय ''डॉ. अम्बेडकर ने अनुच्छेद 39(डी) को समाहित करने के लिए महत्वपूर्ण प्रतिबद्धता निभाई, जो राज्य को समकक्ष के लिए समान वेतन की पुष्टि करने के लिए एक निर्णय लेने के लिए सम्बन्धित है।''[9] यह उन्हीं के द्वारा इंगित किया गया है। उसमें यह भी स्पष्ट है कि महिलाओं की समाजिक स्थिति और निष्पक्षता के निर्माण के बिना वित्तीय सुधार में समर्थन की कल्पना नहीं की जा सकती है। जो भी हो, भारत में महिलाओं की भयानक आर्थिक स्थिति के कारण भारत की आर्थिक उन्नति बाधित है। इस प्रकार, महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार करना और उन्हें समान अधिकार और व्यवसाय का अवसर देना महत्वपूर्ण है।

आर्थिक नीतियों के अन्य आधिकारिक और तथ्यपूर्ण बातों का विश्लेषण बाबा साहब ने किया है। नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कार्यों की चर्चा करते हुए 1949 में हमारे संविधान के निर्माण के दौरान कहा था कि सरकारों को जनता से प्राप्त संसाधनों को न केवल नियमों, कानूनों और विनियमों के अनुसार खर्च करना चाहिए बल्कि यह भी देखना चाहिए कि ''वफादारी, ज्ञान और अर्थव्यवस्था'' सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा व्यय के कृत्यों में चला गया है। इसलिए सरकार के लिए मूल इरादों के प्रति वफादार होना और भी आवश्यक हो जाता है।'' डॉ. अम्बेडकर ने दामोदर महानदी बेसिन पर बहुआयामी परियोजना को भी अंजाम दिया। जलग्रहण क्षेत्र को विकसित करने के लिए बिजली उत्पादन करने के लिए, बाढ़ को पूर्ण विराम देने के लिए, सिंचाई के लिए पानी की आपूर्ति, जलमार्ग के रूप में और उन सभी उद्देश्यों के लिए औद्योगिक उपयोग के लिए परियोजनाओं को पूरा किया। उन्होंने बिजली उत्पादन को भी दिशा दी। बिजली की निरंतर और समृद्ध उपलब्धता बहुत महत्वपूर्ण है। उन्होंने नई जलनीति, जलमार्ग, जल निकासी व्यवस्था आदि मुद्दों पर भी अपने विचार व्यक्त किए। इस प्रकार अर्थ के सभी क्षेत्रों में उनकी पैनी दृष्टि रही। उनका दृष्टिकोण इस बात पर भी बल देता है कि जब तक समाज के सभी वर्गों को समान आर्थिक अवसर नहीं मिलते, तब तक वास्तविक लोकतंत्र स्थापित नहीं हो सकता। वे केवल श्रमिकों और किसानों के अधिकारों की बात नहीं करते थे, बल्कि वे एक ऐसे समाज की परिकल्पना करते थे जहाँ सभी को समान आर्थिक अवसर मिलें। उनके विचार आज भी भारत की आर्थिक नीतियों को दिशा प्रदान कर रहे हैं और यह सिद्ध करते हैं कि आर्थिक विकास का वास्तविक उद्देश्य समाज के हर व्यक्ति को गरिमा और आत्मनिर्भरता प्रदान करना होना चाहिए।

निष्कर्ष–डॉ. भीमराव अंबेडकर का आर्थिक चिंतन केवल आर्थिक नीतियों का प्रस्ताव मात्र नहीं था, बल्कि वह सामाजिक न्याय, समानता और मानवीय गरिमा पर आधारित एक समावेशी विकास दृष्टिकोण था। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि जब तक समाज के प्रत्येक वर्ग को आर्थिक अवसर और संसाधनों तक समान पहुँच नहीं मिलेगी, तब तक लोकतंत्र अधूरा रहेगा। कृषि, उद्योग, श्रम, मुद्रा नीति और राज्य की भूमिका पर उनके विचार आज भी भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए मार्गदर्शक सिद्ध होते हैं। उन्होंने अर्थशास्त्र को केवल पूँजी संचय से नहीं जोड़ा,

बल्कि उसे सामाजिक दायित्वों और नैतिक मूल्यों से जोड़ा। अंबेडकर का आर्थिक दृष्टिकोण न केवल उनके समय के लिए, बल्कि आज के संदर्भ में भी अत्यंत प्रासंगिक, प्रेरणादायक और क्रांतिकारी है।

सन्दर्भ–सूची

1. डॉ. भीमराव अम्बेडकर : रुपए की समस्या, संगे पब्लिशिंग हाउस, न्यू सं. 2024, पृ.–45

2. डॉ. बी. आर. अम्बेडकर : प्रॉब्लम्स ऑफ रूरल डेवलपमेंट इन इंडिया, डॉ. अंबेडकर लेखन और भाषण, खंड–14, महाराष्ट्र सरकार प्रकाशन, मुंबई, 1995, पृ. 88

3. Vasant Moon (ed.), *Dr. Babasaheb Ambedkar : Writings and Speeches*, Vol. 1, Government of Maharashtra, 1979, p. 413.

4. Marc Galanter : *Law and Society in Modern India*, Oxford University Press, 1989, p. 56

5. एम. एन. श्रीनिवास, सोशल चेंज इन मॉडर्न इण्डिया, ओरिएंट, लांगमैन, इण्डिया, सं. 2019, पृ. 127

6. एम. एन. श्रीनिवास : सोशल चेंज इन मॉडर्न इण्डिया, लांगमैन, इण्डिया, सं. 2019, पृ. 134

7. आंद्रे बेटाइल : सोशल स्ट्रक्चर ऑफ इण्डिया, एशिया पब्लिशिंग हाउस, सं. 1969, पृ. 168

8. अमर्त्य सेन : डवलपमेंट ऐज फ्रीडम, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, सं. 1999, पृ. 198

9. डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के आर्थिक विचार : एक सिंहावलोकन, Article 8, Om Prakash Ram, Satya Ratna Sing and Shiv Shankar, The Indian Economic Journal, 2013, 61-63

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Tourism : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 291-297

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Haridwar The Gateway to the God Goddess Essence Of the Ganga/Ganges Himalaya Mountains, Hinduism

*Dr. Sarla Shahi**

The pilgrimages in the Himalayas are the oldest form of tourism. The pilgrims have been travelling to the various religious centres for satisfying their spiritual beliefs. Now a days the concept is changing and the tourists from India and abroad also Visit these beautiful mountains for satisfying their aesthetic needs, spirit of adventure and for thrill, enjoyment and health. In the Garhwal Himalayas, there is a rapid construction of roads, hotels and other tourists complexes forthese modern tourists. Furthermore, before any one visits these religious places, it is almost sure that he will take a holy dip in river Ganga at Haridwar. Haridwar has been a revered centre for pilgrimage ever since the Pauranic age when it was known as Mayapuri and it has also been mentioned by the Chinese traveller Huien Tsang in his memoirs. It is also said that Haridwar has been sanctified by the presence of three gods-Brahma, Vishnu, and Mahesh. Lord Vishnu said to have left his footprint on a stone that is set in the upper wall of Hari-ki-Pauri where the holy Ganga touches it all the time. Devout believers feel that they can go to heaven by getting their salvation after a dip in the sacrèd Ganga at Haridwar.

The city is situated on the right bank of the Ganges river, at the foothills of the Shivalik ranges. Haridwar lies in doab region where people speak khari boli Haridwar is regarded as a holy place for Hindus, hosting important religious events and serving as a gateway to several prominent places of worship. Most significant of the events is the Kumbha Mela, which is celebrated every 12 years in Haridwar. During the Haridwar Kumbh Mela, millions of pilgrims, devotees, and tourists congregate in Haridwar to perform ritualistic bathing on the banks of the Ganges to wash away their sins to attain moksha.

The Region : In the Garhwal region, the major human settlements in the catchment area of the Bhagirathi are Gangotri, Harsil, Bhatwari, Uttarkashi, and Tehri. Similarly, the major human settlements in the catchment area of the Alaknanda are Badrinath, Vishnuprayag, Chamoli, Karanprayag, Rudraprayag, and Srinagar Garhwal. The two parent streams, i.e., the Bhagirathi and the Alaknanda meet at Devprarag (460 m MSL) and form the river Ganga which cuts across the Shiwalik hills at Rishikesh-Hardwar. It may be mentioned that Tourist activity at Badrinath, Gangotri, and Uttarkashi is seasonal, from the end of April to October-November the peak activity being during May-June. But at

Rishikesh and Haridwar, the Tourists and Pilgrims throng in thousands all the year round. On comparing the water quality values at Uttarkashi, Devprayag and Rishikesh (the highest tourist activitiy being at Rishikesh) we find a considerable deterioration in the water quality values. For example, the values of dissolved oxygen are reduced in the lower stretch and the bacterial counts are increased due to more load of organic pollution. The increasing trend of free carbon dioxide, and biochemical oxygen demand towards the lower stretch of the Ganga also indicates deterioration in water quality which may be attributed to population pressure (including tourist activity) and more pollution.

The Haridwar township lies between 29°57' 15'N to 29°59'15' latitudes and 78°5'30'E to 78°12'E

* *Ph.D., Tourism, H.N.B Garhwal University Srinagar, Garhwal*

longitudes. Literally meaning "The door to God', Haridwar is a beautiful town, nestling at the foot of the Shiwalik moun- tain ranges from which the Ganga emerges on the plains in all its vigour. It is located in the narrow gorge of Shiwaliks on the right bank of river Ganga and covers an area of 12.03 sq km alongwith Kankhal and Jwalapur. The Shiwalik ranges named after God Shiva, were deposited in a long, narrow depression in between rising Himalayas and the Penih-sular shield. The deposits were folded and raised to present topography during the concluding phases of Himalayan orogeny (Pleistocene). Topographically, it belongs to the mountains but geologically to the plains on the basis of character of the composing rocks. It is drained by the iver Ganga. The climate is humid and subtropical. December-January are the coldest months (mean temp. 56°F) and May-June (mean temp. 90°F) are the hottest months here. The monsoon generally breaks by about the end of June and the rains continue until about the middle of September (annual rainfall 140cm), July and August receiving its maximum quantity. The forests comprise of Sal, which is broadly classified as Doon Valley Sal and Shiwalik Sal but in order to fit in with Champion & Seth's (1964) classification, the three sub-types, viz. moist Shiwalik Sal forest, Moist Bhawar Dun Sal Forest and Dry Shiwalik Sal Forest, have been recognized. The composition of the forests is sal, bamboo, khair, sissoo, ber, mango, rohini and semal. The wildlife in the region comprises of Elephants, Sambhar, Chitals, Pigs, Porcupines, Jackals, Udbilao, and Monkeys.

Season Of Pilgrimage Arrival in Haridwar : It is a well-known fact that usually the tourist influx in Haridwar is due to its religious importance. Every month in a year has special occasions when people from various parts of the world come and take a holy dip in the river Ganga. Though the tourist activities continue the year round, during the Yatra period there is a great rush of religious tourists. There are two Yatra seasons, viz., Bengali season during September-October and the other Maharastrian and Rajasthani season between February to May. In any year there are three great bathing festivals, Makar San- kranti (January), Baisakhi (April), and Ganga Dusehra (June). Huge rush of people changes the population structure of the city. This in turn creats problems of shelter, food and transport, etc. and for satisfying these needs, many changes are taking place regularly in the environment i.e. natural, social, económic, and cultural. As a result of this, Haridwar and its environs which were once covered with beautiful lush green forests, have now become changed to merely a cultural entity.

The Ganga/Ganges Essence of Hinduism/Human : According to legend, it was in Haridwar that goddess Ganga descended when Shiva released the mighty river from the locks of his hair. The River Ganga, after flowing for 253 kilometers (157 mi) from its source at Gaumukh at the edge of the Gangotri Glacier, enters the Gangetic Plain for the frst time at Haridwar, which gave the city its ancient name, Gangadwara. In the seriptures, Haridwar has been variously mentioned as Kapilasthana, Gangadvâraul and Mayapuri. It is also an entry point to the Char Dham (the four main centres of pilgrimage in Utarakhand viz, Badrinath, Kedarnath, Gangotri, and Yamunotri),. In he Vana Parva of the Mahabharata, where sage Dhaumya tells Yudhishthira about the tirthas of India, Gangadvâra, Haridwar and Kankhal, have been referred to the text also mentions that Sage Agastya did penance here, with the help of his wife, Lopamudra (the princess of Vidharba). Sage Kapila is said to have an ashram here giving it, its ancient name, Kapila or Kapilasthana. The legendary king, Bhagiratha, the great-grandson of the Suryavamsha King Sagara (an ancestor of Rama), is said to have brought the river Ganges down from heaven, through years of penance in Satya Yuga, for the salvation of 60,000 of his ancestors from the curse of the Sage Kapila. This is a tradition continued by thousands of devout Hindus, who bring the ashes of their departed family members, in hope of their salvation, Vishnu is said to have left his footprint on the stone that is set in the upper wall of Har Ki Pauri, where the Ganges touches it at all times.

Haridwar came under the rule of the Maurya Empire (322-185 BCE), and later under the Kushan Empire (1st-3rd centuries). Archaeological findings have proved that terra cotta culture dating between 1700 BCE and 1200 BCE existed in this region. First modern era written evidence of Haridwar is found in the accounts of a Chinese traveller, Huan Tsang, who visited India in 629 CE. during the reign of King Harshavardhana (590-647) records Haridwar as 'Mo-yu-lo', the remains of which still exist at

Mayapur, a little to the south of the modern town. Among the ruins are a fort and three temples, decorated with broken stone sculptures, he also mentions the presence of a temple, north of Mo-yu-lo called 'Gangadvara', Gateway of the Ganges.

"O Yudhishthira, the spot where Ganga rusheth past, cleaving the foremost of mountains which is frequented by Gandharvas and Yakshas and Rakshasas and Apsaras, and inhabited by hunters, and Kinnaras, is called Gangadwara (Haridwar). O King, Sanatkumara regardeth that spot visited by Brahmarshis, as also the Tirtha Kanakhala (that is near to it), as sacred." The Mahabharata, Vana Parva: Tirthayatra Parva: Section XC.

Hridwar : Haridwar district, covering an area of about 2,360, km² (910 sq mi), is in the southwestern part of (3.7 mi) from Rishikesh, and Laldhang gate is 25 km (16 mi) from Kotdwara. Motichur, Ranipur and Chilla Gates are just about 9 km (5.6 mi) from Haridwar. Kunaon Gate is 6 km different gates; the Ramgarh Gate and Mohand Gate are within 25 km (16 mi) of Dehradun, while the of the district, making it an ideal destination for wildlife and adventure lovers. Rajaji is accessible through Begham Nadi etc.321 A large part of the district is forested, and Rajaji National Park is within the bounds well wooded. Other minor seasonal streams are Ranipur Rao, Pathri Rao, Ravi Rao, Harnaui Rao, The river Ganges flows in a series of channels separated from each other called aits, most of which are and generally cold, except in the monsoon, during which soil from the upper regions flows The Ganges emerges from the mountains to touch the plains. down into it.

Pandas play an important role in the life of the city, arranging accommodation and puja, besides sight-seeing for their 'yajmans. They keep amazing up-to date records of their 'yajmans' going back to several generation, making it quite easy for visitors to find out if their ancestors had made a pilgrimage. Some are well versed in Hindu philosophy as wel as public relations. The bustling market, replete with vegetarian restaurants, is chock-full of shops stuffed with food-stuffs, travel goods and souvenirs.

Some Important Places Of Tourist interests are Hari-ki-Pauri, Bhim- goda Tank, Parmarth Ashram, Saptarishi Ashram and Sapt Sarovar, Daksh Mahadev Temple and Sati Kund Kankhal, Chandi Devi Temple, Mansa Devi Temple, Pawan Dham, Bharat Mata Mandir, and Doodhadhari Temple etc. and these are being described below HARI-KI-PAURI: This is the most sacred bathing Ghat at Haridwar. Every 12 years the Kumbh and every 6 years the Ardh-Kumbh fairs are held here. Arti of the Ganga performed daily after sunset, is a treat to the ears.

Bhimgoda Tank : This is on the way to Rishikesh and it is said that while the Pandavas were going to Himalayas through Haridwar, Bhim constructed this tank.

Regarding the Saptrishi Ashram, it is said that the Ganga had split itself in seven currents at this point, so that the worship being performed by seven Rishi's there would not be disturbed. Mansa Devi Temple: is situated on the Vilwa Parwat. One can easily reach this temple by trolley through ropeway or on foot from Haridwar.

Gurukul Kangri University: This well-known institution of India is situated 3 km away from Haridwar railway station on Haridwar- Jawalapur road. This was founded by Swami Shradha Nandii Maharaj, founder of Arya Samaj movement in India. Ved Mandir, Museum and the Pharmacy are the main attractions of this place.

Arya Vanaprashth Ashram : This well-known institution for the retired persons is situated at Jawalapur, about 3 km away from Tourist Bureau.

Bharat Heavy Electricals at Ranipur : This is a Government of India project for manufacture of heavy electrical equipments like motors, turbines, generators etc. and is situated 4.5 km away from Haridwar railway station towards Jawalapur.

Daksh Prajapati temple and Sati Kund at Kankhal : It is about 4 km from Haridwar railway station. This is the place where Daksh Prajapati [son of Lord Brahma], father of sati, performed a Yagya' but did not invite Lord Shiva. Feeling insulted Sati burnt herself in the Yagya Kund', Kankhal is

one of the five sacred places of pilgrimage (Panch Tirth] around Haridwar. The five Tirthas are Ganga, Kushawart, Bilwa Tirtha, Neel Parvat and Kankhal. The following Sanskrit Sloka is well-known in respect of this place.

"Ganga Dware; Kushawarte, Bilwake Neel Parvate, Tirthe Kankhale Snatva, Dhoot Papo Diwam Vrajet.

Meaning, the one taking bath at Ganga-Dwar [Haridwar], Kushawart, Bilwa Tirth, Neel Parbat and Kankhal become purified and goes to heaven.

Rama Krishna Mission Seva Ashram : It is a well-known institution situated at Kankhal. A visit to the place is a must for the spiritual pleasure of everyone. This institution is running a well equipped hospital which provides free medical help to the needy.

Bhimgoda Kund (Tank) : While going to Sapt Rishi Ashram, there is Bhimgoda Tank on the way 2.5 km from Tourist Bureau). The origin of which is connected with Bhim of Mahabharata times- one of the Pandvas, who said to have created it with the blow of his knee.

Parmarth Ashram : This is situated near the Sapt Rishi Ashram and is a branch of Parmarth Niketan (Daivi-Sampad Mandal Organisation) of Rishikesh. There are life like images of the Goddess Durga and other deities.

Sapta Rishi Ashram and Tapta Sarovar : It is 5 km from Har-ki-Pauri and 6 km from Tourist Bureau on the way to Rishikesh. According to the legendary belief, the holy Ganga had to split herself in seven currents here with a view to please seven Rishis worshipping at different spots. Sadhu Bela: A newly built Ashram near Sapt Sarovar is worth visiting.

Mansa Devi Temple : This temple is situated on Bilwa Parvat. The approach road to the temple is near Ratan Cinema. It is about 1 km. One can have a beautiful bird's eye view of Haridwar from here. Now it is linked with ropeway close to Ratan Cinema.

Chandi Devi Temple : After crossing the Ganga one has to trek about 3 km. to reach Chandi Devi Temple, situated on Neel Parbat. The temple of Gauri Shanker, Neeleshwar Mahadev and Anjani Devi are adjacent to Chandi Devi Temple on the hill.

Besides, there are so many worth-visiting temples in and around Haridwar.

Sri Gorakhnath Temple & Cave , Sri Ayyappa Temple, Sri Vilwakeshawar Temple, Sri Kal Bhairon Temple ,Sri Gita Bhawan, Sri Maya Devi Temple, Sri Bhairon Temple, Sri Bhola Giri Ashram, Sri Shrawan Nath Temple of Pashupati Mahadev, Manokamma Sidh Hanuman Temple, Manav Kalyan Ashram, Narayani Shila, Vishnu Bhawan Matri Sadan Ashram Matri sadan founded by his holiness Swami Shri Shivanands Saraswati, is a sanctuary dedicated to the dual mission of Atmanam Moksharth jagaddhitaya Cha-seeking liberation for the self and service to society. Located in the spiritual heart of india, we are committed to preserving nature, upholding the sanctity of sacred places , and fighting against environmental degradation and corruption through non-violent protest and spiritual awakening.

Patanjali Haridwar swami Ramdev ji studies about yoga and Sanskrit vyakarana yoga, Darsana, Vedas, and Upnisads This Ashrams around cover the 12 Villages area in Hridwar before Patanjali Yoga pethi so the people visit to see the modern Ashram .

Kumbhin Hridwar :

Kumbh 1986 : There are many legends about the Kumbh-literally translated as earthenware receptacle'. The most popular is the one about the competition between the gods and the demons to churn the oceans. After the churning, the dregs produced a receptacle of nectar. Afraid that the demons would steal it, Vishnu told Brahaspati to run away with it. The heat of the sun began to dry up the amrit but the moon came to the rescue and cooled it. However, in the process there remained only four drops which fell at Allahabad, Nasik, Ujjain, and Haridwar. Every 12 years, when Brahaspati, the sun and moon are in one configuration, the Purna Kumbh Mela is celebrated. In earlier time the Kumbh Mela served as a gathering place for Vedic Scholars to debate on the religious laws, but ultimately it is the

sanctity of the Ganga and the innate faith of Hindus which draws pilgrims to the 'Kumbh Nahaan' (Kumbh bathing).In 1986 also there was such an occasion at Haridwar when we cele- brated Kumbh Mela. Some of the important-dates for Nahaan were as follows :

1. Mahashivratri	9th March (1st Nahaan only saints were permitted)
2. Chaitra Amavasya	9th April (2nd common to all)
3. Sankranti	13th April (Vaisakhi mela)
4. Mahakumbh	14th April (3rd main nahaan)
5. Ramnavami	18th April
6. Chandragrahan	24th April
7. Vaisakhi Amavasya	8th May

Kumbh' 86 and Environment : Whatever damage might have been done to the surrounding forests, has not been worked out here. Mainly we have taken the general environment problems due to such a huge crowd of people as sadhus, yogis, traders, policemen, leaders and pil- grims who descended to the holy city of around 1,14,415 people according to 1981 census. Already on April 10, a full four days before the auspicious Mahakumbh Nahaan, Haridwar had exploded into an almost 35 times of its normal size. Around 40 lakhs of pilgrims had assembled there during 'poorna kumbh'. How much environmental problems might arise during such a demographic explosion can only be imagined.

Kumbh 1986 : On the 14th April there was 'Mukhya Snaan' of Kumbh Mela when stampede took place and killed 48 pilgrims and injured far more than that on the left bank of main channel. On this date 70 lakhs people were expected to have visited the city all together. By the date of incident, 40 lakh people were estimated to have taken the holy dip.

Kumbh 1 April 30 April 2021 mela effected the disease dangerously name covid saints and ordinary people could not bath the the disease expanding by the water, speaking, air, touching so it become very difficult the solve situation that's way the kumbh mela 2021 not success full even full arrangement by the central or state government , have done for make success full maa Ganga/Ganges not so happy with the people India the causes Dam project it has block and control the flow of maa Ganga/Ganges water.

Impact of Cultural Environment : There was a great change in the cultural environment during Kumbh. With a budget of more than 10 crores, 35 sq km area was declared as the Mela township and. The district magistrate was the incharge of the Kumbh Mela. About 1 crore sq feet of land on the river bed across the Ganga was developed into tented colonies. Miles of temporary roads were constructed alongwith 20 bridges. Water pumping capacity was raised to 69 million litres per day with the construction of 10 filtration wells and pressure tube wells. More than 10 km of water lines were laid alongwith 100 km of electrical wiring to handle 12.5 megawatts of power which is more than double of the existing capacity.

Impact on Socio-Economic Environment : The positive side of such a mass tourist activity has been marginal economic benefit to the local population. They got employed in various activities for the tourists. For the Mela 80 new ration supply shops and 120 milk booths were opened. About 5000 sweepers were hired on daily wages. However, this type of tourism also gave rise to so many sociological problems such as theft, robbery, kidnapping, rapes and deaths etc. The stampede that had taken place near the Hari-Ki-Pauri created psychological tension in the minds of tourists as well as the local people. The aftermath of Kumbh is extremely bad because it throws thousands of temporarily employed people out of job.

Tourism In Haridwar : Tourist arrivals Domestic 40,000,000 per/year and foreigner 1,50,000 per year Tourism business generate rupess 23,000 Crores during 2013-14 this region is famous for Char Dham which means journey to four centers. This journey Started from Hridwar main attraction Maker Sankranti/Ganga darshan/ kumbh after 12 year after 6 year, Vijaya Dashami, Buddha Purnima, main important religious Days Hindu religion in Haridwar million of pilgrimage arrivals the day bath Holi

Ganga/ Ganges to make free from sin. Haridwar the religious place Essences of Hindusium.

Pilgrimage Arrival in Garhwal Himalaya, 7 May, 2024 Char Dham Yatra

Kedarnath	7,24,154
Badrinath	6,22,054
Gangotri	3,73,528
Yamnotri	3,39,122
Hemkund shaheb	42,153
Total	20,91,011

Danik Jagran Samchar Patr 20 May, 2024

Char Dham	Perday	Total
Yamnotri	14,135	125,608
Gangotri	11,067	115,508
Kedarnath	34,893	281,703
Badrinath	28,055	120,757
Hemkund sahib		

19 may 2024

Chardham	Perday	Total
Yamnotri	14,522	111,473
Gangotri	12,117	104,441
Kedarnath	30,890	246,820
Badrinath	21,807	92,702

Last 10 year Pilgrimage Arrival

The Year	Number of Pilgrimage in lakh	
2014	180000	
2015	359146	
2016	620000	
2017	884788	
2018	1058490	
2019	126000	
2020	10000	
2021	197056	
2022	1760000	
2023	1839000	
2024	1103738	12 September 2024

Amar Ujjala samchar 14 October 2014

Char Dham Yatra Pilgrimage Arrivals

Dham Year	2020	2021	2022	2023	2024
Kedarnath	135287	242985	425075	1961025	16,52,070
Badrinath	155009	199406	1514714	1834729	13,59,853
Gangotri	23736	33771	600140	905174	8,18,273
Yamnotri	7717	33311	473395	735244	7,14,779
Hemkund Shahib	8290	19909	190264	177463	1,83,692
Jageswar Dham		6,00,000	8,50,000	10,0000	

2024 The change pattern of Yatra Amar Ujjala samcharpatr 11 November 2024

Accommodation Facilities in Garhwal Himalya

Category	Numbers	Bed Numbers
Hotels, Home stay	8225	200945
Dharmshala	873	156300
Government Guest Houses	363	2271
Tourist rest Houses, rain Besra	208	7709

Amar Ujjala Samchar Part 2024

References

1. Dr. Sarla Shahi, Promotional Strategy of Tourism Development in Rishikesh, 1996, UGC Approved Care Listed Journal Shodh Disha Giriraj Saren Agrwal Rishikesh, The Tourist Destination 53-3 ank, pages 304-310 Dr. Sarla Shahi

2. Dr. Sarla Shahi, Tourism Growth to Mankind, Journal International IJRAR, Rishikesh, Hardawr and Surrounding with Special Hints for Foeigners

3. L.B.Basent, M . P. Rey, Impect of Tourism on Mountain Environment Consulting, Editer S.C., Singh, R.C.Singh, G.R. Gruber, G.S. Paliwal, H.R. Singh, Chardham of U.P Hills Guide Book

4. Tourism Development Products Operations and Case Studies, Indira Gandhi National Open University 1994

5. Samchar patr.

6. Brochures

7. Journal of the American Planning Association Hollowy And Plan K.V. (1990), Marketing for Toursim, Planning, London

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Geography : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 298-304

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

भारत में कुल प्रजनन दर का स्थानिक-कालिक विश्लेषण

*अमृता कुमारी** *डॉ. रत्नेश शुक्ल***

सार : *प्रजननता जनसंख्या परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण जैविक घटक है। भारत की प्रजननता में स्थानिक कालिक विषमता दृष्टिगोचर होती है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (एन.एफ.एच.एस.) के 1 से 5 तक के सर्वेक्षणों के अनुसार वर्ष 1992–93 में भारत की कुल प्रजनन दर 3.4 प्रतिषत जो क्रमशः नियंत्रित होते हुए वर्ष 2019–21 में 2.0 प्रतिशत तक पहुँच गई। एन.एफ.एच.एस. के नवीनतम सर्वेक्षण वर्ष 2019–21 से ज्ञात होता है कि वर्तमान में भारत की कुल प्रजनन दर 2.3 प्रतिषत के प्रतिस्थापन दर से नीचे गिर चुकी है। प्रस्तुत शोध पत्र भारत में कुल प्रजनन दर के स्थानिक–कालिक वितरण प्रतिरूप का विश्लेषण प्रस्तुत करना है। प्रस्तुत अध्ययन हेतु द्वितीयक आंकड़ों का प्रयोग किया गया है जिसका मूलभूत स्रोत एन.एफ.एच.एस. द्वारा प्रदत्त आंकड़े हैं। प्रस्तुत शोध पत्र के आधार पर वर्तमान समय में भी बिहार जैसे राज्यों की पहचान करता है। जहाँ पर कुल प्रजनन दर अन्य राज्यों की तुलना में सर्वाधिक है। प्रस्तुत शोध–पत्र का समापन उच्च प्रजननता दर वाले राज्यों हेतु उपयुक्त नीतियों के प्रस्तावित करने के साथ होता है।*

शब्द कुंजी : *प्रजननता, जनसंख्या परिवर्तन, स्थानिक कालिक विषमता, प्रतिस्थापन दर।*

1. परिचय : जनसंख्या भूगोल में जनसंख्या वृद्धि अध्ययन सामाजिक, आर्थिक विकास के दृष्टिकोण से अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं। प्रजननता जनसंख्या वृद्धि (परिवर्तन) का एक जैविक कारक है। सामान्य शब्दों में कुल प्रजनन दर का तात्पर्य उन सजीव बच्चों के कुल संख्या से है। जो किसी स्त्री द्वारा नियत समयावधि (15 वर्ष से 49 वर्ष) में उत्पन्न होते हैं। भारत की भौगोलिक विविधता के फलस्वरूप यहाँ पर प्रादेशिक विकास में पर्याप्त रूप से क्षेत्रीय असमानताएँ पाई जाती है। निश्चित रूप से इसका प्रभाव प्रजननता पर भी परिलक्षित होता है। भारत में एक तरफ सबसे पिछड़े माने जाने वाले राज्य बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश हैं जहाँ की कुल प्रजननता दर वर्ष 1981 में भारत के प्रजननता दर से अधिक थी जो वर्तमान में अपेक्षाकृत नियंत्रित हो चुकी है। वर्तमान में सिर्फ बिहार, उत्तर प्रदेश, झारखण्ड की कुल प्रजनन दर भारत के प्रजनन दर से अधिक है। यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना अत्यन्त आवश्यक है कि यदि मृत्युदर स्थिर रहती है और शुद्ध प्रवास शून्य माना जाए तब महिलाएँ जनसंख्या स्तर को बनाए रखने के लिए जिस दर से शिशुओं को जन्म देती है। वह दर प्रतिस्थापन दर कहलाती है। नवीनतम आंकड़ों के अनुसार भारत ने प्रतिस्थापन दर प्राप्त कर ली है। दूसरी तरफ सिक्किम, जम्मू कश्मीर, दिल्ली, पंजाब जैसे निम्न कुल प्रजनन दर वाले राज्य भी हैं। स्पष्ट है कि भारत में कुल प्रजननता दर के सन्दर्भ में व्यापक रूप से स्थानिक–कालिक विषमता दृष्टिगोचर होती है जिसका विश्लेषण वांछनीय है।

2. शोध पत्र के उद्देश्य : प्रस्तुत शोध पत्र के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

1. भारत में कुल प्रजनन दर का स्थानिक–कालिक विश्लेषण प्रस्तुत करना।
2. भारत में राज्यवार कुल प्रजनन दर का स्थानिक–कालिक वितरण का विश्लेषण करना।
3. उच्च प्रजननता वाले राज्यों को पहचान कर उपयुक्त सुझाव प्रस्तुत करना।

3. पूर्व साहित्य का पुनरावलोकन : प्रजननता सम्बन्धी अध्ययनों में कुमार नवीन, देवी रामनाथ सिंह, अंगद (2023) द्वारा भारत में कुल प्रजनन दर के स्थानिक एवं कालिक प्रतिरूपों का अध्ययन किया गया। देवनाथ तपन,

* *शोध छात्रा, स्नातकोत्तर भूगोल विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार*

** *असिस्टेंट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर भूगोल विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार*

बर्मन भूपेन, राय रंजन एवं इस्लाम, नजरुल (2021) द्वारा भारत के पष्चिम बंगाल के संदर्भ में प्रजननता संक्रमण और उसके सामाजिक, आर्थिक कारकों का अध्ययन किया गया। मिश्रा, नितिन कुमार (2020) द्वारा बिहार की सहरसा जिला के संदर्भ में प्रजननता का प्रमुखता से भौगोलिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया। त्रिगुण, विद्यासागर (2020) द्वारा बिहार के संदर्भ में प्रजननता के निर्धारकों का अध्ययन किया गया जो की एन. एफ. एच. एस. आँकड़ों पर आधारित था। चौधरी, असगर हुसैन एवं आसमा सना (2017) द्वारा उत्तर प्रदेश में प्रजननता प्रवृत्तियों एवं विभेदों का अध्ययन किया गया। मुरूगन (2017) ने बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश के प्रजननता व्यवहार की तुलना तमिलनाडु से की। सोम कल्याण सुन्दर एवं मिश्रा. आर.पी (2016) द्वारा प्रजननता और प्रजनन बाल स्वास्थ्य प्रणाली का एक जिला स्तरीय विश्लेषण मध्य प्रदेश के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया। दास मलय, मोहन्ती एवं संजय कुमार (2012) ने उत्तर प्रदेश और बिहार में प्रजननता संक्रमण के स्थानिक प्रतिरूप का जिला स्तरीय विश्लेषण प्रस्तुत किया। ड्रीजे, जीन, मओरथई, ममता (2001) द्वारा प्रजननता शिक्षा एवं विकास का अध्ययन भारत के संदर्भ में प्रस्तुत किया। रैले, जे.आर (1987) द्वारा भारत में 1951 से 1981 के मध्य प्रजननता स्तरों एवं प्रवृत्तियों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। जैन, कुमार, अनिरुद्ध एवं अधलखा, अर्जुन (1982) द्वारा 1970 के दशक में भारत में प्रजननता ह्रास का प्राथमिक आकलन प्रस्तुत किया गया।

4. शोध विधि तंत्र : प्रस्तुत शोध–पत्र का अध्ययन क्षेत्र भारत है जिसका विस्तार $8^0$4′ मिनट उत्तरी से $37^0$6′ उत्तरी अक्षांश तथा $68^0$7′ पूर्व से 97^0 25′ पूर्व देशान्तर के मध्य है। प्रस्तुत शोध–पत्र राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के आँकड़ों पर आधारित है। प्रस्तुत शोध–पत्र में माध्य एवं मानक विचलन के आधार पर भारत के राज्यों में कुल प्रजननता दर को उच्च, मध्यम तथा निम्न श्रेणी में वर्गीकृत किया गया है। तथा विश्लेषित आंकड़ों का प्रस्तुतीकरण वर्णमात्री विधि से जी.आई.एस. द्वारा किया गया है।

5. विवेचना : प्रस्तुत शोध–पत्र की विवेचना के उद्देश्यानुसार तीन प्रमुख भाग हैं। प्रथम के अन्तर्गत भारत में कुल प्रजनन दर का स्थानिक कालिक वितरण द्वितीय के अंतर्गत राज्यवार स्थानिक–कालिक वितरण तथा उच्च कुल प्रजनन दर वाले राज्यों की पहचान की गई है।

5.1 भारत में कुल प्रजननता दर का कालिक वितरण : वर्ष 1992–93 में भारत कि कुल प्रजनन दर 3.4 प्रतिशत थी जो वर्ष 2019–21 में गिरकर 2.0 प्रतिशत रह गई। भारत के कुल प्रजनन दर वर्ष 1992–93 से 2019–21 तक निरन्तर ह्रासमान रही है। यह प्रजनन दर वर्ष 1998–99 में 0.5 प्रतिशत गिरकर 2.9 प्रतिशत हो गई। 2005–06 में पुनः 0.2 प्रतिशत गिरकर 2.7 प्रतिशत हो गई। 2015–16 में पुनः गिरावट के साथ कुल प्रजनन दर 2.2 प्रतिशत हो गई। वर्ष 2019–21 में भारत की कुल प्रजनन दर 2.0 प्रतिशत थी क्योंकि 2015–16 की तुलना में 0.2 प्रतिशत कम थी। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–5 के आंकड़ों के अनुसार, भारत की कुल प्रजनन दर वर्तमान में प्रतिस्थापन स्तर से नीचे 2.0 प्रतिशत है।

सारणी 1.1 : भारत में कुल प्रजनन दर का कालिक वितरण

वर्ष	कुल प्रजनन दर	परिवर्तन
1992–93 (NFHS-1)	3.39	
1998–99 (NFHS-2)	2.85	–0.5
2005–06 (NFHS-3)	2.68	–0.2
2015–16 (NFHS-4)	2.18	–0.5
2019–21 (NFHS-5)	1.99	–0.2

स्रोत– NFHS 1, 2, 3, 4, 5

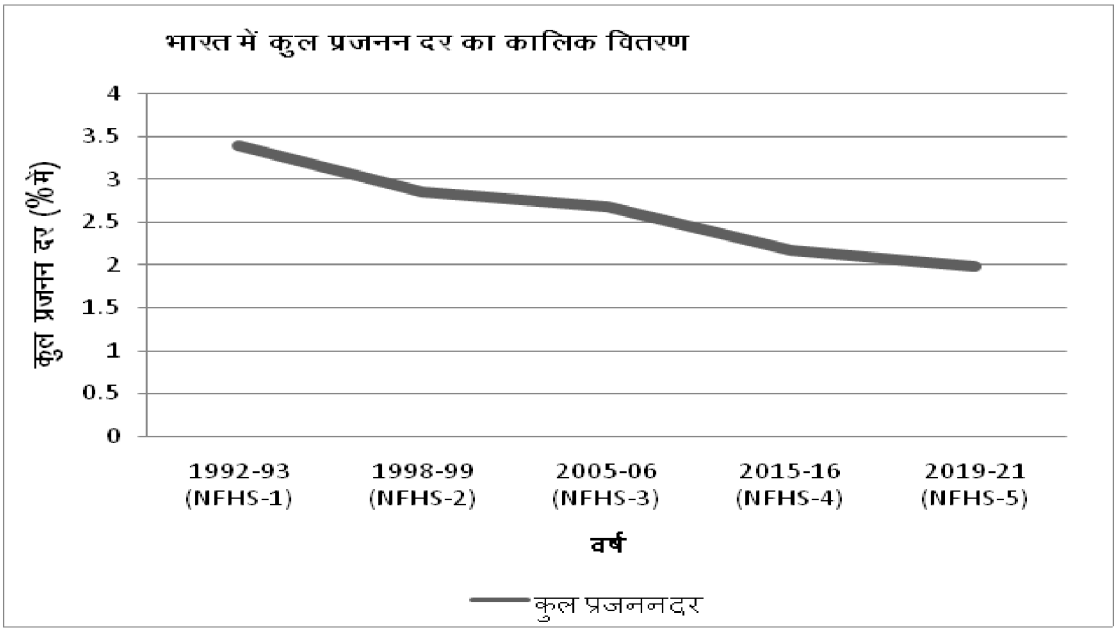

आरेख 1.1

5.2 भारत में राज्यवार कुल प्रजनन दर का स्थानिक–कालिक वितरण : भारत में समस्त राज्यों में कुल प्रजनन दर को उच्च, मध्यम और निम्न कोटियों में विभक्त करने पर ज्ञात होता है कि वर्ष 1992–93 में 64 प्रतिशत राज्य निम्न प्रजनन दर को प्रकट करते हैं थे। यह प्रतिशत वर्ष 2019–21 में 50 प्रतिशत हो गया। निम्न श्रेणी में यह प्रतिशत मध्यवर्ती वर्षों 1998–99, 2005–06 और 2015–16 में क्रमशः 61 प्रतिशत, 57 प्रतिशत और 56 प्रतिशत था जो कि निरन्तर ह्रास को प्रकट करता है। कुल प्रजनन दर में सर्वाधिक वृद्धि मध्यम श्रेणी प्रजनन दर वाले राज्यों में हुई है। वर्ष 1992–93 में मध्यम श्रेणी में राज्यों का प्रतिशत 16 था जो कि वर्ष 2019–21 में बढ़कर 36 प्रतिशत हो गया। मध्यम श्रेणी में यह प्रतिशत मध्यवर्ती वर्षों 1998–99, 2005–06 और 2015–16 में क्रमशः 21 प्रतिशत, 25 प्रतिशत और 28 प्रतिशत था जो कि निरन्तर वृद्धि को प्रकट करता है। वर्ष 2019–21 में उच्च श्रेणी में राज्यों की संख्या का प्रतिशत न्यूनतम रहा है। वर्ष 2019–21 में मात्र 14 प्रतिशत राज्यों में उच्च प्रजनन दर पाई गई। जबकि इससे पूर्व 1992–93, 1998–99, 2005–06 और 2015–16 में क्रमशः 20 प्रतिशत, 18 प्रतिशत, 18 प्रतिशत और 17 प्रतिशत भारत के राज्यों में उच्च प्रजनन दर पाई गई थी। निश्चित रूप से भारत में उच्च प्रजनन दर नियंत्रित हुई है।

सारणी 1.2 : भारत के राज्यों एवं केन्द्र षासित प्रदेषों में कोटिवार कुल प्रजनन दर स्तर

प्रजननता	1992-93 (NFHS-1)		1998-99 (NFHS-2)		2005-06 (NFHS-3)		2015-16 (NFHS-4)		2019-21 (NFHS-5)	
स्तर	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
निम्नकोटि	16	64	17	61	16	57	20	56	18	50
मध्यमकोटि	4	16	6	21	7	25	10	28	13	36
उच्चकोटि	5	20	5	18	5	18	6	17	5	14
कुल	25	100	28	100	28	100	36	100	36	100

स्रोत– *NFHS 1, 2, 3, 4, 5*

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण पांच के आंकड़ों के अनुसार भारत में सिक्किम राज्य में न्यूनतम 1.05 प्रतिशत कुल प्रजनन दर तथा अधिकतम प्रजनन दर बिहार में 2.98 प्रतिशत अंकित की गई है। अर्थात भारत के समस्त 37 राज्य एवं केंद्र शासित प्रदेशों के कुल प्रजनन दर 1.05 प्रतिशत से 2.98 प्रतिशत के मध्य है। कुल प्रजनन दर के स्थानिक वितरण को यदि निम्न, मध्यम एवं उच्च कोटि में विभक्त किया जाए तो भारत के 19 राज्य निम्न प्रजनन दर और 13 राज्य मध्य प्रजनन दर तथा 5 राज्य उच्च प्रजनन दर की श्रेणी में विभक्त है। निम्न प्रजनन दर वाले राज्यों एवं केंद्र शासित प्रदेशों का आरोही अनुक्रम यथावत है। सिक्किम, अण्डमान निकोबार दीप समूह, दमन एवं दीव, गोवा, तेलंगाना, लद्दाख, चंडीगढ़, जम्मू और कश्मीर, लक्षद्वीप, पांडिचेरी, पंजाब, पश्चिम बंगाल, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, त्रिपुरा, महाराष्ट्र, नागालैंड सम्मिलित है। मध्य श्रेणी के 13 राज्यों के अंतर्गत तमिलनाडु, केरल, अरुणाचल प्रदेश, उड़ीसा, छत्तीसगढ़, दादर एवं नगर हवेली, उत्तराखण्ड, गुजरात, मिजोरम, असम, हरियाणा तथा मध्य प्रदेश सम्मिलित है। उच्च श्रेणी के पांच राज्यों के अंतर्गत मणिपुर, झारखण्ड, उत्तर प्रदेश, मेघालय और बिहार सम्मिलित है। यदि इस परिदृश्य की बिगत राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–4 से तुलना की जाए तो स्पष्ट होता है कि उस समय की सिक्किम की कुल प्रजनन दर न्यूनतम 1.17 प्रतिशत तथा बिहार की कुल प्रजनन दर उच्चतम 3.413 प्रतिशत थी। परन्तु दोनों कालों के परास की तुलना की जाए तो राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–5 में यह परास 2.24 प्रतिशत से घटकर 1.93 प्रतिशत हो गया है।

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–4 में निम्न प्रजनन दर भारत के 36 राज्य एवं केंद्र शासित प्रदेशों में से 20 राज्य इसी वर्ग में आते हैं जिसमें सिक्किम, अंडमान निकोबार दीप समूह, केरल, चंडीगढ़, पंजाब, गोवा, त्रिपुरा, दमन एवं दीव, पांडिचेरी, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल, दिल्ली, तेलंगाना, कर्नाटक, लक्षद्वीप, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर तथा गुजरात सम्मिलित है। 10 राज्य मध्यम श्रेणी के अंतर्गत आते हैं जिसमें हरियाणा, उड़ीसा, उत्तराखण्ड, अरुणाचल प्रदेश, असम, छत्तीसगढ़, मिजोरम, दादर एवं नगर हवेली, मध्य प्रदेश एवं राजस्थान सम्मिलित है। 6 राज्य उच्च श्रेणी के अंतर्गत आते हैं जिसमें झारखंड, मणिपुर, नागालैंड, उत्तर प्रदेश, मेघालय, बिहार तथा लद्दाख सम्मिलित है।

अधोलिखित सारणी से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण प्रथम में न्यूनतम कुल प्रजनन दर गोवा की 1.9 प्रतिशत तथा अधिकतम उत्तर प्रदेश के 4.82 प्रतिशत थी। न्यूनतम तथा अधिकतम प्रजनन दर के मध्य के ह्रास 2.92 प्रतिशत था जो की राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–2 से घटकर 2.8 प्रतिशत हो गया। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–2 में न्यूनतम कुल प्रजनन दर गोवा 1.77 प्रतिशत तथा अधिकतम मेघालय 4.57 प्रतिशत थी। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–3 में पुनः गोवा की प्रजनन दर न्यूनतम 1.79 प्रतिशत थी तथा बिहार की कुल प्रजनन दर अधिकतम 4.0 प्रतिशत था तथा न्यूनतम और अधिकतम का परास राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–1 एवं 2 की भाँति पुनः घटकर 2.21 प्रतिशत हो गया। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के पाँचों चरणों में यदि न्यूनतम और अधिकतम मूल्य का अंतराल देखा जाए तो यह घटता हुआ ही परिलक्षित होता है हालाँकि राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–4 में .03 प्रतिशत की नगण्य वृद्धि दृष्टिगोचर होती है।

5.3 उच्च प्रजननता वाले राज्यों को पहचान : राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–प्रथम के आंकड़ों के अनुसार उत्तरी भारत में हरियाणा मध्य भारत में मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश पूर्व भारत में बिहार तथा पूर्वोत्तर भारत में अरुणाचल प्रदेश उच्च प्रजननता वाले राज्य हैं। मध्य प्रदेश, हरियाणा, बिहार, अरुणाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश कुल प्रजनन दर क्रमशः 3.9 प्रतिशत, 3.99 प्रतिशत, 4 प्रतिशत, 4.25 प्रतिशत, 4.82 प्रतिशत है। इस प्रकार राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–1 में भारत के पाँच राज्यों उच्च प्रजननता दर के श्रेणी में आते थे। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–2 आंकड़ों के अनुसार उत्तर भारत में राजस्थान मध्य भारत में उत्तर प्रदेश पूर्व में भारत में बिहार पूर्वोत्तर भारत में मेघालय और नागालैंड राज्य कुल प्रजनन दर क्रमशः उच्च श्रेणी के संदर्भ में उच्च श्रेणी के अंतर्गत आते हैं। इस प्रकार राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–2 के अनुसार भारत के पांच राज्यों में कुल प्रजनन दर उच्च श्रेणी की पाई गई। बिहार, नागालैंड, राजस्थान, उत्तर प्रदेश एवं मेघालय कुल प्रजनन दर क्रमशः 3.70 प्रतिशत, 3.77 प्रतिशत, 3.78 प्रतिशत, 4.06 प्रतिशत, 4.57 प्रतिशत पाई गई। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–3 के अनुसार पुनः भारत के पांच राज्यों में प्रजनन दर वाले राज्यों में मध्य भारत से उत्तर प्रदेश पूर्व भारत में बिहार और झारखंड, पूर्वोत्तर भारत से नागालैंड और मेघालय सम्मिलित है। इन राज्यों का कुल प्रजनन दर के आधार पर आरोही अनुक्रम यथानुरूप है–झारखंड, नागालैंड, मेघालय, उत्तर प्रदेश, बिहार इन राज्यों की क्रमशः कुल प्रजनन दर 3.31 प्रतिशत, 3.74 प्रतिशत, 3.8 प्रतिशत, 3.82 प्रतिशत तथा 4 प्रतिशत है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–4 में भारत के 6

राज्यों में कुल प्रजनन दर की उच्चतम अंकित की गई जिसमें मध्य भारत में उत्तर प्रदेश पूर्व भारत में बिहार, झारखंड तथा पूर्वोत्तर भारत से मणिपुर, नागालैंड, मेघालय सम्मिलित है। इन राज्यों को कुल प्रजनन दर के आधार पर आरोही अनुक्रम में यथानुरूप व्यवस्थित किया जाता है– झारखण्ड, मणिपुर, नागालैंड, उत्तर प्रदेश, मेघालय, बिहार इन राज्यों की प्रजनन दर परीक्षण 2.55 प्रतिशत, 2.61 प्रतिशत, 2.74 प्रतिशत, 2.74 प्रतिशत, 3.02 प्रतिशत तथा 3.41 प्रतिशत है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–5 के अनुसार पांच राज्यों में कुल प्रजनन दर उच्च कोटि की पाई गई। जिसमें मध्य भारत में उत्तर प्रदेश पूर्व भारत में झारखंड और बिहार, पूर्वोत्तर भारत में मणिपुर तथा मेघालय सम्मिलित है। इन राज्यों का आरोही अनुक्रम यथावत है–मणिपुर, झारखण्ड, उत्तर प्रदेश, मेघालय एवं बिहार इन राज्यों की कुल प्रजनन दर क्रमशः 2.17 प्रतिशत, 2.26 प्रतिशत, 2.35 प्रतिशत, 2.91 प्रतिशत तथा 2.98 प्रतिशत है। उल्लेखनीय है कि राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–1 एवं राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–2 में क्रमशः उत्तर प्रदेश और मेघालय कुल प्रजनन दर सर्वोच्च थी परंतु राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–3 से 5 तक बिहार सर्वोच्च स्थान पर रहा है।

सारणी 1.3 : भारत में कुल प्रजनन दर का स्थानिक–कालिक वितरण

क्षेत्र	राज्य एवं केन्द्र शासित प्रदेश	NFHS-1 1992-93	NFHS-2 1998-99	NFHS-3 2005-06	NFHS-4 2015-16	NFHS-5 2019-21
उत्तरी भारत	1. चण्डीगढ़	NA	NA	NA	1.57	1.4
	2. दिल्ली	3.02	2.4	2.13	1.78	1.62
	3. हरियाणा	3.99	2.88	2.69	2.05	1.91
	4. हिमाचल प्रदेश	2.97	2.14	1.94	1.88	1.66
	5. जम्मू एवं कश्मीर	3.13	2.71	2.38	2.01	1.41
	1. लद्दाख	NA	NA	NA	NA	1.31
	7. पंजाब	2.92	2.21	1.99	1.62	1.63
	8. राजस्थान	3.63	3.78	3.21	2.4	2.01
	9. उतराखंड	NIL	2.61	2.55	2.07	1.85
मध्यवर्ती भारत	10. छतीसगढ़	NIL	2.79	2.62	2.23	1.82
	11. मध्य प्रदेश	3.9	3.43	3.12	2.32	1.99
	12. उत्तर प्रदेश	4.82	4.06	3.82	2.74	2.35
पूर्वी भारत	13. बिहार	4.00	3.7	4	3.41	2.98
	14. झारखण्ड	NIL	2.76	3.31	2.55	2.26
	15. उड़ीसा	2.92	2.46	2.37	2.05	1.82
	16. पश्चिम बंगाल	2.92	2.29	2.27	1.77	1.64
डत्तरी पूर्वी भारत	17. अरुणाचल प्रदेश	4.25	2.52	3.03	2.1	1.8
	18. असम	3.53	2.31	2.42	2.21	1.87
	19. मणिपुर	2.76	3.04	2.83	2.61	2.17
	20. मेघालय	3.73	4.57	3.8	3.04	2.91
	21. मिजोरम	2.30	2.89	2.86	2.27	1.87
	22. नागालैंड	3.26	3.77	3.74	2.74	1.72
	23. सिक्किम	NA	2.75	2.02	1.17	1.05
	24. त्रिपुरा	2.67	1.87	2.22	1.68	1.7

पश्चिमी भारत	25. दादर एवं नगर हवेली	NIL	NA	NA	2.32	1.84
	26. दमन एवं दीव	NIL	NA	NA	1.68	
	27. गोवा	1.90	1.77	1.79	1.66	NA
	28. गुजरात	2.99	2.72	2.42	2.03	1.86
	29. महाराष्ट्र	2.86	2.52	2.11	1.87	1.71
दक्षिणी भारत	30. अण्डमान व निकोबार	NIL	NA	NA	1.44	1.28
	31. आन्ध्र प्रदेश	2.59	NA	NA	1.83	1.68
	32. कर्नाटक	2.85	2.13	2.07	1.8	1.67
	33. केरल	2.00	1.96	1.93	1.56	1.79
	34. लक्षद्वीप	NIL	NA	NA	1.82	1.42
	35. पुडुचेरी	NIL	NA	NA	1.7	1.49
	36. तमिलनाडु	2.48	2.19	1.8	1.7	1.76
	37. तेलंगाना	NA	NA	NA	1.78	1.75

स्रोत–*NFHS 1, 2, 3, 4, 5*

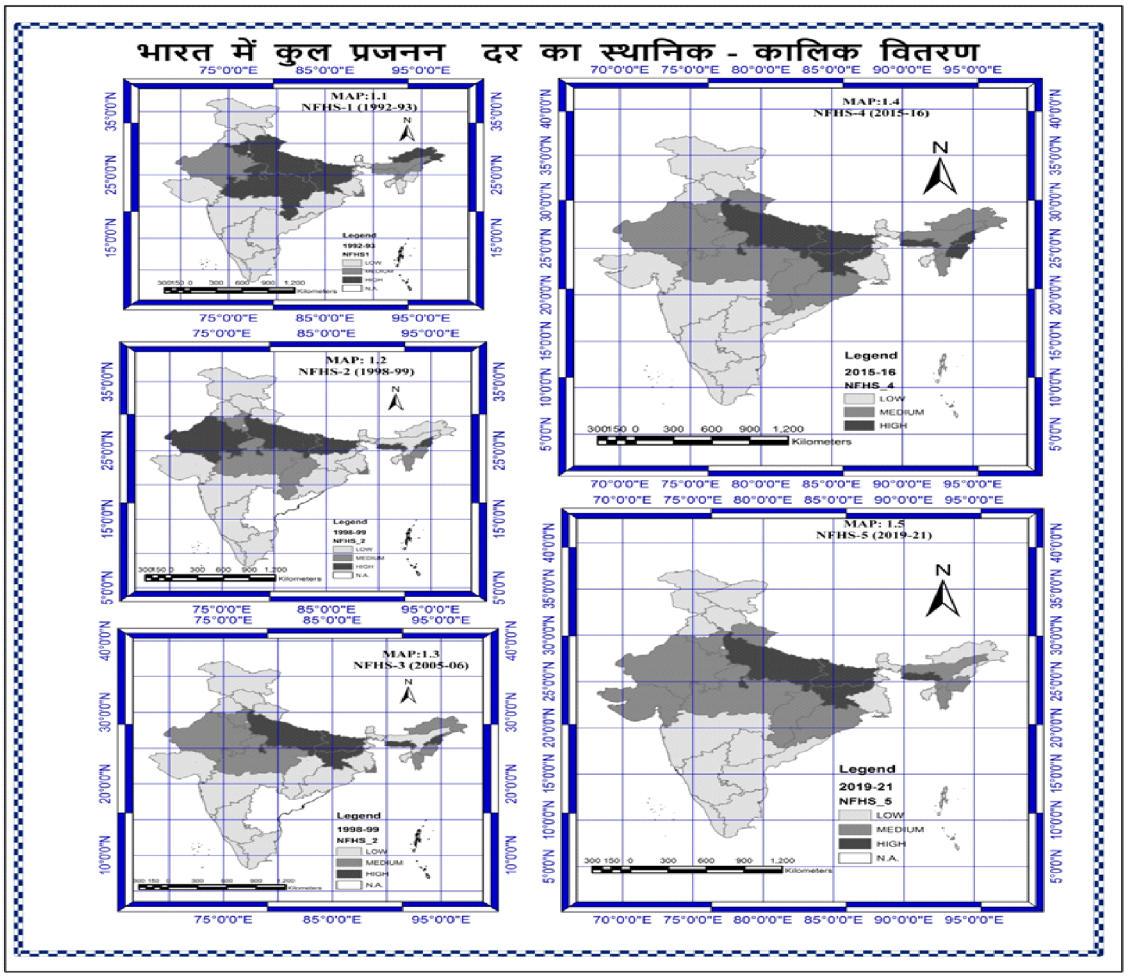

6. उपसंहार : भारत में उच्च कुल प्रजननता दर के अंतर्गत बिहार जैसे निम्न साक्षरता वाले राज्य सम्मिलित है। अतः साक्षरता एक ऐसा महत्वपूर्ण कारक है जिसके द्वारा प्रजननता को नियंत्रित किया जा सकता है। अन्य प्रभावी उपायों में जन–जागरूकता विशेष रूप से उल्लेखनीय है, यदि निरक्षरता, गरीबी और उच्च प्रजननता के कुचक्र को देखा जाए तो इसे निश्चित रूप से साक्षरता जनित नियंत्रित प्रजनन दर के रूप में सुधारा जा सकता है अर्थात् जिस प्रकार निरक्षरता, गरीबी और बेरोजगारी लेकर आती है ठीक उसी प्रकार साक्षरता रोजगार और सम्पन्नता लेकर आएगी। फलतः विभिन्न संसाधनों की कमी में मनुष्य का प्रजनन व्यवहार निश्चित रूप से परिवर्तित होगा। प्रस्तुत शोध–पत्र उच्च प्रजननता वाले राज्यों की पहचान करने के पष्चात् उपयुक्त सुझावों को प्रस्तावित करता है। जिसके अंतर्गत साक्षरता और जन जागरूकता प्रमुख है क्योंकि साक्षरता द्वारा आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होने की संभावना में वृद्धि होती है। साथ ही साथ मानव के अंतःकरण में विवेक भी जागृत होता है जो उसे स्वहित हेतु परिवार नियोजन अपनाने को प्रेरित करता है।

सन्दर्भ–सूची

1. Chowdhury, A. H., & Asma, S. (2017), Fertility Trends And Differentials In Uttar Pradesh, *International Journal For Innovative Research In Multidisciplinary Field*, *Vol.3* (9), pp 99-105.

2. Das Malay And Mohanty Sanjay (2012), Spatial Pattern of Fertility Transition in Uttar Pradesh and Bihar : A District Level Analysis, *Genus, Vol.68* (2), pp. 81-106.

3. Debnath, T., Barman, B., Rai, R. & Islam N. (2021), Fertility Transition and Its Socio-Economic Factors in West Bengal, India, *IASSI Quarterly : Contributions to Indian Social Science, Vol. 40* (1), pp. 107-119.

4. Dreze, J. and Mamta, M. (2001), Fertility Education And Development : Evidence From India, *Population and Development Review, Vol.27* (1), pp 33-63.

5. Jain, K. A. & Adlakha, L. A. (1982), Preliminary Estimates of Fertility Decline in India During the 1970s, *Population and Development Review, Vol.8* (3), pp. 589-606.

6. Kumar, N., Devi, R. & Singh, A. (2023), Spatial and Temporal Patterns of Total Fertility Rate : A Case Study of India, *Quest Journals : Journal of Research in Humanities and Social Science, Volume 11* (2), pp. 154-163.

7. Mishra, N.K. (2020), Fertility Preferences in Saharsa District (Bihar) : A Geographical Study, *NGJI : An International Peer-Reviewed Journal, Vol. 66* (2), pp. 150-163.

8. Murugan, G.T. (2017), Comparison of Fertility Behaviour of Four Northern States (Bihar, Madhya Pradesh, Rajasthan and Uttar Pradesh) with Tamil Nadu : A Decomposition Analysis, *Journal of Culture, Society and Development : An International Peer-reviewed Journal, Vol.30* (3), pp. 1-5.

9. Rele, J.R. (1987), Fertility Levels and Trends in India 1951-1981, *Population and Development Review, Vol.13* (3), pp. 513-530.

10. Som, K.S. & Mishra, R.P. (2016), Fertility And Rch-Status In Madhya Pradesh : A District Level Analysis, *Transactions, Vol.38* (2), pp. 281-290.

11. Trigun, V. (2020), Determinants of Fertility Preference in Bihar : An Analysis from National Family Health Survey, *Journal of University of Shanghai for Science and Technology, Vol.22*(10), pp. 1532-1545.

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 305-307

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

प्रेमचन्द के कथा साहित्य में नारी-चिन्तन

*डॉ. रेखा सिंह**

हिन्दी कथा–साहित्य अपनी विकास–यात्रा में परिवर्तन के अनेक आयामों से गुजर चुका है। उनमें नारी–जीवन का चित्रण काफी संघर्षपूर्ण रहा है। प्रेमचन्द–पूर्व युगीन साहित्य में नारी के जो चित्र मिलते हैं, वे ज्यादातर भोग्य के रूप में ही अधिक हैं। इस युग के साहित्य कारों की दृष्टि रीतिकालीन की श्रृंगारिक भावनाओं से जुड़ी हुई थी। इस युग के कथा–साहित्य में नारी को दो रूपों में चित्रित किया गया एक उसके नारी–पात्र लेखकों का हाथों की कठपुतलियाँ बनकर ही रह जाती थी, उनके स्वतन्त्र व्यक्तित्व का चित्रण देखने को नहीं मिलता था, जबकि प्रेमचन्द युग में नारी अपने अधिकारों एवं स्वतन्त्र अस्मिता के लिए चिन्तित दिखायी देती है। उनमें एक प्रकार से आत्म–गौरव व आत्म–सम्मान की झलक दिखायी देती है।

प्रेमचन्द जी ने अपने कथा–साहित्य के माध्यम से मानव जीवन को सम्पूर्ण यथार्थ के साथ जोड़ने का प्रयास किया और कल्पना के स्थान पर समाज की सच्चाई और वास्तविकता पर अधिक जोर दिया। प्रेमचन्द ने अपने कथा–साहित्य के माध्यम से समग्र देश के दीन–दुखियों के करुण जीवन की मार्मिक वेदना को सबके सामने प्रस्तुत किया। उनकी रचनाओं में भारतीय समाज का प्रतिबिंब झलकता है। समाज की पिछड़ी जाति तथा उनके दुःख–दर्द को समाज के सामने प्रस्तुत करके प्रेमचन्द जनता के प्रतिनिधि बन गये हैं।

नारी सदैव एवं सर्वत्र मानव–परिवार का एक मुख्य आधार है। नारी प्रत्येक राष्ट्र तथा समाज के सर्वांगीण विकास में मुख्य भूमिका निभाती है। प्रेमचन्द इसी तथ्य के समर्थक थे। इसलिए वे समाज के विकास में स्त्री को पुरुष से भी अधिक समझते थे और स्त्री को पुरुष से किसी भी तरह कम नहीं समझते थे। प्रेमचन्द उन लोगों का विरोध करते थे जो औरत को कमजोर और कम परिश्रमी तथा अयोग्य समझते थे।

प्रेमचन्द पूर्व युग में नारी किसी भी तरह स्वतन्त्र नहीं थी और उसकी स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ था। विविध सुधारवादी आंदोलनों के होते हुए भी नारी अनेक यातनाओं को सहती आ रही थी। पुरुष प्रधान व्यवस्था ने उसे बंधन में रखा था। अशिक्षा, पर्दा प्रथा, अंधविश्वास, अनमेल–विवाह, बाल–विवाह, बहु पत्नी प्रथा आदि अनेक सामाजिक कुरीतियों के कारण नारी घर की चारदिवारों में कैद थी। प्रेमचंद ने ऐसी शोषित, पीड़ित, लाचार व अबला नारी की दुर्दशा को अपने साहित्य में यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत किया। एक नारी को मां, बेटी, बहन, पत्नी, बहू, ननद, सास आदि विविध रूपों में चित्रित करते हुए उनकी पीड़ा तथा उनके दुःख–दर्द को समाज के सामने प्रस्तुत किया।

प्रेमचन्दयुगीन सामाजिक आंदोलनों में सबसे ज्यादा नारी की दयनीय स्थिति को सुधारने पर अधिक बल दिया गया था। क्योंकि उस समय भी नारी की स्थितियों में कोई सुधार नहीं हुआ था। शादी–ब्याह और घर–परिवार के किसी भी मामलों में उसकी इच्छा–अनिच्छा कोई मायने नहीं रखती थी। यहां तक कि नारी भी दूसरी नारी की पीड़ा, उसके दुःख–दर्द को ठीक से समझ नहीं पाती थी। प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं के माध्यम से नारी की आत्मा को उसकी सारी अच्छाइयों और बुराइयों को यथार्थवादी ढंग से सबके सामने प्रस्तुत किया है। साथ ही तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था एवं कुरीतियों के कारण नारी–जाति की दुर्दशा का चित्रण भी उनके साहित्य में विशेष रूप से देखने को मिलता है। इस प्रकार प्रेमचन्द ने अपने साहित्य के माध्यम से नारी–जीवन की समस्याओं का चित्रण भी किया है और साथ में नारी इन समस्याओं से मुक्ति कैसे पा सकती है यह मार्ग भी सुझाया है।

स्त्री–शिक्षा : नारी के सर्वांगीण विकास के लिए सर्वप्रथम प्रेमचन्द उसे पूर्ण शिक्षित देखना चाहते थे। उनका मानना है कि 'जब तक स्त्रियाँ शिक्षित नहीं होंगी तब तक उन्हें कानूनी–अधिकार बराबर ना मिल पायेंगे। कानूनी अधिकारों के अभाव में वे अपने प्राप्त अधिकारों की सुरक्षा भी नहीं कर पाएंगी।'[1] इसलिए प्रेमचन्द स्त्री की प्रगति

* *एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कृपालु महिला महाविद्यालय, कुण्डा, प्रतापगढ़ (उ.प्र.)*

के लिए शिक्षा अनिवार्य मानते हैं। 'गबन' उपन्यास में पंड़ित इंद्र भूषण स्वीकारते हैं कि– ''जब तक स्त्रियों की शिक्षा का काफी प्रचार न होगा हमारा कभी उद्धार नहीं होगा।''[2] उसी प्रकार प्रेमचन्द का और एक श्रेष्ठ उपन्यास 'गोदान' के प्रमुख पात्र प्रो. मेहता भी स्त्री–शिक्षा के समर्थक थे। इस प्रकार प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में पुरुषों की अपेक्षा स्त्री–शिक्षा पर अधिक बल दिया है।

पाश्चात्य संस्कृति–सभ्यता का विरोध : पूर्ण शिक्षित सर्वांग–विकसित नारी के लिए प्रेमचन्द पाश्चात्य संस्कृति–सभ्यता का विरोध करते हैं। वे भारतीय सांस्कृतिक आदर्शों को ही अधिक महत्व देते हैं। इसका निदर्शन इसका 'शान्ती' नामक कहानी में देखने को मिलता है आधुनिकता के नाम पर क्लबों में स्त्रियों की निर्लज्जता, अंग्रेजी चाल–ढाल का हास्य जनक अंधानुसरण, प्रदर्शन की भावना, बनाव–श्रृंगार एवं अशिष्ट हास्य की प्रेमचन्द ने सर्वत्र निंदा की है और उनके स्त्री–पात्र पाश्चात्य संस्कृति की ओर अग्रसर हुए हैं। उनका प्रेमचन्द ने दुःखान्त चित्रण ही प्रस्तुत किया है। गोदान की एक पात्र मालती जो पाश्चात्य रंग में रंगी है उसे व्यंग्यस्वरूप वे तितली कहते हैं।

दहेज विरोधी भावना : दहेज–प्रथा आदिकाल से लेकर वर्तमान युग तक नारी जीवन की समस्या रही है। कई नारियों की बलि दहेज जैसी कुप्रथा के कारण हुई है और हो रही है। प्रेमचन्द जी ने अपने कथा–साहित्य में दहेज–प्रथा का खुलकर विरोध करते हुए इस समस्या को मिटाने की कोशिश की है। 'विद्रोही', 'उद्धार', 'दो सखियां', 'कुसुम', 'एक आंच की कसर', 'सोहाग का शव', 'निर्मला' आदि दहेज–प्रथा को उजागर करने वाले कथा–साहित्य हैं।

विवाह : प्रेमचन्द व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए विवाह को आवश्यक मानते हैं। 'प्रतिज्ञा' में प्रो. दीनानाथ कहते हैं– ''मैंने कभी अविवाहित जीवन को आदर्श नहीं समझा, वह आदर्श हो ही नहीं सकता।''[3] 'रंगभूमि' में प्रभु सेवक कहता है– ''जिस प्रकार कुछ व्रतधारियों के निर्जल और निराहार रहने से अन्न और जल की उपयोगिता में बाधा नहीं पड़ती उसी प्रकार दो–चार योगियों के त्याग से दांपत्य जीवन त्याज नहीं हो जाता है।''[4] प्रेमचन्द जी अपने साहित्य में किसी भी विवाह योग्य स्त्री को आजीवन कुंवारी चित्रित नहीं करते हैं। मिस पद्मा, मिस मालती आदि ने आजीवन विवाह न करने का विचार तो किया लेकिन अंत में वे अपने इस विचार पर अडिग न रह सकीं। इस प्रकार प्रेमचन्द की दृष्टि में अविवाहित रहने से लाभ के बदले हानियाँ ही हैं।

विवाह से पूर्व मातृत्व की समस्या : विवाह से पूर्व मातृत्व की समस्या पैदा करने में पुरुष एवं स्त्री दोनों जिम्मेदार हैं। किंतु पुरुष प्रेम–संबंध से छूट जाता है और स्त्री उसे निभा लेती है। प्रेमचंद की 'त्याग का प्रेम' कहानी में आनन्दी उस पीड़ा को भोगती है। लाला गोपीनाथ गुजराती महिला आनन्दी को गर्भवती बनाकर छोड़ देता है। 'मिस पद्मा' में प्रो. प्रसाद पद्मा के साथ प्रेम के बदले विश्वासघात करता है, जिससे पद्मा को वैवाहिक जीवन से हमेशा घृणा होती है।

प्रेमचन्द ने प्रेम–संबंध में नर एवं नारी को समानाधिकार दिया, किंतु नारी हमेशा उसमें फंसकर अपने आपको असुरक्षित एवं अकेला पाती है, जबकि पुरुष स्वतंत्र एवं स्वेच्छाचारी बन जाता है।

अनमेल–विवाह : वैवाहिक जीवन पद्धति में अनमेल–विवाह सबसे बड़ी कमजोरी रही है। प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में इस कुरीति का खुलकर वर्णन किया है। इस समस्या पर उन्होंने अनेक पात्रों की सर्जना की है। 'शान्ति' की शान्ति, 'कुसुम' की कुसुम, 'कन्या विवाह' की आशा, 'गृहदाह' की देवप्रिया, 'निर्मला' उपन्यास की निर्मला, 'सेवासदन' की सुमन, 'प्रतिज्ञा' की सुमित्रा आदि ऐसी ही नारी–पात्र हैं जिनका विवाह माता–पिता, सगे–संबंधियों ने लालच की भावना अथवा आर्थिक अभाव के कारण आयोग्यों से कर दिया है। ऐसे पत्रों के माध्यम से अनमेल–विवाह के प्रति चिंता करते हुए प्रेमचन्द यही कहना चाहते थे कि ''आप अपनी बालिकाओं के लिए मत देखो धन, मत देखो जायदाद, मत देखो कुलीनता केवल वर देखो।'' प्रेमचंद ने अपने साहित्य में अनमेल–विवाह का विरोध करते हुए जितने भी पत्रों की सृष्टि की है उन सभी पात्रों की अंत में एक ही आशा रहती है कि– ''अगर लड़की के लिए जोड़ का वर नहीं पा सकते तो लड़की को कुंवारी रख छोड़ो, जहर देकर मार डालो, गला घोंट डालो, पर किसी बुड्ढ़े–खूसट से मत ब्याहो।''[5] 'कायाकल्प' की रानी रोहिणी अर्थ–लोलुपतावश असमान व्यक्ति से ब्याह कराने वाले मां–बाप के लिए प्रार्थना करती है–''ईश्वर उन्हें नर्क में भी चौन न दे।''[6]

बहु–विवाह : समाज के कई लोग सन्तति सुख, परिवार के संरक्षण अथवा युगीन आकर्षण के लिए बहु–विवाह करते हैं। जिसका विरोध प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में खुलकर किया है। कहानी– 'अग्नि समाधि', 'उन्माद एवं स्रोत' तथा उपन्यास 'कायाकल्प' आदि कथाओं में प्रेमचन्द ने बहु–विवाह का वीभत्स चित्रण प्रस्तुत किया है।

विधवा–विवाह : प्रेमचन्द विधवा नारी की जीवन दशाओं के प्रति सचेत हैं। वैधव्य जीवन की विषमता से मुक्ति दिलाने हेतु विधवा–विवाह का समर्थन करते हैं। वे यह नहीं चाहते कि कोई बाल–परिणीता पारिवारिक या

सामाजिक रूढ़िबद्धता का शिकार बनकर आजीवन घुटन और वैधव्य पीड़ा में आंसू बहाती रहे अथवा परिवार में विवश असहाय बनकर दूसरों की सहानुभूति पर जीवित रहे या पथ भ्रष्ट होकर आत्महत्या करे।

विधवा–विवाह का समर्थन करने वाले प्रेमचन्द की कई कहानियाँ, उपन्यास मिलते हैं, जिनमें मुख्यतः 'नैराश्य लीला', 'सुभागी', 'आधार', 'माता का हृदय', 'माँ', 'बालक', 'शांन्ति', 'शराब की दुकान', 'ईश्वरीय न्याय' आदि आते हैं।

अंतर जातीय विवाह : प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में अंतर जातीय विवाह के प्रश्नों को उजागर करते हुए रूढ़िग्रस्त समाज का उद्धार करना चाहा है। 'कायर' कहानी का नायक केशव ब्राह्मण होकर भी एक भावुक प्रेमी की तरह वैश्या कन्या प्रेमा के साथ अपना जीवन व्यतीत करना चाहता है, किंतु रूढ़िग्रस्त परिवार उनके जीवन में बाधक बनते हैं। 'दो कब्रें' कहानी की वेश्या पुत्री सुलोचना का विवाह प्रो. रामेंद्र के साथ होता है किंतु सामाजिक रूढ़िबद्धता के कारण उन्हें वैवाहिक मान्यता नहीं मिलती है।

आदर्श नारी : प्रेमचन्द किसी भी वर्ग या जाति की स्त्री की चरित्रहीनता सहन नहीं कर पाते हैं। पतिव्रता प्रेमचन्द के लेखन का मूल स्वर है। 'त्यागी का प्रेम' की आनंदीबाई तथा 'कायाकल्प' की गायत्री ने जब इस सीमा का अतिक्रमण किया तो ऐसी पात्रों को प्रेमचन्द ने जीवन के अंतिम दिनों तक रुलाकर उनसे उनकी इस दुर्बलता का प्रायश्चित करवाया है। इस प्रकार प्रेमचन्द अपने साहित्य में नारी को एक आदर्श रूप में प्रतिष्ठित करते हैं।

नारी–अपहरण : प्रेमचन्द जी ने 'शुद्धा', 'कवच', 'निर्वासन', 'मर्यादा की वेदी', 'जुगनू की चमक', 'मेरी पहली रचना' आदि कहानियों में नारी–अपहरण, बलात्कार, हत्या जैसी प्रवृत्तियों का पर्दाफाश करते हुए ज्वलन्त समस्याओं का निरूपण किया है।

वेश्या–गमन : प्रेमचन्द वेश्यावृत्ति के लिए स्त्री को उत्तरदायी न ठहराकर उसकी इस नीच वृत्ति के लिए विवश करने वाली परिस्थितियों को ही दोषी ठहराते हैं। 'वेश्या' कहानी की माधुरी अपने अंतिम पत्र में लिखती हैं–'पुरुष इतना निर्लज्ज है कि उसकी दुरावस्था में अपनी वासना तृप्त करता है और इसके साथ ही इतना निर्दयी कि उसके माथे पर कलंक लगाकर उसे उसी दुरवस्था में मरते देखना चाहता है।'[7] 'सेवासदन' में पदम सिंह का कहना है– ''हमें उनसे घृणा करने का कोई अधिकार नहीं है। यह उनके साथ घोर अन्याय होगा। यह हमारी ही कुवासनायें हमारे ही सामाजिक अत्याचार, हमारी कुप्रथायें हैं, जिन्होंने वेश्याओं का रूप धारण किया है। वेश्या एक बेटी, पत्नी, माँ है। उसमें सहृदयता, भक्ति और श्रद्धा है। किंतु फिर भी समाज में वेश्या को पददलित, पतित, बदनाम और लोगों के रंजन की वस्तु समझा जाता है।''[8] इस प्रकार प्रेमचन्द ने अपने कथा–साहित्य में नारी के वेश्या रूप के लिए पुरुष को ही जिम्मेदार बताते हैं।

निष्कर्ष : प्रेमचन्द एक ऐसे युगद्रष्टा पुरुष थे, जिन्होंने अपने समय में रहकर आने वाले युग की अच्छी तरह से पहचान की थी। उनके साहित्य में आने वाले कल की परछाई स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। वर्तमान समय में जो नारी–विमर्श अपनी चरम–सीमा पर पहुँच चुका है, उसके बीज हम प्रेमचन्द के साहित्य में निश्चित रूप से ढूंढ़ सकते हैं। अतः प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में सामग्र नारी–जीवन की सूक्ष्मताओं को बड़ी सफलता के साथ समेटने का प्रयत्न किया है। उनका यह चित्रण धार्मिक, सामाजिक, जातीय तथा राजनीतिक रूढ़िबद्धता से सर्वथा रहित है। उन्हें न तो समस्त प्राचीन नारी संबन्धित प्राचीन भावनाओं से एकदम घृणा है और न समस्त नवीन के प्रति किसी प्रकार की अत्यासक्ति।

पुरातन में जो भी शिव है, सुंदर है उसे स्वीकार है और आधुनिकता में जो कुछ सहज, सत्य है उसे भी अंगीकार करते हुए एक ऐसा पुष्प–स्तवक संवारा है, जिससे सभी नारियां सुवाषित हो गयी हैं।

सन्दर्भ–सूची

1. शिवरानी देवी, प्रेमचन्द घर में, पृ. 260
2. प्रेमचन्द, गबन, पृ. 103
3. प्रेमचन्द, प्रतिज्ञा, पृ. 142
4. प्रेमचन्द, रंगभूमि, पृ. 139
5. प्रेमचन्द, मानसरोवर (भाग–3), पृ. 30
6. प्रेमचन्द, कायाकल्प, पृ. 73
7. प्रेमचन्द, मानसरोवर (भाग–3) पृ. 54
8. प्रेमचन्द, सेवासदन, पृ. 148

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 308-312

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

समकालीन हिन्दी कहानी में अभिव्यक्त महानगरों का पर्यावरण-विमर्श

*जगदीश प्रजापति** *प्रो. क्षमा मिश्रा***

सारांश–*समकालीन हिंदी कहानी जीवन और परिवेश के व्यापकपरि क्षेत्र को अभिव्यक्त कर रही है। महानगरीय जीवन आज के मानव का अत्यंत आकर्षक जीवन–क्षेत्र बन चुका है। समकालीन हिंदी कहानी महानगरों के व्यापक जीवन–परिवेश को अंकित कर रही है। महानगरों में जीवन की मूलभूत सुविधाओं के सभी साधन उपलब्ध हैं। लेकिन इन्हीं साधनों के साथ–साथ जीवन के मूलभूत खतरे भी यहाँ उपलब्ध हैं। प्रदूषण, इन सभी खतरों में सबसे ऊपर है। इसके साथ ही महानगर जीवन के रस को सोख रहे हैं। हमारी आज की हिंदी कहानी महानगरों के इस तरह की जीवन खाऊ परिस्थितियों को प्रत्यक्ष कर रही है। महानगरीय पर्यावरण की दृष्टि से उमाशंकर चौधरी, कबीर संजय, गौरीनाथ, नवीन जोशी जैसे महत्वपूर्ण कथाकार प्रभावशाली तरीके से कहानी लिख रहे हैं। इस नई पीढ़ी के कथाकारों ने सफलतापूर्वक अपनी कहानियों में महानगरीय पर्यावरण पर विमर्श के लिए आधार तैयार किया है। इनकी कहानियाँ महानगर के जीवन की समीक्षा करती हैं।*

बीज शब्द–*पर्यावरण–विमर्श, महानगरीय जीवन, समकालीन हिन्दी कहानी, पारिस्थितिकी, औद्योगिक विकास, प्लास्टिक, कचरा, उमाशंकर चौधरी, कबीर संजय, मधुसूदन आनन्द, नवीन जोशी, गौरीनाथ, योगेन्द्र आहूजा, पर्यावरणीय असंतुलन, ईकोसिस्टम, फेंगशुई, एन्थ्रोपोसीन, कृत्रिम पर्यावरण, ग्लोवलवार्मिंग।*

प्रस्तावना–समकालीन हिंदी कहानी में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र का स्पर्श दिखाई देता है।जन–जीवन के व्यापक दायरे में जीवन की कितनी–ही रंगते बिखरी पड़ी हैं। आज के कथाकार इन्हें अपनी कहानियों में संयोजित कर रहे हैं। जीवन की विविधता समकालीन हिंदी कहानी में उपस्थित है। गाँव–अंचल से लेकर नगर–महानगरों तक फैले समाज की तरह समकालीन हिंदी कहानी भी अपनी व्यापकता में फैली हुई है। औद्योगिक विकास एवं बाजार के प्रोत्साहन में महानगरीय जीवन की केंद्रीयता बढ़ रही है। वहाँ की जिंदगी में अनेक तरह की अनुकूलताएँ आज की पीढ़ी को अपनी ओर आकर्षित कर रही हैं। इसके बरक्श गांव की जिंदगी जैसे हाशिये पर धकेली जा रही हो। इन सभी भौतिक स्थितियों का असर हमारे समकालीन कथाकारों और उनकी कहानियों में दिखाई दे रहा है। समकालीन कथाकारों की संवेदनशीलता के दायरे में महानगरीय जीवन–बोध का प्रभाव खूब दिखाई दे रहा है। परिणामस्वरूप आज की हिंदी कहानी की परिधि इसी जीवन–बोध से आबद्ध है। उदय प्रकाश से लेकर उमाशंकर चौधरी, कबीर संजय तक की कहानियों में गांव से लेकर महानगर तक की जिंदगी का फैलाव उपस्थित है।इसीलिए समकालीन हिंदी कहानी में महानगरीय पर्यावरण–बोध सशक्त रूप में सामने आता है।

शोध विस्तार–महानगरीय जिंदगी भौतिक रूप से मनुष्य के लिए सुविधाजनक होती है। इस सुविधाजनक व्यवस्था के पार्श्व–प्रभाव हमें किस तरह असुविधायें प्रदान करते हैं, इसे हम समझ नहीं पाते, लेकिन आज के कथाकार इसे बखूबी महसूस कर उसे अपनी कहानियों में रच रहे हैं। पर्यावरण–साहित्य की प्रसिद्ध विद्वान के. वनजा जी महानगरों की पारिस्थितिकी–संकट के कारणों को उद्घाटित करती हुई लिखती हैं– 'महानगर प्रकृति के शोषण से निर्मित हैं। वहां कई तरह की पर्यावरण समस्याएं हैं। पेड़–पौधों के काटने से, कारखानों की वृद्धि से, मोटर–गाड़ियों के उपयोग से, जनसंख्या–विस्फोट से वायु–जल–मिट्टी आदि का प्रदूषण होता है। इन सबसे बढ़कर वहां के लोगों की बुद्धि एवं विचार भी गंदे हो जाते हैं।"[1] जिंदगी की सुविधायें प्राकृतिक संसाधनों को अनुकूलित करके ही बढ़ाई जाती हैं। इस प्रक्रिया का परिणाम प्राकृतिक असंतुलन के रूप में सामने आता है।

* *शोध छात्र, हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ*

** *प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जय नारायण पी.जी. कॉलेज, लखनऊ, उ.प्र. (लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ)*

हवा–पानी–भोजन जैसी बुनियादी आवश्यकताएँ भी इस असंतुलन की शिकार हो जा रही हैं। समकालीन हिंदी कहानियों में इस तरह की पर्यावरणिक विखंडन और उसके प्रभावों का उनकी पूरी जीवन्तता के साथ उपस्थिति दर्ज है।

महानगरों की व्यवस्था पूरी तरह से मानव एवं बाजार द्वारा निर्मित है। यहां का पूरा ईको–सिस्टम ही बदला हुआ है। कबीर संजय, उमाशंकर चौधरी, राकेश मिश्रा आदि कथाकारों की कहानियों में दिल्ली की महानगरीय पारिस्थितिकी जीवंत रूप में सामने आती है। कबीर संजय जी अपनी कहानी 'फेंगशुई' में दिल्ली की एक कंपनी में पैदा की गई इस तरह की व्यवस्था को चित्रित करते हैं– "कुछ ऐसा ही दम घुटता था, उस बाईस मंजिला इमारत में। जहां पर सब कुछ नियत था। पहले से तय था। प्रीलोडेड प्रोग्राम। इंसान संचालित था। तापमान भी 18 से 26। बस न इससे कम न इससे ज्यादा। मई–जून की गर्मियों में बाहर सूरज आग का गोला बना होता, लू के थपेड़ों से लोगों के चेहरे तमतमाए होते थे; लेकिन अंदर एयरकंडीशनर इतना नीचे होता कि कई बार तो लड़कियाँ अपने दुपट्टे को शाल की तरह ओढ़ लेती।"[2] प्रकृति द्वारा सहज और स्वाभाविक रूप से प्रदत्त प्राकृतिक–सुविधायें यहां मानव रचित हो गई हैं। आज मनुष्य अपने द्वारा तैयार किए गए पर्यावरण में रह रहा है। इसी कृत्रिम पर्यावरण के ही आधार पर आज के समय को पर्यावरणविद् 'एंथ्रोपोसीन' के रूप में परिभाषित कर रहे हैं।

महानगरीय जीवन में सब कुछ सुविधाजनक नहीं है। यहां की सुविधाओं के अपने अंतर्विरोध हैं। दिल्ली के संदर्भ में प्रसिद्ध कथाकार गौरी नाथ जी ने अपनी कहानी में सटीक तरीके से बात कही है– "लूटने वाले के लिए ही नई है लुटियन की यह खुली और खिली दिल्ली! बाकी के लिए धुआँ, धूल और जाम है।"[3] अत्यंत नवीन और तकनीकी में अद्यतन बनी व्यवस्था का लाभ सक्षम लोग ले रहे हैं। लेकिन उनको प्राप्त सुविधाओं का जो बाईप्रोडक्ट है, वह पूरे पर्यावरण को विषैला बना रहा है। महानगरों की वायु की अशुद्धता एक सामान्य–सी बात बन चुकी है। हमारी प्राणवायु आज कितनी विषैली बन चुकी है। कई तरह के वैज्ञानिक अध्ययनों ने इसके लिए फ्रीज, ए. सी., वाहन व अन्य संयंत्रों से उत्सर्जित गैसों को जिम्मेदार ठहराया है। आज का हमारा समग्र प्रौद्योगिकी विकास क्या पूरी धरती को विषैली बनाने में जिम्मेदार नहीं है! पर्यावरण की समस्या एक विशेष क्षेत्र में भले ही प्रधान रूप ले लेती हो लेकिन उसका प्रभाव धरती के व्यापक क्षेत्र पर पड़ता है। कथाकार दिनेश पाठक ने अपनी कहानी 'युद्ध' में ग्लोबलवार्मिंग के परिणाम को आज के मौसम पर परिघटित होते दिखाया है– "इस बार ठंड कुछ विचित्र तरह की थी, एकदम कोरी। बारिश का कहीं नामोनिशान नहीं था। पता नहीं क्या हो गया है मौसम के मिजाज को भी। अपनी लिप्सापूर्ति के लिए आदमी ने धरती के पर्यावरण के साथ कम अनाचार नहीं किया है। निसंदेह उसकी परिणिति है यह। ताजुब है, किसी को चिंता नहीं है इस बात की। कोई सोच भी नहीं रहा कि हम कैसी पृथ्वी सौंप जाने वाले हैं, भावी पीढ़ी को, कितनी बदहाल, कितनी बदहवास।"[4] धरती का तापमान बढ़ रहा है, पूरा वातावरण गर्म होता जा रहा है। तापमान का पिछला रिकॉर्ड हर साल टूट रहा है। आंकड़े भले ही वैश्विक स्तर पर तैयार किए जाते हैं, जिंदगी अलग–अलग स्थानीय प्रभावों से त्रस्त हो रही है। कहीं बाढ़ से तो कहीं सूखा से। इन सब के लिए आज की हमारी सभ्यता विनष्टकारी भूमिका निभा रही है।

पर्यावरण के लिए समर्पित लेखन करने वाले प्रसिद्ध कथाकार नवीन जोशी जी अपनी कहानी'नया पर्यावरण' में आज की सभ्यता से उत्पन्न कचड़े के अंबार पर विमर्श पैदा करते हैं– "आज का आदमी कितना कचरा जमा करने लगा है। उन्हीं के घर से कितनी तरह का कचरा निकलता है। हर सामान प्लास्टिक के रैपर में आता है। दूध हो या बिस्किट या ब्रेड, दालें, आटा, चावल, हर सामान कचरा साथ लाता है। सभी चीज पैकेट बंद हैं और कचरा बढ़ाती हैं।... सुनते हैं पैकिंग एक बड़ा प्रोफेशन बन गया है। कचरा पैदा करने का प्रोफेशन।"[5] आज हमारे जीवन का प्रत्येक कदम इस तरह के अवांछित तत्वों से टकराकर आगे बढ़ रहा है। दयानंदिनी के उपयोग में आने वाली प्रत्येक वस्तु प्लास्टिक के थैले में पैक हो रही है। प्रकृति की भी अपनी पैकेजिंग व्यवस्था है। उसने ऐसे कवर तैयार कर रखी है जो कि उपयोग करने के बाद स्वतः नष्ट हो जाती है जबकि मनुष्य की अपनी व्यवस्था से तैयार पैकेट कालजयी हो गए हैं। बताया जाता है कि प्लास्टिक के थैले मनुष्य के कई बार जन्म लेने और मर जाने के बाद भी यथावत उपस्थित रहेंगे। तात्कालिक आवश्यकता के पश्चात यह प्लास्टिक जितना अनुपयोगी साबित हो रहा है, उतना इस धरती पर कोई भी वस्तु नहीं। समकालीन हिंदी कहानियों में इस तरह पारिस्थितिकी के नए दुश्मनों पर पूरी जिम्मेदारी के साथ लेखन हो रहा है।

समस्या प्लास्टिक तक ही सीमित नहीं है। आज की नेटवर्किंग के नए संजाल का मूल 'इंटरनेट' की तरंग से प्रकृति के जीव–जंतु प्रभावित हो रहे हैं। महानगरों में चिड़ियों का प्रजनन नियंत्रित हो चुका है। गौरैया, कोयल,

मैना, तोता जैसे मानव परिवेश की सीमा में रहने वाले पक्षी महानगरों से गायब हो चुके हैं। महानगरीय परिवेश के जहरीले होने का यह सबसे बड़ा संकेतक है। आज शहरों–महानगरों में पक्षियों की आवाज नहीं सुनाई देती। मशीनों की आवाज ही इस परिवेश की जानी–पहचानी ध्वनि बन गई है।

'कब्रिस्तान में कोयल'कहानी में कथाकार मधुसूदन आनंद जी महानगरों में होने वाले ध्वनियों में प्रकृति की दूरी को दिखलाया है– "हमारे शहरी जीवन में ये आवाजें आज दुर्लभ हैं। यहाँ न मुर्गे के बाग देने की आवाज आती है, न मोर की। सुबह–सुबह कई चिड़ियों की आवाज आया करती थी। गुटरगूं–गुटरगूं करते कबूतर। चीं–चीं करती चिड़ियाँ। मगर अब तो गौरैया भी गायब हो गई हैं। मैंने तो मेंढक की आवाज भी सुनी है और तोते की भी। कौवे हर सुबह काँव–काँव करते थे। यहाँ ज्यादा–से–ज्यादा आपका कौवों और कबूतरों की आवाज सुन सकते हैं। मोहल्ले में कुत्ते भौंकते हैं और रातों में बिल्लियाँ लड़ती हैं। घरों की अपनी विचित्र आवाजें होती हैं पानी की मशीन की आवाज। मिक्सी और माइक्रोवेव की आवाज। दरवाजे की घंटी की आवाज। फेरी वालों की आवाज। माँ की आवाज। भिखारी की आवाज। बच्ची की आवाज और खुद टेलीफोन पर अपनी चीखती हुई आवाज।"[6] यह कितना दुर्भाग्यपूर्ण है। आज के हिंदी कथाकार हमारे जीवन की इन छोटी–छोटी विडम्बनाओं को पहचान रहे हैं। उनकी चिंता परिवेश के मूल स्वरूप को बरकरार रखने की है। अन्य प्रदूषणों की तरह ध्वनि एवं प्रकाश भी प्रदूषण के आतंककारी तत्वों के रूप में दर्ज हो रहा है। उमाशंकर चौधरी की कहानी 'दिल्ली में नींद' में भी शोर की समस्या पर बात की गई है। कहानी का पात्र सुनानी दिल्ली के शोर से परेशान है– "क्या हम अब शोर के बिना कभी नहीं रह पाएंगे?"[7] इस कहानी में सुनानी नामक पात्र दिल्ली में अपने जीवन के जरूरी प्राकृतिक तत्वों के लिए तरस रहा है। उसे नींद की जरूरत हमेशा बनी रहती है क्योंकि दिल्ली की आपाधापी भरी जिंदगी और शोर से वह सो नहीं पा रहा है। उमाशंकर चौधरी जी की कहानी में सुनानी अपने मन में बुदबुदाता है कि– "यह शोर ही तो मृत्यु है।"[8] सुनानी का पूरा परिवार रोगग्रस्त हो चुका है। यह कहानी आज की जिंदगी की दशा से डराती है। उमाशंकर चौधरी की अधिकांश कहानियों में दिल्ली जैसे महानगरों के जीवन का सच्चा विमर्श छिपा हुआ है। अभी हाल में प्रकाशित उनकी कहानी 'इत्ता–सा टुकड़ा चांद का' बच्चों के जीवन में 'खेल' जैसी अति अनिवार्य गतिविधि के नियंत्रित हो जाने को अभिव्यक्त करती है। यह कहानी भी दिल्ली–एनसीआर के परिवेश की कहानी है। खेल से वंचित बच्चे मोबाइल और टीवी तक अपने को सीमित कर ले रहे हैं। कहानी में दिखाया गया है कि बच्चे अब मोबाइल में भी खुशी ढूंढ रहे हैं– "वह इन दोनों का इस्तेमाल कई तरीकों से करता और अपने में खुश रहने की कोशिश करता।"[9] कुछ समय पहले कथाकार ओमा शर्मा ने बच्चों की मोबाइल केंद्रीयता से उत्पन्न समस्या पर एक कहानी 'दुश्मन मेंमना' लिखी थी।

पर्यावरण की परिसीमा बहुत व्यापक होती है। इसके अंतर्गत प्रकृति के सभी मूलभूत स्रोत परिगरणीय हैं। नदियाँ भी पर्यावरण का बहुत बड़ा हिस्सा हैं। हमारी नदियों की वर्तमान दशा आज की सभ्यता का पर्दाफाश करती हैं। दिल्ली महानगर के बगल में बहने वाली यमुना नदी इस सभ्यता के तात्कालिक वजूद का प्रत्यक्ष प्रमाण है। कथाकार राजेश जैन ने अपनी कहानी 'यमुना तीरे' में दिल्ली में बहने वाली इसी यमुना के आज की त्रासद भरी दशा को नदी के ही आत्म–वक्तव्य में दिखाया है। कहानी में आया यमुना नदी का वह आत्म–वक्तव्य इस प्रकार है– "नदी हूँ लेकिन नाली होने की हीन भावना से ग्रस्त हो रही हूँ। कभी लगता है दिल्ली में एक गंदली कुतिया–सी पड़ी हूँ। और मेरे थन ओखला, डी.एन.डी., निजामुद्दीन, आईटीओ, गीता कॉलोनी... आदि स्थानों तक फैले हैं; जिन्हें पुलों पर गुजरते वाहन या और लोग अपनी ही तरह से रौंद रहे हैं, इधर–उधर शहर के गंदे नाले मुझ में अपनी गंदगी उड़ेल रहे हैं...।"[10] शहरों के कूड़ा–घर अधिकांशतः पार्कों–बगीचों के पास बनाए जाते हैं। इसी तरह शहर के गंदे नाले नदियों में मिलाये जाते हैं। दिल्ली में यमुना की इस हालात के लिए हमारी आज की व्यवस्था जिम्मेदार है। गाजियाबाद की हिंडन नदी प्लास्टिक के ढेर में दब चुकी है। नदी के सौंदर्य को लोग भूल चुके हैं। दिल्ली की यमुना को जहरीला यमुना बना दिया गया है, जिसके जल से उसके किनारे बसे गाँव का जन–जीवन उम्मीद पाले रहता है।

कथाकार योगेंद्र आहूजा ने अपनी एक कहानी में दिल्ली की एक अन्य समस्या मलवा पर सार्थक रूप से प्रकाश डाला है– "दिल्ली का मलवा... पहले लाइन पार था; फैक्ट्रियों के बीच, अब इधर भी आने लगा है। रोज ताजा मलवा आता है; पहले से ज्यादा। जब तक खेल शुरू होंगे; यहाँ सब कुछ मलवे के नीचे दब चुका होगा। फिर शायद हम लोग कभी खुदाई होने पर...।"[11] दिल्ली महानगर में मलबे का पहाड़ उपस्थित है। बुराड़ी और गाजीपुर का मलवा (कूड़े) का ढेर आश्चर्यजनक स्थिति पैदा कर रहा है। इन ढेरों के आस–पास का जीवन असह्य

बन चुका है। कूड़े के इन ढेरों से विषैली गैस इतनी सघनता से निकल रही है कि उसके तापमान से उस ढेर में आग फैल जाती है।

शहरों–महानगरों में घरों व मकानों की ऊर्ध्वाधर ऊँचाई लोगों को जैसे धरती से दूर करती जा रही है। ऊँचे–ऊँचे फ्लैटों में लोग लिफ्ट से अपने कमरे तक पहुंचते हैं। दिल्ली के फ्लैटों एवं अपार्टमेंटों के सीमित दायरे का जीवन लोगों के प्राकृतिक जीवन को नष्ट कर देता है। लोगों को "अपार्टमेंट में टंगे–टंगे ऊब होने लगती है।"[12]

लोगों का स्वाभाविक जीवन जैसे छिन गया हो। 'इत्ता–सा टुकड़ा चांद का' कहानी में अनिकेत जहाँ रहता है, वह कितनी ऊँचाई पर स्थित फ्लैट है– "तेईस माले की यह बिल्डिंग, जिसके उन्नीसवें माले पर अनिकेत रहने आया था, का नाम स्काईब्यू अपार्टमेंट था। नाम स्काईव्यू था तो स्काई का व्यू तो था। ऐसा लगता था, जैसे आसमान अब उनसे थोड़ा ही ऊपर है।"[13] इन्हीं अपार्टमेंटों में रहने वाले साल–दर–साल रहते हुए जब ऊबने लगते हैं, तो छुट्टियों में पहाड़ एवं जंगलों की ओर पर्यटन के नाम पर चल पड़ते हैं। कथाकार एस.आर. हरनोट, सरिता कुमारी आदि ने इस तरह के पर्यटन से उपजे पर्यावरण के संकटों पर भी कई कहानियाँ लिखा हैं। वहाँ की परिस्थितिगत समस्याओं की जड़ भी महानगरों से जुड़ी हुई है। मनुष्य की प्रकृति से जुड़ाव की लालसा आज भी उपस्थित है। वह रहने को चाहे जहाँ रह रहा हो, लेकिन उसकी आदिम चाह आज भी मन–मस्तिष्क में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उपस्थित है।

दिल्ली–मुंबई जैसे महानगरों में रहने वाले लोगों की अवचेतना में अपनी प्रकृति से जुड़े रहने के लालसा बची हुई है। कबीर संजय की कहानी 'फेंगशुई' में महानगर के अति आधुनिक कार्यालय में काम करने वाले युवा की इच्छा में धूल एवं मिट्टी के प्रति एक तरह का लगाव सुरक्षित है– "चारों तरफ से बंद केंद्रीकृत वातानुकूलन से चलने वाले इस ऑफिस में कर्मचारियों के पैरों से चिपक कर आने वाली धूल को वह अब भी लालच भरी निगाहों से देखता था।"[14] यह मनुष्य के अंदर जी रही वही आदिम लालसा है, जो प्रकृति के संगत से उसके मन के गहवर में कहीं छिपी बैठी हुई रहती है। अपनी प्रवृत्तियों के कारण मनुष्य के प्राकृतिक होने की प्रमाणिकता आज भी बची हुई है।

कथाकार गौरी नाथ ने अपनी महत्वपूर्ण कहानी 'एक अकाउंटेंट की डायरी में मिट्टी की गंध' में जिस अकाउंटेंट का जीवन दिखाया है, उसकी भी त्रासदी यही है कि वह मिट्टी की गंध में जीता है। दिल्ली जैसे महानगर की पारिस्थितिकी में, जहां मिट्टी का स्पर्श एवं गंध दूभर रहता है, वहाँ वह व्यक्ति मिट्टी की गंध के लिए तरसता रहता है। एकाउंटेंट अपनी डायरी में अपनी समस्या को प्रस्तुत करते हुए लिखता है– "इधर एक अजब बीमारी हो गई है मुझे। जब कभी क्षण–भर को भी फुर्सत में एकांत के क्षण मिलते हैं कि मुझे मिट्टी की गंध आने लगती है। इस गंध के आते ही मेरे सामने गेहूँ–धान के शीश झिलमिलाने लगते हैं। गोभी, घिया, बैगन, परवल, भिंडी, टमाटर, प्याज जैसी ढेर सारी सब्जियों की नजर मेरी नजरों के सामने एक तरह से उड़ने सी लगती हैं। मिट्टी की गंध है और फसलों के अक्स एक साथ मिलकर मेरे दिमाग में कुछ इस तरह से हड़बोंग मचाते हैं कि मैं पसीने से लथपथ और निढाल हो जाता हूँ।"[15] हमारी आज की सभ्यता के प्रतिकूल–सी लगने वाली ये स्थितियाँ ही सचमुच के जीवन के बचे रहने की आहट देती हैं। आज की सुविधावादी, अर्थलोलुप मानव–पीढ़ी इस तरह की मानवीय गतिविधियों को संभवतः संदेह और हेय की निगाह से देख रही है। वह ये नहीं समझ पा रही है कि जीवन के स्वाभाविक प्रवाह में बहते चलने के लिए हमें प्रकृति का संसर्ग चाहिए। हम उससे बच नहीं सकते। समकालीन हिंदी के कथाकारों का यह पर्यावरण–बोध उनकी कहानियों की वैविध्यता में झांकता हुआ दिखाई देता है। जीवन के अलग–अलग क्षेत्र से चुने गए कथानकों के माध्यम से पर्यावरण–संकट पर यह दृष्टिपात महत्वपूर्ण है।

समकालीन हिंदी कहानी में पर्यावरण–विमर्श के इस उत्साह भरी रचना धर्मिता पर कथा–आलोचक विनोद शाही अपनी सकारात्मक टिप्पणी करते हैं– "हमारे समय के नए मुक्तिदायी बीज–आख्यान इन्हीं कुदरती भाव–दशाओं को बचाने की ओर केंद्रित होने का प्रयास कर रहे हैं। जीवन की गहराइयों से उठे सपनों की मदद से हमें अपने समाजैतिहासिक परिदृश्य के भीतर से अपनी नई बीज–कथाओं को चुनने में कामयाबी मिल सकती है।"[16] यह कामयाबी समकालीन हिन्दी कहानी में अभिव्यक्त जीवन–दशाओं के रूप में मिल रही है। इतना ही नहीं कथाकारों ने पर्यावरण के औद्योगिक एवं महानगरीय संकट–स्रोतों के प्रतिरोध में सजग चेतना को सक्रिय होते हुए भी दिखाया है।

निष्कर्ष–समकालीन हिंदी कहानी जीवन के प्रत्येक पहलू को पूरी सक्षमता से अभिव्यक्त कर रही है। प्रेमचंद के समय में समाज का बहुलांश गांवों में जीवन–यापन कर रहा था, इसलिए उस समय के कथा–साहित्य में गांव

का जीवन बहुतायत उपस्थित मिलता है। आज का समाज महानगरों की ओर तेजी से आकर्षित होकर वहीं अपना जीवन–यापन की आशा में भाग रहा है। समकालीन कहानी समय और समाज के इस महत्वपूर्ण पक्ष को उसकी पूरी गहराई के साथ अभिव्यक्त करने में सक्षम है। महानगरों की भौतिक खुशहाली के बाहरी आवरण में छिपी जीवन की जहरीली स्थितियों और तत्वों को ये कहानी उद्घाटित करती हैं। आज का हमारा महानगरीय जीवन न केवल पर्यावरण की दृष्टि से बल्कि जीवन की समरसता की दृष्टि से भी प्रदूषित है। समकालीन हिंदी कहानी इन सभी विषयों पर पूरी सार्थकता के साथ विमर्श करती है। इससे आज की पीढ़ी को महानगरीय जीवन के स्याह और सफेद सभी पक्षों को समझने में सहायता मिलती है।

संदर्भ–सूची

1. के. वनजा, ईको–फेमिनिज्म, वाणी प्रकाशन–दिल्ली, संस्करण–2023, पृ. 148
2. कबीर संजय, फेंगशुई (कहानी–संग्रह), राजकमल प्रकाशन–दिल्ली, संस्करण–2023, पृ. 47
3. गौरी नाथ, एक एकाउंटेंट की डायरी में मिट्टी की गंध (कहानी), शुक्रवार (साहित्य वार्षिकी–2013), पृ. 129
4. दिनेश पाठक, युद्ध (कहानी), पारुल दी (कहानी संग्रह), भारतीय ज्ञानपीठ–दिल्ली, संस्करण–2004, पृ. 48
5. नवीन जोशी, नया पर्यावरण (कहानी), उद्भावना (कहानी विशेषांक), जनवरी–मार्च 2021, पृ. 151
6. मधुसूदन आनंद, कब्रिस्तान में कोयल (कहानी), उद्भावना (कहानी विशेषांक), जनवरी–मार्च 2021, पृ. 105
7. उमाशंकर चौधरी, दिल्ली में नींद (कहानी), पल प्रतिपल (अंक–78), पृ. 181
8. उपर्युक्त, पृ. 181
9. उमाशंकर चौधरी, इत्ता–सा टुकड़ा चांद का (कहानी), पक्षधर (अंक–36), जनवरी–जून–2024, पृ. 118
10. राजेश जैन, यमुना तीरे (कहानी), आधा पेड़ आधा हम (कहानी–संग्रह), संपादक–सुमन शर्मा, अनन्य प्रकाशन–दिल्ली, संस्करण–2019, पृ. 84
11. योगेंद्र आहूजा, पाँच मिनट और अन्य कहानियाँ, आधार प्रकाशन–पंचकूला (हरियाणा), संस्करण–2014, पृ. 15
12. सीमा आजाद, आपदा (कहानी), पल प्रतिपल (अंक–78), जुलाई–दिसंबर–2015, पृ. 260
13. उमाशंकर चौधरी, इत्ता–सा टुकड़ा चांद का (कहानी), पक्षधर–36 (जनवरी–जून–2024), पृ. 115
14. कबीर संजय, फेंगशुई (कहानी संग्रह), राजकमल प्रकाशन–दिल्ली, संस्करण–2023, पृ. 80
15. गौरीनाथ एक एकाउंटेंट की डायरी में मिट्टी की गंध (कहानी), शुक्रवार (साहित्य वार्षिकी) 2013, पृ. 126
16. विनोद शाही, समय के बीच आख्यान, आधार प्रकाशन–पंचकूला (हरियाणा), संस्करण–2015, पृ. 31

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 313-315

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

सीतापुर (भैंसाना) के अप्रकाशित पुरावशेष

*प्रो. (मेजर) विमलेश कुमार पाण्डेय**

सारांश : *पुरातात्विक परिमार्गण के माध्यम से प्रतिवेदित पुरावशेष सम्बन्धित क्षेत्र के प्राचीन ऐतिहासिक लेखन, अध्ययन एवं अनुसन्धान के महत्वपूर्ण निदर्शक ही नहीं होते हैं प्रत्युत सांस्कृतिक स्रोत की भी महती भूमिका का निर्वाह करते हैं। सम्प्रति ये पुरावशेष प्राकृतिक एवं मानवीय गतिविधियों के फलस्वरूप अपने अस्तित्व हेतु संघर्षशील हैं। प्रस्तुत शोध–पत्र के लेखन का उद्देश्य इनका विस्तृत विवरण तैयार करना है ताकि अतीत की बहुमूल्य विरासत को सुरक्षित रखा जा सके।*

कुञ्जिका शब्द : *परिमार्गण, पुरावशेष, जनानुश्रुति, कुड़वा भैंसाना, उत्तरी कृष्णमार्जित पात्र परम्परा, दशावतार, श्रीमूर्ति, ग्रैवेयक, श्रीवत्स, प्रत्यालीढ़, अभय मुद्रा, पद्मासन मुद्रा*

अधीत स्थल सीतापुर (भैंसाना) प्रतापगढ़ जनपद की कुण्डा तहासील में कुण्डा–प्रतापगढ़ मार्ग पर तहसील मुख्यालय से लगभग 15 किमी. दूर स्थित महेशगंज थाने से पश्चिम लगभग एक किमी की दूरी पर एक झील के पूर्व (अक्षांश 25°47′32′′ उत्तर एवं देशांतर 81°38′0′′ पूर्व) स्थित है।[1] 300×200 मीटर परिक्षेत्र में प्रसरित टीले पर आधुनिक गाँव आवासित है। गाँव के नामकरण के सम्बन्ध मे एक जनानुश्रुति प्रचलित है जिसके अनुसार प्राचीन काल में यह क्षेत्र 'सीतापुर' नाम से आख्यात था, जिसके उत्तर दिशा में घनघोर जंगल के मध्य एक लघु सरोवर था। इस सरोवर से स्थानीय जनमानस अपरिचित था। गाँव के ही विश्वनाथ नामक व्यक्ति की भैंस प्रतिदिन इसी सरोवर में पानी पीने जाया करती थी। भैंस का जाना कोई नहीं जान पाता था किन्तु जब वह लौटती थी तो जानकारी मिलती थी क्योंकि जिस रास्ते से आती थी उस पर पानी की बूँदों के निशान मिलते थे। जिज्ञासावश लोगों ने इसकी वास्तविकता जानने के लिए पानी की बूँदों का अनुकरण करते हुए झील तक पहुँचने की कोशिश की। तब से उस झील का नाम 'कुड़वा' तथा गाँव का नाम 'भैंसाना' पड़ा। तालाब की खुदाई के दौरान प्राप्त विवेच्य पुरावशेषों के साथ–साथ लोहित मृद्भाण्ड परम्परा के पात्र प्रकार प्रतिवेदित हैं। जिनमें जार, तसला, ढक्कन, गोलाकार कड़ाही के ढक्कन प्रमुख रूपेण उल्लेखनीय हैं।[2]

यहाँ से पकी हुई इष्टिकाएँ भी प्राप्त हुई हैं जिनकी माप 41×29×4 सेमी. एवं 43×30×8 सेमी. है। सम्बन्धित पुरास्थल उत्तरी कृष्णमार्जित पात्र परम्परा के परवर्ती काल तथा कुषाण युग से सम्बन्धित माना जा सकता है। कुड़वा ताल से प्राप्त विवेच्य पुरावशेषों को गाँव के मध्य निर्मित आधुनिक मंदिर के गर्भ गृह तथा उसके आस–पास रख दिया गया है। इनमें अधिकांशतः क्षरणशील हैं। इनका विवेचन इस प्रकार है–

दशावतार विष्णु प्रतिमा (चित्र सं. 2)

आधुनिक मंदिर में स्थापित दशावतार विष्णु प्रतिमा लगभग पाँच फुट ऊँची है। ध्यातव्य है कि भगवान विष्णु को विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के निमित्त समय–समय पर विविध अवतार लेने पड़े। इनके पाँच से लेकर उनतालीस अवतारों की चर्चा साहित्य में प्राप्त होती है।[3] इनमें उनके मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध एवं कल्कि अवतारों को पर्याप्त प्रसिद्धि मिली।[4] कल्कि अवतार अभी होना शेष है। भारतीय शिल्पियों ने विष्णु को द्विभुजी, चतुर्भुजी एवं अष्टभुजी रूप में अभिघटित किया है जिनमें चतुर्भुजी रूप का प्राधान्य है।

कुषाण कालीन प्रस्तर कला में प्रारम्भ हुई अवतारवाद की परम्परा गुप्तोत्तर काल में आकर विष्णु की की मूर्ति के साथ उसकी पृष्ठशिला पर दशावतारों के अंकन के साथ प्राधान्य प्राप्त कर मध्य युग तक सतत् प्रचलित रही। श्वेत–पीत प्रस्तर पर अभिघटित यह उत्कृष्ट प्रतिमा लाक्षणिक दृष्टि से लगभग बारहवीं शती ई. की प्रतीत होती है।

* *प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, सल्तनत बहादुर पी.जी. कॉलेज, बदलापुर, जौनपुर*

त्रिरथ वाहिका पर मध्य में स्थानक शङ्ख, चक्र, एवं वरदहस्ता चतुर्भुजी विष्णु वस्त्राभूषणों से पूर्णालंकृत है। इनके दो हाथ भग्न हैं। श्रीमूर्ति के गले में ग्रैवेयक, मुक्ता, यज्ञोपवीत एवं आजानु वनमाला सुशोभित है। कटि में मेखला, अवशिष्ट हाथों में कंगन, भुजाओं में केयूरक, कानों में अलंकृत कुण्डल, शीश पर ऊँचा किरीट मुकुट शिल्पी ने अत्यन्त बारीकी से पहना रखा है। मस्तक की पीछे, तीन पट्टियों में बना (खण्डित) अलंकृत प्रभामंडल दर्शाया गया है। विष्णु के भाल पर तिलक और वक्ष पर 'श्रीवत्स' अंकित है। महाभारत के अनुसार दक्ष यज्ञ को विध्वंस करने के अनन्तर रुद्र ने बदरिकाश्रम में बैठे नारायण पर अपना त्रिशूल चलाया जिसे नारायण ने अपने वक्ष पर 'श्रीवत्स' के रूप में स्वीकार किया।[5]

विष्णु के अगल–बगल कटि में मेखला, हाथों में कंगन, भुजाओं में भुजबन्द, गले में ग्रैवेयक और कानों में कुण्डल धारी त्रिभंग मुद्रा में स्थानक चामर ग्राही युगल मूर्तियाँ हैं। सबसे नीचे विष्णु के चरणों में अञ्जलिबद्ध आराधना लीन भक्त युगल बैठे हैं। श्री मूर्ति के प्रभा मण्डल के ऊपर प्रतिमा परिकर के सर्वोच्च भाग में आकाश चारी मालाधारी विद्याधरों, गन्धर्वों को दर्शाया गया है। त्रिरथी वाहिका के प्रथम और तृतीय भाग में घट धारी सम्मिश्रित पुरुष एवं स्त्री आकृतियों को अलग–अलग झरोखों में चित्रित किया गया है। जो सम्भवतः समुद्र एवं गंगा हो सकती हैं। नीचे गज एवं शार्दूलों का मनोरम अलंकरण है।

पृथ्वी के उद्धार में सन्नद्ध दो भुजी नृ वराह प्रत्यालीढ़ मुद्रा चित्रित है। दो भुजीरतिक हिसयकश्यप का उदर विदीर्ण करने में सक्त नरे सामन सुखो होन मुदा में कमन के नीचे दोगुनी राम थो। समय गुआमे बानक बुद्ध का अंकन है। अत्रतः अश्वाहक कल्कि को प्रदर्शित का शिल्पी ने प्रतियो को पूर्णता प्रकृति की है। शिपियों द्वारा प्रतिमा की काटिका में समुद्र क वाह्य शाखा में गया, सिंहादि का प्रदर्शन, श्रृंगणे विद्याधर अन्दालों का अभियटन कर उमशः पाताल, पृथ्वी और सर्ग लोक में सर्वत्र श्री मूर्ति (विष्णु) की त्रैलोक्य व्यापकता को एक शित किया गया है।

उमा–महेश्वर प्रतिमा (चित्र सं. 2)

शिव के सौम्य स्वरूप में सर्वाधिक लोकप्रिय उमा–माहेश्वर कलात्म प्रतिमा में शिव एवं पार्वती के आलिंगन रूप का अंकन किया गया है। शिव के दाहिने उधर्व हाथ में त्रिशूल तथा अधो दक्षिणहस्त अभय मुद्रा में है। वाम हस्त से पार्वती का आलिंगन करते प्रदर्शित है। उमा का दाहिना हाथ शिव के कंधे पर है और वामहस्त में दर्पण धारण किए हैं। सुखासनाशीन शिव एवं उमा परस्पर निहार रहे हैं। नीचे गणेश एवं कार्तिकेय का अंकन है। नन्दी एवं श्रृंगी का भी अंकन है। फलक के शीर्ष पर दाहिनी ओर पद्मासन मुद्रा में ब्रह्मा तथा बायीं ओर विष्णु का अंकन है।

आसनस्थ गणेश (चित्र सं. 3)

पद्मासन मुद्रा में प्रदर्शित चतुर्भुजी गणेश के दाहिने हाथों में क्रमशः परशु एवं स्वदन्त तथा बायें हाथों में पद्म एवं मोदक का अंकन है। दाहिनी ओर नीचे करबद्ध उपासक का प्रदर्शन है। प्रतिमा आंशिक क्षतिग्रस्त है फलतः शीर्ष भाग के अंकन विनष्टप्राय हैं।

उक्त प्रतिमाओं के अतिरिक्त (अन्य प्रतिमाएँ) संकुल में एक मुखी दो शिवलिंग, एक स्थानक खण्डित देवी प्रतिमा, शिव मस्तक, खण्डित सप्तमातृका पट्ट, दो खण्डित महिषासुर मर्दिनी प्रतिमाएँ एवं अन्य खण्डित उमामाहेश्वर आलिंगन पट्ट, खण्डित विष्णु प्रतिमाएँ उल्लेखनीय हैं।

चित्र 1 : विष्णु प्रतिमा

चित्र 2 : उमामाहेश्वर प्रतिमा

चित्र 3 : आसनस्थ गणेश प्रतिमा

चित्र : खण्डित गणेश प्रतिमा

चित्र : एकमुखी शिव लिंग

चित्र : सप्तमातृका पट्ट

सन्दर्भ–सूची

1. पाण्डेय, विमलेश कुमार, जनपद प्रतापगढ़ का प्राचीन इतिहास एवं पुरातत्त्व, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2017
2. वही,
3. जोशी, नी.पु., प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, 1977, पृ. 97–98
4. गरुड़ पुराण, उत्तरभाग 20, 31; वराह पुराण, 4, 2
5. महाभारत, शांतिपर्व, 342, 134

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Commerce : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 316-321

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

CSR Strategies & Consumer Brand Loyalty Brand Reputation, Ethical Marketing Consumer Trust

Dr. Upma Tripathi*

Abstract : *Contemporary businesses cannot survive in today's cutthroat marketplace without engaging in Corporate Social Responsibility (CSR) initiatives. Examining how CSR initiatives cultivate consumer loyalty within the framework of environmentally conscious advertising campaigns, this study probes the link between CSR initiatives and public perception of brands. Community involvement, ethical work practices, and environmental stewardship are some of the CSR programs examined in this research, which seeks to understand how these initiatives influence brand image and consumer behaviour. Case studies and consumer surveys were the basis of this study, which found that CSR-active companies' reputations, as well as the trust and loyalty of their target audience, were positively impacted. Customers are more loyal than ever before to brands that reflect their values, and the research highlights the importance of companies that demonstrate genuine commitment to sustainability. Based on the findings, businesses may boost their image, get more customers involved in the long run, and differentiate themselves from rivals by making CSR a central part of their strategy. This study contributes to the growing body of literature on corporate social responsibility and sustainable marketing. It offers valuable insights for organizations that want to build a reputation that is both responsible and customer-centric.*

Keywords : *Corporate Social Responsibility; Brand Reputation; Consumer Loyalty; Sustainable Marketing Practices*

1. Introduction : The modern business landscape increasingly considers corporate social responsibility (CSR) as a factor in establishing brand reputation and consumer loyalty. Customers who are increasingly aware of social and environmental issues are putting greater pressure on businesses to adopt responsible practices. Participation in the community, ethical employment practices, and environmental preservation are all examples of corporate social responsibility (CSR) efforts that are increasingly important to the long-term success and reputation of businesses (Carroll & Shabana, 2010). Launching CSR programs could significantly improve a company's reputation in the market. According to He and Lai (2014), CSR actions help customers see a firm more positively by improving its character. Customers are more likely to trust and be loyal to a brand when its CSR actions align with their ideals.

Du, Bhattacharya, and Sen (2010) found that consumers are more inclined to stay loyal to a business if they believe that the firm's CSR initiatives are sincere and make a beneficial difference in society. The relationship between CSR and green advertising is equally crucial. Kotler (2011) argues that sustainable marketing emphasises the significance of corporations being profitable while also being socially and environmentally conscientious.

* ***Assistant Professor, Department of Commerce, Chandra Bhanu Gupta Krishi Mahavidyalaya, Bakshi Ka Talab, Lucknow, UP***

Corporate social responsibility (CSR) and sustainability have recently emerged as competitive differentiators for many companies, with the goal of attracting and retaining socially conscious customers (Beck-Olsen et al., 2006).

Corporations now see corporate social responsibility (CSR) as a strategic need for enhancing their brand's reputation and consumer loyalty, rather than an afterthought. In this day of increased awareness of social and environmental issues, consumers increasingly want companies to do good in the world. A brand's market share might be at risk in today's competitive marketplace if it doesn't engage in socially responsible activities. Consumers have higher expectations of brands in this era (Peloza & Shang, 2011).

Incorporating CSR into primary business strategies often leads to an uptick in consumer trust and loyalty and an enhancement of brand reputation, as stated by Öberseder, Schlegelmilch, and Murphy (2013). One of the primary reasons CSR has gained such traction is the emotional connection it helps to establish between brands and their consumers. According to Lii and Lee (2012), consumers are more likely to have a favourable perception of companies that engage in CSR activities when it comes to issues of social welfare and environmental sustainability. These presumptions explain why a large portion of the market is willing to pay a premium for products associated with ethical businesses (Mohr, Webb, & Harris, 2001). This demonstrates that CSR has the potential to revolutionise fiercely competitive markets by assisting businesses in attracting and retaining consumers who value factors beyond product price and quality.

Because there are more and more people who identify as "conscious consumers," corporate social responsibility is more important than ever. According to research by Bhattacharya, Sen, and Korschun (2008), consumers are increasingly drawn to brands that demonstrate their commitment to social responsibility, ethical sourcing, and environmental sustainability. Thus, customer loyalty and repeat purchases may rise as a result of CSR initiatives that resonate with customers' values. Brands that actively engage in corporate social responsibility (CSR) stand out in today's marketing environment, when consumer expectations for transparency and accountability are at an all-time high (Jones, Comfort, & Hillier, 2007).

Another typical perception is that CSR initiatives may help reduce risk. Companies may avoid negative publicity and consumer backlash by being socially and environmentally conscious (Porter & Kramer, 2006). A corporation may protect itself against advocacy groups' criticism and the financial fallout of crises involving unethical business practices by practicing ethical supply chain management and protecting the environment.

In this era of sustainable marketing, corporate social responsibility (CSR) initiatives have a significant impact on how customers perceive and interact with a firm. Companies that successfully include CSR into their strategy build lasting relationships with their consumers and differentiate themselves from competitors. The study's overarching goal is to fill in some gaps in our understanding of these dynamics by investigating how CSR and sustainability initiatives influence public perception of brands and the loyalty of their target audiences.

Objectives of the study :

• To analyze the impact of CSR initiatives on brand reputation in the context of sustainable marketing practices. To examine the role of CSR activities in fostering consumer loyalty and trust.

• To explore the relationship between CSR efforts and consumer purchase decisions, particularly in sustainability-conscious markets.

• To assess how brands can strategically integrate CSR into their business models to enhance long-term market differentiation.

2. Review of literature : In recent decades, the idea of corporate social responsibility (CSR) has received a lot of attention, and many studies have shown that it is important for building brand reputation, encouraging consumer loyalty, and driving business success. The literature on corporate social responsibility covers a wide range of subjects, including the impact of CSR on consumer behaviour, brand perception, and market position.

Social responsibility initiatives may have an effect on consumers' perceptions of a company's brand. Fombrun and Shanley argue that CSR is a powerful tool for companies to demonstrate their commitment to society and the environment to their stakeholders (1990). Market reputation is enhanced when companies consistently engage in CSR projects because consumers see them as more trustworthy and ethical. In a similar vein, Luo and Bhattacharya (2006) found that CSR initiatives, particularly those focused on social welfare and sustainability, improve consumer attitudes and brand image, which in turn boosts brand reputation.

Keeping the planet habitable Due to its significance in setting businesses apart, CSR initiatives have attracted a great deal of academic attention. The perception of a firm by consumers is positively impacted by environmental CSR, as stated by Hartmann and Ibáñez (2007). Those who care about the environment will find this to be especially true. As a consequence, both the public's opinion of the brand and sales gain momentum.

The correlation between CSR and devoted consumers is another area that has received much academic attention. According to Sen and Bhattacharya (2001), CSR initiatives have an impact on consumer behaviour, including their purchase decisions and loyalty. Consumers are more likely to engage with and remain loyal to businesses that they perceive as making a positive impact on society, according to these results. Also, as Marin and Ruiz (2007) noted, consumer loyalty reaches new heights when CSR aligns with consumers' own views. A deeper bond between a company and its client seems to be the result of a higher degree of congruence between CSR initiatives and consumer values.

The importance of CSR communication in transforming CSR activities into consumer loyalty was highlighted by Du, Bhattacharya, and Sen (2010). Sharing transparent information about the company's CSR activities does double duty: it raises awareness of the company's ethical stance and encourages consumers to stay loyal to the brand. The need of implementing and communicating CSR practices to build lasting relationships with customers is highlighted by this.

The impact of corporate social responsibility on customer spending has been the subject of much study. Consumers are more inclined to support businesses that they see as having a positive impact on society (Mohr, Webb, & Harris, 2001). Their research shows that CSR is a significant distinction in today's cutthroat business environments, influencing customers' purchasing decisions. When CSR programs are seen as genuine and complimentary to the company's core strategy, they have a positive impact on consumer intent to purchase (Becker-Olsen, Cudmore, and Hill, 2006).

Customers' reactions to CSR initiatives, however, vary widely. Researchers Green and Peloza (2011) found that customers' reactions could differ substantially based on their own values and the credibility they assign to CSR programs. They argue that consumers are more likely to buy into a brand's sales if they see the company's CSR efforts as authentic and in keeping with its mission, as opposed to dishonest and driven by marketing.

The significance of corporate social responsibility (CSR) in eco-friendly advertising is becoming more and more studied. Sustainable marketing methods are becoming more popular as a means for firms to meet client expectations in an ethical and ecologically conscious manner while still being financially viable in the long term. Kotler argues that CSR is fundamental to the concept of sustainable

marketing since it seeks to provide value to consumers in an ethical manner (2011). An additional factor is the growing number of eco-conscious consumers who are looking for businesses that share their values and practise sustainable marketing.

Sustainability in marketing via CSR has the potential to boost customer satisfaction, loyalty to the brand, and competitive advantage (Smith, 2011). He found that companies with sustainable marketing strategies that include CSR had a higher chance of establishing loyal, long-term relationships with their customers.

It is well-established that corporate social responsibility (CSR) improves financial outcomes and consumer happiness. Margolis and Walsh (2003) found a high correlation between CSR actions and financial results. Corporate social responsibility (CSR) efforts, according to their meta-analysis, contribute to better financial outcomes for participating firms. This is because these programs boost brand image, minimise operational risks, and foster stronger connections with stakeholders. Furthermore, research by Orlitzky, Schmidt, and Rynes (2003) confirms that CSR boosts bottom line results. More customers, less capital expenses, and happier workers are the results of socially responsible companies, according to them.

3. Research Methodology : Within the framework of environmentally conscious advertising, this research intends to investigate how CSR programs affect public perception of brands and the loyalty of their target audiences. The study's aims will be realised in full by the research technique, which employs both qualitative and quantitative approaches.

3.1.Research Design : The study will use a mixed-methods approach, combining both qualitative and quantitative research to gain deeper insights into the relationship between CSR initiatives and their impact on brand reputation and consumer loyalty.

Quantitative Research : A structured survey will be administered to gather data from consumers regarding their perceptions of CSR initiatives and how these initiatives affect their loyalty and trust toward the brands.

Qualitative Research : In-depth interviews will be conducted with marketing professionals and CSR managers to explore how companies design and implement their CSR strategies, and how these initiatives are aligned with their sustainable marketing goals.

3.2.Sampling Method and Population :

Population : The target population for the quantitative survey consists of consumers across various sectors (e.g., retail, technology, FMCG, hospitality) who have been exposed to brands with CSR initiatives.

Sample Size : A sample size of **300 consumers** will be targeted for the quantitative survey to ensure statistically significant results. For the qualitative interviews, **10 to 12 marketing and CSR professionals** will be selected using purposive sampling to gain insights into CSR strategy design and implementation.

3.2.1. Sampling Method

Quantitative Survey : A **stratified random sampling** method will be used to ensure that consumers from diverse backgrounds (age, gender, income, education) are represented.

Qualitative Interviews : **Purposive sampling** will be used to select industry experts and professionals with in-depth knowledge of CSR initiatives in sustainable marketing.

3.3. Data Collection Methods

Quantitative Data Collection : An online structured questionnaire will be developed, focusing on the following aspects :

- Consumers' awareness of CSR initiatives

- Their perceptions of the brand's reputation after being exposed to CSR activities
- The role of CSR in shaping their loyalty and purchase decisions
- The perceived alignment between CSR activities and sustainable marketing practices.

3.3.1.Data Analysis

Quantitative Data Analysis : The data collected from the survey will be analyzed using **descriptive statistics**, **correlation analysis**, and **regression analysis** to understand the relationship between CSR activities and their impact on brand reputation and consumer loyalty. Statistical software like **SPSS** will be used for data analysis.

Correlation Analysis : To identify the strength and direction of the relationship between CSR perception and consumer loyalty.

Regression Analysis : To determine how different dimensions of CSR (e.g., environmental, social, ethical) influence consumer loyalty and brand reputation.

Qualitative Data Analysis : The interview data will be transcribed and analyzed using **thematic analysis**. This method will help identify recurring themes and patterns in the responses related to CSR strategy design, communication, and its influence on brand reputation. NVivo software will be used to assist in coding and categorizing themes from the interview transcripts.

3.4.Validity and Reliability

Validity : To ensure **content validity**, the survey questionnaire will be pre-tested with a small sample of consumers and experts to confirm that the questions appropriately measure the intended variables. **Expert feedback** will also be sought for interview questions to ensure they adequately cover the core aspects of CSR and sustainable marketing practices.

Reliability : **Cronbach's Alpha** will be calculated to measure the internal consistency of the survey items. For the qualitative research, consistency in coding will be ensured through multiple rounds of cross-checking to improve the reliability of the thematic analysis.

3.5.Ethical Considerations :

The research will adhere to ethical guidelines, ensuring **informed consent** from all participants, **confidentiality of responses**, and the **right to withdraw** from the study at any time. All interviews and surveys will be conducted in a transparent and non-intrusive manner.

Conclusion : The results of this research show that CSR has a significant effect on sustainable marketing, customer loyalty, and brand reputation. Rather than being seen as an afterthought, CSR is now seen as an integral part of company strategy and brand identity, according to the results. In terms of environmental sustainability and ethical labour practices, CSR activities are well-known and well-received by consumers, especially younger generations. Numerous respondents said that they would cease supporting firms that do not participate in socially responsible conduct, demonstrating the fact that CSR initiatives create trust, improve reputation, and cultivate long-term customer loyalty.

Future Scope : The study opens several avenues for future research and practice :

Industry-Specific CSR Strategies : The effects of CSR programs on shopping habits in some sectors, such the IT, retail, or food and drink industries, may be the subject of future studies. A more nuanced approach to CSR might be useful for different businesses because of the distinct problems they encounter and the different expectations their customers have.

CSR in Emerging Markets : Although this study primarily examines customer reactions, it would be beneficial to do more research to better understand the effects of CSR in developing markets with distinct socio-economic circumstances compared to established markets. Part of this process is looking at how local economic and cultural variables affect how consumers see CSR.

Longitudinal Studies : To further understand the long-term effects of CSR on customer loyalty and brand perception, future research might use a longitudinal design. This will shed light on the lasting advantages of CSR and show firms how to consistently engage in CSR to keep their consumers' confidence and loyalty.

Role of Digital Platforms in CSR Communication : Future studies might investigate the efficacy of digital platforms in raising CSR awareness and participation in more depth, given the growing influence of social media. Which channels are best for conveying CSR to various customer categories might be shown by comparing various platforms, such as Instagram and LinkedIn.

References

1. Becker-Olsen, K. L., Cudmore, B. A., & Hill, R. P. (2006), The Impact of Perceived Corporate Social Responsibility on Consumer Behavior, Journal of Business Research, 59(1), 46-53.

2. Carroll, A. B., & Shabana, K. M. (2010), The Business Case for Corporate Cocial Responsibility : A Review of Concepts, Research, and Practice, International Journal of Management Reviews, 12(1), 85-105.

3. Du, S., Bhattacharya, C. B., & Sen, S. (2010), Maximizing Business Returns to Corporate Social Responsibility (CSR) : The Role of CSR Communication. International Journal of Management Reviews, 12(1), 8-20.

4. He, H., & Lai, K. K. (2014), The Effects of Corporate Social Responsibility on Brand Loyalty : The mediating role of brand image. Journal of Business Ethics, 123(1), 89-102.

5. Kim, S., & Ferguson, M. A. (2018), Dimensions of Effective CSR Communication based on public expectations. Journal of Marketing Communications, 24(6), 549-567.

6. Kotler, P. (2011), Reinventing Marketing to Manage the Environmental Imperative, Journal of Marketing, 75(4), 132-135.

7. Bhattacharya, C. B., Sen, S., & Korschun, D. (2008), Using Corporate Social Responsibility to Win the War for Talent, MIT Sloan Management Review, 49(2), 37-44.

8. Jones, P., Comfort, D., & Hillier, D. (2007), Corporate Social Responsibility : A Case Study of the Top Ten Hlobal Retailers, Euro Med Journal of Business, 2(4), 23-35.

9. Lii, Y., & Lee, M. (2012), Doing Right Leads to Doing Well : When the Type of CSR and Reputation Interact to Affect Consumer Evaluations of the Firm. Journal of Business Ethics, 105(1), 69-81.

10. Mohr, L. A., Webb, D. J., & Harris, K. E. (2001), Do Consumers Expect Companies to Be Socially Responsible? The Impact of Corporate Social Responsibility on Buying Behavior, Journal of Consumer Affairs, 35(1), 45-72.

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Pol. Science : Shodh Sandarsh-XII, Vol.-XLII, Sep. 2024, Page : 322-324

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

मध्य प्रदेश के 2022 के पंचायत चुनाव में जनजातीय महिलाओं का प्रतिनिधित्व : एक अध्ययन (सीधी जिले के विशेष संदर्भ में)

*गुलाब सिंह श्याम**

सारांश : *आदिवासी पहचान ने पूरे इतिहास में कई बदलाव और कठिनाइयाँ देखी हैं। अधिकांश जनजातियाँ अभी भी वैश्वीकरण की ताकतों के कारण विभिन्न आयामों में कई चुनौतियों और कठिनाइयों का सामना कर रही हैं। हमारे देश में आदिवासी क्षेत्रों को अविकसित माना जाता है, और कई दशकों के नियोजित विकास के बावजूद उनकी वित्तीय परिस्थितियाँ नहीं बदली हैं। आदिवासी क्षेत्रों में विकास में समग्रता शामिल होनी चाहिए और पारंपरिक पहचान, संस्कृति और विशेषताओं के संरक्षण के साथ–साथ मुख्यधारा की शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा और रोजगार तक उनकी पहुँच हीनी चाहिए। संबंधित नोडल एजेंसी को विभिन्न सरकारी कल्याण योजनाओं के माध्यम से उनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति में सुधार करने के लिए महत्वपूर्ण प्रयास करने चाहिए। पिछले अध्ययनों से पता चलता है कि आदिवासी समुदायों को भारत में सबसे प्राचीन और पिछड़े समुदायों में से एक माना जाता है। आदिवासी समुदायों और उनके भौगोलिक क्षेत्रों के विकास को सतत विकास दृष्टिकोण का पालन करना चाहिए। इस अध्ययन का उद्देश्य सीधी जिले में रहने वाली जनजातीय महिलाओं का पंचायती चुनाव में प्रतिनिधित्व के बारे में जानना है।*

मुख्य शब्द : *जनजातीय महिलाओं, सीधी, पंचायती चुनाव।*

पंचायती राज व्यवस्था एवं पंचायत चुनाव : पंचायत चुनाव के पीछे जो विचारधारा निहित थी, वह यह है कि पिछड़े व जनजातीय क्षेत्रों के लोग अपने ऊपर शासन करने का उत्तरायित्व स्वंय संभालें। यही एक महान आदर्श है जिस उद्देश्य को प्राप्त किया जाना था। यह आवश्यक है किं पिछड़े क्षेत्र में रहने वाले लोग कृषि, सार्वजनिक स्वास्थ्य, शिक्षा सिंचाई पशुपालन, आदि से सम्बन्धित विकास क्रियाओं सें सक्रिय रूप से भाग लें। जनजातीय लोग न केवल कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में ही भाग लें, अपितु उन्हें यह अधिकार भी होना चाहिए कि वे अपनी आवश्यकताओं और अनिवार्यताओं के विषय में स्वयं ही निर्णय लें सकें। लोग अपने चुने हुए प्रतिनिधियों के माध्यम से स्थानीय नीतियों का निर्धारण करें और जनता की वास्तविक आवश्यकओं का ध्यान रखते हुए उनके अनुसार ही अपने कार्यक्रमों को लागू करें। इस प्रकार, देश की जड़ो तक लोकतंत्र को प्रवेश कराया गया। इसके अन्तर्गत जनता के नीचे से नीचे स्तर पर स्थित लोग भी देश के प्रशासन से सम्बद्ध हो जाते। पंचायत चुनाव के माध्यम से जनजातीय लोग न केवल नीति का निर्धारण करते अपितु उसके क्रियान्वयन तथा प्रशासन का नियन्त्रण एवं मार्गदर्शन भी करते। भारत एक गावों का देश है, इसी कारण से स्वतंत्रता के पश्चात ग्रामीण एवं जनजातीय क्षेत्रों का विकास शासन की प्राथमिकताओं में प्रमुख रहा है। भारत देश में ग्रामीण, नगरीय एवं जनजातीय संस्कृतियाँ पाई जाती है भारत गावों की तथा लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की सफलता के लिए पंचायत चुनाव महत्वपूर्ण साधन है जनजातीय क्षेत्रों को ज्यादा से ज्यादा अधिकार संपन्न बनाने की आवश्यकता है। पंचायत राज संचालनालय की स्थापना का उद्देश्य ग्राम पंचायतों को सशक्त बनाना है। संविधान के अनुच्छेद 40 में लिखा गया है कि राज्य पंचायतों के निर्माण का कदम उठायेगा और उन्हे शक्ति एवं अधिकार प्रदान करेगा।

सीधी जिले का परिचय : सीधी जिला भारत के मध्य प्रदेश राज्य के आदिवासी जिलों में से एक है। सीधी मध्य प्रदेश के उत्तर–पूर्व छोर पर स्थित जिला है। इसका मध्य प्रदेश में एक ऐतिहासिक स्थान है। सीधी जिले का प्राकृतिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्व है। सोन इस जिले की महत्वपूर्ण नदी है। यह नदी प्राकृतिक संपदा से भरपूर है। सिंगरौली (24 मई, 2008 को सीधी जिला से अलग हुआ) बहुत बड़ा कोयला उत्पादन क्षेत्र है। इससे देश भर के कई उद्योग को कोयले की आपूर्ति की जाती है। यहीं पर विंध्याचल सुपर थर्मल पावर स्टेशन स्थित है, जिससे बहुत बड़े क्षेत्र में विद्युत की आपूर्ति होती है। सीधी एक शहर और नगरपालिका है, यह सीधी जिले का मुख्यालय है। यह जिला, रीवा संभाग का हिस्सा है। सीधी जिला मध्य प्रदेश राज्य के गौरवपूर्ण इतिहास का प्रतिबिंब है, यह राज्य की उत्तर–पूर्वी सीमा बनाता है। सीधी जिला प्राकृतिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक

* *शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग*

इतिहास का भंडार है। यह जिला कलकल बहने वाली नदी–सोन के साथ शानदार प्राकृतिक संसाधनों के लिए जाना जाता है।

सीधी जिला रीवा संभाग के 4 जिलों में से एक है। मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल से सीधी की दूरी 632 किमी. है। वहीं संभागीय मुख्यालय से इसकी दूरी 80 किमी. है। यह जिला पूर्व–पश्चिम में 155 और उत्तर–दक्षिण में 95 किमी. क्षेत्र में फैला है। इसका कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 10,532 किमी. है।

जिले में चौफाल, छुहीया, मोहनिया, खाम्ह घाटी में विशाल दृश्य जंगल की ज्वाला और फूलों का खुबसूरत नजारा है। वहीं महुआ के फूलों की खुशबू मदमस्त कर देती है। सीधी जिले में कुसमी तहसील के अंतर्गत बना बरचर बांध जिले का सबसे बड़ा बांध है। इस बांध से सिंचाई होती है तथा मछली पालन होता है। यह बांध संजय टाइगर रिजर्व के बफर जोन में स्थित है !बांध के आसपास साल के घने वन आच्छादित है जो काफी मनमोहक है। हाल ही में मोहनिया टनल बनकर तैयार हुआ है जिसको रीवा सीधी टनल के नाम से भी जाना जाता हैं। इसकी लंबाई 2280 मीटर है। यह मध्य प्रदेश की सबसे लंबी सुरंग है जो रीवा सीधी की यात्रा में 45 मिनट की बचत करता है। एक तरफ अपनी आदिवासी सामाजिक–सांस्कृतिक विविधता और आदिवासी जातीय इतिहास के वर्णक्रम के साथ, जिले में कैमूर, केहजुआ और रानीमुंडा पहाड़ियों के मनोरम दृश्य हैं, जो महुआ के फूलों की मीठी गंध से घने जंगल की आंच के फूलों से नहाते हैं।

एक स्थान के रूप में यह अपने सदाबहार जंगल और बैगा और गोंड आदिवासी संस्कृतियों के लिए जाना जाता है। ऐतिहासिक रूप से, इस आदिवासी जिले का श्रेय महिलाओं को जाता है। लेकिन स्वतंत्रता के बाद के युग में एक संवैधानिक निकाय के रूप में, यह कम ज्ञात जिला था जिसे एक पथप्रदर्शक की आवश्यकता थी।

सीधी जिले का इतिहास : सीधी मध्यप्रदेश का हिस्सा है, इसकी छवि गौरवशाली इतिहास और कला की है। सीधी, राज्य की उत्तर–पूर्वी सीमा में स्थित है। सीधी को इसके प्राकृतिक सौंदर्य, ऐतिहासिक महत्व और सांस्कृतिक कला के लिए जाना जाता है। सीधी प्राकृतिक संसाधनों से भरा हुआ है, सोन नदीं यहाँ से गुजरती है। संजय राष्ट्रीय उद्यान दुबरी में जो सीधी मुख्यालय से 80 किमी. की दूरी पर दक्षिणी छोर में स्थित है। राष्ट्रीय अभ्यारण्य भी है जो बगदरा में है। जिला मुख्यालय सीधी से लगभग 37 किमी की दूरी पर जोगदहा में सोन घड़ियाल अभ्यारण्य स्थित है। इस अभ्यारण में घड़ियाल, मगरमच्छ, कछुए एवं अन्य दुर्लभ प्रकार के जीव–जन्तु पाये जाते हैं। गोपद बनास तहसील क्षेत्र में घोघरा देवी का मन्दिर है जहाँ प्रतिवर्ष नवरात्रि में मेला लगता है। माना जाता है कि अकबर के नौ रत्नों में से एक बीरबल का जन्म भी यहीं हुआ था। इस जिले के भवरसेंन मे वाणभट्ट का जन्म हुआ माना जाता है।

शोध का उद्देश्य

1. जनजातीय महिलाओं के प्रतिनिधित्व की सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना।
2. पंचायत राज व्यवस्था के क्रियान्वयन के संदर्भ में जनजातीय महिलाओं के प्रतिनिधित्व का दृष्टिकोण जानना।

साहित्य की समीक्षा

1. जसप्रीत कौर सोनी (2006), ने अपने प्रस्तुत लेख में सुशासन की महत्ता को स्वीकारा है। सुशासन और नागरिकों के मांगों के संबंध में प्रस्तुत लेख वैश्वीकरण और लोकतंत्र के बीच संबंध को समझने की कोशिश करता है। लेखक के अनुसार लोकतंत्र के तीन मुख्य आधार है, सरकार, व्यवसायिक समुदाय, और समाज। समाज के उद्देश्यों की पूर्ति व नागरिकों के दैनिक जीवन में आने वाली सामान्य जरूरतों की पूर्ति में स्थानीय नेतृत्व की अहम् भूमिका होती है साथ ही इसमें लेखक ने पंचायतीराज व्यवस्था की महत्ता को भी स्पष्ट किया है।

2. बी.एम. शर्मा, रूप सिंह बारेठ (2004), ने अपने लेख में भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में नवोदित पंचायत चुनाव व्यवस्था के संदर्भ में विश्लेषण करने का प्रयास किया है। विशेष रूप से भारत जैसे विकासशील देश पर इनका प्रभाव तथा इक्कीसवीं शताब्दी की चुनौतियों का इनके शेष में विस्तार से वर्णन किया गया है।

3. सी.पी. बर्थवाल (2003), ने सुशासन का अर्थ परिभाषित करते हुए उसकी प्रशासन व समाज में उसकी भूमिका को भी स्पष्ट किया है। साथ ही भारत में सुशासन, पंचायतीराज व सुशासन व वैश्वीकरण, सुशासन व लोकतंत्र, सुशासन व मानवाधिकार आदि विषयों को प्रस्तुत किया है।

4. पूजा शर्मा (2015), इन्होंने अपने लघुशोध में पंचायती राज से संबंधित पिछले कुछ वर्षों के शासन आदेशों पर अगर गौर किया जाये तो यह स्पष्ट होता है कि कई ऐसे मामलों में सरकार खुद कोई पहल नहीं करना चाहती है इसीलिए जो योजना पंचायत में चलाई जाती है उसका ज्यादा से ज्यादा बी.पी.एल. वालों को लाभ समय से दिया जाना चाहिए। अतः यह कहा जा सकता है कि भारत जैसे देश में जहॉ पंचायती राज व्यवस्था लागू होती है, यदि पंचायती स्तर पर हमारा विकास होगा तो हम अवश्य ही राष्ट्रीय स्तर पर विकास करेगें क्योंकि पंचायती स्तर सबसे छोटा स्तर या विकास की पहली सीढ़ी होती है, यदि पंचायती स्तर पर विकास होगा तो राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति आय, इत्यादि में वृद्धि होगी जिससे भारत के विकास में वृद्धि होगी। पंचायती व्यवस्था के अंतर्गत मिलने वाली सेवाओं या योजनाओं का लोगों तक सही से पहुँचने एवं उसका सही तरह से प्रयोग करने से अवश्य ही

पंचायती व्यवस्था विकास करेगी, जिससे भारत विकास करेगा।

5. बिन्दु सिंह (2014), ने अपने शोध में यह दर्शाया है की भारत में पंचायती राज संस्थाओं के भारतीय संविधान का हिस्सा बन जाने से अब कोई भी पचायतों को दिए गए अधिकरों, दायित्वों, और वित्तीय साधनों को उनसे छीन नहीं सकेगा। 73वां संविधान संशोधन न केवल पंचायती राज संस्थाओं मे संरचनात्मक एकरुपता लाने का प्रयास है बल्कि यह सुनिश्चित भी करता है कि इसमें एक ऐसा भी प्रावधान रखा गया है जिसके अन्तर्गत राज्य विधानमण्डल, यदि उचित समझें तो पिछड़ी जातियों तथा जनजातियों के नागरिकों के लिए आरक्षण का प्रावधान रख सकते हैं।

शोध विधि : यह शोध पत्र पूरी तरह से द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। द्वितीयक डेटा अकादमिक डेटाबेस में उपलब्ध साहित्य से, साथ ही समाचार पत्रों के लेखों और अन्य प्रासंगिक प्रकाशनों से एकत्र किए गए थे। अध्ययन में गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों डेटा का उपयोग किया गया है। शोध–पत्र की संरचना इस प्रकार है : पहला भाग विभिन्न पहलुओं में विभिन्न जनजातीय महिलाओं की विस्तृत जानकारी प्रदान करता है। दूसरा भाग सीधी जिले में जनजातीय महिलाओं के पंचायती चुनाव में प्रतिनिधित्व पर प्रकाश डालता है। शोध–पत्र का अंतिम भाग जनजातीय महिलाओं के समग्र उत्थान के प्रयासों के विश्लेषण के साथ समाप्त होता है।

निष्कर्ष एवं सुझाव : पंचायती राज को वर्तमान भारत में लोकतंत्र के विकास के लिए आवश्यक प्रक्रिया के रूप में अपनाया जाना बहुत आवश्यक है। साथ ही भारत में पंचायतीराज, लोकतंत्र, सुशासन, व मानवाधिकार आदि विषयों को प्रस्तुत किया है। जनजातीय महिलाएँ, भारतीय महिलाओं की जनसांख्यिकीय संरचना का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं और उनमें से अधिकांश अभी भी देश भर में पहाड़ी, घने जंगलों और दुर्गम क्षेत्रों में रहते हैं। आदिवासियों में आदिवासी महिलाएँ शिक्षा और स्वास्थ्य सेवा तक सीमित पहुँच जैसी सामाजिक–आर्थिक चुनौतियों का सामना करती हैं। इन कठिनाइयों के बावजूद, वे अपनी सांस्कृतिक परंपराओं, भाषाओं और अनूठी प्रथाओं को बनाए रखना जारी रखती हैं। सीधी जिले के आदिवासी समुदाय राज्य के सांस्कृतिक और सामाजिक ताने–बाने का एक अभिन्न अंग हैं। इस विविधता के बावजूद, देश भर में कई आदिवासी समूह आर्थिक रूप से पिछड़े हुए हैं, अक्सर अलग–थलग क्षेत्रों में रहते हैं, जिसके कारण उनके जीवन के तरीके में धीरे–धीरे और कभी–कभी दर्दनाक बदलाव आते हैं। राज्य ने विभिन्न सरकारी कल्याण योजनाओं के माध्यम से उनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति में सुधार करने के लिए महत्वपूर्ण प्रयास किए हैं। ये अनुसूचित जनजातियाँ सभ्यता से वंचित हैं पिछले शोध अध्ययनों से पता चलता है कि सीधी जिले की जनजातीय महिलाओं के सबसे प्राचीन और पिछड़े समुदायों में से एक माने जाते हैं। पंचायती राज प्रशिक्षण देकर नेतृत्व तैयार करने तक ही नहीं माना जा सकता ना ही सामुदायिक रूप में इसे सर्वोदय कार्यक्रम के रूप में अपनाया गया। यह एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जिसका क्रियान्वयन बहुत ही सतर्कता से करना चाहिए जिससे पिछड़े व्जनजातीय लोगो को इसका लाभ अच्छे से मिल सके। यदि पंचायती स्तर पर हमारा विकास होगा तो हम अवश्य ही राष्ट्रीय स्तर पर विकास करेगें क्योंकि पंचायती स्तर सबसे छोटा स्तर या विकास की पहली सीढ़ी होती है, यदि पंचायती स्तर पर विकास होगा तो राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति आय, इत्यादि में वृद्धि होगी जिससे भारत के विकास में वृद्धि होगी। पंचायती व्यवस्था के अंतर्गत मिलने वाली सेवाओं या योजनाओं का लोगों तक सही से पहुँचने एवं उसका सही तरह से प्रयोग करने से अवश्य ही पंचायती व्यवस्था विकास करेगी, जिससे भारत विकास करेगा।

संदर्भ–सूची

1. सोनी, जसप्रीत कौर सोनी, ग्लोबलाइजेशन : ब्रिजिंग डिवाइड बिटवीन सिविल सोसाइटी एण्ड गुड गवर्नेंस, दी इण्डियन जनरल ऑफ पॉलिटिकल साइंस दी इण्डियन पॉलिटिकल साइंस एसोसिएशन, मेरठ, वॉल्यूम–LXVII, नं.–2, अप्रैल–जून, पृ. 279–283, 2006

2. बी.एम. शर्मा, रूप सिंह बारेठ, गुड गवर्नेंस ग्लोबलाइजेशन एण्ड सिविल सोसाइटी, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, नई दिल्ली, 2004

3. सी.पी. बर्थवाल, गुड गवर्नेंस इन इण्डिया, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2003

4. पूजा शर्मा (2015), ग्रामीण विकास पंचायतीराज की भूमिका–महमूदपुर विकासखण्ड के विशेष संदर्भ में, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा

5. बिन्दु सिंह (2014), भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण एवं पंचायती राज, अप्रकाशित लघुशोध, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, सीधी

6. श्री शरण (2001), पंचायती राज, और लोकतंत्र

7. आप्टे, प्रभा (1996), भारतीय समाज में नारी, क्लासिक पब्लिशिंग जयपुर

8.https:@@www-researchgate-net@publication@Women-Participation-in-Tribal-Self-GovernAnalysis-of-Panchayats

9. https:@@sidhi-nic-in@

10. https:@@sidhi-nic-in@i;ZVu@संस्कृति–और–विरासत

* * * * *